॥ ओ३म् ॥

वेद

सामवेद

भाषा भाष्य

संपूर्ण

卐

— भाष्यकार —

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

भाष्यकार की भूमिका

सामवेद चारों वेदों में एक है और इसका तृतीय स्थान है । वेद के चार विभाग विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान काण्ड के भेद से किये जाते हैं । ये चार काण्ड वस्तुतः चार विस्तृत विषय हैं जिनमें अन्य अनेक विषय संगृहीत हो जाते हैं । ऋक् शब्द स्तुत्यर्थक ऋच् धातु से बना है । इसका अर्थ पदार्थों का गुणवर्णन अर्थात् उनके सत्य स्वरूप का स्तवन है । ऋग्वेद गुण और गुणी के भेद से पदार्थों का स्तवन करता है । यजुः शब्द यज् देवपूजा, संगतिकरण और दान के अर्थ को देनेवाले धातु से निष्पन्न है । ब्राह्मण ग्रन्थों में इसकी सिद्धि के और भी प्रकार बताये गये हैं । इसके अर्थविस्तार में कर्म के विविध प्रकारों का सन्निवेश है । साम समन्वय और उपासना से सम्बद्ध है । साम पद की सिद्धि सा+अम और अस् क्षेपार्थक धातु से भी होती है । साम में जहाँ उपासना का उदात्तरूप है वहाँ उसका बहुत ही वैज्ञानिक ऊहापोह भी है । वह है समन्वय का प्रकार । यह समन्वय कर्म और ज्ञान का, कर्म और उपासना का, जगत् और ब्रह्म, लोक और परलोक आदि सभी का हो सकता है । जगत् की पहेली के साथ जीव और ब्रह्म के कार्यकलापों का जब तक समन्वय न किया जावे उपासना की सिद्धि हो नहीं सकती है । अथर्व महत्ता का द्योतक है और उसमें ज्ञान का सर्वोच्च प्रकार वर्णित है ।

इन चारों वेदों को विद्या की दृष्टि से कभी कभी त्रयी भी कहा जाता है । त्रयी-विद्या का यह तात्पर्य कभी भी नहीं है कि वेद तीन ही हैं । वेद तो चार हैं परन्तु मंत्रों की रचना और उनकी परिभाषा के अनुसार वह त्रयी कहे जाते हैं । चारों ही वेदों के मंत्र तीन प्रकार के होते हैं । वे तीन प्रकार हैं ऋक्, यजुः और साम । मीमांसा आदि ग्रंथों में इनकी ऐसी ही परिभाषा की गई है । ये मंत्र के प्रकार हैं और इन से चारों ही वेदों का ग्रहण होता है ।

सामवेद जैसा कहा जा चुका है उपासनात्मक है । इसके मंत्र गानमय हैं । ये गाये जाते हैं और इन गानों को सामगान कहा जाता है । गान भेद से सामवेद को सहस्रवर्त्मा अर्थात् सहस्र मार्गों वाला कहा जाता है । महा-भाष्यकार ने इसके लिए सहस्रवर्त्मा पद का ही प्रयोग किया है । शबर स्वामी ने इसी आधार पर लिखा है कि सामवेद में गीति व गान के सहस्र उपाय हैं । ये गान प्रकार ही इस वेद की सर्वाधिक शाखा होने में कारण हैं । इनमें गान के प्रकारों पर विशेष पल्लवन जाता पाया है ।

विश्व में एक प्रकार का साम पाया जाता है । वह साम ही समन्वय है । विश्व के समस्त प्रश्नों का एक मात्र समाधान जगन्नियन्ता भगवान हैं । उसकी प्राप्ति का साधन उपासना है । यह ज्ञान और कर्म के समन्वय का उदात्त-रूप है । सामवेद इस सम्बन्धी प्रक्रिया से सम्बन्ध रखता है । सामवेद में रथन्तर आदि अनेक प्रकार के सामों का वर्णन है । ब्राह्मण ग्रन्थों में इन सामों को जगत् के पदार्थों का वाचक मानकर उनके साथ इन का सम्बन्ध दिखलाया गया है । वेद के शब्दों का सृष्टि के पदार्थों के साथ सम्बन्ध है—यह इससे सुतराम् स्पष्ट है । जैसे जगत् के दार्शनिक विश्लेषण में कारणों का त्रिक है और त्रिक है ईश्वर, जीव एवं प्रकृति के रूप में । अनादि पदार्थों का ठीक उसी प्रकार ज्ञान और भाषा की मूल प्रेरणा में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का त्रिक है । सामवेद में वर्णित समन्वय और उपासना इसके समुन्नायक हैं । इसी दृष्टि से सामवेद का अध्ययन करना चाहिए ।

सामवेद के प्रथम मंत्र का 'वीतये' पद ही बहुत उच्च विज्ञान का द्योतक है । समस्त लोक आदिम अवस्था में एक दूसरे से अत्यन्त समीप रहते हैं । अग्नि उन्हें पृथक् और दूर करता है । 'वीतये' से इसी धारणा की संपुष्टि होती है । ऐसे ज्ञान के आगार वेदों को लोग पढ़ें, जिससे सर्वत्र सुख शांति व्याप्त हो ।

दिल्ली
दिनांक ३०-६-७३

वैद्यनाथ शास्त्री

॥ ओ३म् ॥

सामवेद भाषाभाष्यम्

पूर्वार्चिकः

आग्नेयं काण्डम् : : प्रथमोध्यायः

१—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३१२ ३२३१२ १ २र ३१२

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ईश्वर (आयाहि) प्राप्त हो (वीतये) ज्ञान के लिए (गृणानः) स्तुति किया गया ((हव्यदातये) उत्तम पदार्थों के देने के लिए (नि) निश्चय रूप से (होता) दाता (सत्सि) विद्यमान है (बर्हिषि) विश्व ब्रह्माण्ड में ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दाता तू विश्व ब्रह्माण्ड में व्यापक है। अतः स्तुति किया हुआ तू ज्ञान तथा उत्तम पदार्थों के देने के लिए हमें प्राप्त हो ॥१॥

२—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३२३१२३१२

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर ! (यज्ञानाम्) उत्तम व्यवहारों का (होता) दाता (विश्वेषाम्) सब (हितः) कल्याणकारी (देवेभिः) विद्वानों और दिव्य पदार्थों द्वारा (मानुषे जने) मनुष्य समाज पर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू समस्त उत्तम व्यवहारों का दाता तथा विद्वानों और दिव्य पदार्थों के द्वारा मनुष्य समाज पर उपकार करने वाला है ॥२॥

३—काण्वो मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३१ २ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३१२३१२

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥

पदार्थ—(अग्निम्) ईश्वर को (दूतम्) पापियों को दण्ड देने वाले (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (होतारम्) दाता (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (अस्य) इस (यज्ञस्य) संसार यज्ञ के (सुक्रतुम्) उत्तम निर्माता ॥३॥

भावार्थ—हम पापियों के दण्ड देने वाले, दाता, सर्वज्ञ और इस संसाररूपी यज्ञ के उत्तम निर्माता परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥३॥

४—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३१२ ३१२३१२ १२ ३१ २र

अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥४॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (वृत्राणि) अज्ञानों का (जंघनत्) नाश करता है (द्रविणस्युः) समस्त धनों का स्वामी (विपन्यया) विशिष्ट उपासना से (समिद्धः) साक्षात् किया हुआ (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (आहुतः) भलीभांति स्तुति किया हुआ ॥४॥

भावार्थ—उपासना से साक्षात् किया हुआ, स्तुत्य, शुद्धस्वरूप तथा समस्त धनों का स्वामी परमेश्वर अज्ञानान्धकारों का विनाश करता है ॥४॥

५—उशना । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३ १ २ ३२ ३१२ ३ २ २३२३१ २र

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथन्न वेद्यम् ॥५॥

पदार्थ—(प्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रिय (वः) तुझ (अतिथिम्) काल के बन्धन से रहित (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (मित्रम्) मित्र के (इव) समान (प्रियम्) प्यारे (अग्ने) हे ईश्वर (रथम् न) सूर्य के समान (वेद्यम्) ज्ञातव्य ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त प्रिय, कालबन्धन-रहित, मित्र के समान प्यारे तथा सूर्य के समान जानने योग्य तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

६—सुदीतिपुरुमीढौ । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३१ २र १२ ३२३ १ २र

त्वन्नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमें (अग्ने) हे ईश्वर ! (महोभिः) महान् गुणों वा कर्मों से (पाहि) बचा (विश्वस्या) समस्त (अरातेः) अदानशीलता के भावों से (उत) तथा (द्विषः) द्वेष वाले (मर्त्यस्य) मनुष्य के सम्पर्क से ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् गुणों और कर्मों द्वारा समस्त अदानशीलता के भावों और द्वेषी मनुष्य के सम्पर्क से हमें बचा ॥६॥

७—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३१२३१२ ३१२ ३ १ २

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धासि इन्दुभिः ॥७॥

पदार्थ—(एहि) प्राप्त हो (उ) निश्चय (सु ब्रवाणि) अच्छी प्रकार बोलूं (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (इत्था) इस प्रकार (इतरा) मनुष्यों की वाणी से भिन्न (गिरः) वाणियों को (एभिः) इन सब (वर्धासि) बढ़ा (इन्दुभिः) यज्ञादिकों द्वारा ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मैं मानवी वाणी से भिन्न तेरी वेदमयी वाणी अथवा स्तुति को उत्तम रूप से बोलूँ । इस प्रकार तू मुझे प्राप्त हो और इन यज्ञादिकों के द्वारा मुझे बढ़ा ॥७॥

८—काण्वो वत्सः । गायत्री । अग्निः ।

१२३ २ २र ३ १ २ ३१ २ २३ १ २ ३ २

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामये गिरा ॥८॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (ते) तेरा (वत्स) पुत्ररूप जीव (मनः) मनन योग्य ज्ञान को (यमत्) प्राप्त करता है (परमाच्चित्) परमप्रभु से (सधस्थात्) साथ रहने वाले अथवा समान स्थान में रहने वाले (अग्ने) हे ईश्वर (त्वाम्) तुझको (कामये) चाहता हूँ (गिरा) स्तुति से ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा पुत्ररूप जीव हृदय देश में साथ रहने वाले तुझ परम प्रभु से मननयोग्य ज्ञान को प्राप्त करता है। मैं भी स्तुति द्वारा तेरी कामना करता हूँ ॥८॥

९—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

१२३१२३ २र३ १२ ३ १ २र ३१२

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥९॥

पदार्थ—(त्वाम्) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर (पुष्करादधि) हृदयाकाश में (अथर्वा) महान् अहिंसक योगी (निरमन्थत) प्राप्त करता है (मूर्ध्नः) मूर्त्त-पदार्थों के आधारभूत (विश्वस्य) संसार के (मध्य में) (वाघतः) मेधावीजन ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! महान् अहिंसाव्रती योगी तुझे हृदयाकाश मे प्राप्त करता है और मेधावीजन तुझे मूर्त पदार्थों के आधारभूत संसार के मध्य में देखते हैं ॥ ९ ॥

१०—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १२ ३ १२३१ २३१२३२ ३१ २र ३२

अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (विवस्वत्) अज्ञान को दूर करने वाले ज्ञान को (आभर) भरपूर कर (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (ऊतये) रक्षा के लिए (महे) पूर्ण (देवः) देव (हि) निश्चय ही (असि) है (नः) हमारे (दृशे) दर्शनज्ञान के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर हमारी पूर्ण रक्षा के लिए हमें अज्ञान-निवारक ज्ञान दे। निश्चय तू हमारे ज्ञान के लिए है ॥१०॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

११—विरूपः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३ १२ ३१२ ३१२ १२३१२

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

पदार्थ—(नमः) नमस्कार हो (अग्ने) हे परमेश्वर (ओजसे) बल के लिए (गृणन्ति) स्तुति करते हैं (देव) हे देव (कृष्टयः) मनुष्य (अमैः) बलों से (अमित्रम्) पाप को (अर्दय) नष्ट कर ॥१॥

भावार्थ—हे देव परमेश्वर ! तुझे नमस्कार है। मनुष्य जन लप्राप्ति के लिए तेरी स्तुति करते हैं। हे प्रभो ! तू शक्तियों से पाप का नाश कर ॥२॥

१२—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

३१ २ ३ १ २ ३२३१२ १२ ३ २

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२॥

पदार्थ—(दूतम्) दुःखनाशक (वः) तुझ (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (हव्य-वाहम्) फलदाता (अमर्त्यम्) अमर (यजिष्ठम्) उपासनीय (ऋञ्जसे) स्तुति करता हूँ (गिरा) वेदवाणी से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मैं तुझ दुःखनाशक, सर्वज्ञ कर्मफलदाता और अमर प्रभु की वेदवाणी से स्तुति करता हूँ ॥२॥

१३—प्रयोगः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ १ ३२३ २३१२ ३ १२ ३ २ २र

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे (जामयः) उत्पन्न (गिरः) स्तुतिरूपी वाणियां (देदिशतीः) निर्देश करती हुई (हविष्कृतः) ज्ञानकारिणी (वायोः) वायु के (अनीके) स्थान में (अस्थिरन्) स्थित हो जाती हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! की जाने वाली ज्ञानमयी स्तुतियां तेरा निर्देश कराती हुईं वायुमण्डल में स्थित हो जाती हैं ॥३॥

१४—मधुच्छन्दाः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३१२३ १ २ ३२३२ २३१२ ३ १ २

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥४॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे (अग्ने) हे परमेश्वर (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) सायं प्रातः (धिया) बुद्धि से (वयम्) हम (नमः) नमस्कार (भरन्तः) करते हुए (एमसि) उपस्थित होते हैं ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रतिदिन सायं प्रातः ज्ञानपूर्वक तुझे नमस्कार करते हुए हम तेरे समीप उपस्थित होते हैं ॥४॥

१५—शुनःशेपः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२ १२ ३१२ ३२
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥५॥

पदार्थ—(जराबोध) स्तुति से ज्ञान पाने वाले (तत्) वह (विविड्ढि) कर (विशेविशे) प्रत्येक प्राणी के लिए (यज्ञियाय) पूजनीय (स्तोमम्) स्तुति (रुद्राय) परमेश्वर की (दृशीकम्) मनोहर ।

भावार्थ—हे स्तुति से ज्ञान पाने वाले विद्वन् ! तू प्रत्येक प्राणी के पूजनीय परमेश्वर की मनोहर स्तुति कर ॥५॥

१६—मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

२३ १ २र ३१ २३२३१ २ ३१२ ३ १ २
प्रति त्यञ्चारुमध्वरङ्गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६॥

पदार्थ—(प्रति) लक्ष्य कर (त्यम्) उस (चारुम्) सुन्दर (अध्वरम्) संसार रूपी यज्ञ को (गोपीथाय) पृथिवी तथा इन्द्रियादि पदार्थों की रक्षा के लिए (प्रहूयसे) पुकारा जाता है (मरुद्भिः) ज्ञानी जनों से (अग्ने) हे परमेश्वर ! (आगहि) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू इस सुन्दर संसार यज्ञ को उद्देश्य में रख कर पृथिवी तथा इन्द्रियादि पदार्थों की रक्षा के लिये विद्वानों से पुकारा जाता है । हे भगवन्, तू हमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

१७—शुनःशेपः । गायत्री । अग्निः ।

२३२ ३१२ ३१ २३१ २ ३१२ ३१२
अश्वन्न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निन्नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥७॥

पदार्थ—(अश्वम् न) सूर्य के समान (त्वा) तुझ (वारवन्तम्) अन्धकार निवारक को (वन्दध्यै) वन्दना करता हूँ (अग्निम्) परमेश्वर की (नमोभिः) नमस्कारों से (सम्राजम्) सम्राट् (तम्) उस (अध्वराणाम्) कल्याणकारी यज्ञों के ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्यवत् प्रकाशमान तथा कल्याणकारी यज्ञों के सम्राट् तुझ महाप्रभु की मैं स्तुतियों से वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥

१८—प्रयोगः । गायत्री । अग्निः ।

३ १ २र ३१ २र ३१ ३२१२
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥८॥

पदार्थ—(और्वभृगुवत्) पृथिवीस्थ विद्वान् के समान (शुचिम्) पवित्र (अप्नवानवत्) कर्मनिष्ठ के समान की (आहुवे) स्तुति करता हूँ । (अग्निम्) परमेश्वर की (समुद्रवाससम्) आकाशवत् व्यापक ॥८॥

भावार्थ—पृथिवीस्थ विद्वान् और कर्मनिष्ठों की भांति मैं भी आकाशवत् व्यापक पवित्र परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

१९—मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

३१२ ३१ २र३ १२ ३१२ ३१२ ३१२
अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥९॥

पदार्थ—(अग्निम्) योगाग्नि को (इन्धानः) प्रदीप्त करता हुआ (मनसा) मन के साथ (धियम्) बुद्धि को (सचेत) संयुक्त करे (मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्) परमेश्वर को (इन्धे) प्रकाशित करे (अपने अन्दर) (विवस्वभिः) ज्ञानज्योतियों से ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य को चाहिये कि वह योग की अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ मन के साथ बुद्धि को संयुक्त करे और ज्ञानज्योतियों से अपने अन्दर परमेश्वर को प्रकाशित करे ॥ ९ ॥

२०—वत्सः । गायत्री । अग्निः ।

२उ ३२३१२३ १२ ३२ ३२उ ३१२३२
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥

पदार्थ—(आत् इत्) इस प्रकार (प्रत्नस्य) सनातन (रेतसः) कारण-रूप (ज्योतिः) प्रकाश को (पश्यन्ति) देखते हैं (वासरम्) सर्वत्र फैले हुए (परः) परम (यत्) जो (इध्यते) प्रकाशमान हो रहा है (दिवि) सूर्य आदि चमकीले पदार्थों में ॥ १० ॥

भावार्थ—योगीजन इस प्रकार से सनातन और सब के कारण परमेश्वर की सर्वत्र फैली हुई इस परम ज्योति को देखते हैं जो कि चमकने वाले सूर्य आदि पदार्थों में भी प्रकाशमान हो रही है ॥ १० ॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

२१—प्रयोगः । गायत्री । अग्निः ।

३ १ २ ३१२ ३१२ ३१२ २३२ ३ १२
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

पदार्थ—(वृधन्तम्) उन्नति देने वाले (अध्वराणाम्) यज्ञों के (अग्निम्) परमेश्वर की (वः) तुम लोग (पुरूतमम्) पूर्ण करने वाले (अच्छा) भली प्रकार (नप्त्रे) पौत्र के लिए (सहस्वते) बलशाली ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपने उन्नतिदाता तथा यज्ञों के पूर्ण करने वाले परमेश्वर की बलशाली पुत्र-पौत्र आदि की प्राप्ति के लिए स्तुति करो ॥ १ ॥

२२—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

३२ ३१२ ३२३२३२ ३ २ १२ ३१ २ ३२
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्य३त्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (तिग्मेन) प्रचण्ड (शोचिषा) तेज से (यंसत्) नियम में रखता है (न्यत्रिणम्) पाप करने वाले को (अग्निः) परमेश्वर (नः) हमें (वंसते) देता है (रयिम्) धन को ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर अपने प्रचण्ड तेज से पापियों को नियम में रखता है और परमेश्वर ही हमें धन देता है ॥ २ ॥

२३—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

१२ ३२ ३२३२३१ २३१ २र ३१२ ३२ ३१२
अग्ने मृड महां अस्यय आ देवयुञ्जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ईश्वर (मृड) सुखी कर (महान्) बड़ा (असि) है (अयः) सर्वव्यापक (आ) भली भांति (देवयुञ्जनम्) दैवी संपत्ति से युक्त मनुष्य (इयेथ) प्राप्त होता है (बर्हिरासदम्) ज्ञान में स्थित को ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू महान् और सर्वव्यापक है । तू दैवी संपत्ति से युक्त और ज्ञान में स्थित पुरुष को भली प्रकार सुखी करता है ॥ ३ ॥

२४—वसिष्ठः । गायत्री । अग्निः ।

२३१२ ३१२३१२ ३२ १२ ३१२
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ईश्वर (रक्ष) रक्षा कर (नः) हमारी (अंहसः) पाप कर्म से (प्रतिस्म) ही (तपिष्ठैः) तपाने वाले तेजों से (देव) हे देव (रीषतः) हिंसा के विचारों को (अजरः) अजर (दह) भस्म करदे ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! अजर, अमर तू हमें पाप से बचा और अपने तपाने वाले तेजों से हिंसा के बुरे विचारों को भस्म कर ॥ ४ ॥

२५—भरद्वाजः । गायत्री । अग्निः ।

१२३ १ २र ३१२ २३१२ ३१२
अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥५॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (युङ्क्ष्वा) योग से युक्त करता है (हि) निश्चय (ये) जो (तव) तुझे (अश्वासः) विद्वान् (साधवः) साधुजन (अरम्) पर्याप्त (वहन्ति) धारण करता है । (आशवः) कुशाग्रबुद्धि कर्मण्य ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो विद्वान् कर्मण्य साधुजन तुझे पर्याप्तरूप से अपने अन्दर धारण करते हैं उन्हें तू योग से युक्त करता है ॥ ५ ॥

२६—वसिष्ठः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३१२ ३२ ३१२
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥६॥

पदार्थ—(नि) निरन्तर (त्वा) तुझ (नक्ष्य) हे उपास्य देव (विश्पते) हे प्रजा के स्वामी (द्युमन्तम्) तेजस्वी (धीमहे) धारण करते हैं (वयम्) हम लोग (सुवीरम्) उत्तम शक्तिशाली (अग्ने) हे ईश्वर (आहुत) हे स्तुति योग्य ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे उपासनीय, प्राणिमात्र के स्वामी स्तुत्य परमेश्वर ! हम लोग तुझ तेजस्वी उत्तम बलशाली को धारण करते हैं ॥ ६ ॥

२७—विरूपः । गायत्री । अग्निः ।

३२३ २ ३२ ३१ २र ३ २३२ ३१ २र
अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥७॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (मूर्द्धा) सर्वोपरि (दिवः) द्युलोक का (ककुत्) महान् (पतिः) स्वामी (पृथिव्याः) पृथिवी लोक का (अयम्) यह (अपां) जलों के (रेतांसि) मूल कारणों को (जिन्वति) जानता या गति देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—वह परमेश्वर सर्वोपरि और द्यु तथा पृथिवी लोक का महान् स्वामी है । वह जल के मूल कारणों में गति देता है ॥ ७ ॥

२८—शुनःशेपः । गायत्री । अग्निः ।

३२३२उ ३ १२३१ २३१ २र १२३३१ २
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥८॥

पदार्थ—(इमम्) इस (ऊ सु) पादपूरक (त्वम्) तु (अस्माकम्) हमारे (सनिम्) भजन करने योग्य (गायत्रम्) गायत्र साम को (नव्यांसम्) नये बोध देने वाले (अग्ने) हे परमेश्वर (देवेषु) ज्ञानियों में (प्रवोचः) उपदेश करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही इस हमारे मनन योग्य नित्य नये-नये ज्ञानों के देने वाले गायत्र साम का विद्वानों में उपदेश देता है ॥ ८ ॥

२९—गोपवनः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
तन्त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥९॥

पदार्थ—(तम्) उस (त्वा) तुझे (गोपवनः) वेदवाणी का रक्षक विद्वान् (गिरा) वाणी से (जनिष्ठत्) प्रकट करता है (अग्ने) हे परमेश्वर (अङ्गिरः) हे सर्वव्यापक (सः) वह (पावक) पवित्रकर्त्ता (श्रुधी) सुन (हवम्) पुकार को ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! वेदवाणी का रक्षक विद्वान् तुझे वाणी से प्रकट करता है । हे पवित्रकर्त्ता ! तू हमारी पुकार सुन ॥ ९ ॥

३०—वामदेवः । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २३ १ २ ३ १ ३
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (वाजपतिः) बलों का स्वामी (कविः) वेदकाव्य का कर्त्ता (अग्निः) परमेश्वर (हव्यानि) हवि पदार्थों में (अक्रमीत्) व्यापक हो रहा है (दधद्) धारण करता हुआ (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) यजमान के लिए ॥ १० ॥

भावार्थ—यजमान के लिए रत्नों को धारण करता हुआ बलों का स्वामी, सर्वज्ञ परमेश्वर समस्त हव्य पदार्थों में व्यापक हो रहा है ॥ १० ॥

३१—कण्व । गायत्री । अग्निः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥

पदार्थ—(उत्) उत्तम (उ) ही (त्यम्) उस (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (देवम्) देव को (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं (केतवः) ज्ञान (दृशे) देखने के लिए (विश्वाय) विश्व के (सूर्यम्) सर्व प्रकाशक परमात्मा ॥ ११ ॥

भावार्थ—ज्ञान उस सर्वज्ञ, प्रकाशक उत्तम परमात्मदेव को विश्व को देखने के लिए प्राप्त कराते हैं ॥ ११ ॥

३२—मेधातिथिः । गायत्री । अग्निः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥१२॥

पदार्थ—(कविम्) वेदों के कर्त्ता (अग्निम्) परमेश्वर की (उपस्तुहि) स्तुति कर (सत्यधर्माणम्) सत्यधर्मवाले या सत्य को धारण करने वाले (अध्वरे) यज्ञ में (देवम्) देव (अमीवचातनम्) अज्ञान के निवारक ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे स्तोता मनुष्य ! तू प्रत्येक यज्ञ में सर्वज्ञ, सत्यधर्मा, और अज्ञान निवारक परमेश्वर की स्तुति कर ॥ १२ ॥

३३—सिन्धुदीपः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
शन्नो देवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१३॥

पदार्थ—(शम्) कल्याणकारी (नः) हमें (देवीः) दिव्य (अभिष्टये) अभीष्ट की सिद्धि के लिए (शम्) कल्याणकारी (नः) हमें (भवन्तु) हों (पीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिए (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) वर्षा करें (नः) हम पर ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी दिव्य विभूतियां हमारी इष्ट प्राप्ति के लिए हमें कल्याणकारी हों तथा आनन्द लाभ के लिए कल्याणकारी हों और हम पर सुख की सदा वृष्टि करें ॥ १३ ॥

३४—उशनाः । गायत्री । अग्निः ।

१ २ ३१ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४॥

पदार्थ—(कस्य) किसकी (नूनम्) निश्चय ही (परीणसि) अधिकतर (धियः) बुद्धियों को (जिन्वसि) पूर्ण करता है (सत्पते) हे सज्जनों के पालक (गोषाता) वेदवाणी का भजन करने वाली (यस्य) जिसकी (ते) तेरी (गिरः) वाणियां ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! तू किसकी बुद्धि को अधिकतर पूर्ण करता है ? उस पुरुष की जिसकी वाणियां वेदवाणियों से युक्त और तेरी स्तुति करने वाली हैं ॥ १४ ॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

३५—शंयुः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
प्रप्र वयममृतं जातवेद संप्रियं मित्रन्न शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञायज्ञा) प्रत्येक यज्ञ में (वः) तुझ (अग्नये) ईश्वर की (गिरागिरा) अनेक स्तुतियों के द्वारा (दक्षसे) बल की प्राप्ति के लिए (प्रप्र) अत्यन्त उत्तम ढङ्ग से (वयम्) हम लोग (अमृतम्) अमर (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (प्रियम्) प्यारे (मित्रन्न) मित्र के समान (शंसिषम्) कीर्तन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हम लोग बल की प्राप्ति के लिए प्रत्येक यज्ञ में अमर, सर्वज्ञ और मित्र के समान प्यारे परमेश्वर की अनेक प्रकार की स्तुतियों से प्रशंसा करते हैं ॥१॥

३६—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२॥

पदार्थ—(पाहि) रक्षा कर (नः) हमारी (अग्ने) हे ईश्वर (एकया) पहली (ऋग्वाणी से) (पाहि) रक्षा कर (उत) और (द्वितीयया) द्वितीय (यजु से) (पाहि) रक्षा कर (गीर्भिः) वाणियों से (तिसृभिः) तीन (ऊर्जां पते) हे ज्ञानों के स्वामी (पाहि) रक्षा कर (चतसृभिः) चार वाणियों से (वसो) हे अन्तर्यामी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी अन्तर्यामी परमेश्वर ! तू ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद रूप इन चार वाणियों से हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

३७—शंयुः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—(बृहद्भिः) महान् (अग्ने) हे परमेश्वर (अर्चिभिः) तेजों से (शुक्रेण) शुद्ध (देव) हे दाता (शोचिषा) तेज के साथ (भरद्वाजे) पूर्ण ज्ञानी पर (समिधानः) प्रकाशमान होता हुआ (यविष्ठ्य) हे बलवान् (रेवत्) हे धनवान् (पावक) हे शोधक (दीदिहि) प्रकाश कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे बलवान् धनवान् पवित्रकर्त्ता परमदेव परमेश्वर ! तू पवित्र तेज से प्रकाशमान होता हुआ पूर्ण ज्ञानी पुरुष पर महान् तेजों से प्रकाश कर ।३।

३८—वसिष्ठः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४ ॥

पदार्थ—(त्वे) तेरे (अग्ने) हे परमेश्वर (स्वाहुत) हे उपास्य (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों (सूरयः) विद्वान् जन (यन्तारः) वशी (ये) जो (मघवानः) यज्ञ करने वाले (जनानाम्) मनुष्यों के (ऊर्वम्) समूह पर (दयन्त) दया करते हैं (गोनाम्) गाय आदिकों के ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे उपास्यदेव परमेश्वर ! जो यज्ञकर्त्ता और वशी विद्वान् मनुष्यों और गायों के समूह पर दया करते हैं, वे तेरे प्रिय होते हैं ॥ ४ ॥

३९—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ईश्वर (जरितः) हे स्तुति के योग्य (विश्पतिः) प्रजा का पालक (तपानः) तपाने वाला (देव) हे देव (रक्षसः) दुष्ट को (अप्रोषिवान्) सर्वदा विद्यमान (गृहपते) हे संसारगृह के स्वामी (महान्) महान् (असि) है (दिवस्पायुः) द्युलोक का रक्षक (दुरोणयुः) संसारगृह का निर्माता ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे संसार गृह के स्वामी स्तुत्य परमेश्वर ! तू प्रजा का पालक, दुष्टों को तपाने वाला, सर्वदा विद्यमान महान् द्युलोक का रक्षक तथा संसार गृह का निर्माता है ॥ ५ ॥

४०—प्रस्कण्वः । बृहती । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (विवस्वत्) विशेष सुखों का दाता (उषसः) प्रातःकाल का (चित्रम्) अद्भुत (राधः) धन स्फूर्तिरूप (अमर्त्य)

हे अविनाशी ! (आ दाशुषे) भली भाँति यजमान के लिये (जातवेदः) हे सर्वज्ञ ! (वहा) प्राप्त करा (त्वम्) तू (अद्या) आज (देवान्) मन के साथ दशों इन्द्रियों में (उषर्बुधः) प्रातःकाल में चेतना पाने वाली ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ ! अविनाशी ! परमेश्वर ! आज तू यजमान की इन्द्रियों में विशेष सुख देने वाली प्रातःकाल की स्फूर्ति प्रदान कर ॥ ६ ॥

४१—शंयुः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वन्नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमें (चित्रः) अद्भुत (ऊत्या) रक्षा के साथ (वसो) हे घट-घट वासी (राधांसि) धनों को (चोदय) प्राप्त करा (अस्य) इस (रायः) धन का (त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर (रथी) अधिष्ठाता (असि) है (विदा) प्राप्त करा (गाधम्) उत्तम पद (तुचे) सन्तान के लिए (तु) भी (नः) हमारी ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे घट घट वासी परमेश्वर ! तू अद्भुत गुण, कर्म और स्वभाव वाला है, हमें धन प्राप्त करा । क्योंकि तू धनों का अधिष्ठाता है । हे नाथ, हमारी सन्तान भी उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥ ७ ॥

४२—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८॥

पदार्थ—(त्वमित्) तू ही (सप्रथा) व्यापक (असि) है (अग्ने) हे परमेश्वर ! (त्रातः) हे सर्वरक्षक (ऋतः) सत्यस्वरूप (कविः) वेदों का कर्ता (त्वाम्) तुझे (विप्रासः) ज्ञानी जन (समिधान) हे प्रकाशमान (दीदिवः) हे तेजस्वी (आ) भली भाँति (विवासन्ति) भजन करते हैं (वेधसः) बुद्धिमान् ॥८॥

भावार्थ—हे सर्वरक्षक प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ही सत्यस्वरूप, वेदों का कर्ता और व्यापक है । अत्यन्त बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष तेरा ही भजन करते हैं ॥८॥

४३—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९॥

पदार्थ—(आ) भलीभाँति (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर ! (वयोवृधम्) आयु बढ़ाने वाले (रयिम्) धन को (पावक) हे पतितपावन ! (शंस्यम्) प्रशंसनीय (रास्वा) दे (च) और (नः) हमारी (उपमाते) हे सृष्टिकर्ता (पुरुस्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य (सुनीती) अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले (सुयशस्तरम्) यश का विस्तार करने वाले [यश बढ़ाने वाले] ॥९॥

भावार्थ—हे सृष्टिकर्ता पतितपावन परमेश्वर ! तू हमें हमारी अच्छी नीति से प्राप्त होने वाले, आयुवर्धक, प्रशंसा के योग्य, यश बढ़ाने वाले और बहुतों से चाहने योग्य धन प्रदान कर ॥९॥

४४—सोभरिः । बृहती । अग्निः ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
ये विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
२ ३ १ २र ३ १ १ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो (विश्वा) सारे (वसु) धनों को (दयते) देता है (होता) दाता (मन्द्रः) स्तुति के योग्य (जनानाम्) लोगों के लिए (मधोः) मधु के (न) समान (पात्रा) पात्रों के (प्रथमानि) मुख्य (अस्मै) इस (प्र) उत्तम (स्तोमा) स्तुति (यन्तु) प्राप्त हों (अग्नये) परमेश्वर के लिए ॥१०॥

भावार्थ—दाता और पूजनीय जो लोगों के लिए मधु से भरे पात्र के समान समस्त धनों को देता है, उस इस परमेश्वर को हमारी मुख्य स्तुतियाँ पहुँचें ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

४५—वामदेवः वसिष्ठो वा । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

पदार्थ—(एना) इस (वः) तुम लोगों के लिए (अग्निम्) परमेश्वर को (नमसा) नमस्कार के द्वारा (ऊर्जः) बल के (नपातम्) रक्षक (आहुवे) आराधना करता हूँ (प्रियम्) प्यारे (चेतिष्ठम्) चेतन (अरतिं) स्वामी (स्वध्वरम्) कल्याणकारी (विश्वस्य) सारे संसार के (दूतम्) दुःखनिवारक (अमृतम्) अमर ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मैं तुम लोगों के लिए बलों के रक्षक, चेतन, सब के स्वामी, सारे संसार के दुःखनिवारक, कल्याणकारी और अजर अमर, प्यारे प्रभु की आराधना करता हूँ ॥१॥

४६—भर्गः । बृहती । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २
शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२
अतन्द्रो हव्य वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥२॥

पदार्थ—(शेषे) विराजमान हो रहा है (वनेषु) जलों में (मातृषु) अन्तरिक्ष (सं) सम्यक् (त्वा) तुझे (इन्धते) प्रकाशित करते हैं । (मर्तासः) मनुष्य (अतन्द्रः) सावधान (हव्यं) भोग्यपदार्थ को (वहसि) प्राप्त कराता है (हविष्कृतः) यजमान के (आदित्) ही (देवेषु) दिव्य शक्तियों में (राजसि) प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जलों और अन्तरिक्ष आदि में विराजमान है, मनुष्य तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करते हैं, तू समस्त दैवी शक्तियों में प्रकाशमान हो रहा है और तू ही यजमान के भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराता है ॥२॥

४७—सोभरिः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(अदर्शि) देखा जाता है (गातुवित्तमः) भक्त की भावना का ज्ञाता (यस्मिन्) जिसमें (व्रतानि) कर्म (आदधुः) धारण करते हैं (उप) समीप (उ) ही (सुजातम्) सुप्रसिद्ध (आर्यस्य) सदाचारी की (वर्धनम्) उन्नति करने वाले (अग्निम्) परमेश्वर को (नक्षन्तु) प्राप्त हों (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियाँ ॥३॥

भावार्थ—जिसमें ज्ञानीजन अपने कर्मों का समर्पण करते हैं और जो भक्त की भावना को जानने वाला कहा जाता है उस ही सदाचारी पुरुष को उन्नति देने वाले सुप्रसिद्ध परमेश्वर को हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥३॥

४८—मनुः बृहती । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (उक्थे) प्रशंसनीय (पुरोहितः) पुरोहित है (ग्रावाणः) वायुएँ (बर्हिः) आसन हैं (अध्वरे) संसाररूपी यज्ञ में (ऋचा) वेद मन्त्र के द्वारा (यामि) याचना करता हूँ (मरुतः) ऋत्विक् (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्माण्ड के पालक (देवाः) जीवलोग (अवः) रक्षा (वरेण्यम्) उत्तम ॥४॥

भावार्थ—इस प्रशंसनीय संसार रूपी यज्ञ में अग्नि पुरोहित है, वायुएँ आसन हैं और जीव लोग ऋत्विज् हैं—ऐसा जानते हुए हे ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! मैं तुझ से रक्षा की याचना करता हूँ ॥४॥

४९—सुदीतिः पुरुमीळो वा । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३१ २
अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
३ २ ३१ २ ३ २उ ३ १ २ ३१ २ ३ २
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर की (ईडिष्व) स्तुति कर (अवसे) रक्षा के लिये (गाथाभिः) सामगानों के द्वारा (शीरशोचिषम्) व्यापक ज्योति वाले (अग्नि) परमेश्वर को (राये) सम्पदा के लिये (पुरुमीढ) हे धनवाले (श्रुतं) विख्यात (नरः) हे मनुष्यो (अग्निः) परमेश्वर (सुदीतये) दानी के लिये (छर्दिः) गृह के सदृश हो ॥५॥

भावार्थ—हे धनवाले पुरुष ! अपनी रक्षा के लिये सामगानों के द्वारा व्यापक ज्योति वाले प्रभु की स्तुति कर और सम्पदा की प्राप्ति के लिये भी उसी को स्मरण कर । हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही दानी के लिये शरण है ॥५॥

५०—प्रस्कण्वः । बृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ५ १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥६॥

पदार्थ—(श्रुधि) सुन (श्रुत्कर्ण) हे श्रवणशक्तियुक्त कानों वाले (वह्निभिः) संसार का वहन करने वाला (देवैः) दिव्यशक्तियों के (अग्ने) हे विद्वन् मनुष्य (सयावभिः) गतिशील (आसीदतु) स्थित है (बर्हिषि) आकाश में (मित्रः) सब का मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (प्रातर्यावभिः) प्रतिदिन कर्मयुक्त (अध्वरे) अप्रतिहत ॥६॥

भावार्थ—हे श्रवण शक्ति वाले पुरुष ! सुनो, सब का मित्र न्यायकारी परमेश्वर प्रतिदिन संयोग-वियोग करनेवाली, धारक, गतिशील दिव्य शक्तियों के साथ व्यापक आकाश में स्थित है ॥६॥

५१—सोभरिः । वृहती । अग्निः ।

१ २र ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।

१२ ३१२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम ढंग से (दैवोदासः) दिव्यगुणों का दाता (अग्निः) परमेश्वर (देवः) देव (इन्द्रः न) विद्युत् के समान (मज्मना) सामर्थ्य से (अनु) व्याप्त होकर (मातरं) अन्तरिक्ष में (पृथिवीं) पृथिवी में (विवावृते) वर्त्तमान है (तस्थौ) स्थित है (नाकस्य) सुख के (शर्मणि) धाम में ॥७॥

भावार्थ—दिव्य गुणों का दाता परमात्मदेव अपनी सामर्थ्य से विद्युत् के समान पृथिवी और अन्तरिक्ष में व्यापक होकर विद्यमान है और वह परम मोक्षधाम में स्थित है ॥७॥

५२—मेधातिमेध्यातिथी । वृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।

३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

पदार्थ—(अध) नीचे (ज्मः) पृथिवी के (अध) नीचे (वा) अथवा (दिवः) द्युलोक से (बृहतः) महान् (रोचनाद्) प्रकाशमान (अधि) ऊपर (अया) व्याप्ति के द्वारा (वर्धस्व) फैला हुआ है (तन्वा) विस्तृत (गिरा) वेदवाणी से (मम) मेरे (जाता) उत्पन्न हुए पदार्थों को (सुक्रतो) उत्तम ज्ञान वाले (पृण) पालन करता है ॥८॥

भावार्थ—हे उत्तम ज्ञानवाले परमेश्वर ! तू पृथिवी के नीचे अथवा प्रकाशमान द्युलोक के नीचे अन्तरिक्ष और उसके ऊपर भी अपनी इस व्याप्ति के द्वारा फैला हुआ है। तू वेदवाणियों के द्वारा हमारे समस्त उत्तम पदार्थों की रक्षा करता है।८।

५३— विश्वामित्रः । वृहती । अग्निः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २
कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः ।

१ २र ३१ २ ३१ २३ २ ३२उ ३ १ २
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ॥९॥

पदार्थ—(कायमानः) इकट्ठा करता हुआ (वना) जगत् के कारणों को (यत्) जो (त्वं) तू (मातृः) जन्म देनेवाली (अजगन्) प्राप्त करता है (अपः) द्रव्यों को (न) नहीं (तत्) वह (ते) तेरा (अग्ने) हे परमेश्वर (प्रमृषे) जानता हूँ (निवर्तनं) स्थानविशेष (यत्) क्योंकि (दूरे सन्) दूर रहता हुआ भी (इह) यहाँ (आ, भुवः) विद्यमान है ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जगत् के कारण परमाणुओं को इकट्ठा करता हुआ तू जो जगत् का निर्माण करने वाले जल आदि द्रव्यों को बनाता है, उस तुझ प्रभु की मैं अपने कार्य से निवृत्ति अथवा स्थानविशेष नहीं समझता, क्योंकि तू दूर होता हुआ भी समीप वर्त्तमान हो रहा है ॥९॥

५४—कण्वः । वहती । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०॥

पदार्थ—(नि) निश्चित (त्वाम्) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर ! (मनुः) ज्ञानी (दधे) धारण करता है (ज्योतः) प्रकाश-स्वरूप (जनाय) प्रजा के लिए (शश्वते) सनातन (दीदेथ) प्रकाश दिया है (कण्वे) मेधावी पुरुष में (ऋतजातः) सत्य के साक्षात् होने वाले (उक्षितः) महान् (यम्) जिसको (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं (कृष्टयः) मनुष्य ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सनातन जीव के लिये प्रकाशस्वरूप तुझे ज्ञानी पुरुष निश्चित रूप से धारण करते हैं। जिसको मनुष्यमात्र नमस्कार करते हैं, सत्य से जाना गया वह तू ज्ञानी में प्रकाश देता है ॥१०॥

卐 पाँचवीं दशती समाप्त 卐

५५—वसिष्ठः । वृहती । अग्निः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

पदार्थ—(देवः) देव (वः) तुम्हारी (द्रविणोदाः) धनदाता (पूर्णाम्) भरी हुई (विवष्टु) चाहता है (आसिचम्) स्रुवा को (उद्वा) अथवा (सिञ्चध्वम्) सींचो (उपवा) अथवा (पृणध्वम्) तृप्त (आदित्) अनन्तर (बाद में) (देवः) देव (ओहते) प्राप्त कराता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धनदाता, परमदेव परमेश्वर चाहता है कि तुम्हारी स्रुवा घी से पूर्ण रहा करे, अर्थात् तुम लोग अग्नि को घी से सींचो अथवा तृप्त करो, तो तुम्हारी उन्नति होगी ॥१॥

५६—कण्वः । वृहती । ब्रह्मणस्पतिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क२र ३ १ २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (एतु) प्राप्त हो (ब्रह्मणस्पतिः) वेदों का स्वामी (प्र) उत्तम (देवी) दिव्य (सूनृता) वाणी (अच्छा) भली भाँति (वीरं) पुत्र को (नर्यं) मनुष्यमात्र के हित करने वाले (पंक्तिराधसं) समुदाय की सिद्धि करने वाले (देवा) विद्वान् लोग (यज्ञं) व्यवहार को अथवा यज्ञ को (नयन्तु) प्राप्त करावें ॥२॥

भावार्थ—वेदों का स्वामी परमेश्वर हमें प्राप्त होवे, दिव्यवाणी प्राप्त होवे, विद्वान् जन मनुष्यमात्र के हितकारी पुत्र और समुदाय की सिद्धि करने वाले व्यवहार की हमें प्राप्ति करावें ॥२॥

५७ – कण्वः । वृहती । अग्निः । यूपो वा ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥३॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सर्वोपरि (ऊ) पादपूरक (षु) उत्तम (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (तिष्ठ) वर्त्तमान रह (देवः न) देव के समान (सविता) सूर्य (ऊर्ध्वः) उपरिस्थित (वाजस्य) अन्न का (सनिता) दाता (यत्) क्योंकि (अञ्जिभिः) ज्ञानी (वाघद्भिः) उपासकों के साथ (विह्वयामहे) आह्वान करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अन्न का दाता और सर्वोपरि विराजमान है। हमारी रक्षा के लिये तू उपरिस्थित सूर्यदेव के समान सदा वर्त्तमान रह, क्योंकि ज्ञानी उपासकों के साथ हम तेरी पुकार करते हैं ॥३॥

५८—सोभरिः । वृहती । अग्निः ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यः) जो (राये) परमधन के लिये (निनीषति) प्राप्त करना चाहता है (मर्तः) मनुष्य (यः) जो (ते) तेरी सेवा में (वसो) हे सब को वसाने वाले (दाशत्) अपने को समर्पण करता है। (सः) वह (वीरं) वीर पुत्र (धत्ते) प्राप्त करता है (अग्ने) हे परमेश्वर ! (उक्थशंसिनम्) वेदों का वक्ता (त्मना) अपनी शक्ति से (सहस्र-पोषिणम्) हजारों का पालन करने वाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब को वसाने वाले परमेश्वर ! जो मनुष्य उत्तम धन की प्राप्ति के लिये तुझे प्राप्त करना चाहता है और जो तेरी शरण में अपने को समर्पण करता है वह वेदों के वक्ता तथा हजारों का पालन पोषण करने वाले वीर पुत्र को प्राप्त करता है ॥४॥

५९—कण्वः । वृहती । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम्हारे (यह्वं) महान् (पुरूणाम्) सब (विशां) प्रजाओं के (देवयतीनाम्) परमात्मदेव की उपासना करने वाली (अग्निम्) परमेश्वर को (सूक्तेभिः) उत्तम प्रकार से कही हुई (वचोभिः) वेदवाणियों से (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (यं) जिस को (सं) सम्यक्

(इत्) ही (अन्यः) दूसरे ज्ञानी लोग (इन्धते) हृदय में प्रकाशित करते हैं ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम देवोपासक प्रजाओं के महान्, प्रभु परमेश्वर की हम अच्छी प्रकार कही गई वेदवाणी से प्रार्थना करते हैं, उसी को दूसरे ज्ञानी जन भी हृदय में ध्यान करते हैं ॥५॥

६०—उत्कीलः श्रुतकीलो वा । बृहती । अग्निः ।

३२३२ ३२३२३ १ २र
अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
३ १ २ ३२३१२३१२ ३१२
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६॥

पदार्थ—(अयम्) यह (अग्निः) परमेश्वर (सुवीर्यस्य) सुन्दर शक्ति का (ईशे) अधिष्ठाता है (हि) निश्चय ही (सौभगस्य) सुन्दर भाग्य का (रायः) सारी सम्पदाओं का (ईशे) अधिष्ठाता है (स्वपत्यस्य) सुशील सन्तान का (गोमतः) जितेन्द्रिय (ईशे) अधिष्ठाता है (वृत्रहथानाम्) अज्ञान दूर करनेवालों का ॥६॥

भावार्थ—यह परमेश्वर, सुन्दर शक्ति, सुन्दर भाग्य, सारी सम्पदाएं, जितेन्द्रिय, सुशील सन्तान और अज्ञान दूर करनेवालों का अधिष्ठाता है ॥६॥

६१—वसिष्ठः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३१२३ १ २र ३ २
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
१ २र ३ १२३२३ १२३ १२
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७॥

पदार्थ—(त्वं) तू (अग्ने) हे परमेश्वर! (गृहपतिः) ब्रह्माण्ड का स्वामी (त्वं) तू (होता) होता (नः) हमारे (अध्वरे) संसार यज्ञ में (त्वं) तू (पोता) पवित्र करनेवाला (विश्ववार) हे सब के वरणीय देव (प्रचेता) महान् ज्ञानी (यक्षि) संगति लगाता है (यासि) प्राप्त कराता है (च) और (वार्यम्) उत्तम धन को ॥७॥

भावार्थ—हे सब के वरणीय देव परमेश्वर! ब्रह्माण्ड का स्वामी तू हमारे संसार यज्ञ का होता है, पवित्रकर्ता और महान् ज्ञानी तू ही उत्तम धन अथवा गुणों की संगति और प्राप्ति कराता है ॥७॥

६२—विश्वामित्रः । बृहती । अग्निः ।

१ २ ३१ २र ३१२
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
३ १ २र ३१२३१२ ३१ २ ३१२
अपांनपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥८॥

पदार्थ—(सखायः) परस्पर मित्र (त्वा) तेरी (ववृमहे) प्रार्थना करते हैं (देवं) देव (मर्तासः) मनुष्य (ऊतये) रक्षा के लिये (अपांनपातं) जल-प्राणादि पदार्थों की रक्षा करनेवाले (सुभगम्) भगवान् (सुदंससं) सुन्दर कर्मों वाले (सुप्रतूर्तिम्) तारनेवाले (अनेहसम्) पापों का नाश करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! परस्पर मित्र हम लोग, अपनी रक्षा के लिये, सुन्दर कर्मोंवाले, सारे जल तथा प्राणादि पदार्थों के रक्षक, तारने वाले, पापनाशक भगवान् और देवों के देव तेरी प्रार्थना करते हैं ॥८॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

६३—श्यावाश्ववामदेवौ । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३१ २ ३ १ २र ३१ २
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
३ २३१ २र ३१२ ३१ २ ३२ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥१॥

पदार्थ—(आजुहोता) भली प्रकार पुकारो (हविषा) ज्ञान से (मर्जयध्वम्) समझो (नि) निश्चित (होतारम्) दाता (गृहपतिं) ब्रह्माण्ड के पालक (दधिध्वम्) धारण करो (इडस्पदे) पूजा-मंदिर में (नमसा) नमस्कार के द्वारा (रातहव्यम्) दातव्यदाता (सपर्यत) उपासना करो (यजतम्) संगतिकर्ता, निर्माता (पस्त्यानाम्) शरीररूपी गृहों के ॥१॥

भावार्थ—हे उपासक लोगो! उपासनागृह में ब्रह्माण्ड-रक्षक सब के दाता शरीरों के निर्माता दातव्य के देने वाले परमेश्वर को याद करो, आदर से धारण करो, ज्ञान से समझो तथा उसकी उपासना करो ॥१॥

६४—उपस्तुतः । जगती । अग्निः ।

३ २उ ३१२ ३२३२उ ३१ २३२३ १२
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
३ १ २र ३१२ ३२ ३१२ ३१ २र ३२ १२
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि दूत्यां३ चरन् ॥२॥

पदार्थ—(चित्रः) अद्भुत (इत्) ही (शिशोः) प्रशंसनीय (तरुणस्य) सर्वदा तरुण अजर (वक्षथः) शक्ति (न) नहीं (यः) जो (मातरौ) माता-पिता के (अन्वेति) पीछे चलता है (धातवे) धारण-पोषण के लिये (अनूधा) दुग्धपान से रहित (अजीजनत्) उत्पन्न किया है (यत्) क्योंकि (अधाचित्) निश्चय ही (आववक्षत्) धारण करता है (महि) महान् (दूत्यं) दूत कर्म को (चरन्) करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसनीय सदा तरुण (अजर) परमेश्वर की शक्ति अद्भुत है जो कि वह अपने भरण-पोषण के लिये माता-पिता की आवश्यकता नहीं रखता, क्योंकि वह दुग्धपान करनेवाला नहीं है। वह दूत कर्म को करता हुआ, जो कुछ पैदा करता है, उसको धारण भी करता है ॥२॥

६५—बृहदुक्थः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

३२ ३ १२ ३१२ ३ १२ ३१२३ १२ ३१ २
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
३१२ ३ २ १२ ३ २३१२ ३२३१२
संवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥३॥

पदार्थ—(इदम्) यह स्थूल शरीर (ते) तेरा (एकम्) एक शरीर है (परः) दूसरा (उत्) भी (एकम्) एक कारणशरीर है (तृतीयेन) तीसरा (ज्योतिषा) ज्योति से (संविशस्व) सम्बन्ध कर (संवेशनः) प्रवेश करनेवाला (तन्वे) शरीर के लिये (चारु) उत्तम (एधि) हो (प्रियः) प्यारे (देवानाम्) देवों के (परमे) उत्तम (जनित्रे) जन्म में ॥३॥

भावार्थ—हे जीव! तेरा यह एक प्रथम स्थूल शरीर है और दूसरा एक सूक्ष्म शरीर है, तू विद्वानों का उत्तम जन्म पाने के लिए श्रेष्ठ बन तथा तीसरी ज्योति परमेश्वर के साथ संगति कर ॥३॥

६६—कुत्सः । जगती । अग्निः ।

३२उ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
३ २उ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषाम वयं तव ॥४॥

पदार्थ—(इमं) इस (स्तोमम्) स्तोत्र को (अर्हते) पूज्य (जातवेदसे) सर्वज्ञ परमेश्वर के लिये (रथमिव) रमणीय वस्तु के समान अथवा रथ के समान (संमहेम) उच्चारण करते हैं (मनीषया) उत्तम बुद्धि से (भद्रा) कल्याण करने वाली (हि) निश्चय ही (नः) हम पर (प्रमतिः) अनुग्रह बुद्धि (अस्य) इसका (संसदि) सभा में (अग्ने) हे परमेश्वर (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषाम) दुःखी हों (वयम्) हम (तव) तेरी ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! हम उत्तम बुद्धि से पूज्य और सर्वज्ञ परमेश्वर का रथ के समान सुखकारी स्तोत्र से आह्वान करें, इस परमेश्वर की ज्ञान-शक्ति सभा में हमारे लिये कल्याणकारी हो। हे परमेश्वर! तेरी मित्रता में रहते हुए हम दुःखी न होवें ॥४॥

६७—भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

३ १२ ३१ २३१२३ १२ ३२३२उ ३२३ २
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
३ २ ३ २३१२३ १२ ३२ ३१२ ३ २
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥५॥

पदार्थ—(मूर्धानम्) धारक (दिवः) द्युलोक का (अरतिम्) स्वामी (पृथिव्याः) पृथिवी का (वैश्वानरम्) मनुष्यमात्र का हितकारी (ऋते) सत्य में (जातम्) प्रसिद्ध वा स्थित (अग्निम्) परमेश्वर को (कविम्) वेदकाव्य के कर्ता (सम्राजम्) सम्राट् (अतिथिम्) काल-बन्धन से रहित (जनानाम्) लोगों के (आसन्) मुख में (नः) हमारे लिए (पात्रम्) रक्षक (जनयन्त) प्रकट करते हैं (देवाः) विद्वान् लोग ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् लोग द्युलोक के धारक, पृथिवी के स्वामी, मनुष्यमात्र के हितकारी, सत्य में स्थित, वेदों के कर्ता, सबके सम्राट्, काल-बन्धन-रहित, हमारे रक्षक परमेश्वर को मुख में प्रकट करते हैं, अर्थात् उसकी स्तुति करते हैं ॥५॥

६८—भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
२ ३१२ ३१२ ३१ २र३१२ ३१२
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥६॥

पदार्थ—(वि) विविध प्रकार से (त्वत्) तुझसे (आपो, न) जलों के समान (पर्वतस्य) मेघ के (पृष्ठात्) उपरिभाग से (उक्थेभिः) वेदमन्त्रोंसहित (अग्ने) हे परमेश्वर (जनयन्त) प्रादुर्भूत होते हैं (देवाः) दिव्यशक्तियें (तम्) उस (त्वा) तुझे (गिरः) स्तुतियाँ (वाजयन्ति) प्राप्त करती हैं (आजिं) संग्राम के (न) समान (गिर्ववाहः) हे स्तुतियों के योग्य (जिग्युः) जीतते हैं (अश्वाः) घोड़े ॥६॥

भावार्थ—हे स्तुतियों के योग्य परमेश्वर ! मेघ के पृष्ठ से जलों के समान जिस तुझ से मन्त्रों के साथ समस्त दिव्य शक्तियां पैदा होती हैं उस तुझ महान् को स्तुतियां उसी प्रकार प्राप्त होतीं और प्राप्त करातीं हैं जैसे कि घोड़े संग्राम को प्राप्त करते और जीतते हैं ॥६॥

६९—*वामदेवः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं पुरा तनयित्नो रचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७॥

पदार्थ—(आ) भली भाँति (**वः**) तुम लोग (**राजानम्**) राजा (**अध्वरस्य**) अन्तरिक्ष के (**रुद्रम्**) भयंकर (**होतारम्**) दाता (**सत्ययजम्**) सत्य को प्राप्त कराने वाले (**रोदस्योः**) द्यु और पृथिवी के (**अग्निम्**) परमेश्वर को (**पुरा**) पूर्व (**तनयित्नोः**) विद्युत् से (**अचित्तात्**) आकस्मिक (**हिरण्यरूपम्**) ज्योतिःस्वरूप (**अवसे**) रक्षा के लिए (**कृणुध्वम्**) करो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्तरिक्ष, द्यु और पृथिवीलोक के राजा, दाता, सत्य को प्राप्त करने वाले ज्योतिःस्वरूप तथा आकस्मिक गिरने वाले विद्युत् से भी भयंकर परमेश्वर को अपनी रक्षा का निमित्त बनाओ ॥७॥

७०—*वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र३ १ २
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८॥

पदार्थ—(**इन्धे**) प्रकाशित होता (**राजा**) तेजस्वी (**सम्**) सम्यक् (**अर्यः**) स्वामी (**नमोभिः**) नमस्कारों के द्वारा (**यस्य**) जिसका (**प्रतीकम्**) स्वरूप (**आहुतम्**) परिपूर्ण है (**घृतेन**) प्रकाश से (**नरः**) मनुष्य (**हव्येभिः**) त्यागने योग्य पदार्थों के त्याग के द्वारा (**ईडते**) स्तुति करते हैं (**सबाधः**) उपासक लोग (**आ**) भली भांति (**अग्निः**) परमेश्वर (**अग्रम्**) पहले (**उषसाम्**) उपाकाल के (**अशोचि**) प्रकाश करता है ॥८॥

भावार्थ--जिस का स्वरूप तेज से परिपूर्ण है, सब का स्वामी तेजस्वी वह परमेश्वर नमस्कारों से प्रकाशित होता है। उपासक लोग त्याग से उस की स्तुति करते हैं। उषाओं के आगे वह ही प्रकाश कर रहा है ॥ ८ ॥

७१—*त्रिशिराः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र केतुना बृहता यात्याग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**केतुना**) ज्ञान से (**बृहता**) महान् (**याति**) व्यापक होता है (**अग्निः**) परमेश्वर (**आ**) भलीभांति (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**वृषभः**) मनोरथो को पूरा करनेवाला (**रोरवीति**) उपदेश करता है (**दिवः**) द्युलोक के (**चित्**) ही (**अन्तात्**) पर्यन्त (**उपमाम्**) समीप तक (**उदानट्**) व्यापता है (**अपामुपस्थे**) अन्तरिक्ष में (**महिषः**) महान् (**ववर्ध**) बढ़ा हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनोरथों को पूरा करने वाला परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक हो रहा है, वह अपने महान् ज्ञान से सूर्य के विषय मे हमें उपदेश करता है। वह ही जनों के स्थान अन्तरिक्ष में एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त होकर उससे परे भी बढ़ा हुआ है ॥ ९ ॥

७२—*वसिष्ठः । त्रिपाद् विराड् गायत्री । अग्निः ।*

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥

पदार्थ—(**अग्निम्**) परमेश्वर को (**नरः**) मनुष्य (**दीधितिभिः**) योग-नियमों और विधानों से (**अरण्योः**) दो अरणियों में (**हस्तच्युतं**) हाथ के बल से उत्पन्न किये हुए (**जनयत**) प्रकट करते हैं (**प्रशस्तम्**) स्तुति के योग्य (**दूरेदृशम्**) दूरस्थ पदार्थों को भी देखनेवाले (**गृहपतिम्**) ब्रह्माण्ड गृह के स्वामी (**अथव्युम्**) कल्याणकारी ॥ १० ॥

भावार्थ—योग नियमों और विधानों से मनुष्य लोग अरणियों में हाथ के बल से घिस कर उत्पन्न हुए अग्नि के समान दूर दूर के पदार्थों को भी देखने वाले ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा कल्याणकारी परमेश्वर को आत्मा में प्रकट करते हैं ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

७३—*बुधगविष्ठिरो । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

पदार्थ—(**अबोधि**)जाना जाता है (**अग्निः**) परमेश्वर (**समिधा**) योग से (**जनानां**) योगी जनों के (**प्रति**) और (**धेनुम्**) किरण (**इव**) समान (**आयतीम्**) आती हुई (**उषासम्**) प्रातःकाल के (**यह्वा**) महान् त्यागी मनुष्य के (**इव**) समान (**प्र**) उत्कृष्ट (**वयाम्**) सुख को (**उज्जिहानाः**) छोड़ते हुए (**प्र**) उत्तम (**भानवः**) प्रकाश (**सस्रते**) फैला है (**नाकं**) परमानन्द पद में (**अच्छ**) भली भांति ॥ १ ॥

भावार्थ—उषाकाल में आती हुई प्रकाश रेखाओं को लोगों के समान ज्ञानी जन के योग से परमेश्वर जाना जाता है। लौकिक सुखों को त्यागते हुए महान् विरक्तों के समान उस का प्रकाश परमानन्द पद में फैला हुआ है ॥ १ ॥

७४—*वत्सप्रिः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्र मूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नयन्तं गीर्भिर्वनाधियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**प्रमूर्जयन्तम्**) पृथिवी को गति देने वाले (**महाम्**) महान् (**विपोधाम्**) ज्ञानियों के रक्षक (**मूरैः**) मूर्खों से (**अमूरं**) मूलरहित (**पुरां**) अज्ञान के गढ़ों का (**दर्माणम्**) ढाहने वाला (**नयन्तम्**) प्राप्त कराने वाला (**गीर्भिः**) वेदवाणियों के द्वारा (**वना**) प्रशंसनीय सुख को (**धियं**) ज्ञान को (**धाः**) धारण कर (**हरिश्मश्रुं**) तेजस्वी सूर्य के (**न**) समान (**वर्मणा**) रक्षा द्वारा (**धनार्चिम्**) धनों के स्वामी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू भूमि के चलाने वाले, महान्, बुद्धिमानों के रक्षक, मूर्खों के द्वारा न जानने योग्य मूलरहित वेद वाणी द्वारा ज्ञान और रक्षा द्वारा प्रशंसनीय सुख को प्राप्त कराने वाले सूर्य के समान धनों के स्वामी परमश्वर को धारण कर ॥ २ ॥

७५—*भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । पूषा ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
शुक्रन्ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३॥

पदार्थ—(**शुक्रं**) तेज (**ते**) तेरा (**अन्यद्**) अद्भुत है (**यजतं**) रचना (**ते**) तेरी (**अन्यद्**) अद्भुत है। (**विषुरूपे**) भिन्नरूप वाले (**अहनी**) रात-दिन (**द्यौ इव**) सूर्य के समान (**असि**) है (**विश्वा**) सारी (**माया**) बुद्धियों की (**अवसि**) रक्षा करता है (**स्वधावन्**) हे प्रकृति के स्वामी ! (**भद्रा**) कल्याण करने वाला (**ते**) तेरा (**पूषन्**) हे पालक ! (**इह**) इस लोक में (**राति**) दान (**अस्तु**) है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे प्रकृति के स्वामी परमेश्वर ! तेरा तेज अद्भुत है, तेरी रचना विचित्र है, तेरी सृष्टि में होने वाले दिनरात भिन्न रूप वाले हैं। तू सूर्य के समान है। तू सारे ज्ञानो की रक्षा करता है, तेरा दान हमारे लिए कल्याणकारी है ॥ ३ ॥

७६—*विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४॥

पदार्थ—(**इडाम्**) पृथिवी को (**पुरुदंसं**) बहुत कर्मों को सिद्ध करनेवाली (**सनिम्**) दान को (**गोः**) गाय का (**शश्वत्तमम्**) चिरकाल तक (**हवमानाय**) मन, वचन और कर्म से करने वाले उपासक के लिए (**साध**) सिद्ध कर [दे] (**स्यात्**) हो (**नः**) हमारा (**सूनुः**) पुत्र और (**तनयः**) पौत्र (**विजावा**) वंश का विस्तार करने वाला (**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**सा**) वह (**ते**) तेरी (**सुमतिः**) उत्तम बुद्धि (**भूतु**) हो (**अस्मे**) हमारे लिए ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मन, वचन और कर्म से उपासना करने वाले को, बहुत कर्मों को सिद्ध करने वाली पृथिवी और गाएं बराबर दे। हे नाथ ! हमारे पुत्र और पौत्र वंश के विस्तार करने वाले हों। तेरी वह सुन्दर बुद्धि हमारे लिए हो ॥ ४ ॥

७७—*वत्सप्रिः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २
प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २३ २
दधद्यो धायि सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (होता) दाता (जातः) प्रसिद्ध (नभोवित्) सुख प्राप्त कराने वाले (नृषद्मा) मनुष्यों में विराजमान (सीदत्) स्थित है (अपांविवर्ते) आकाश में (दधत्) धारण करता है (यः) जो (धायि) पालक (सुते) उत्पन्न जगत् में (वयांसि) अन्नों का (यन्ता) नियम में रखने वाला (वसूनि) धनों को (विधते) दे (तनूपाः) शरीर का रक्षक ।। ५ ।।

भावार्थ—दाता प्रसिद्ध महान् सुखों को प्राप्त कराने वाला मनुष्यों में विराजमान जो परमेश्वर आकाश में स्थित तथा संसार में समस्त अन्नादि पदार्थों को धारण करता है, वह हमारे शरीरों का रक्षक, सब का पालक, परमनियामक, प्रभु हमें धनादि दे ।।५।।

७८—*वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्द द्वारावन्द माना विवष्टु ।।६।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सम्राजम्) स्वामी (असुरस्य) प्राण और मेघ के (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय (पुंसः) पुरुष के (कृष्टीनां) मनुष्यों में (अनुमाद्यस्य) प्रशंसनीय (इन्द्रस्य) विद्युत् के (इव) समान (प्र) उत्तम (तवसः) महान् (कृतानि) कर्मों को (वन्दत्) सराहता है (वारा) कामना के योग्य (वन्दमाना) स्तुति किया गया (विवष्टु) कामना करे ।।६।।

भावार्थ—हे मनुष्य ! मेघ और प्राण के स्वामी, प्रशस्त परमेश्वर की कामना कर । वन्दनीय और वरणीय वह मनुष्यों में प्रशंसनीय विद्युत् के समान तेजस्वी पुरुष के कर्मों की सराहना करता है ।।६।।

७९—*विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २

दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।।७।।

पदार्थ—(अरण्योः) आत्मा और प्रणव में (निहितः) निहित है (जातवेदाः) सर्वज्ञ (गर्भ इव) गर्भ के समान (सुभृतः) सावधानी से धारण किया हुआ (गर्भिणीभिः) गर्भिणी स्त्री के द्वारा । (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुति के योग्य (जागृवद्भिः) सावधान (हविष्मद्भिः) उपासक (मनुष्येभिः) मनुष्यों से (अग्निः) परमेश्वर ।।७।।

भावार्थ—गर्भिणी स्त्री के द्वारा सावधानी से सुरक्षित गर्भ के समान आत्मा और प्रणव में स्थित, सर्वज्ञ परमेश्वर सावधान, और साधन-सम्पन्न योगी जनों के द्वारा प्रतिदिन उपासना करने के योग्य है ।।७।।

८०—*पायुः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ।।८।।

पदार्थ—(सनात्) सदा (अग्ने) हे परमेश्वर ! (मृणसि) दूर करता है (यातुधानान्) राक्षसी विचारों को (न) नहीं (त्वा) तुझे (रक्षांसि) बुरे विचार वाले (पृतनासु) संग्रामों में (जिग्युः) जीत सकते हैं । (अनुदह) नाश कर (सहमूरान्) सहज मूर्खों की मूर्खता को (कयादः) पापीलोग (मा) नहीं (ते) तेरे (हेत्या) दण्ड से (मुक्षत) मुक्त हों (दैव्यायाः) दिव्य ।।८।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सदा राक्षसी विचारों को दूर करता है, तुझे बुरे विचार वाले लोग संग्राम में नहीं जीत सकते, तू सहज मूर्खता के भावों को और पापियों को दण्ड देता है, वे तेरी दिव्य दण्ड नीति से नहीं बचते ।।८।।

卐 अष्टमी दशती समाप्त 卐

८१—*गयः । अनुष्टुप् । अग्निः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ।।१।।

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! अति बलदायक (आभर) प्रदानकर (द्युम्नम्) यश और सम्पदायें (अस्मभ्यम्) हमें (अध्रिगो) हे सर्वव्यापक (प्र) उत्तम (नः) हमारे (राये) धन का (पनीयसे) प्रशंसनीय (रत्सि) दे (वाजाय) ज्ञान का (पन्थाम्) मार्ग ।।१।।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! हमें अतिबलशाली धन और यश प्रदान कर । तू प्रशंसनीय धन और ज्ञान का मार्ग हमें दिखा ।।१।।

८२—*वामदेवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।*

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ।।२।।

पदार्थ—(यदि) अगर (वीरः) शरीरात्मबल से युक्त (अनुष्यात्) अनुभव करे (अग्नि) परमेश्वर का (इन्धीत) ध्यान करे (मर्त्यः) मनुष्य (आजुह्वत्) अग्निहोत्र करे (हव्यम्) उत्तम सामग्री का (आनुषक्) निरन्तर (बराबर) (शर्म) कल्याण का (भक्षीत) भोग करे (दैव्यम्) दैवी ।।२।।

भावार्थ—यदि उपासक मनुष्य परमेश्वर का अनुभव और ध्यान तथा यज्ञ-कर्म को करे तो वह उत्तम सुख का भोग करे ।।२।।

८३—*भरद्वाजः । अनुष्टुप् । अग्निः ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३१ २र

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं छुक्र आततः ।

२ ३ ३उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ।।३।।

पदार्थ—(त्वेषः) प्रकाश (ते) तेरा (धूमः) धूआं के समान (ऋण्वति) व्यापक होता है (दिवि) द्युलोक में (सम्) भली प्रकार (शुक्रः) शुद्ध (आततः) विस्तृत (सूरः न) सूर्य के समान (हि) निश्चित (द्युता) प्रकाश से (त्वं) तू (कृपा) सामर्थ्य से (पावक) हे पतितपावन (रोचसे) प्रकाशित हो रहा है ।। ३ ।।

भावार्थ—हे पतित-पावन परमेश्वर ! शुद्ध और विस्तृत तेरा प्रकाश द्युलोक में धुआं के समान व्यापक है । हे प्रभो ! निश्चय ही अपने तेज से सूर्य के समान स्तुतियों से तेरा प्रकाश होता है ।।३।।

८४—*भरद्वाजः । अनुष्टुप् । अग्निः ।*

१ २र३१ २र ३१ २र

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ।।४।।

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (क्षैतवत्) पृथिवी पर होने वाले (यशः) यश को (अग्ने) हे परमेश्वर (मित्रो न) सूर्य के समान (पत्यसे) प्रदान करता है (त्वं) तू (विचर्षणे) हे सब के साक्षी (श्रवः) अन्न को (वसो) हे सब के बसाने वाले (पुष्टिम् न) बल के समान (पुष्यसि) पुष्ट करता है ।।४।।

भावार्थ—हे सर्वसाक्षी अशरणशरण परमेश्वर ! तू सूर्य के समान हमें पृथिवीस्थ यश को प्रदान करता है, तथा बलदायक पदार्थ के समान हमारे लिये अन्नों को पुष्ट करता है ।।४।।

८५—*मृक्तवाहः । अनुष्टुप् । अग्निः ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रातरग्नि पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ।।५।।

पदार्थ—(प्रातः) प्रातःकाल (अग्निः) परमेश्वर (पुरुप्रियः) सर्वप्रिय (विशः) प्रजायें (स्तवेत) स्तुति की जाती हैं (अतिथिः) काल के बन्धन से रहित (विश्वे) सारे (यस्मिन्) जिसमें (अमर्त्ये) अमर (हव्यम्) भक्ति को (मर्तासः) मनुष्य (इन्धते) प्रकाशित करते हैं ।।५।।

भावार्थ—सारी मनुष्य-प्रजायें जिसमें अपनी भक्ति को प्रकाशित करती हैं उसी सर्वप्रिय, पूजनीय काल-बन्धन-रहित परमेश्वर की प्रातः वेला में स्तुति की जाती है ।।५।।

८६—*वासूयवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ।।६।।

पदार्थ—(यत्) जो (वाहिष्ठम्) अत्यन्त निर्वाह की साधनभूत (तत्) वह (अग्नये) परमेश्वर के लिये (बृहत्) महान् (अर्च) समर्पित कर (विभावसो) हे ज्ञान-धन-भक्त (महिषीव) पृथिवी के समान (त्वद्रयिः) तुम्हारे धन (त्वद्वाजा) तुम्हारे अन्नों का (उदीरते) प्राप्त कराता है ।।६।।

भावार्थ—हे ज्ञानप्रकाशयुक्त भक्त ! तू अपने निर्वाह की साधनभूत महान् वस्तु को भी परमेश्वर में समर्पित कर । वह पृथिवी के समान तुम्हारे धन और अन्नों को प्राप्त कराता है ।।६।।

८७—गोपवनः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

पदार्थ—(विशः विशः) समस्त मनुष्य प्रजाओं के (वः) तुम लोग (अतिथिम्) पूजनीय (वाजयन्तः) अन्न और ज्ञान की इच्छा करते हुए (पुरुप्रियं) सर्वप्रिय (अग्नि) परमेश्वर की (वः) अपने (दुर्यं) धाम (वचः) वाणी से (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (शूषस्य) सुख के (मन्मभिः) मननों द्वारा ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्न तथा ज्ञान की इच्छा करते हुए सब प्रजाओं के पूजनीय तुम्हारे सुख के धाम परमेश्वर की मननों द्वारा स्तुति करो । मैं भी उसकी स्तुति करता हूँ ॥७॥

८८—पुरुः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३२उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ २
यं मित्रन्न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८॥

पदार्थ—(बृहत्) अधिक (वयः) अवस्था (हि) निश्चय ही (भानवे) प्रकाश स्वरूप (अर्चः) समर्पण कर (देवाय) देव (अग्नय) परमेश्वर के लिए (यम्) जिसको (मित्रन्न) मित्र के समान (प्रशस्तये) स्तुति के द्वारा (मर्तासः) मनुष्य (दधिरे) धारण और ध्यान करते हैं (पुरः) आगे [प्रथम] ॥८॥

भावार्थ—हे उपासक ! तू उस प्रकाशस्वरूप परमदेव में अपने जीवन के बड़े भाग को समर्पण कर जिसको प्रियमित्र के समान मनुष्य लोग स्तुति करने के लिये अपने समक्ष करते हैं ॥८॥

८९—गोपवनः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥९॥

पदार्थ—(अगन्म) प्राप्त करें (वृत्रहन्तमं) अज्ञान के अत्यन्त नाशक (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ (अग्निं) परमेश्वर को (आनवम्) मनुष्यों के कल्याणकारी (यः) जो (स्म) पादपूरक (श्रुतर्वन्) प्रसिद्ध अग्नि में (आर्क्षे) नक्षत्रसम्बन्धी (बृहदनीके) महान् तेज समूह में (इध्यते) प्रकाश कर रहा है ॥९॥

भावार्थ—जो अग्नि और नक्षत्र सम्बन्धी महान् तेज-समूह में प्रकाश कर रहा है उस अज्ञाननाशक मनुष्य मात्र के कल्याणकारी महान् प्रभु को हम प्राप्त करें ॥९॥

९०—वामदेवः, कश्यपो मनुर्वा, उभो वा । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१२
जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥

पदार्थ—(जातः) जनक (परेण) परम-सूक्ष्म (धर्मणा) धर्म से (यत्) जिस कारण से (सवृद्भिः) सहवर्तिनी शक्तियों से (आभुवः) विद्यमान है (पिता) पिता (कश्यपस्य) ज्ञानी मनुष्य का (अग्निः) परमेश्वर (श्रद्धा) सत्य का धारक (कविः) कवि (माता) माता (मनुः) ज्ञानी ॥१०॥

भावार्थ—क्योंकि परमेश्वर सूक्ष्म गतियों से सबका उत्पादक होकर अपनी सहवर्तिनी शक्तियों के साथ विद्यमान है और ज्ञानी पुरुष का पिता है, अतः वही सत्य का धारक कवि ज्ञानी और सबकी माता है ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

९१—अग्निः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणञ्च बृहस्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(सोमं) सृष्टिकर्त्ता (राजानम्) प्रकाशस्वरूप (वरुणम्) सर्वमान्य (अग्निम्) परमेश्वर को (अन्वारभामहे) स्तुति करता हूँ (आदित्यम्) अविनाशी (विष्णुम्) व्यापक (सूर्यम्) सबको प्रेरणा करने वाले (ब्रह्माणम्) महान् (च) और (बृहस्पतिम्) वेदों के स्वामी ॥१॥

भावार्थ—सृष्टि-कर्त्ता प्रकाश-स्वरूप सब के पूज्य अविनाशी, व्यापक सब की प्रेरणा करने वाले महान् और वेदों के स्वामी परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ॥१॥

अथवा

सोम, राजा, वरुण, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति नामों वाले उस परमेश्वर को ही हम आरम्भ में स्मरण करते हैं ॥१॥

९२—वामदेवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २र
इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र भूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसो ययुः ॥२॥

पदार्थ—(इतः) यहां से (एते) ये (उदारुहन्) ऊर्ध्व गति पाते हैं (दिवः) द्युलोक के (पृष्ठानि) स्थानों को (आरुहन्) आरूढ़ होते हैं (प्र) उत्तम (भूर्जयः) पृथ्वी का जेता (यथा) जैसे (पथः) उत्तम मार्ग से (द्याम्) द्युलोक को (अङ्गिरसः) ज्ञानी लोग (ययुः) जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार पृथ्वी पर विजय करने वाला राजा उत्तममार्ग से (विज्ञानादि के द्वारा) आकाशपृष्ठ पर आरूढ़ हो जाता है, उसी प्रकार ये ज्ञानी जन इस लोक से अपने उत्तम कर्मों द्वारा सौर्यायणी आदि दशाओं को जाते हैं, और मोक्षयोग कर्म से उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥२॥

९३—वामदेवः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

पदार्थ—(राये) धन के लिए (अग्ने) हे परमेश्वर (महे) महान् (त्वा) तुझ को (दानाय) दान के लिए (समिधीमहि) ध्यान में लाते हैं, (ईडिष्व) ऐश्वर्य युक्त कर (हि) निश्चय (महे) महान् (वृषन्) हे मनोरथों के सफल करने वाले (द्यावा) द्यु और पृथ्वी (होत्राय) यज्ञ के लिए (पृथ्वी) विस्तृत ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! महान् धन को प्राप्त करने के लिए हम तुझे ध्यान में लाते हैं । हे सुखों के वर्षक प्रभो ! तू महान् यज्ञ कर्म के लिए विस्तृत द्यु और पृथिवी लोक को ऐश्वर्ययुक्त कर ॥३॥

९४—सोमाहुतिः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

पदार्थ—(दधन्वे) धारण करता है (वा) निश्चित ही (यत्) जो (ईम्) इसको (अनु) लक्ष्यकर (वोचत्) कहता है (ब्रह्म) ब्रह्म है (इति) इस प्रकार (वेः) जानता है (उ) पादपूर्ति कर (तत्) सो (परि) सब प्रकार से (विश्वानि) सारे (काव्या) वेदों का (नेमिः) हाल (चक्रमिव) चक्र के समान (आभुवत्) व्यापता है ॥४॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस परमेश्वर को धारण करता अथवा 'यह ब्रह्म है' ऐसा उपदेश करता है या भली भाँति जानता है, वह उसको तथा सारे वेदों को चक्रनेमि के समान अपने अधीन रखता है ॥४॥

९५—पायुः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १२ ३ २ ३ २ ३क २र ३क२र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥५॥

पदार्थ—(प्रति) सम्मुख (अग्ने) हे परमेश्वर ! (हरसा) अपने तेज से (हरः) तेज को (शृणाहि) नाश कर (विश्वतस्परि) सब प्रकार से (यातुधानस्य) दुःखदायी (रक्षसः) रोग के (बलम्) बल को (न्युब्ज) क्षीण कर (वीर्यम्) शक्ति को ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने तेज से दुःखदायी रोग के तेज का सब प्रकार से संहार कर तथा उसकी शक्ति और सामर्थ्य को भी भङ्ग कर ॥५॥

९६—प्रस्कण्वः । अनुष्टुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमग्ने वसूंरिह रुद्रां आदित्यां उत ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यजा स्वध्वरञ्जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥६॥

पदार्थ—(त्वं) तू (अग्ने) हे परमेश्वर ! (वसून्) आठ वसुओं की (इह) इस संसार से (रुद्रान्) ग्यारह रुद्रों की (उत) और (यज) संगति लगाता है (आदित्यान्) बारह आदित्यों (स्वध्वरम्) यज्ञकर्त्ता (जनम्) मनुष्य (मनुजातम्) विद्वान् से उत्पन्न (घृतप्रुषम्) तेज से युक्त ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ८ वसुओं, ११ रुद्रों और १२ आदित्यों की यथायोग्य संगति लगाता है और तू ही यज्ञकर्त्ता विद्वान् से उत्पन्न तथा तेज से पूर्ण मनुष्य वर्ग को हमें प्रदान करता है ।।६।।

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

९७—दीर्घतमा । उष्णिक् । अग्निः ।

३१ २ ३ १ २३१२३१२३ २
पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३१२ ३२उ ३१२
तोदस्येव शरण आ महस्य ।।१।।

पदार्थ—(**पुरु**) पूर्ण (**त्वा**) तेरी (**दाशिवान्**) समर्पण करने वाला (**वोचे**) स्तुति करता हूँ (**अरि**) स्वामी (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**तव, स्वित्**) तेरी ही (**तोदस्य**) कूप के (**इव**) समान (**शरणे**) शरण मे (**आ**) भली भांति (**महस्य**) महान् ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर तू सबका स्वामी है । अतः पूर्णतया आत्मसमर्पण करने वाला मैं महान् कूप के सदृश तुझ प्रभु की शरण में स्थित होकर तुझे पुकारता हूँ ।१।

९८—विश्वामित्रः । उष्णिक् । अग्निः ।

१ २उ ३ २उ ३१२ · ३२
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ।।२।।

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**होत्रे**) सुखदाता (**पूर्व्यं**) सनातन (**वचः**) मन्त्ररूप वचनों को (**अग्नये**) परमेश्वर के लिये (**भरता**) उच्चारण करो (**बृहत्**) महान् या बृहत् सामरूप भी (**विपाम्**) ज्ञानी पुरुषों के (**ज्योतींषि**) तेजों को (**बिभ्रते**) धारण करने वाले (**वेधसे**) विद्वान् के (**न**) समान ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वेदपाठियों के तेज को धारण करने वाले विद्वान् के समान सब सुखों के दाता परमेश्वर की सनातन वेद वचन से स्तुति करो ।।२।।

९९—विश्वामित्रः । उष्णिक् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ।।३।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे तेजस्वी विद्वान् पुरुष (**वाजस्य**) अन्न बल और ज्ञान का (**गोमतः**) गौ आदि पशुओं से युक्त (**ईशानः**) स्वामी (**सहसो यहो**) हे साहसी के पुत्र ! (**अस्मे**) हमें (**देहि**) दे (**जातवेदः**) हे विज्ञान के जानने वाले (**महि**) महान् उत्तम (**श्रवः**) यश ।।३।।

भावार्थ—हे पराक्रमशील मनुष्य के पुत्र विज्ञानी पुरुष ! तू गौ आदि पशुओं से युक्त धन का स्वामी है । तू हमें विद्या का श्रवण करा ।।३।।

१००—विश्वामित्रः । उष्णिक् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३१ २
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ।।४।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**यजिष्ठः**) अत्यन्त पूजनीय (**अध्वरे**) कल्याणकारी यज्ञ में (**देवयते**) उत्तम गुण चाहने वाले यजमान के लिए (**देवान्**) उत्तम विद्वान् पुरुषों को (**यज**) प्रदान कर या दे, (**होता**) कर्मफल दाता (**मन्द्रः**) स्तुति के योग्य (**विराजसि**) विराजमान है (**अति**) दबा कर (**स्रिधः**) दुःखदायी भावों को ।।४।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अत्यन्त पूजनीय, कर्म-फल-दाता और स्तुति के योग्य तथा दुःखदायी भावों को दबाकर सदा विराजमान है । तू कल्याणकारी यज्ञ में यजमान के लिए उत्तम विद्वानों को प्राप्त करा ।।४।।

१०१—त्रितः । उष्णिक् । सोमः ।

३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २
जज्ञाना सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयं ध्रुवो रयीणाञ्चिकेतदा ।।५।।

पदार्थ—(**जज्ञानः**) जानता हुआ (**सप्तमातृभिः**) सात छन्द या स्वरों से उत्पन्न मन्त्र अथवा गान से (**मेधाम्**) धारण करने वाली बुद्धि की (**आशासत**) आशा करता है (**श्रिये**) सम्पदा के लिए (**अयम्**) यह परमेश्वर (**ध्रुवः**) नित्य अविनाशी (**रयीणाम्**) सम्पदाओं को (**चिकेतत्**) ज्ञान करावे ।। ५ ।।

भावार्थ—नित्य अविनाशी परमेश्वर सम्पदायें प्राप्त करावें ऐसा जानता हुआ मनुष्य धन के लिए सात स्वरों और छन्दों से बने सामगान और मन्त्रों द्वारा उत्तम बुद्धि की याचना करता है ।। ५ ।।

१०२—इरिमिठिः । उष्णिक् । अदितिः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सा शन्ताता मयस्करदपस्रिधः ।।६।।

पदार्थ—(**उत**) और (**स्या**) वह (**नः**) हमारी (**दिवा**) दिन में (**मतिः**) ज्ञान करने के योग्य (**अदितिः**) परमेश्वर (**ऊत्या**) हमारी रक्षा के साधन के साथ (**आगमत्**) हमें प्राप्त हो (**सा**) वह (**शन्ताता**) शान्तिदायक (**मयः करत्**) सुखकारक (**अप**) दूर करे (**स्रिधः**) बुराइयाँ ।। ६ ।।

भावार्थ—जानने योग्य वह परमेश्वर हमारे रक्षा के साधनों के साथ दिव्य गुणों सहित हमें प्राप्त हो । शान्ति का दाता सुखकारी वह हमारी बुराइयां दूर करे ।। ६ ।।

१०३—विश्वमनाः । उष्णिक् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
ईडिष्वा हि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम् ।
३ १ २ ३ १ २
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ।।७।।

पदार्थ—(**ईडिष्व**) स्तुति कर (**हि**) निश्चय ही (**प्रतीव्यम्**) सब के भीतर और बाहर विद्यमान (**यजस्व**) पूजा कर (**जातवेदसम्**) सर्वज्ञ की (**चरिष्णुधूमम्**) धूम्रां निकलने वाले और (**अगृभीतशोचिषम्**) नहीं ग्रहण कर सकने के योग्य तेज वाले अग्नि के समान परमेश्वर की ।। ७ ।।

भावार्थ—हे जीव ! धूमयुक्त प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ और सर्व व्यापक परमेश्वर की स्तुति और पूजा कर ।। ७ ।।

१०४—विश्वमनाः । उष्णिक् । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ।।८।।

पदार्थ—(**न**) नहीं (**तस्य**) उसका (**मायया**) छल से (**चन**) भी (**रिपुः**) शत्रु (**ईशीत**) कुछ बिगाड़ सकता है (**मर्त्यः**) मनुष्य (**यः**) जो (**अग्नये**) परमेश्वर की शरण में (**ददाश**) अपने को समर्पित करता है (**हव्यदातये**) कर्मफलदाता ।। ८ ।।

भावार्थ—जो पुरुष कर्मफल-दाता परमेश्वर की शरण में अपने आपको समर्पित करता है, उसका मनुष्य-शत्रु कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ।। ८ ।।

१०५—भरद्वाजः । उष्णिक् । अग्निः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अप त्यं वृजिन रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
१ २ ३ २ ३ २
दविष्टमस्य सत्पते कृधी सुगम् ।।९।।

पदार्थ—(**अप**) दूर कर (**त्यम्**) उस (**वृजिनं**) पापी को (**रिपुम्**) शत्रु (**स्तेनम्**) चोर (**दुराध्यम्**) दुःखदायी (**दविष्ठम्**) दूर (**अस्य**) भगा (**सत्पते**) हे सज्जनों के पालक (**कृधी**) कर (**सुगम्**) उत्तममार्ग पर चलने वाला ।। ९ ।।

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! पापी, चोर और दुःख देने वाले शत्रु मनुष्य को हमसे परे कर । उत्तम मार्ग पर चलने वाला बना ।। ९ ।।

१०६—विश्वमनाः । उष्णिक् । अग्निः ।

३क २र ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्ट्याग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ।।१०।।

पदार्थ—(**श्रुष्टि**) शीघ्र (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**नवस्य**) नवीन (**मे**) मेरी (**स्तोमस्य**) स्तुति को (**वीर**) हे शक्तिमान् (**विश्पते**) हे सर्वरक्षक (**नि**) जड़ से (**मायिनः**) छली कपटी (**तपसा**) अपने तेज से (**रक्षसः**) मायामय विचारों को (**दह**) भस्म कर ।। १० ।।

भावार्थ—हे सर्वरक्षक और सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! तू मेरा नवीन स्तोत्र आदि सामगान शीघ्र सुन, तथा अपने तेज से मायावी लोगों के बुरे विचारों को भस्म कर ।। १० ।।

卐 एकादशी दशती समाप्त 卐

१०७—प्रयोगः । ककुप् । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
३ १ २ ३ १ २
उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (मंहिष्ठाय) सबसे अधिक दानी के लिए (गायत) गुण गान करो (ऋताव्ने) यज्ञों के स्वामी (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे) प्रकाश स्वरूप (उपस्तुतासः) हे उपासना करने वालो ! (अग्नये) परमेश्वर के लिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे उपासना करने वालो ! महान् दानी, यज्ञों के स्वामी और तेज-स्वरूप परमेश्वर के उत्तम गुणों का गान करो ॥ १ ॥

१०८—सौभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ २ ३ १ २र
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सः) वह (अग्ने) हे परमेश्वर (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सुवीराभिः) वीर सन्तान देनेवाली (तरति) उन्नति करता है (वाजकर्मभिः) अन्न पैदा करने वाले (यस्य) जिसका (त्वम्) तू (सख्यम्) मित्रता (आविथ) प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिसको तेरी मित्रता प्राप्त होती है वह पुरुष अन्न पैदा करने वाली और सुन्दर वीर सन्तान देने वाली तेरी रक्षाओं से अपनी सब प्रकार की उन्नति करता है ॥ २ ॥

१०९—सौभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (गूर्धय) पूजा कर (स्वर्णरम्) सबके नेता (देवासः) विद्वान् पुरुष (देवम्) देव (अरतिम) सर्वज्ञ (दधन्विरे) धारण या ध्यान करते हैं । (देवत्रा) मनुष्यों को (हव्यम्) भोग्यवस्तु (ऊहिषे) तू देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे जीव ! विद्वान् लोग जिस सर्वज्ञ देव का ध्यान करते हैं तू उस सब के नेता की पूजा कर । हे परमेश्वर ! तू मनुष्यों को भोग्य वस्तु देता है ॥३॥

११०—सौभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ २
मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
२ ३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥४॥

पदार्थ—(मा) नहीं (नः) हमारे (हृणीथाः) क्रोध करो (अतिथिम्) पूजनीय (वसुः) सब का बसाने वाला (अग्निः) परमेश्वर (पुरुप्रशस्तः) अत्यन्त प्रशंसनीय (एषः) प्राप्त करने के योग्य (यः) जो (सुहोता) दाता (स्वध्वरः) कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो परमेश्वर उत्तमदाता कल्याणकारी यज्ञों का स्वामी सब का बसाने वाला तथा अत्यन्त प्रशंसनीय है उस हमारे पूजनीय देव के प्रति क्रोध या अनादर के भाव मत करो ॥४॥

१११—सौभरिः । ककुप् । अग्निः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३ १ २ ३२
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १ २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥

पदार्थ—(भद्रः) कल्याणकारी (नः) हमारा (अग्निः) परमेश्वर (आहुतः) भली भांति ध्यान किया हुआ (भद्रा) कल्याणकारी (रातिः) दान हो (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) यज्ञ हो (भद्रा) कल्याण करने वाली (उत) और (प्रशस्तयः) स्तुतियां हों ॥५॥

भावार्थ—परमेश्वर का ध्यान हमारा कल्याण करे । हमारे दान, यज्ञ और स्तुतियां भी कल्याण करें ॥५॥

११२—सौभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१ २ ३१ २३ १ २र ३ १२
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥

भावार्थ—(यजिष्ठं) अत्यन्त पूज्य (त्वा) तुझे (ववृमहे) भजते हैं (देवम्) देव (देवत्रा) देवों में (होतारम्) दाता (अमर्त्यम्) अविनाशी (अस्य) इस 'संसाररूप' (यज्ञस्य) यज्ञ को (सुक्रतुम्) भली भांति सफल करने वाले ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! देवों में देव, कर्म फल के दाता, अविनाशी, इस संसार रूप यज्ञ को सफल करने वाले तुझे हम भजते हैं ॥६॥

११३—सौभरिः । ककुप् । अग्निः ।

१२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १२३ १ २ ३ १ २
तदग्ने द्युम्नमाभर यत्सासाहा सदने कञ्चिदत्रिणम् ।
३ १ २र ३क २र
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥

पदार्थ—(तत्) उस (अग्ने) हे परमेश्वर (द्युम्नम्) तेज को (आभर) भरपूर कर (यत्) जो (सासाहा) दबावे (सदने) यज्ञ शाला में (कञ्चित्) किसी भी (अत्रिणम्) बुरे विचार को (मन्युं) क्रोध को भी (जनस्य) मनुष्य के (दूढ्यम्) दुःखदायक ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें ऐसा तेज प्रदान कर जिससे यज्ञशाला में यज्ञ करने के समय उत्पन्न होने वाले किसी बुरे विचार को तथा मनुष्य के दुःखदायी क्रोध को भी दबा सकें ॥७॥

११४—विश्वमनाः । ककुप् । अग्निः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥

पदार्थ—(यद्वा) जब (उ) निश्चय ही (विश्पतिः) प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले (शितः) उपासना किया हुआ (सुप्रीतः) प्रसन्न (मनुषः) मनुष्य के (विशे) सेवक के लिए (विश्वेत्) सम्पूर्ण (रक्षांसि) बुरे विचारों को (प्रति) सम्मुख (सेधति) दूर करता है ॥८॥

भावार्थ—प्राणिमात्र का रक्षक परमेश्वर मनुष्य के सेवक पर जब उपासना से प्रसन्न होता है तो वह उसके सारे बुरे विचारों को दूर भगाता है ॥८॥

卐

ऐन्द्र पर्व

द्वितीयोऽध्यायः

११५—शंयुः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३१ २र ३२३१२ २उ ३ २ ३ १२

तद्व सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ।।१।।

पदार्थ—(**तत्**) उस (**वः**) तुम (**गाय**) गा (**सुते**) उत्पन्न जगत् में (**सचा**) साथ (**पुरुहूताय**) अत्यन्त प्रशंसा योग्य के लिये (**सत्वने**) सर्वदा वर्तमान (**शम्**) कल्याणकारी (**यत्**) जो (**गवेन**) वेदवाणी के समान (**शाकिने**) शक्तिमान् ।।१।।

भावार्थ—हे स्तुति करने वाले ! तू सर्वपूज्य सर्वदा वर्तमान तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के लिए वेदवाणी की प्रशंसा के समान अपने कल्याणकारी स्तोत्र का गान कर ।।१।।

११६—श्रुतक । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ।।२।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**ते**) तेरा (**नूनं**) निश्चित (**शतक्रतो**) हे अनेक ज्ञानवाले (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**द्युम्नितमः**) अत्यन्त यशस्वी (**मदः**) आनन्दित है (**तेन**) उससे (**नूनम्**) निश्चित (**मदे**) उपासना में (**मदेः**) हमें आनन्दित कर ।।२।।

भावार्थ—हे असंख्य ज्ञान वाले ईश्वर ! अत्यन्त यशस्वी जो तेरा आनन्द है, उस आनन्द से हमें उपासना में आनन्दित कर ।।२।।

११७—हर्यतः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।

३ १ २र ३ १ २

उभा कर्णा हिरण्यया ।।३।।

पदार्थ—(**गावः**) सूर्य की किरणें (**उप**) समीप (**वद**) फैलती हैं या पड़ती हैं (**अवटे**) गढ (**मही**) पृथ्वी (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**रप्सुदा**) स्वरूप देने वाली (**उभा**) दोनों (**कर्णा**) सिरे (**हिरण्यया**) चमकीले ।।३।।

भावार्थ—सूर्य की किरणें पृथ्वी के ऊँचे नीचे सभी स्थानों पर पड़ती हैं । पृथ्वी यज्ञ का स्वरूप देने वाली है । उसके दोनों सिरे चमकीले हैं ।।३।।

११८—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।

२ ३ १ २ ३ १ २

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ।।४।।

पदार्थ—(**अरम्**) पर्याप्त 'पूर्ण' (**अश्वाय**) व्यापकता के लिए (**गायत**) गान करो (**श्रुतकक्ष**) हे उत्तम श्रेणी के मनुष्य ! (**अरम्**) पूर्ण (**इन्द्रस्य**) ईश्वर के (**धाम्ने**) स्वरूप के लिये ।।४।।

भावार्थ—हे उत्तम श्रेणी के मनुष्य ! ईश्वर की व्यापकता उसकी शक्ति और उस के स्वरूप का गुण गान कर ।।४।।

११९—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २र ३२ ३ २ ३ १ २

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।

१ २र ३ १ २

स वृषा वृषभो भुवत् ।।५।।

पदार्थ—(**तम्**) उस (**इन्द्रम्**) ईश्वर की (**वाजयामसि**) महिमा को गाते हैं (**महे**) महान् (**वृत्राय**) अज्ञान का (**हन्तवे**) नाश करने के लिए (**स**) वह (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला (**वृषभः**) धन का दाता (**भुवत्**) हो ।।५।।

भावार्थ—हम महान् अज्ञान का नाश करने के लिए ईश्वर की महिमा का गान करते हैं । वह हमारी कामनाओं को पूर्ण करता है । वह हमें धन दे ।।५।।

१२०—देवजामयः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।

१ १र३ १ २र

त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ।। ६ ।।

पदार्थ—(**त्वम्**) तू (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**बलात्**) बल से (**अधि**) अधिक (**सहसः**) तेज से (**जातः**) प्रसिद्ध (**ओजसः**) धैर्य से (**त्वम्**) तू (**सन्**) विद्यमान है (**वृषन्**) हे सुखों की वर्षा करने वाले (**वृषाइत्**) तू कामनाओं की पूर्ति करने वाला (**असि**) है ।।६।।

भावार्थ—हे सुखों की वर्षा करने वाले ईश्वर ! तू बल तेज और धैर्य से प्रसिद्ध है । तू सदा विद्यमान रहता हुआ हमारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला ही है ।।६।।

१२१—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २३ २ ३ २

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ।।७।।

पदार्थ—(**यज्ञः**) परमेश्वर (**इन्द्रम्**) सूर्य का (**अवर्धयत्**) बढ़ाया (**यत्**) जो (**भूमिम्**) भूमि को (**व्यवर्तयत्**) घुमाता है (**चक्राणः**) करता हुआ (**ओपशम्**) सम्बन्ध को (**दिवि**) आकाश में ।।७।।

भावार्थ—यज्ञ परमेश्वर ने सूर्य को बढ़ाया जो कि आकाश में सम्बन्ध करता हुआ भूमि को घुमाता है ।। ७ ।।

१२२—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ १ ३र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ।।८।।

पदार्थ—(**यत्**) यदि (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**अहम्**) मैं (**यथा**) जैसा (**त्वम्**) तू है । (**ईशीय**) अधिष्ठाता हो जाऊँ (**वस्वः**) धन का (**एक इत्**) एक ही (**स्तोता**) स्तुति करने वाला (**मे**) मेरा (**गोसखा**) मित्र (**स्यात्**) हो ।। ८ ।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे तू सारे ऐश्वर्य का एक ही अधिष्ठाता है, ऐसे ही यदि मैं भी हो जाऊं, तो मेरी स्तुति करने वाला गवादि धन से युक्त हो ! ।। ८ ।।

१२३—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ।।९।।

पदार्थ—(**पन्यम्पन्यम्**) वार वार स्तुति करने योग्य (**इत**) ही (**सोतारः**) हे स्तुति करनेवालो ! (**आधावत**) शरण में जाओ (**मद्याय**) प्रशस्त धन के लिए (**सोमम्**) आनन्दस्वरूप ईश्वर की (**वीराय**) पुत्र के लिए (**शूराय**) शूर ।।९।।

भावार्थ—हे स्तुति करनेवालो ! धन के लिए और शूर पुत्र की प्राप्ति के लिए वार वार स्तुति करने योग्य आनन्दस्वरूप ईश्वर की ही शरण में जाओ ।।९।।

१२४—प्रियमेधः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १ २

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ।।१०।।

पदार्थ—(**इदम्**) इस (**वसो**) हे वसानेवाले ईश्वर ! (**सुतमन्धसः**) उत्पन्न हुए सोमतत्त्व को (**पिब**) पिला (**सुपूर्णम्**) पूरी (**उत्**) और (**अरम्**) पूर्ण (**अनाभयिन्**) हे सदा निर्भय ! ईश्वर (**ररिमा**) हम समर्पण करते हैं (**ते**) तेरी सेवा में ।। १० ।।

भावार्थ—हे सबको वसाने वाले परमेश्वर ! तू संसार में उत्पन्न होने वाले सोम को पूर्ण और पर्याप्त रूप से पिला । हे निर्भय ! हम अपने सर्वस्व को तुझ में समर्पण करते हैं ।। १० ।।

卐 पहली दशती समाप्त 卐

१२५—सूतकक्षः श्रुतकक्षो वा गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभ नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ।।१।।

पदार्थ—(**उत्**) ऊपर (**ह**) प्रसिद्ध (**इत्**) ही (**अभि**) सब प्रकार (**श्रुतामघम्**) विख्यात धनी (**वृषभम्**) याचक की मांग को पूर्ण करने वाले (**नर्यापसम्**) मनुष्य मात्र के हित करने वाले (**अस्तारम्**) उदार पुरुष को (**एषि**) उठाता है (**सूर्य**) हे सर्व प्रेरक ईश्वर ।। १ ।।

भावार्थ—हे सर्व प्रेरक ईश्वर ! विख्यात धनी याचकों की मांग पूरी करने वाले मनुष्य मात्र के हितचिन्तक और उदार पुरुष को तू अवश्य उन्नत करता है ।१।

१२६—ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

२ ३ १ २र ३ १ ३ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र त वशे ।।२।।

पदार्थ—(**यत्**) जो (**अद्य**) आज (**कच्च**) कुछ भी (**वृत्रहन्**) हे अज्ञान के नाश करने वाले ! (**उदगा**) उत्पन्न है (**अभि**) तेरे सामने (**सूर्य**) सब को प्रेरित करने वाले (**सर्वम्**) सब (**तत्**) वह (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**ते**) तेरे (**वशे**) आधीन है ।। २ ।।

भावार्थ—हे सब को प्रेरणा करने वाले ! हे अज्ञान के नाश करने वाले ईश्वर ! जो कुछ भी उत्पन्न दिखाई देता है वह सब तेरे ही आधीन है ।। २ ।।

१२७—भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ।।३।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**आनयत्**) लाता है (**परावतः**) दूर से (**सुनीती**) उत्तम नीति से (**तुर्वशम्**) समीप (**यदुम्**) मनुष्य को (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**सः**) वह (**नः**) हमारा (**युवा**) अजर (**सखा**) मित्र ।। ३ ।।

भावार्थ—जो ईश्वर अज्ञान के कारण दूर भटकने वाले मनुष्य को अपनी उत्तम नीति से समीपवर्ती कर लेता है, वही हमारा अजर मित्र है ।। ३ ।।

१२८—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत ।

२ ३ १ २ ३ २

त्वा युजा वनेम तत् ।।४।।

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**नः**) हमारे (**अभि**) सन्मुख (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**आदिशः**) दिशा से (**सूरः**) वीर (**अक्तुषु**) रात्रि या दिन में (**आयमत्**) नियंत्रण करे (**त्वा**) तेरी (**युजा**) योग कराने वाली भावना से (**वनेम**) भक्ति करे (**तत्**) उस कारण से ।। ४ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिससे कि कोई भी वीर पुरुष रात या दिन में हमारे सन्मुख की दिशाओं पर नियंत्रण न कर सके अर्थात् हम जिधर चाहें चल सकें, हमारा आगा कोई न रोक सके, इस कारण हम तेरे से योग कराने वाली भावना के साथ तेरी भक्ति करते हैं ।। ४ ।।

१२९—मधुच्छन्दाः । गायत्री । इन्द्र : ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भरा ।।५।।

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**सानसिम्**) निरन्तर सेवन करने योग्य (**रयिम्**) धन को (**सजित्वानं**) सदा विजय कराने वाले (**सदा-सहम्**) शत्रु के आक्रमण का सहन न करने का हेतु (**वर्षिष्ठम्**) बढ़ाने वाले (**ऊतये**) हमारी रक्षा के लिए (**भर**) पूर्ण कर ।। ५ ।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! निरन्तर भोग करने योग्य, जिनसे हम शत्रु पर विजय पा सकें तथा उसके आक्रमण का सामना कर सकें, और जो हमको सदा उन्नत कर सकें, ऐसे धन के द्वारा हमारी रक्षा के लिए हमें पूर्ण कर ।। ५ ।।

१३०—मधुच्छन्दाः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ।।६।।

पदार्थ—(**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**वयम्**) हम लोग (**महाधने**) संग्राम में (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**अर्भे**) छोटे संग्राम या कार्यों में (**हवामहे**) पुकारते हैं (**युजम्**) सहायक (**वृत्रेषु**) अज्ञानों को दूर करने में (**वज्रिणम्**) निवारणास्त्र को धारण करने वाले ।। ६ ।।

भावार्थ—हम छोटे या बड़े संग्रामों में सहायक, अज्ञानों के नाश करने वाले परमेश्वर को पुकारते हैं ।। ६ ।।

१३१—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ।।७।।

पदार्थ—(**अपिबत्**) भोग करता है (**कद्रुवः**) बुरी गतिवाला (**सुतम्**) संसार का (**इन्द्रः**) जीवात्मा (**सहस्रबाह्वे**) बहुत शक्ति पाने के लिए (**तत्र**) उसमें (**आददिष्ट**) ग्रहण करता है (**पौंस्यम्**) पुरुषार्थ को ।। ७ ।।

भावार्थ—बुरी भली गतियों वाला जीव संसार का उपभोग करता है, तथा आयु की वृद्धि के लिए पुरुषार्थ को ग्रहण करता है ।। ७ ।।

१३२—वसिष्ठः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा३स्य नो वसो ।।८।।

पदार्थ—(**वयम्**) हम लोग (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**त्वायवः**) तेरी कामना करने वाले हैं (**अभि**) सन्मुख (**प्र**) उत्तमता से (**नोनुमः**) वार वार नमस्कार करते हैं (**वृषन्**) हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले (**विद्धी**) जानता है (**त्वा**) तुझे (**अस्य**) इस संसार का (**नः**) हमारी (**वसो**) हे सब ऐश्वर्यों के स्वामी ।।८।।

भावार्थ—हे सुख के वर्षक इन्द्र ! तुम्हारी कामना करने वाले हम लोग तुमको नमस्कार करते हैं । तू हमारे इस संसार की सभी वस्तुओं को जानता है ।।८।।

१३३—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ।।९।।

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार (**घ**) प्रसिद्ध (**ये**) जो लोग (**अग्निम्**) ईश्वर को (**इन्धते**) अपनी आत्मा में प्रकाशित करते हैं (**स्तृणन्ति**) विस्तार करते हैं (**बर्हिः**) ज्ञान का (**आनुषक्**) निरन्तर (**येषां**) जिनका (**इन्द्रः**) ईश्वर (**युवा**) अजर (**सखा**) मित्र ।। ९ ।।

भावार्थ—जिनका अजर परमेश्वर सखा है, और जो आत्मा में इसे ध्याते हैं वे अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाते हैं ।। ९ ।।

१३४—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

१ २ ३ १ २र

वसुस्पार्हं तदाभर ।।१०।।

पदार्थ—(**भिन्धि**) छिन्नभिन्न कर (**विश्वा**) सारे (**अप**) दूरकर (**द्विषः**) द्वेष की भावनाओं को (**परिबाधः**) सब विघ्न-बाधाओं तथा (**जही**) अन्त कर (**मृधः**) संग्रामों [लड़ाइयों] को (**वसु**) सम्पत्ति है (**स्पार्हम्**) स्पृहणीय (**तत्**) उसको (आभर) पूर्णकर ।। १० ।।

भावार्थ—हे इन्द्र ! तू समस्त द्वेष की भावनाओं को नष्ट कर तथा मिटा समस्त विघ्न बाधाओं को । जो स्पृहणीय [इच्छा करने के योग्य] धन है वह हमें प्रदान कर ।। १० ।।

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

१३५—कण्वो घौरः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २र ३ १ २

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ।।१।।

पदार्थ—(**इह**) यहां के (**इव**) समान (**शृण्वे**) सुनता हूँ (**एषाम्**) इन पवनों के (**कशाः**) वाणियां (**हस्तेषु**) हाथों मे हैं (**यत्**) जो (**वदान्**) बोलता है (**नियामम्**) मार्ग को (**चित्रम्**) अद्भुत (**ऋञ्जते**) सिद्ध करता है ।। १ ।।

भावार्थ—दूसरी जगह लोग जो कुछ बोलते हैं वह यहाँ ही [कान के पास के समान] सुनाई पड़ता है । [इससे मालूम होता है कि] वाणी इन पवनों के अधिकार में है । [यह शब्द एक] अद्भुत मार्ग सिद्ध करता है ।। १ ।।

१३६—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

पुष्टावन्तो यथा पशुम् ।।२।।

पदार्थ—(**इमे**) ये (**त्वा**) तुझको (**विचक्षते**) विशेष रुचि से देखते हैं (**सखायः**) मित्र (**इन्द्र**) परमेश्वर (**सोमिनः**) ऐश्वर्यशाली पुरुष (**पुष्टावन्तः**) घास के लिए पशुपालक (**यथा**) जैसे (**पशुम्**) पशु को ।। २ ।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे पशुपालक [अपने उपकार के लिए] पशु को देखता है, ऐसे ही तुम्हारे मित्र ऐश्वर्यशाली लोग तुम को विशेष रुचि से देखते हैं ।।२।।

१३७—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ।।३।।

पदार्थ—(**सम्**) भले प्रकार (**अस्य**) इसकी (**मन्यवे**) मनन के लिये (**विशः**) प्रजायें (**विश्वा**) सब (**नमन्त**) झुकती हैं (**कृष्टयः**) मनुष्य (**समुद्राय**) समुद्र के लिये (**इव**) समान (**सिन्धवः**) छोटी नदियें ।। ३ ।।

भावार्थ—जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की तरफ झुकती हैं, इसी प्रकार सारे मनुष्य मन या ज्ञान के लिये परमेश्वर की तरफ झुकते हैं ।।३।।

१३८—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ।।४।।

पदार्थ—(**देवानाम्**) ईश्वर, सूर्य, विद्वान् (**इत्**) ही (**अवः**) रक्षा (**महत्**) बड़ी (**तत्**) उसको (**वयम्**) हम (**आवृणीमहे**) चाहते हैं (**वृष्णाम्**) सुख की वर्षा करने वाली (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिये (**ऊतये**) रक्षा के लिये ।।४।।

भावार्थ—हमारे लिये सुख की वृष्टि करने वाले ईश्वर, सूर्य विद्वान् आदि देवों का जो महान् संरक्षण है, उसे हम अपनी रक्षा के लिये सदा स्वीकार करते हैं।४।

१३९—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ।।५।।

पदार्थ—(**सोमानाम्**) सोम विज्ञान के (**स्वरणम्**) प्रकाशक (**कृणुहि**) बना (**ब्रह्मणस्पते**) हे वेदवाणियों के स्वामी ! (**कक्षीवन्तम्**) सृष्टि का ज्ञाता (**यः**) जो (**औशिजः**) मेधावी का पुत्र ।।५।।

भावार्थ—हे वेदवाणियों के स्वामी परमेश्वर ! जो मेधावी का पुत्र है । ऐसे सोम विज्ञान के प्रकाशक पुरुष को समस्त सृष्टि विद्या का ज्ञाता बना ।।५।।

१४०—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १ २

बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ।।६।।

पदार्थ—(**बोधन्मना**) मेरा अभिप्राय जानता है (**इत्**) ही (**अस्तु**) हो (**नः**) हमारी (**वृत्रहा**) अज्ञान नाशक (**भूर्यासुतिः**) आनन्दघन (**शृणोतु**) सुनता है (**शुक्रः**) शक्तिमान् ईश्वर (**आशिषम्**) स्तुति ।।६।।

भावार्थ—अज्ञान का नाश करने वाला, आनन्द स्वरूप और शक्तिमान् ईश्वर हमारी स्तुति सुनता है और अभिप्राय को जानता है ।।६।।

१४१—श्यावाश्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ २ १ २ ३ १२ १ २ ३ १ २

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ।।७।।

पदार्थ—(**अद्य**) आज (**नः**) हमारे लिये (**देव**) हे ईश्वर ! (**सवितः**) हे सब के उत्पादक ! (**प्रजावत्**) सन्तानयुक्त (**सावीः**) दे (**सौभगम्**) ऐश्वर्य [सम्पत्ति] (**परासुव**) दूरकर (**दुःष्वप्न्यम्**) क्लेश को ।।७।।

भावार्थ—हे सब के उत्पादक देव ईश्वर ! आप हमको सन्तानयुक्त सम्पत्ति दें और क्लेश को दूर करें ।।७।।

१४२—प्रगाथः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ १ २३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

क्वा३स्य वृषभो युवा तुवीग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ।।८।।

पदार्थ—(**क्व**) कहां है (**स्य**) वह (**वृषभः**) सुख का दाता (**युवा**) अजर (**तुवीग्रीवः**) विराट्स्वरूप (**अनानतः**) शक्तिशाली (**ब्रह्मा**) चारों वेदों का ज्ञाता (**कः**) कौन (**तम्**) उसकी (**सपर्यति**) भली भांति उपासना करता है ।।८।।

भावार्थ—विराट्रूप और महान् शक्तिशाली परमेश्वर कहां है ? अर्थात् सर्वत्र है । उसकी भली भांति उपासना कौन कर सकता है ? चारों वेदों का ज्ञाता पुरुष ।।८।।

१४३—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ।।९।।

पदार्थ—(**उपह्वरे**) गुफाओं में (**गिरीणाम्**) पर्वतों की (**संगमे**) संगम पर (**च**) और (**नदीनाम्**) नदियों के (**धिया**) विशेष ज्ञान से (**विप्रः**) मेधावी (**अजायत**) बनता है ।।९।।

भावार्थ—पर्वतों की गुफाओं में और नदियों के संगम पर विशेष कर्म [योगाभ्यास] करने से मनुष्य ज्ञानी बनता है ।।९।।

१४४—इरिमिष्ठः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३२ ३ १ २

प्रसम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ।।१०।।

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**सम्राजम्**) सम्राट् (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**इन्द्रम्**) ईश्वर की (**स्तोत**) स्तुति करो (**नव्यम्**) स्तुत्य (**गीर्भिः**) वेदवाणियों से (**नरम्**) सुपथ पर चलाने वाले (**नृषाहम्**) मनुष्यों को नियम में रखने वाला (**मंहिष्ठम्**) महान् दाता ।।१०।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मनुष्यमात्र के सम्राट् स्तुति करने के योग्य ईश्वर की वेदमन्त्रों से उत्तम स्तुति करो, वह मनुष्यमात्र को नियम में रखता है उसका दान महान् है और वह सबको सुपथ पर चलाता है ।।१०।।

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

१४५—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १२ ३१२ ३ १२ २ ३ २ ३ १ २

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ।।१।।

पदार्थ—(**अपात्**) रक्षा करता है (**शिप्री**) कार्यकुशल (**अन्धसः**) अन्न की (**सुदक्षस्य**) उत्तम शक्तिशाली (**प्रहोषिणः**) संसार यज्ञ के होता (**इन्दोः**) परमेश्वर का (**इन्द्रः**) राजा (**यवाशिरः**) यवादि से युक्त ।।१।।

भावार्थ—व्यावहारिक पारमार्थिक सुख की प्राप्ति करने वाला राजा उत्तम शक्तिशाली तथा संसार यज्ञ के होता परमेश्वर के दिए हुए यवादि से युक्त अन्नादि पदार्थों की रक्षा और उपभोग करता है ।।१।।

१४६—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १२

इमा उ त्वा पुरुवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ।।२।।

पदार्थ—(**इमा उ**) ये (**त्वा**) तेरी (**पुरुवसो**) सब के निवास दाता (**अभि**) सब प्रकार (**प्रनोनुवुः**) स्तुति करती हैं । (**गिरः**) वेदवाणियां (**गावः**) गाएं (**वत्सं न**) बछड़ों को जैसे (**धेनवः**) दूध देने वाली ।।२।।

भावार्थ—हे ईश्वर सब के निवासदाता ! जैसे दूध देने वाली गाएं बछड़े के पास जाती हैं ऐसे ही ये हमारी स्तुतियां सब प्रकार से वारवार तेरी शरण में पहुंचती हैं ।। २ ।।

१४७—गोतमः । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।।३।।

पदार्थ—(**अत्र**) इसमें (**अह**) निश्चित (**अमन्वत**) जानो (**नाम**) तेज (**त्वष्टुः**) सूर्य को (**अपीच्यम्**) प्रविष्ट हैं (**इत्था**) इस प्रकार (**चन्द्रमसः**) चन्द्रमा के (**गृहे**) मण्डल में ।।३।।

भावार्थ—इस चन्द्रमण्डल में सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं । हे मनुष्यो ! ऐसा जानो ।।३।।

१४८—भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषा भुवत्सचा ।।४।।

पदार्थ—(**यत्**) जो (**इन्द्रः**) सूर्य (**अनयत्**) पहुँचाता है (**रितः**) गति करने वाली (**महीः**) पृथ्वी पर (**अपः**) जलों को (**वृषन्तमः**) पूर्ण वर्षा करने वाला (**तत्र**) उसमें (**पूषा**) वायु (**भुवत्**) होता है (**सचा**) सहायक ।।४।।

भावार्थ—पूर्ण वर्षा करने वाला सूर्य, गति करने वाली पृथिवी पर जलों को बरसाता है । उसमें वायु सहायक होता है ।।४।।

१४९—बिन्दुः पूतदक्षो वा । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ।।५।।

पदार्थ—(**गौः**) पृथ्वी (**धयति**) ग्रहण करती है (**मरुताम्**) पवनों को (**श्रवस्युः**) अन्न उत्पन्न करने वाली (**माता**) प्राणियों की रक्षक (**मघोनाम्**) सूर्य आदि की (**युक्ता**) साथी (**वह्नी**) वहन करने वाली (**रथानाम्**) विविध यानों के ।। ५ ।।

भावार्थ—इन्द्र आदि द्वारा की हुई वृष्टि को अन्नादि की दाता सूर्यादि की साथी रथादि यानों को धारण करने वाली पृथिवी माता पान करती है अथवा ग्रहण करती है ।। ५ ।।

१५०—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ।।६।।

पदार्थ—(**उप**) समीप (**नः**) हमारे (**हरिभिः**) मनुष्यों के उपदेशों से (**सुतम्**) उत्पन्न ज्ञान को (**याहि**) प्राप्त करा (**मदानां पते**) आनन्दों के स्वामी (**उप**) समीप (**नः**) हमारे (**हरिभिः**) सूर्य, अग्नि द्वारा (**सुतम्**) भोग को ।।६।।

भावार्थ—हे आनन्दों के स्वामी परमेश्वर ! अपने विद्वानों के उपदेशों से अत्यन्त ज्ञान तथा सूर्य अग्नि आदि द्वारा उत्पन्न भोग को हमें प्राप्त करा ।।६।।

१५१—ऋषि छन्दोदैवतानि पूर्ववत् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ।।७।।

पदार्थ—(**इष्टा होत्रा**) इष्ट आहुतियें (**असृक्षत**) छोड़ते हैं (**इन्द्रम्**) परमेश्वर का (**वृधन्तः**) उच्चारण करते हुए (**अध्वरे**) यज्ञ में (**अच्छ**) भली भांति (**अवभृथम्**) परिपूर्ण (**ओजसा**) तेज से ।।७।।

भावार्थ—यज्ञ में विद्वान् जन तेज से परिपूर्ण ईश्वर का उच्चारण करते हुए इष्टाहुतियों को छोड़ते हैं ।।७।।

१५२—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३२उ ३ १ २र ३ २३ १ २ ३ १ २ ३१ २र

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ।।८।।

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**इत्**) ही (**हि**) क्योंकि (**पितुष्परि**) द्युलोक के (**मेधाम्**) ज्ञान को (**ऋतस्य**) अग्नि के (**जग्रह**) अच्छी प्रकार धारण करता हूँ । (**अहम्**) मैं (**सूर्य इव**) सूर्य के समान (**अजनि**) पैदा करता हूँ ।।८।।

भावार्थ—मैं परमेश्वर द्युलोक तथा अग्नि या सांसारिक नियम के पूर्ण ज्ञान को धारण करता हूँ । मैं ही सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश को पैदा करता हूँ ।।८।।

१५३—शुनःशेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।।९।।

पदार्थ—(**रेवतीः**) धनवाली (**नः**) हमारे (**सधमादे**) प्रसन्न होने पर (**इन्द्रे**) परमेश्वर के (**सन्तु**) होती हैं (**तुविवाजाः**) अनेक बलवाली (**क्षुमन्तः**) अन्नयुक्त (**याभिः**) जिनसे (**मदेम**) प्रसन्न होते हैं ।।९।।

भावार्थ—परमेश्वर के प्रसन्न होने पर हमारे पास धन अन्न बल की वस्तुएं होती हैं, जिनसे हम सुखी होते हैं ॥६॥

१५४—शुनःशेपः वामदेवो वा । गायत्री इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २

सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् । देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

पदार्थ—(सोमः) जीव (पूषा) परमेश्वर (च) और (चेततुः) जानते हैं (विश्वासाम्) सब (सुक्षितीनाम्) लोकों के (देवत्रा) देवों में (रथ्योः) समविषममार्ग में (हिता) कल्याणकारी ॥१०॥

भावार्थ—समस्त देवों के मध्य में ईश्वर और जीव दोनों जानते हैं, अर्थात् ज्ञान रखते हैं। ये दोनों सम विषम मार्ग में हितकारी हैं ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

१५५—श्रुतकक्षः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठञ्चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(पान्तम्) रक्षक (आ) सब प्रकार से (वः) तुम सब हे मनुष्यो! (अन्धसः) अन्न के (विश्वासाहम्) अनन्त शक्ति (शतक्रतुम्) अनन्त ज्ञान वाले (मंहिष्ठम्) पूज्य (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (इन्द्रम्) ईश्वर का (अभिप्रगायत) भली भांति गुणगान करो ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग अन्न के रक्षक अनन्त शक्ति और अनन्त ज्ञान वाले तथा मनुष्यों के पूज्य ईश्वर का गुण गान करो ॥१॥

१५६—वसिष्ठः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (इन्द्राय) ईश्वर के लिये (मादनम्) आनन्ददायक (हर्यश्वाय) मनुष्यों के आत्माओं में व्यापक (गायत) गान करो (सखायः) हे मित्रो! (सोमपाव्ने) आनन्द के रक्षक के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो! जो ईश्वर मनुष्य की आत्माओं में व्यापक है तथा आनन्द का स्रोत है उसका मीठे स्वर से गान करो ॥२॥

१५७—मेधातिथिप्रियमेधौ । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (त्वा) तेरी (तदिदर्था) एकमात्र तेरी ही भक्ति करने के लिए (इन्द्र) हे ईश्वर! (त्वायन्तः) तेरी कामना करते हुए (सखायः) परस्पर मित्र [स्तुति करते हैं] (कण्वाः) मेधावी पुरुष भी (उक्थेभिः) विशेष मंत्रों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर! केवल तेरे ही भक्त, तेरी ही कामना करने वाले और परस्पर मित्र हम लोग तेरी स्तुति करते हैं। बुद्धिमान् लोग भी वेद मंत्रों से तेरी ही स्तुति करते हैं ॥३॥

१५८—श्रुतकक्षः । गायत्री इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (मद्वने) सुख गुणयुक्त (सुतम्) संसार का (परिष्टोभन्तु) पूर्ण वर्णन करें (नः) हमारी (गिरः) वाणियाँ (अर्कम्) पूज्य परमेश्वर की (अर्चन्तु) पूजा करें (कारवः) कर्मयोगी पुरुष ॥४॥

भावार्थ—कर्मयोगी पुरुष पूज्य परमेश्वर की स्तुति करें। हमारी वाणियां सुख गुण वाले जीव के लिए संसार का वर्णन करें ॥४॥

१५९—इरिम्बिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

अयन्त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

पदार्थ—(अयम्) यह (ते) तेरे लिए (इन्द्र) हे आत्मन्! (सोमः) भोग्य पदार्थ (निपूतः) नितराम् पवित्र (अधि बर्हिषि) संसार में (एहि) आओ (ईम् अस्य) इसका (द्रवा) प्राप्त कर और (पिब) इसका उपभोग कर ॥५॥

भावार्थ—हे जीवात्मन्! तेरे लिए यह सोम पवित्र भोग्य पदार्थ संसार में उत्पन्न किया गया है तू इसे प्राप्त कर और इसका उपभोग कर ॥५॥

१६०—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥६॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुं) सुन्दर रूप के बनाने वाले ईश्वर की (ऊतये) रक्षा के लिए (सुदुघाम्) दूध देने वाली गौ के (इव) समान (गोदुहे) गौ दुहने वाले के लिए (जुहूमसि) स्तुति करते हैं (द्यवि, द्यवि) प्रतिदिन ॥६॥

भावार्थ—गौ दुहने वाले के लिये गाय के समान सुन्दर रूपों को बनाने वाले परमेश्वर की हम प्रतिदिन स्तुति करते हैं ॥६॥

१६१—विशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (त्वा) तेरे लिए (वृषभा) धर्म से प्रकाशमान जीवो! (सुते) संसार में (सुतम्) सोमादि भोग्य वस्तु को (सृजामि) पैदा करता हूँ (पीतये) भोग के लिये (तृम्पा) तृप्त हो (व्यश्नुहि) प्राप्त करो (मदम्) सुख को ॥७॥

भावार्थ—हे धर्म से प्रकाशमान जीवो! तुम्हारे भोग के लिए संसार में सोमादि भोग्यवस्तु उत्पन्न करता हूँ। तुम उनका भोग करो और आनन्द प्राप्त करो ॥७॥

१६२—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३१ २ ३ २ १ २र ३ १ २

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्र) हे जीव! (चमसेषु) चमस पात्रों में रखा हुआ (सोमः) सोमरस (चमूषु) ग्रह नामक पात्र में तैयार (ते) तेरे लिए (आसुतः) चलाया गया है (पिब) इसका पान कर (इत्) ही (अस्य) इसका (त्वं) तू (ईशिषे) स्वामी है ॥८॥

भावार्थ—हे जीव! जो सोमरस तेरे लिए ग्रह नामक पात्रों में तैयार कर चमस नामक पात्रों में रखा हुआ है, तू इसका स्वामी है, इस लिए तू इसका पान कर ॥८॥

१६३—शुनःशेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३१ २

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥

पदार्थ—(योगेयोगे) समय समय पर (तवस्तरम्) अति बलवान (वाजे वाजे) सम्पूर्ण संग्राम आदि समयों में (हवामहे) स्तुति करते हैं (सखायः) परस्पर मित्र हम लोग (इन्द्रम्) ईश्वर की (ऊतये) रक्षार्थ ॥९॥

भावार्थ—परस्पर मित्र हम लोग समय समय पर प्रत्येक संग्राम आदि समयों के अवसर पर अपनी रक्षा के लिए अति बलवान् ईश्वर की स्तुति करते हैं ॥९॥

१६४—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

२उ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१०॥

पदार्थ—(आ तु आ इत) आओ आओ (निषीदत) बैठो (इन्द्रम्) ईश्वर को (अभि) सन्मुख (प्रगायत) गुणगान करो (सखायः) हे मित्रो! (स्तोमवाहसः) स्तुति की धारा बहाने वाले ॥१०॥

भावार्थ—हे स्तुति की धारा बहाने वाले मित्रो! आओ, अवश्य, आओ, ईश्वर के सन्मुख बैठो तथा उसका गुण-गान करो ॥१०॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

१६५—विश्वामित्रो गाधिनः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३१ २ २ ३ २ १ २

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) इस (हि) निश्चय से (अनु) पश्चात् (ओजसा) बल से (सुतम्) संसार (राधानां पते) हे धनों की रक्षा करने वाले (पिब) रक्षा करता है (तु) पुनः (अस्य) इसके (गिर्वणः) हे प्रार्थना योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे प्रार्थना के योग्य धनों के स्वामी परमेश्वर! यह संसार तेरे ओजसे रचा गया है। तू इसकी रक्षा करता है ॥१॥

१६६—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २र

महां इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥

पदार्थ—(महान्) अनन्त गुण वाला (इन्द्रः) ईश्वर (पुरः) आगे (च) और (नः) हमारे (महित्वम्) महत्ता (अस्तु) हो (वज्रिणे) न्यायरूपदण्डधारी के लिए (द्यौः न) विशाल सूर्य के प्रकाश के समान (प्रथिना) विस्तार से युक्त (शवः) बल ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर महान् है, उसकी महिमा हमारे सामने है, द्युलोक के समान विस्तृत बल उस न्यायकारी के लिए ही है ॥२॥

१६७—कुसीदी । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सन्मुख (**तु**) शीघ्र (**नः**) हमारे (**इन्द्र**) हे राजन् ! (**क्षुमन्तम्**) अन्नादियुक्त (**चित्रम्**) पूज्य (**ग्राभम्**) ग्रहण के योग्य (**संगृभाय**) ले (**महाहस्ती**) प्रलम्बबाहु (**दक्षिणेन**) दाहिने हाथ से ॥३॥

भावार्थ—हे लम्बे बाहुओं वाले राजन् ! तू अन्नादि युक्त प्रशंसाओं के योग्य और ग्रहण के योग्य धन को हम देने के लिये दाहिने हाथ में ग्रहण कर ॥३॥

१६८—*प्रियमेधः । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि प्र गोपतिङ्गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

पदार्थ—(**अभि**) सन्मुख (**प्र**) उत्तम (**गोपतिम्**) वेदों के स्वामी (**गिरा**) वेदमन्त्रों से (**इन्द्रम्**) ईश्वर की (**अर्च**) स्तुति कर (**यथाविदे**) उसके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिये (**सूनुम्**) प्रेरणा करने वाला (**सत्यस्य**) सत्य का (**सत्पतिम्**) सज्जनों के पालक ॥४॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! यथावत् जानने के लिए वेदों और सज्जनों के पालक सत्य के प्रेरक ईश्वर की स्तुति कर ॥४॥

१६९—*वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥५॥

पदार्थ—(**कया**) सुखमयी (**नः**) हमारी (**चित्रः**) अद्भुत (**आभुवत**) होता है (**ऊती**) रक्षा के द्वारा (**सदावृधः**) सदा उन्नति करने वाला (**सखा**) मित्र (**कया**) सुखमयी (**शचिष्ठया**) बुद्धि से (**वृता**) युक्त हुआ ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अद्भुत और सदा उन्नति देने वाला तू सुखमयी रक्षा और बुद्धि से युक्त हो कर हमारा सखा होता है ॥५॥

१७०—*श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३ १२

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥६॥

पदार्थ—(**त्यम्**) उस (**वः**) तुम लोगों के (**सत्रासाहम्**) सत्य से विजय करने वाले (**विश्वासु**) सब (**गीर्षु**) वाणियों में (**आयतम्**) व्याप्त (**आच्यावयसि**) स्वीकार करो (**ऊतये**) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सदा सत्य से विजय करने वाले तुम सबकी वाणियों में व्याप्त परमेश्वर को रक्षा के लिए स्वीकार करो ॥६॥

१७१—*मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

३ २ ३१ २

सनिं मेधामयासिषम् ॥७॥

पदार्थ—(**सदसस्पतिम्**) लोकों के स्वामी (**अद्भुतम्**) अद्भुत (**प्रियम्**) प्रिय (**इन्द्रस्य**) जीव के (**काम्यम्**) चाहने योग्य से (**सनिम्**) भक्तिमयी (**मेधाम्**) बुद्धि की (**अयासिषम्**) याचना करता हूँ ॥७॥

भावार्थ—मैं लोकों के स्वामी अद्भुत प्रिय जीव के कमनीय प्रभु परमेश्वर से भक्तिमयी बुद्धि की याचना करता हूँ ॥७॥

१७२—*वामदेवः । गायत्री । इन्द्र ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २

ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।

३ १ ३ ३ १ २

उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**ते**) तेरे (**पन्थाः**) मार्ग (**अधोदिवः**) द्युलोक के नीचे (**भुवः**) पृथ्वी के (**येभिः**) जिनसे (**अश्वम्**) वायु को (**ऐरयः**) प्रेरित करता है (**नः**) हमारी (**उत**) ही (**श्रोषन्तु**) सुनते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे उन मार्गों के द्वारा जिनसे कि तू वायु को प्रेरणा देता है, भूमिस्थ मनुष्य लोग भी शब्द-सन्तान को सुनते हैं ॥८॥

१७३—*श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ॥९॥

पदार्थ—(**भद्रंभद्रं**) कल्याण ही करने वाले (**नः**) हमको (**आभर**) दे (**इषम्**) अन्न और (**ऊर्जम्**) बल को (**शतक्रतो**) हे अनन्त ज्ञानवाले (**यत्**) जिससे (**इन्द्र**) हे ईश्वर (**मृडयासि**) सुखी करते हो (**नः**) हम लोगों को ॥९॥

भावार्थ—हे अनन्त ज्ञानवाले ईश्वर ! तुम जिससे हम लोगों को सुखी करते हो, एक मात्र कल्याण करने वाले ! अन्न और बल को हमें दो ॥९॥

१७४—*बिन्दुः । गायत्री । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उत स्वराजो अश्विना ॥१०॥

पदार्थ—(**अस्ति**) है (**सोमः**) संसार (**अयम्**) यह (**सुतः**) उत्पन्न (**पिबन्ति**) इसका उपभोग करें (**मरुतः**) याज्ञिक (**स्वराजः**) प्रकाशमान (**अश्विना**) विद्वान् और उपदेशक ॥१०॥

भावार्थ—हे विद्वन् जीव ! यह संसार उत्पन्न किया हुआ है, प्रकाशात्मक याज्ञिक तथा विद्वान् और उपदेशक सभी इस का उपभोग करें ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

१७५—*इन्द्रमातरो देवजामयः । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(**ईङ्खयन्तीः**) समझ से युक्त गति करनेवाला (**अपस्युवः**) कर्म की चाहवाली बुद्धियें (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**जातम्**) निमित्त कारण (**उपासते**) उपासना करती हैं (**वन्वानासः**) चाहनेवाले लोग (**सुवीर्यम्**) उत्तम बल को ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान से युक्त कर्म की चाह करने वाली बुद्धियाँ तथा उत्तम बल को चाहने वाले लोग निमित्त कारण परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥१॥

१७६—*गोधा । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २

नकि देवा इनीमसि नक्यायोपयामसि । मन्त्रश्रुत्यञ्चरामसि ॥२॥

पदार्थ—(**नकि**) न किसी को (**देवाः**) हे विद्वान् पुरुषो ! (**इनिमसि**) हिंसा करते हैं (**नकि**) न किसी को (**आयोपयामसि**) पथभ्रष्ट ही करते हैं (**मंत्रश्रुत्यम्**) वेदानुकूल (**चरामसि**) आचरण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! हम न तो किसी की हिंसा करते हैं और न किसी को पथभ्रष्ट ही करते हैं, अपितु जैसा वेद कहता है उसी के अनुसार आचरण करते हैं ॥२॥

१७७—*दध्यङ्ङाथर्वणः । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तुहि देवं सवितारम् ॥३॥

पदार्थ—(**दोषा**) रात्रि (**आगात्**) आवे तो (**बृहद्गाय**) सामगायक (**द्युमद्गामन्**) प्रकाशमयीबुद्धिवाले (**आथर्वण**) हे अथर्ववेद के जानने वाले (**स्तुहि**) स्तुति कर (**देवम्**) देव की (**सवितारम्**) सब के उत्पादक ॥३॥

भावार्थ—हे सामगायक प्रकाशमय ज्ञानवाले अथर्ववेदज्ञ ! जब रात्रि आवे तो अर्थात् सन्ध्या समय में तुम सर्वस्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करो ॥३॥

१७८—*प्रस्कण्वः । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३२

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

३ २ २ ३ २

स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४॥

पदार्थ—(**एषा उ**) यह (**उषा**) उषा (**अपूर्व्या**) अपूर्व (**व्युच्छति**) अन्धकार को दूर कर रही है (**प्रिया**) प्यारी (**दिवः**) सूर्य की (**स्तुषे**) स्तुति करो (**वाम्**) तुम दोनों (**अश्विनौ**) हे अध्यापक और उपदेशक ॥४॥

भावार्थ—सूर्य की प्यारी अद्भुत यह उषा अन्धकार का नाश कर रही है, हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम परमेश्वर की स्तुति करो ॥४॥

१७९—*गोतमः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १२ ३ १ २र

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥५॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) सूर्य (**दधीचः**) वायु के (**अस्थभिः**) चञ्चलता से (**वृत्राणि**) मेघों को (**अप्रतिष्कुतः**) जिसके सम्मुख कोई नहीं ठहर सके (**जघान**) छिन्न-भिन्न करता है (**नवतीर्नव**) यथा नव संख्या ९० को मारती हैं ॥५॥

भावार्थ—सूर्य जिसके सामने कोई नहीं ठहर सकता, वह सूर्य वायु मेघों को इस प्रकार छिन्न-भिन्न करता है जैसे नव संख्या ९० को करती है ॥५॥

१८०—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ ३ १ १   २र ३ १ २   ३ १ २
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
२ २ २ ३ १   २र
महां अभिष्टिरोजसा ॥६॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**इहि**) प्राप्त हो (**मत्सि**) आनन्द देता है (**अन्धसः**) अन्न के (**विश्वेभिः**) सारे (**सोमपर्वभिः**) आनन्ददायक पदार्थों के अङ्गों के साथ (**महान्**) बहुत बड़ा (**अभिष्टिः**) अभीष्टज्ञान के दाता (**ओजसा**) बल से ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हमें प्राप्त हो, तू महान् और हमारे सब अभीष्ट फलों का दाता है, तू अन्नादि सब पदार्थों के सारे सामानों से हमें आनन्द देता है ॥६॥

१८१—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१   २र   ३ २ ३ २ ३ १ २
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।
२ २ ३ १ २ ३ १ २
महान्महीभिरूतिभिः ॥७॥

पदार्थ—(**आ**) भलीप्रकार (**तू**) जल्दी (**नः**) हमारी ओर (**इन्द्र**) हे ईश्वर (**वृत्रहन्**) हे पापनाशक (**अस्माकम्**) हमारे (**अर्धम्**) समीप (**आगहि**) प्राप्त हो (**महान्**) तू महान् है (**महीभिः**) महान् (**ऊतिभिः**) रक्षा के साथ ॥७॥

भावार्थ—हे पापनाशक परमेश्वर ! महान् तु हमें प्राप्त हो, महान् रक्षाओं से हमारी रक्षा कर ! ॥७॥

१८२—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २   ३२उ   ३ १ २
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८॥

पदार्थ—(**ओजः**) बल (**तत्**) वह (**अस्य**) इसका (**यत्**) जिससे (**समवर्तयत्**) प्रवृत्त करता और समेटता है, (**इन्द्रः**) ईश्वर (**चर्मेव**) चमड़े के समान (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवीलोक को ॥८॥

भावार्थ—ईश्वर का वह बल प्रत्यक्ष चमक रहा है, जिससे वह चर्मवत् द्यु और पृथ्वी को फैलाता तथा समेटता है ॥८॥

१८३—शुनः शेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २   २ ३ १ २
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९॥

पदार्थ—(**अयम्**) यह जीव (**उ**) पादपूरक (**ते**) तेरा (**समतसि**) निरन्तर प्राप्त होता है (**कपोतः**) कबूतर के (**इव**) समान (**गर्भधिम्**) कबूतरी के समान प्रकृति को (**वचः**) शिक्षावचन (**तत्**) उस (**चित्**) ही (**न**) नहीं (**ओहसे**) सुनता है ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम्हारी प्रजा यह जीव गर्भधारण करने वाली कबूतरी को कबूतर के समान, भोगों को गर्भ में धारण करने वाली प्रकृति को वार वार प्राप्त होता है, इस कारण शिक्षावचनों को नहीं सुनता ॥९॥

१८४—उलः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ॥
२ ३ १ २
प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥

पदार्थ—(**वातः**) वायु (**आवातु**) पहुंचावें (**भेषजम्**) सेवन योग्य औषध (**शम्भु**) इस समय सुख देने वाला (**मयोभु**) कालान्तर में शान्तिदायक (**नः**) हमारे (**हृदे**) फेफड़े के लिये (**प्र**) उत्तम (**नः**) हमारी (**आयूंषि**) आयु को (**तारिषत्**) बढ़ावे ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! वायु हमारे फेफड़े के लिये सुख तथा शान्ति देने वाली ओषधि बने । वह हमारी आयु को भी बढ़ावे ॥१०॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

१८५—कण्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

१   २र ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ २
यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
२ ३   १ २   ३ १२
न किः स दभ्यते जनः ॥१॥

पदार्थ—(**यम्**) जिसकी (**रक्षन्ति**) रक्षा करते हैं । (**प्रचेतसः**) उत्तम ज्ञानी पुरुष (**वरुणः**) हितैषी (**मित्रः**) परमेश्वर (**अर्यमा**) न्यायकारी राजा (**नकिः**) किसी से नहीं (**सः**) वह (**दभ्यते**) मारा जा सकता (**जनः**) मनुष्य ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हितैषी, परमेश्वर, न्यायकारी राजा और उत्तम ज्ञानी पुरुष जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, कोई उसे हानि नहीं पहुंचा सकता है ।१।

१८६—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २उ   ३ १ २ ३ २ २ १ २र ३ २   ३   २ ३ १ २
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥२॥

पदार्थ—(**गव्या उ**) इन्द्रियों की इच्छा से (**सु**) सुन्दर (**नः**) हम (**यथा**) जैसे (**पुरा**) पहिले (**अश्वया**) मन की इच्छा से (**उत**) और (**रथया**) शरीर की इच्छा से (**वरिवस्या**) दे (**महोनाम्**) महान् धन की इच्छा से ॥ २ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू पहले के समान ही अब उत्तम इन्द्रिय, मन, शरीर तथा महान् धनों की प्राप्ति की इच्छा से परमेश्वर की प्रार्थना कर ॥ २ ॥

१८७—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥

पदार्थ—(**इमाः**) ये (**ते**) तेरी (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**पृश्नयः**) किरणें (**घृतम्**) जल को (**दुहते**) बरसाती हैं (**आशिरम्**) दही के समान स्वच्छ (**एनाम्**) इस भूमि को (**ऋतस्य**) जल से (**पिप्युषीः**) बढ़ाने वाली ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेरी रची हुई सूर्य की किरणें दही के समान स्वच्छ जल को बरसाती हैं । ये किरणें जल से पृथ्वी की फसल को पुष्ट कर बढ़ाती हैं ।३।

१८८—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २   ३ १ २र   १ २र ३ १ २
अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभुवः ॥४॥

पदार्थ—(**अया**) ज्ञानयुक्त (**धिया**) कर्म (**गव्यया**) वेदवाणी सम्बन्धी (**पुरुनामन्**) हे बहुत नामवाले (**पुरुष्टुत**) सर्वोपास्य (**यत्**) जिस कारण (**सोमे सोमे**) सारे उत्पन्न पदार्थ में (**आभुवः**) विद्यमान ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे अनेकों नाम वाले और सर्वोपास्य परमेश्वर ! तू वेदज्ञान से युक्त सृष्टिकर्म के साथ सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान है, अतः उपास्य है ॥४॥

१८९—मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥

पदार्थ—(**पावका**) पवित्र करने वाली (**नः**) हमारी (**सरस्वती**) वाणी (**वाजेभिः**) अन्नों से युक्त (**वाजिनीवती**) बलवती हो । (**यज्ञम्**) परोपकार की (**वष्टु**) कामना (उपदेश) करने वाली हो (**धियावसुः**) बुद्धि से सारे संसार को वश में करने वाली ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हमारी वेदवाणी हृदय को पवित्र करने वाली, अन्न से बलवती और अपनी योग्यता से संसार को वश में करने वाली हो । वह परोपकार का उपदेश करे ॥ ५ ॥

१९०—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १   २र ३ २उ ३   १ २   २ ३ २ ३ १ २
क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्या भरत् ॥६॥

पदार्थ—(**कः**) कौन (**इमम्**) इस (**नाहुषीषु**) कर्म-बन्धन में बन्धी हुई मनुष्य प्रजाओं में (**इन्द्रं**) जीवको (**सोमस्य**) भोग्य पदार्थ से (**तर्पयात्**) तृप्त करता है (**स**) वह (**नः**) हमें (**वसूनि**) धन से (**आभरत्**) पूर्ण करता है ॥६॥

भावार्थ—प्रश्न—कर्म-बन्धन में बन्धी हुई मनुष्य प्रजाओं में वर्त्तमान जीव को भोग्य पदार्थ से कौन तृप्त करता है ?

उत्तर—वह परमेश्वर जो कि हमें धनधान्य से पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

१९१—इरम्बिठिः काण्वः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २   ३ २उ   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २   २उ ३ १   २ ३ १ २
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥

पदार्थ—(**आयाहि**) प्राप्त हो (**सुषुम**) धारण करते हैं (**हि**) निश्चय ही (**ते**) तेरी कृपा से (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**सोमम्**) ज्ञान (**पिबा**) रक्षा कर (**इमम्**) इसको (**आ**) सब प्रकार से (**इदम्**) यह (**बर्हिः**) हृदयाकाश (**सदः**) विराजमान होवे (**मम**) मेरा ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू प्राप्त हो । हम तेरे इस ज्ञान को धारण करते हैं । तू रक्षा कर । हे प्रभो ! तू हमारे हृदयाकाश में स्थित हो ॥ ७ ॥

१९२—सत्यधृतिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र   ३ २ ३ १ २ ३ २   ३   २ ३ १२
महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥८॥

पदार्थ—(महि) महान् (त्रीणाम्) तीनों के (अवः) रक्षण (अस्तु) हो (द्युक्षम्) तेजस्वी (मित्रस्य) मित्रका (अर्यम्णः) न्यायकारी का (दुराधर्षम्) किसी से नहीं दबने वाले (वरुणस्य) हितैषी का ।। ८ ।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! मित्र, न्यायकारी और हितैषी, इन तीनों की रक्षा हमारे लिये तेजस्वी, किसी से न दबने वाली और महान् हो ।। ८ ।।

१९३—*वत्सः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ १ २
त्वावतः पुरुवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ।।९।।

पदार्थ—(त्वावतः) तेरे द्वारा रक्षित (पुरुवसो) हे समस्त सम्पदाओं के स्वामिन् (वयम्) हम (इन्द्रः) हे परमेश्वर ! (प्रणेतः) हे उपास्य (स्मसि) हैं (स्थातः) हे अधिष्ठाता (हरिणाम्) मनुष्यों के ।। ९ ।।

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामिन् ! उपास्य तथा सर्व मनुष्यों के अधिष्ठाता परमेश्वर ! हम तेरे द्वारा रक्षित हैं ।। ९ ।।

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

१९४—*प्रगाथः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
उत्त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ।।१।।

पदार्थ—(उत्) पादपूरक (त्वा) तुझे (मदन्तु) प्रसन्न करें (सोमाः) उत्तम विद्वान् जन (कृणुष्व) दे (राधः) सिद्धि (अद्रिवः) हे मेघादि के स्वामी (ब्रह्मद्विषः) वेदविरोधियों को (द्वेषभाव को) (अवजहि) दूर भगा ।। १ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम विद्वान् जन स्तुतियों से तुझे प्रसन्न करें । हे मेघादि के स्वामी ! तू उन्हें सिद्धि दे । हे भगवन् ! वेद-विरोधियों के विरोधभाव को दूर कर ।। १ ।।

१९५—*विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २र
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ।।२।।

पदार्थ—(गिर्वणः) हे स्तुत्य (पाहि) रक्षा कर (नः) हमारे (सुतं) सम्पादित ज्ञान की (मधोः) विज्ञान के (धाराभिः) धाराओं से (अज्यसे) प्राप्त किया जाता है (हे इन्द्र) ! हे परमेश्वर । (त्वादातम्) तेरे द्वारा दिया हुआ (इत्) ही (यशः) यश ।। २ ।।

भावार्थ—हे स्तुत्य परमेश्वर, हमारे सम्पादित ज्ञान की रक्षा कर । तू ज्ञान की धाराओं से प्राप्त किया जाता है । हे परमेश्वर ! हमारा यश तुम्हारा ही दिया हुआ है ।। २ ।।

१९६—*वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ।।३।।

पदार्थ—(सदा) सर्वदा (सब समय में) (वः) तुम लोगों को (इन्द्रः) ईश्वर (चर्कृषत्) करता है (आ) सब प्रकार से (उप) समीप (नु) शीघ्र (सपर्यन्) प्रेम करता हुआ (नः) हमारा (देवः) देव है (वृतः) ध्यान किया हुआ (शूरः) तेजस्वरूप (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ।। ३ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर प्रेम से, तुम लोगों को सदा, अपने समीप ही देखता है । वह तेजस्वरूप तथा ध्यान करने योग्य एवं ऐश्वर्यवान् है, वह हमारा देव है ।। ३ ।।

१९७—*श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ।।४।।

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तेरी शरण में (विशन्तु) पहुँचे (इन्दवः) उपासक जन (समुद्रम्) समुद्र में (इव) समान (सिन्धवः) छोटी नदियों के (न) नहीं (त्वाम्) तुमसे (इन्द्र) हे ईश्वर ! (अतिरिच्यते) कोई बढ़ कर है ।। ४ ।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे छोटी नदियां समुद्र में पहुँचती हैं, ऐसे ही उपासना करने वाले तेरी शरण में पहुँचें । हे ईश्वर ! (इस संसार में) तुम से बढ़कर कोई नहीं है ।। ४ ।।

१९८—*मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ।।५।।

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर की (इत्) ही (गाथिनः) उद्गाता (बृहत्) बृहत् साम से (इन्द्रम्) ईश्वर की (अर्केभिः) ऋचाओं से (अर्किणः) ऋग्वेद के जानने वाले (इन्द्रं) ईश्वर की (वाणीः) यजुर्वेद के जानने वाले (अनूषत) स्तुति करते हैं ।। ५ ।।

भावार्थ—साम के गाने वाले उद्गाता लोग, बृहत्साम से ईश्वर ही की स्तुति करते हैं । ऋग्वेद की ऋचाओं से तथा यजुर्वेद के मन्त्रों से भी ईश्वर ही के गुण गाते हैं ।। ५ ।।

१९९—*श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ।।६।।

पदार्थ—(इन्द्रः) ईश्वर (इषे) अन्न को (ददातु) देवे (नः) हमें (ऋभुक्षणम्) महान् (ऋभुम्) मेधावी पुत्र (रयिम्) अन्य सम्पत्तियों को (वाजी) बलवान् (ददातु) देवें (वाजिनम्) बलवान् ।।१।।

भावार्थ—हे बलवान् ईश्वर ! हमें अन्न, अन्य सम्पत्ति और शक्तिशाली बुद्धिमान् पुत्र भी देवें ।।६।।

२००—*गृत्समदः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ २३ १ २र २उ ३ १ २र
इन्द्रो अंग महद्भयमभीषदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ।।७।।

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (अङ्ग) हे [मनुष्य] (महत्) महान् (भयम्) भय को (अभीषत्) डरा देता है (अपचुच्यवत्) दूर करता है (सः) वह (हि) क्योंकि (स्थिरः) स्थिर (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा ।।७।।

भावार्थ—हे बलवान् ईश्वर ! परमेश्वर महान् भय को भी भयभीत करता है और दूर करता है, क्योंकि वह नित्य और सर्वद्रष्टा है ।।७।।

२०१—*भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।*

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ ३ २उ ३ १ २
इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । गावो वत्सन्न धेनवः ।।८।।

पदार्थ—(इमाः) ये (उ) ही (त्वा) तुझको (सुते सुते) प्रत्येक उत्तम भावना के समय (नक्षन्ते) प्राप्त करती हैं (गिर्वणः) हे उपास्य देव ! (गिरः) स्तुतियां (गावः) गायें (वत्सम्) बछड़े को (न) जैसे (धेनवः) दूध देने वाली ।।८।।

भावार्थ—हे उपास्य देव ईश्वर ! जैसे दूध देने वाली गायें अपने बछड़े के समीप पहुँचती हैं, ऐसे ही ये हमारी स्तुतियाँ प्रत्येक उत्तम भावना के समय में तेरे ही समीप पहुँचती हैं ।।८ ।।

२०२—*भरद्वाजः । गायत्री । इन्द्रः ।*

२ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २
इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ।।९।।

पदार्थ—(इन्द्रा) ईश्वर का (नु) सच्चा (पूषणा) पालन-पोषण कर्त्ता (वयम्) हम (सख्याय) मैत्री के लिये (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये तथा पालन के लिये भी (हुवेम) आह्वान करते हैं (वाजसातये) उत्तम सम्पत्ति के लिये ।। ९ ।।

भावार्थ—हम पालन पोषण करने वाले ईश्वर को अपनी मैत्री, कल्याण और उत्तम सम्पत्ति के लिये पुकारते हैं ।।९।।

२०३—*वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २र २ ३ २उ ३ २
न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न क्येवं यथा त्वम् ।।१०।।

पदार्थ—(नकि) नहीं कोई (इन्द्रः) हे ईश्वर (त्वत्) तुम से (उत्तरम्) श्रेष्ठ (न) नहीं (ज्यायः) महान् (अस्ति) है (वृत्रहन्) हे पापनाशक (नकि) कोई नहीं है (एवम्) ऐसा (यथा) जैसा (त्वम्) तू है ।।१०।।

भावार्थ—हे पापनाशक ईश्वर ! तुम से श्रेष्ठ और महान् कोई नहीं है । हे नाथ, तू जैसा है वैसा दूसरा कोई नहीं ।।१०।।

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

२०४—*त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २३ १ २
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ।।१।।

पदार्थ—(तरणिम्) तारने वाले (वः) तुम सब (जनानाम्) मनुष्यों के (त्रदम्) रक्षक (वाजस्य) अन्न के (गोमतः) गो आदि सम्पत्ति के सहित (समानम्) एक समान (प्रशंसिषम्) उत्तम स्तुति करता हूँ ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर सब को तारने वाला है । वह अन्न तथा गोधन का समान रूप से रक्षक है । मैं उसकी स्तुति करता हूँ ।।१।।

२०५—*मधुच्छन्दा । गायत्री । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषभं पतिम् ।।२।।

पदार्थ—(असृग्रम्) स्तुति करता हूँ (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) तेरी (गिरः) स्तुतियां (प्रतित्वाम्) तेरी शरण में (उदहासत) पहुँचें । (सजोषा) प्रेमसहित (वृषभम्) मनोरथ सफल करने वाले (पतिम्) सब के स्वामी ।।२।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! मैं स्तुति करता हूँ । हमारी ये प्रेमपूर्ण स्तुतियां तेरी शरण में पहुँचे । तू कामनाओं को सफल करने वाला है । तू सब का स्वामी है ।।२।।

२०६—वत्सः । गायत्री । इन्द्रः

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३॥

पदार्थ—(**सुनीथः**) प्रशंसनीय (**घा**) पादपूरक (**स**) वह (**मर्त्यः**) विद्वान्‌जन (**यम्**) जिसको (**मरुतः**) मनुष्य (**यम्**) जिसको (**अर्यमा**) परमेश्वर (**मित्रः**) मित्र (**पान्तु**) रक्षा करते हैं, (**अद्रुहः**) द्रोहरहित ॥३॥

भावार्थ—जिसकी परमेश्वर विद्वान् और द्रोह न करने वाले मित्र रक्षा करते हैं, वह मनुष्य प्रशंसनीय है ॥३॥

२०७—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**वीडौ**) बल में (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**यत्**) जो (**स्थिरे**) भूगर्भ में (**यत्**) जो (**पर्शाने**) पर्वत आदि में (**पराभृतम्**) रखा गया है (**वसु**) सम्पत्ति (**स्पार्हम्**) चाहने योग्य (**तत्**) उस को (**आभर**) दे ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमें वह बहुमूल्य सम्पत्ति दे जो बल में तथा पर्वतों के अन्दर विद्यमान है और जिसकी सब कामना करते हैं ॥४॥

२०८—सुकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्द्धं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥५॥

पदार्थ—(**श्रुतम्**) विख्यात (**वः**) तुमको (**वृत्रहन्तमम्**) शत्रुओं का नाशक, (**प्रशर्द्धं**) उत्तम बल (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**आशिषे**) चाहता हूँ (**राधसे**) धन की प्राप्ति के लिये (**महे**) महान् ॥५॥

भावार्थ—हे लोगो ! तुम मनुष्यों के महान् धन की प्राप्ति के लिए मैं, शत्रु-नाशक उत्तम बल तुम्हें प्राप्त हो, ऐसा चाहता हूँ ॥५॥

२०९—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरं शक्र परेमणि ॥६॥

पदार्थ—(**अरम्**) पर्याप्त (**ते**) वे (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**श्रवसे**) यश का गान करने के लिये (**गमेम**) उपस्थित होते हैं (**शूर**) हे बलवान् (**त्वावतः**) तेरे चाहने वाले (**अरम्**) पर्याप्त (**शक्र**) हे शक्तिमन् (**परेमणि**) समाधि की सिद्धि में ॥६॥

भावार्थ—हे सर्व शक्तिमन्, बलवान् परमेश्वर ! तुझको चाहने वाले हम लोग तुम्हारे यशोगान के लिये भली प्रकार उपस्थित होते हैं समाधि में भी उपस्थित होते हैं ॥ ६ ॥

२१०—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २ ३ १ २
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७॥

पदार्थ—(**धानावन्तम्**) भूने हुए जवों वाले (**करम्भिणम्**) भूने जवके सत्तू में घी देकर उससे यज्ञ करने वाले (**अपूपवन्तम्**) गेहूँ के आटे से बने हुए हविष्ट से यज्ञ करने वाले को और (**उक्थिनम्**) स्तुति करने वाले को भी (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**प्रातः**) प्रातःकाल (**जुषस्व**) प्रेम का पात्र बनावे (**नः**) हम लोगों को ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! प्रतिदिन उत्तम पदार्थों से यज्ञ करने वाले मनुष्य तेरे प्रेम के पात्र हों ॥ ७ ॥

२११—गोषूक्ती चाश्वसूक्ती च । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र ३ १ ३
अपां फेनेन नमुचेः शिरः इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥८॥

पदार्थ—(**अपां**) कर्मयोग के (**फेनेन**) विस्तार के द्वारा (**नमुचेः**) काम के (**शिरः**) मुख्यता को (**इन्द्र**) हे जीव ! (**उदवर्तयः**) तूने छिन्न भिन्न कर दिया है (**विश्वाः**) सारी (**यत्**) जब (**अजयः**) जीत लिए हो (**स्पृधः**) स्पर्धा करने वाली चित्त की वृत्तियों को ॥८॥

भावार्थ— हे जीव ! जब तुम कर्मयोग के साधन के द्वारा, स्पर्धा करने वाली सारी चित्त की वृत्तियों को वश में कर लेते हो, तो मन के स्वयं वश में हो जाने पर काम को भी वश में कर लेते हो ॥८॥

२१२—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९॥

पदार्थ—(**इमे**) ये (**ते**) तेरे लिये (**इन्द्र**) हे जीव ! (**सोमाः**) संसारी भोग्य पदार्थ (**सुतासः**) तैयार हैं (**ये च**) और जो (**सोत्वा**) तैयार होने वाले हैं (**तेषाम्**) उन्हीं से (**मत्स्व**) प्रसन्न हो (**प्रभूवसो**) हे पर्याप्त सम्पत्ति वाले ॥८॥

भावार्थ—हे पर्याप्त सम्पत्ति वाले जीवात्मन् ! तेरे लिये ये भोग्य पदार्थ तैयार हैं और जो तैयार होने वाले हैं, उन सब से तू प्रसन्न हो ॥९॥

२१३—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥

पदार्थ—(**तुभ्यं**) तेरी उपासना के लिये (**सुतासः**) तैयार है (**सोमाः**) विद्वान् (**स्तीर्णम्**) बिछाया हुआ है (**बर्हिः**) आसन (**विभावसो**) हे प्रकाशस्वरूप ! (**स्तोतृभ्यः**) भक्तों को (**मृडय**) सुखी कर (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! ॥१०॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तेरी उपासना के लिये भक्त जन उपस्थित हैं, आसन बिछा हुआ है, तू स्तुति करने वालों को सुखी कर ! ॥१०॥

卐 **दशमी दशती समाप्त** 卐

२१४—शुनः शेपः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयंतः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (**वः**) तुम लोगों में (**इन्द्रम्**) महात्मा (**कृविं यथा**) खेत को जैसे (**वाजयन्तः**) अन्न चाहने वाले (**शतक्रतुम्**) बहुत कर्म करने वाले (**मंहिष्ठम्**) अत्यन्त महान् (**सिञ्चे**) पुष्ट करता हूँ (**इन्दुभिः**) जलों से ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों में अनेक प्रकार के कर्म करने वाले महान् आत्मा को ज्ञान से पुष्ट करता हूँ जैसे अन्न चाहने वाले किसान जलसे खेत सींचते हैं ॥१॥

२१५—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥२॥

पदार्थ—(**अतःचित्**) इसी लिए (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**नः**) हम लोगों को (**उपायाहि**) प्राप्त होवे, (**शतवाजया**) सैकड़ों बल वाले (**इषा**) विज्ञान के साथ (**सहस्रवाजया**) हजारों प्रकार के बलवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सैकड़ों अथवा सहस्रों प्रकार के धन देने वाले विज्ञान के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

२१६—त्रिशोकः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्विमातरम् ।
२ ३ १ २र
क उग्राः के हा शृण्विरे ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**बुन्दम्**) शस्त्र [बन्दूक को] (**वृत्रहा**) योद्धा (**ददे**) उठाता है (**जातः**) शस्त्रविद्या में निपुण (**पृच्छात्**) पूछे (**वि**) विशेषरूप से (**मातरम्**) माता से [मातृभूमि की प्रजा से] (**के**) कौन (**उग्राः**) द्रोही (**के**) कौन (**हा**) प्रसिद्ध (**शृण्विरे**) सुने जाते हैं ॥३॥

भावार्थ—शस्त्र विद्या में चतुर योद्धा शस्त्र हाथ में लेकर माता (मातृभूमि की प्रजा) से पूछे कि कौन कौन देशद्रोही सुने जाते हैं ॥३॥

२१७—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३१ २ ३१२ ३ १ २
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**बृबदुक्थम्**) प्रशंसा के योग्य (**हवामहे**) आह्वान करते हैं (**सृप्रकरस्नम्**) लम्बे बाहुओं वाले (**ऊतये**) आत्म रक्षा के लिए (**साधः**) संग्राम का साधन (**कृण्वन्तम्**) तैयार करते जाने वाले (**अवसे**) प्रजा की रक्षा के लिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे वीर ! आप प्रशंसा के योग्य विशाल भुजाओं वाले और संग्राम के साधन तैयार करने वाले हैं । हम आपको अपने पालन और प्रजा की रक्षा के लिए पुकारते हैं ॥ ४॥

२१८—गोतमः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५॥

पदार्थ—(**ऋजुः**) सरल (**नीती**) नीति से (**नः**) हमें (**वरुणः**) राजा (**मित्रः**) मित्र (**नयति**) रास्ते पर चलाता है (**विद्वान्**) विद्वान् (**अर्यमा**) परमेश्वर (**देवैः**) विद्वानों के द्वारा (**सजोषाः**) प्रीतियुक्त ॥५॥

भावार्थ—परमेश्वर, प्रीतियुक्त विद्वान्, मित्र और राजा विद्वानों द्वारा सरल रीति से हमें रास्ते पर ले चलते हैं ।।५।।

२१९—ब्रह्मातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वथा तनत् ।।६।।

पदार्थ—(दूरात्) दूर से (इह इव) यहां के समान (अरुणप्सुः) अरुण रूपवाला (अशिश्वितत्) प्रकाशित करता है (यत्) जब (सतः) सत्ताधारी पदार्थों को (विभानुम्) ज्ञान किरण को (विश्वथा) सब तरफ (आतनत्) फैलाता है ।।६।।

भावार्थ—जब अरुणरूपवाला सूर्य पदार्थों को प्रकाशित करता है तो दूर रहते हुए भी समीप मालूम पड़ता है, ऐसे ही परमेश्वर अज्ञानियों की अपेक्षा दूर रहते हुए भी व्यापकता से समीप वर्तमान के समान ज्ञान का प्रकाश करता है ।।६।।

२२०—जमदग्नेर्विश्वामित्रस्य वा । गायत्री । मित्रावरुणौ ।

१ २ ३ १ २र
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजांसि सुक्रतू ।। ७ ।।

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (नः) हमारे (मित्रावरुणा) परमेश्वर और विद्वान् (घृतैः) जलों से (गव्यूतिम्) दूर-दूर तक जैसे सींच देते हैं ऐसे ही (उक्षतम्) सींचें (शिक्षा दें)(मध्वा) ज्ञानवाणी से (रजांसि) लोकों (लोकों में रहने वालों) को (सुक्रतू) उत्तम बुद्धि वालो ।।७।।

भावार्थ—हे उत्तमज्ञानवाले परमेश्वर और विद्वान् ! जल से भूमि के समान ज्ञान से लोकों को सींच दो ।।७।।

२२१—प्रस्कण्वः हिरण्यस्तूपस्य वा । गायत्री । मरुतः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
३ १ २ ३ १ २र
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ।। ८ ।।

पदार्थ—(उत्) ऊपर (उ) पादपूरक (त्ये) वे (सूनवः) उत्पादक (गिरः) वाणी के (काष्ठा) दिशाओं को (यज्ञेषु) व्यापार में (अत्नत) गतिमान् करते हैं (वाश्रा) शब्द को सुनाने वाली (अभिज्ञुः) घुटने पर चलने वाले के समान (यातवे) चलने के लिए ।।८।।

भावार्थ—शब्द को सुनाने वाली वायुएं प्रत्येक दिशा में जाने के लिये अपने व्यापार में वैसे ही गतिमान हो जाती हैं जैसे बालक घुटने के बल पर चलता हुआ चारों तरफ दौड़ता है ।।८।।

२२२—मेधातिथिः । गायत्री । विष्णुः ।

३२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले ।। ९ ।।

पदार्थ—(इदम्) इस (विष्णुः) परमेश्वर ने (विचक्रमे) विविध प्रकार से रचा है (त्रेधा) तीन प्रकार से (निदधे) स्थापित किया है (पदम्) वस्तुजात को (समूढम्) छिपा हुआ है (अस्य) इसका (पांसुरे) आकाश में ।।९।।

भावार्थ—परमेश्वर ने इस जगत् को विविध प्रकार से रचा है। उसने समस्त वस्तुजात को पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यौ—इन तीनों लोकों में स्थापित किया है। इसका मुख्यपद व्यापकता आकाश में छिपी हुई है ।। ९ ।।

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

२२३—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ।।१।।

पदार्थ—(अतीहि) परित्याग कर दे (मन्युषाविणम्) क्रोध से सोमरस तैय्यार करने वाले को (सुषुवांसम्) अच्छे चलाने वाले को (उपेरय) प्रेरणा कर [काम करने को] (अस्य) इसके (रातौ) देने पर (सुतम्) सोम का (पिब) पान कर ।। १ ।।

भावार्थ—हे राजन् ! क्रोध से वस्तु तैय्यार करने वाले को परे करो। जो शान्त स्वभाव से तैय्यार करे उसे समीप रखो और उसके दिये पदार्थ को स्वीकार करो ।। १ ।।

२२४—वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २र ३ १ २
कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ।।२।।

पदार्थ—(कदु) कुछ भी (प्रचेतसे) सर्वज्ञ (महे) महान् (वचः) स्तुति (देवाय) देव के लिये (शस्यते) की जाय (तत् इत् हि) वही (अस्य) स्तुति करने वाले को (वर्धनम्) उन्नत करने वाली होती है ।। २ ।।

भावार्थ—सर्वज्ञ महान् देव ईश्वर की थोड़ी भी स्तुति की जाय, तो वही स्तुति करने वाले की उन्नति का कारण बन जाती है ।। २ ।।

२२५—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
न गायत्रं गीयमानम् ।।३।।

पदार्थ—(उक्थम्) स्तोत्र (च) और (न) नहीं (शस्यमानम्) कहे हुए (न) नहीं (अगो) अविद्वान् (रयिः) धनों का स्वामी (आ चिकेत) जानता है (न) नहीं (गायत्रम्) साम (गीयमानम्) गाए हुए ।। ३ ।।

भावार्थ—सब धनों का स्वामी परमेश्वर अविद्वान् के कहे गये स्तोत्र तथा गाये गये साम को नहीं जानता, ऐसा नहीं, अपितु जानता है ।। ३ ।।

२२६—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
हरिवांत्सुतानां सखा ।।४।।

पदार्थ—(इन्द्रः) ईश्वर (उक्थेभिः) स्तोत्रों से (मन्दिष्ठः) अत्यन्त स्तुति के योग्य है (वाजानाम्) बलों का (वाजपतिः) स्वामी है (हरिवान्) ज्योतिस्वरूप (सुतानाम्) प्राणिमात्र का (सखा) मित्र है ।। ४ ।।

भावार्थ—ईश्वर स्तोत्रों से अत्यन्त स्तुति करने के योग्य है। वह बलों का स्वामी है। वह प्रकाशस्वरूप और प्राणिमात्र का मित्र है ।। ४ ।।

२२७—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।
३ १ २ ३ १ २
महां इव युवजानिः ।।५।।

पदार्थ—(आयाहि) ला (उप) समीप (नः) हमारे (सुतम्) ज्ञान को (वाजेभिः) ज्ञानवानों द्वारा (महान्) महान् (इव) जैसे (युवजानिः) सदाचारी स्त्री वाला (मा) नहीं (हृणीथाः) लज्जित कर ।। ५ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू उसी प्रकार से हमें अपने समीप कर तथा ज्ञान वालों के द्वारा हमारे ज्ञान को लज्जित मत होने दे, जैसा कि एक सदाचारी पति अपनी पत्नी को समीप करता है तथा लज्जा का विषय नहीं बनने देता ।। ५ ।।

२२८—दुर्मित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २
कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
दीर्घं सुतं वाताप्याय ।।६।।

पदार्थ—(कदा) जब कभी (वसो) हे ऐश्वर्यशाली (स्तोत्रम् हर्यते) वेदप्रेमी के लिए (आ) सब प्रकार (अव) उपसर्ग (श्मशा) नहर (अरुधत्) रुक जावे (वाः) पानी (दीर्घम्) महान् (सुतम्) प्रजावर्ग को (वाताप्याय) जलप्रदान करने के लिये ।। ६ ।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् राजन्, जब कभी जल-वृष्टि रुक जावे तब वेदप्रेमी महान् प्रजा वर्ग को जल प्रदान करने के लिए नहर बनवाओ ।। ६ ।।

२२९—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेदं सख्यमस्तृतम् ।।७।।

पदार्थ—(ब्राह्मणात्) ब्रह्मवेत्ता के [सम्पर्क से] (राधसः) आराधना करने वाले (इन्द्र) हे जीव ! (पिब) उपभोग कर (सोमम्) सोमादि पदार्थ का (ऋतूंरनु) ऋतु के अनुसार (तव) तेरा (इदम्) यह (सख्यम्) सम्बन्ध (अस्तृतम्) चिरस्थायी ।। ७ ।।

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! तू आराधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता के सम्पर्क से ऋतुओं के अनुसार सोमादि पदार्थों का उपभोग कर ।। ७ ।।

२३०—मेधातिथिः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ।।८।।

पदार्थ—(वयम्) हम (घा) ही (ते) तेरे (अपि) भी (स्मसि) हैं (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (इन्द्र) हे ईश्वर। (गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य ! (त्वम्) तू (नः) हमें (जिन्व) तृप्त कर (सोमपाः) । हे ऐश्वर्यशाली पदार्थों के रक्षक ।। ८ ।।

भावार्थ—हे मन्त्रों से स्तुति करने योग्य ! ऐश्वर्यशाली पदार्थों के रक्षक ईश्वर ! हम भी तेरी ही स्तुति करने वाले हैं। तू हमें तृप्त कर ।। ८ ।।

२३१—विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।

१ २ ३ १ २

सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (इन्द्र) हे ईश्वर (पृक्षु) संग्रामों में (कासुचित्) सम्पूर्ण (नृम्णम्) सुख को (तनूषु) शरीरों में (धेहि) दे (नः) हमारे (सत्राजित्) जीतने वाला है (उग्र) हे ओजस्वी ! (पौंस्यम्) बल को ॥९॥

भावार्थ—सब संग्रामों के समय में हमारे शरीरों में सुख और बल दे । हे ओजस्वी ! तू सदा जीतने वाला है ॥ ९ ॥

२३२—श्रुतकक्षः । गायत्री । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१०॥

पदार्थ—(एव) ही (हि) निश्चय (असि) है (वीरयुः) वीरों को चाहने वाला (एव) ही (शूरः) शक्तिमान् (उत) और (स्थिरः) नित्य (एव) ही (ते) तेरा (राध्यम्) आराधना के योग्य (मनः) मननशील ज्ञान है ।१०।

भावार्थ—हे ईश्वर ! वीर पुरुष तेरे प्यारे होते हैं । तू शक्तिमान् और नित्य है । तेरा ज्ञान चिन्तन करने के योग्य है ॥ १० ॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

तृतीयोऽध्यायः

२३३—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (त्वा) तुमको (शूर) हे शक्तिमान् ! (नोनुमः) बारबार नमस्कार करते हैं (अदुग्धाः) बिना दोही गई (इव) समान (धेनवः) गायों के (ईशानम्) स्वामी (अस्य) बस (जगतः) जङ्गम संसार का (स्वर्दृशम्) सूर्य के समान सब का द्रष्टा (ईशानम्) स्वामी (इन्द्र) हे ईश्वर ! (तस्थुषः) स्थावर संसार का ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शक्तिमन् ईश्वर ! जैसे बिना दोही हुई गायों का थन दूध से भरपूर रहता है, ऐसे ही प्रेम से भरपूर हृदय से हम चराचर संसार के स्वामी आपको बारबार नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

२३४—भरद्वाजः, शंयुर्वा भरद्वाजः । बृहती । इन्द्रः ।

१ १र ३ १ २र ३ १ २

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥२॥

पदार्थ—(त्वाम्) तेरी (इत्) ही (हवामहे) पुकार करते हैं (सातौ) प्राप्ति के निमित्त (वाजस्य) अन्न आदि सम्पत्ति को (कारवः) उपासक लोग ! (त्वाम्) तुमको (वृत्रेषु) उपद्रवों के अधिक होने पर (इन्द्र) हे ईश्वर ! (सत्पतिम्) तुम सब के स्वामी को (नरः) हम मनुष्य (त्वां) तेरा (काष्ठासु) संग्रामों में (अर्वतः) घुड़सवार भी ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उपासक लोग अन्न आदि सम्पत्ति को पाने के लिए तुझे ही पुकारा करते हैं । हम मनुष्य उपद्रवों के बढ़ जाने पर तुझे ही पुकारते हैं तथा संग्रामों में घुड़सवार वीर भी रक्षक रूप से तेरी ही पुकार करते हैं ॥ २ ॥

२३५—बालखिल्या । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥

पदार्थ—(अभि) सम्मुख (प्र) उत्तम (वः) तुम सब (सुराधसम्) सुन्दर सिद्धिदाता (इन्द्रम्) ईश्वर की (अर्च) स्तुति करो (यथाविदे) उसके वास्तविक ज्ञान के लिए (यः) जो (जरितृभ्यः) उपासकों को (मघवा) नित्य-दानी है (पुरुवसु) असंख्य धनों वाले (सहस्रेणेव) हजारों प्रकार से (धन) (शिक्षति) देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! तुम सब ईश्वर के वास्तविक ज्ञान के लिए उसकी स्तुति करो, जो सिद्धि देता है, जो बराबर दानी है, असंख्य धनों का स्वामी और उपासकों को हजारों प्रकार से सम्पत्ति देने वाला है ॥ ३ ॥

२३६—नोधा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४॥

पदार्थ—(तम्) उस (वः) तुम्हारे (दस्मम्) दुःख के निवारक (ऋतीषहम्) कामादि शत्रु के नाशक (वसोः) धन से (मन्दानम्) आनन्दित करने वाले (अन्धसः) अन्न आदि के (अभि) लक्षित कर (वत्सम्) बछड़े को (न) समान (स्वसरेषु) गोशाला में (धेनवः) गायों के (इन्द्रं) परमेश्वर की (गीर्भिः) वेदवाणियों से (नवामहे) नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! गोशालाओं में बछड़े को गाय के समान हम तुम्हारे दुःखनिवारक तथा अन्नादि से आनन्दित करने वाले कामादि शत्रुओं के नाशक परमेश्वर की वेद-वाणियों से स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

२३७—कलिप्रागाथः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५॥

पदार्थ—(तरोभिः) शीघ्रता के साथ (वः) तुमको (विद्वद्सुम्) सम्पत्ति के दाता (इन्द्रम्) ईश्वर का (सबाधः) बाधाओं से बाधित हो (ऊतये) रक्षा के लिए (बृहत्) गुणों से महान् (गायन्तः) सामगान करते हुए (सुतसोमे) अमृतरस तैयार किये जाने वाले (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (हुवे) पुकारते हैं (भरम्) बचाने वाले (न) जैसे (कारिणम्) उपकारी वीर को ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए कोई उपकारी वीर को पुकारे, ऐसे ही बाधाओं के आने पर अपनी रक्षा के लिये अमृत रस तैयार किये जाने वाले कल्याणकारी यज्ञ में सम्पत्तिदाता, और गुणों से महान् तेरा इस साम के द्वारा गुणगान गाते हुए शीघ्र आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

२३८—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥६॥

पदार्थ—(तरणिः) शीघ्र साधन करने वाला पुरुष (इत्) ही (सिषासति) पाना चाहता है (वाजम्) बल को (पुरन्ध्या) बुद्धि की (युजा) सहायता से (आ) सब प्रकार से (वः) तुझ (इन्द्रम्) ईश्वर को (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे जाने वाले (नमे) अपनी ओर करता हूँ (गिरा) स्तुति से (नेमिम्) चक्के को (तष्टा इव) बढ़ई के समान (सुद्रुवम्) सुन्दर लकड़ी के ॥६॥

भावार्थ—शीघ्र मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाला पुरुष ही, बुद्धि की सहायता से योग बल पाना चाहता है । इसलिये हे ईश्वर ! जैसे बढ़ई अच्छी लकड़ी के चक्के को ढालू बना लेता है ऐसे ही बहुतों से पुकारे जाने वाले स्तुति के द्वारा अपने अनुकूल स्वीकृत करता हूँ ॥६॥

२३९—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७॥

पदार्थ—(पिब) रक्षा कर (सुतस्य) शुद्ध ज्ञान को (रसिनः) सरस (मत्स्वा) प्रसन्न कर (नः) हमें (इन्द्र) हे ईश्वर (गोमतः) जितेन्द्रिय पुरुषों को (आपिः) व्यापक तू (नः) हमें (बोधि) बोध करा दे (सधमाद्ये) आनन्द-

दायक योगयज्ञ में (वृषे) उन्नति के लिये (अस्माद्) हम लोगों को (अवन्तु) रक्षा करो (ते) तेरे (धियः) ज्ञान ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे सरस शुद्ध ज्ञान की रक्षा कर । संयमी लोगों को आनन्दित कर ! तू सर्वव्यापक है । हमारी उन्नति के लिये तू हमें ऐसा ज्ञान दे जिससे हम तेरे निकट आ सकें ॥७॥

२४०—*भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।*

२र ३ १२ ३ २उ ३ १२

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

१ २ ३ १२ ३ २ ३ १२

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्ठय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८॥

पदार्थ—(**त्वम्**) तू (**हि**) निश्चय ही (**एहि**) प्राप्त हो (**चेरवे**) सदाचार के (**विदा**) दे (**भगम्**) ऐश्वर्य (**वसुत्तये**) सम्पत्ति देने के लिये (**उत्**) भी (**वावृषस्व**) वृष्टि कर (**मघवन्**) हे दान करने वाले ! (**गविष्ठये**) इन्द्रियों की अत्यन्त भलाई के लिए (**उत्**) भी (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**अश्वम्**) प्राण को (**इष्टये**) कल्याण के लिए ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू प्राप्त हो । सदाचार की रक्षा के लिए ही हमें सम्पत्ति दे । हे सब से बड़े दानी, इन्द्रियों की भलाई और हमारे कल्याण के लिए प्राण को पुष्ट कर ॥८॥

२४१—*वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २र ३२ ३१ २र ३१२

न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते ।

२ ३११२३१२ ३२उ ३ १ २ ३ १ २

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९॥

पदार्थ—(**नहि**) नहीं (**वः**) तुम में (**चरमं च न**) एक को भी (**वसिष्ठः**) मुख्यप्राण (**परिमंसते**) छोड़ कर चलता है (**अस्माकम्**) हमारे (**अद्य**) आज (**मरुतः**) सब प्राण (**सुते**) इसके सुसम्पन्न हो जाने पर (**सचा**) एक साथ (**विश्वे**) सब (**पिबन्तु**) पान करें (**कामिनः**) कामना करने वाले ॥९॥

भावार्थ—प्राण और मुख्य प्राण में से कोई एक को भी छोड़ कर नहीं चलता है बल्कि सब को साथ ले कर ही चलता है, आज कामना करने वाले हमारे सब प्राण एक साथ आनन्द रस का पान करें ॥९॥

२४२—*प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २३१ २र ३१ २३ १२

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

२३१ २ ३१२३१२ ३१ २र३१ २

इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१०॥

पदार्थ—(**माचित्**) नहीं ही (**अन्यत्**) सत्य से विपरीत (**विशंसत**) उच्चारण करो (**सखायः**) हे मित्रो ! (**मा रिषण्यत**) हिंसा मत करो (**इन्द्रमित्**) ईश्वर की ही (**स्तोता**) स्तुति करो (**वृषणम्**) कामनाओं को पूर्ण करने वाले (**सचा**) एक साथ (**सुते**) जगत् में (**मुहुः**) बार बार (**उक्था**) वेदमन्त्रों का (**च**) और (**शंसत**) पाठ करो ॥१०॥

भावार्थ—हे मित्रो ! सत्य से विपरीत मत बोलो । किसी को दुःख मत दो । कामनाओं की पूर्ति करने वाले ईश्वर की सम्मिलित स्तुति करो, तथा जगत् में वेदमन्त्रों का पाठ करो ॥१०॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

२४३—*पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३१ २र ३२ ३१२३१२

न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।

२३२३२३१२३१२३१२ ३१ २र

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

पदार्थ—(**नकिः**) कोई नहीं (**तम्**) उसका (**कर्मणा**) किसी उपाय से (**नशत्**) नाश कर सकता है (**यः**) जो (**चकार**) कर लेता है (**सदावृधम्**) सर्वदा बढ़ाने वाले (**इन्द्रं**) ईश्वर को (**न**) राजा के समान (**यज्ञैः**) अनेक प्रकार की क्रियाओं से (**विश्वगूर्तम्**) स्तुति के योग्य (**ऋभ्वसम्**) महान् (**अधृष्टम्**) सब के ऊपर विराजमान (**धृष्णुम्**) सब का अधिष्ठाता (**ओजसा**) बल से ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष सर्वदा प्रोत्साहन देने वाले स्तुति के योग्य, महान्, सब के ऊपर विराजमान, संसार के अधिष्ठाता, ईश्वर को अपना स्वामी समझ कर अनेक प्रकार के कर्मों से अपने अनुकूल करता है इस संसार में उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥१॥

२४४—*मेधातिथिः । मेध्यातिथिश्च । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३१ २ ३१ २ ३२३१ २ ३१२

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

१ २ ३ २ ३१२ ३२३१ २ ३१२३१२

सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो ईश्वर (**ऋतेचित्**) विनाशी (**अभिश्रिषः**) जोड़ने वाली औषध के (**पुरा**) पुरा पहले ही (**जत्रुभ्यः**) ग्रीवा—[गर्दन] आदि जोड़ों से (**आतृदः**) रक्त के प्रवाह के(**सन्धाता**) जोड़ने वाला है (**सन्धिम्**) जोड़ों को (**मघवा**) धनवान् (**पुरुवसुः**) घट घट वासी (**निष्कर्ता**) बनाता है (**विह्रुतम्**) विशेष रूप से टेढ़े मेढ़े को (**पुनः**) फिर ॥२॥

भावार्थ—सकल सम्पदाओं का स्वामी घट घट वासी परमेश्वर आरम्भ की अवस्था में गर्दन से लेकर रक्त पर्यन्त समस्त सन्धियों को रज्जु तथा जोड़ने के लौकिक साधन के बिना ही जोड़ता है, और फिर शीघ्रता से समस्त शरीर को निष्पन्न(निर्मित) कर देता है ।

नोट—यह मन्त्र गर्भावस्था की रचना और सृष्टयारम्भ काल की शरीर-रचना दोनों में ही घटता है ॥ २॥

२४५—*ऋषि देवता छन्दांसि पूर्ववत् ।*

१ २३२३२३२३१ २र ३१२

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

३ २३१२ ३२ ३१२३ १२

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**त्वा**) तुम को (**सहस्रम्**) सहस्र (**आ**) सब प्रकार से (**शतम्**) सैकड़ों (**रथे**) रथ में (**हिरण्यये**) प्रकाशयुक्त,[चमकीले] (**ब्रह्मयुजः**) ब्रह्मज्ञानी (**हरयः**) मनुष्य (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**केशिनः**) केशधारी (**वहन्तु**) प्राप्त करते हैं (**सोमपीतये**) आनन्द की प्राप्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सैकड़ों अथवा सहस्रों शरीररूपी रथ में युक्त अर्थात् शरीरी ब्रह्मज्ञानी केशधारी मनुष्य आनन्द प्राप्ति के लिए तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

२४६—*विश्वामित्रः । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३१२३१२ ३२ ३१२

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

२ ३२ ३१ २३ २उ ३२उ ३१२३ १२

मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार (**मन्द्रैः**) आनन्ददायक (**इन्द्र**) सूर्य (**हरिभिः**) किरणों से (**याहि**) लोक को प्राप्त होता है (**मयूररोमभिः**) मयूर के रोम के समान अनेक रंग वाले (**मा**) नहीं (**त्वा**) उसको (**केचित्**) कोई [अन्धकार] (**नियेमुः**) रोक सकते (**इत्**) ही (**न**) समान (**पाशिनः**) व्याध के (**अति**) लाङ्घकर (**धन्वा इव**) धनुष् से जिस प्रकार (**इहि**) आता है ॥४॥

भावार्थ—मोर के आनन्द देने वाले पंखों के समान अनेक रंग वाली किरणों के द्वारा सूर्य लोक को प्राप्त होता है । जैसे बंधन हाथ में लिए व्याध पक्षियों को फसा लेते हैं, ऐसे ही उसको कोई अन्धकार आदि रोक नहीं सकते । वह धनुष् से धनुषधारी के समान सब रोकने वालों को लाङ्घकर प्राप्त होता है ॥४॥

२४७—*गोतमः । बृहती । इन्द्रः ।*

२३२ २र ३१ २ ३ १२

त्वमंग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ २ ३२३१२ ३१२

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५॥

पदार्थ—(**त्वम्**) तू (**अङ्ग**) हे प्यारे ! (**प्रशंसिषः**) अनेक प्रकार से प्रशंसा करता है (**देवः**) दानी तू (**शविष्ठ**) हे शक्तिमन् ! (**मर्त्यम्**) मनुष्य की (**न**) नहीं (**त्वत्**) तुम से (**अन्यः**) दूसरा (**मघवन्**) हे ऐश्वर्य्यवन् ! (**अस्ति**) है (**मर्डिता**) सुख देने वाला (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**ब्रवीमि**) करता हूँ (**ते**) तेरी (**वचः**) स्तुति ॥५॥

भावार्थ—हे शक्तिमान् ! प्यारे प्रभो ! तू देव है । तू मनुष्य जाति की प्रशंसा करता है । हे ऐश्वर्यवान् ! तुझ से बढ़कर दूसरा कोई सुखदाता नहीं है । मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥५॥

२४८—*नृमेधपुरुषमेधौ । बृहती । इन्द्रः ।*

१२ ३१ २ ३१ २र३ १२

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

२ ३१ २ ३२उ ३ २१ २ ३१२

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**यशाः**) यशस्वी (**असि**) है (**ऋजीषी**) समृद्धिशाली (**शवसस्पतिः**) बल के रक्षक (**त्वं**) तू (**वृत्राणि**)

अज्ञान रूप अन्धकार का (हंसि) नाश करता है (अप्रतीनि) कठिनाई से जिनका सामना किया जाए (एक इत्) बिना किसी की सहायता के [अकेला] ही (पुरु) बहुत (अनुत्तः) किसी की प्रेरणा के बिना (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों को धारण करने वाला ।।६।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू यशस्वी है । तेरे में किसी कमी का अनुभव नहीं होता है और तू पूर्ण तथा बलों का स्वामी है । तू मनुष्यों को धारण करने वाला है । किसी की प्रेरणा के बिना तू अकेला ही, जिनका सामना करना कठिन होता है, ऐसे ही बहुत अज्ञान रूप अन्धकार को नष्ट करता है ।।६।।

२४९—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र ३ २
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ।।७।।

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर की (इत्) ही (देवतातये) विद्वानों की उन्नति के लिए (इन्द्रम्) ईश्वर को (प्रयति) आरम्भ करने पर (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ के (इन्द्रम्) ईश्वर को (समीके) यज्ञ की समाप्ति पर (अथवा संग्राम में)(वनिनः) भजन करने वाले हम (हवामहे) पुकारते हैं (इन्द्रम्) ईश्वर को (धनस्य) सम्पत्ति की (सातये) प्राप्ति के लिये ।।७।।

भावार्थ—भजन करने वाले हम, विद्वानों की उन्नति के लिए, कल्याणकारी यज्ञ के प्रारम्भ तथा समाप्ति पर, और सम्पत्ति को पाने के लिए भी ईश्वर को ही पुकारते हैं ।।७।।

२५०—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १२ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ।।८।।

पदार्थ—(इमाः) ये (उ) तरफ (त्वा) तेरी (पुरुवसो) हे सकल सम्पत्ति के स्वामी ! (गिरः) वाणियां (वर्धन्तु) वर्णन करें (या) जो (मम) मेरी (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् जन (अभिः) भले प्रकार (स्तोमैः) मन्त्रों से (अनूषत) स्तुति करते हैं ।।८।।

भावार्थ—हे सकल सम्पत्ति के स्वामी ईश्वर ! जो ये हमारी वाणियां हैं वे तेरा वर्णन करती हैं । अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्र, विद्वान् जन मन्त्रों से तेरी स्तुति करते हैं ।।८।।

२५१—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १ २र ३२ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।।९।।

पदार्थ—(उत्) ऊपर (उ) भी (त्ये) वे (मधुमत्तमा) अत्यन्त मधुर (गिरः) स्तुतियां (स्तोमासः) [बहिष्पवमान, आर्य स्तोत्र और मध्यन्दिन, पवमान] स्तोत्र रूप (ईरते) उच्चरित होती है (सत्राजितः) सदा विजयी (धनसा) सम्पत्तिशाली (अक्षितोतयः) अमिट रक्षा वाले (वाजयन्तः) वेगयुक्त हुए (रथा इव) रथ के समान ।।९।।

भावार्थ—जैसे सदा विजय करने वाले, सम्पत्तिशाली और भली भांति रक्षा करने वाले रथ वेग से चलते हैं, ऐसे ही ये हमारी मधुर [आर्य स्तोत्र आदि] वाणियां मुख से बाहर निकल कर चारों तरफ वेग से फैलती हैं ।।९।।

२५२—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २उ
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ।।१०।।

पदार्थ—(यथा) जैसे (गौरः) मृग (अपा) जल से (कृतम्) पूर्ण (तृष्यन्) प्यासा (एति) आता है (अव) रक्षा (ईरिणम्) बिना घास के तैयार [पानी के घाट पर] (आपित्वे) मित्रता (नः) हमारी (प्रपित्वे) हो जाने पर (तूयम्) शीघ्र (आगहि) आओ (कण्वेषु) मेधावी पुरुषों के मध्य में विराजमान हो (सु) पूर्ण रूप से (सचा) एक साथ (पिब) परमानन्द का पान कर ।।१०।।

भावार्थ—हे जीव ! जैसे प्यासा मृग पानी से पूर्ण किन्तु घासरहित तालाब के तट पर जाता है, ऐसे ही मित्रता हो जाने पर मेधावी पुरुषों के मध्य शीघ्र और मिल कर अमृत रस का पान कर ।।१०।।

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

२५३—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ।।१।।

पदार्थ—(शग्धि) दे [याचना करता हूं] (सु) पूर्ण (शचीपते) हे वेदवाणी के स्वामी ! (इन्द्र) हे ईश्वर ! (विश्वाभिः) सारी (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (भगन्न) ऐश्वर्य के समान (हि) क्योंकि (त्वा) तुमको (यशसं) यशस्वी (वसुविदम्) सम्पत्ति के दाता (अनु) पीछे [पश्चात्] (शूर) हे शक्तिमान् [पराक्रमी] (चरामसि) अनुकूल आचरण करते हैं ।।१।।

भावार्थ—हे पराक्रमी वेदवाणी के स्वामी ईश्वर ! सारी रक्षाओं के साथ मेरे मनोरथ को पूर्ण कर, क्योंकि हम यशस्वी ऐश्वर्य के समान सम्पत्तिदाता तुझ प्रभु के अनुकूल आचरण करते हैं ।।१।।

२५४—रेभः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ।।२।।

पदार्थ—(या) जिन (इन्द्र) हे ईश्वर ! (भुजः) प्राणों को (आभर) पुष्ट करता है (स्वर्वान्) सुख के स्रोत (सोता) (असुरेभ्यः) पवनों में (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को (इत्) ही (मघवन्) हे सम्पत्ति के स्वामी (अस्य) इनसे (वर्धय) बढा (ये च) और जो (त्वे) तेरी शरण में (वृक्तबर्हिषः) ज्ञानयज्ञ का आसन लगाये बैठे हैं ।।२।।

भावार्थ—हे सम्पत्ति के स्वामी ईश्वर ! तू सुख के स्रोत, पवनों से जिन प्राणों को पुष्ट करता है, उन (प्राणों) से स्तुति करने वालों को बलवान् कर तथा जो तेरी शरण में ज्ञान की प्राप्ति के लिए उपस्थित हैं उनको भी बलवान् बना ।।२।।

२५५—जमदग्निः । बृहती । आदित्याः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क२र
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ।।३।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (मित्राय) सब के मित्र (अर्यम्णे) न्यायकारी (सचथ्यम्) सम्बन्ध के योग्य (ऋतावसो) हे सत्य पर चलने वाले मनुष्य ! (वरूथ्ये) वर्णनीय (वरुणे) वरण करने योग्य विद्वान् में (छन्द्यं) वेद युक्त (स्तोत्रम्) स्तुति को (राजसु) विराजमान विद्वानों में (गायत) वर्णन कर ।। ३।।

भावार्थ—हे सत्य में स्थित मनुष्य ! तू मित्र स्वरूप न्यायकारी परमेश्वर के लिए उपयुक्त तथा वर्णनीय विद्वान् और राजाओं में सम्बन्धित वेदमयी वाणी वा स्तोत्र का गान कर ।।३।।

२५६—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।।४।।

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (पूर्वपीतये) पूर्ण रक्षा के लिए (इन्द्र) हे ईश्वर ! (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (आयवः) मनुष्य (समीचीनासः) योग्य (ऋभवः) मेधावी (समस्वरन्) स्तुति करते हैं (रुद्राः) पूर्ण ब्रह्मचारी (गृणन्त) स्तुति करते हैं (पूर्व्यम्) तुझ आदि पुरुष की ।।४।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! योग्य मनुष्य मेधावी और ब्रह्मचारी अपनी पूर्ण रक्षा के लिए तेरी स्तुति करते हैं और तुझ आदि पुरुष की प्रशंसा करते हैं ।।४।।

२५७—नृमेधपुरुमेधौ । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ।।५।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (इन्द्राय) ईश्वर के लिए (बृहते) महान् (मरुतः) हे स्तुति करने वालो ! (ब्रह्म) साम का (अर्चत) गान करो (वृत्रम्) पाप या अज्ञान को (हनति) नाश करे (वृत्रहा) अज्ञान के नाश करने वाला (शतक्रतुः) अनन्त ज्ञान वाला (वज्रेण) वज्र [शस्त्र] से (शतपर्वणा) सैकड़ों धार वाले ।।५।।

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! तुम लोग महान् ईश्वर के लिए साम का गान करो । वह अनन्त ज्ञान वाला है । पापनाशक वह परमेश्वर सैंकड़ों धार वाले वज्र के समान दुर्गुण निवारक ज्ञान से पाप या अज्ञान का नाश करता है ।।५।।

२५८—ऋषिछन्दोदेवतानि पूर्ववत् ।

२१ २र ३ १ २ ३ १ २
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ।।६।।

पदार्थ—(**बृहत्**) साम (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिए (**गायत**) गाओ (**मरुतः**) हे ऋत्विग् गण (**वृत्रहन्तमम्**) अज्ञान का अत्यन्त नाश करने वाले (**येन**) जिसके द्वारा (**ज्योतिः**) ज्ञान को (**अजनयन्**) प्रकट करते हैं (**ऋतावृधः**) सत्य अथवा यज्ञ का विस्तार करने वाले (**देवम्**) दिव्य (**देवाय**) प्रकाश स्वरूप (**जागृवि**) जागृति देने वाली ॥६॥

भावार्थ—हे ऋत्विक्-गण, तुम लोग परमात्मदेव के लिए उस बृहत् साम का गान करो जिसके द्वारा सत्य का विस्तार करने वाले विद्वान् जन दिव्य पापनाशक तथा जागृति देने वाली ज्ञान ज्योति को हृदय में जगाते हैं ॥६॥

२५९—*वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**क्रतुम्**) ज्ञान को (**नः**) हमारे लिए (**आभर**) दे (**पिता**) पिता (**पुत्रेभ्यः**) पुत्रों के लिए (**यथा**) जैसे (**शिक्ष**) शिक्षा दे (**नः**) हमें (**अस्मिन्**) इस (**पुरुहूत**) हे सर्व पूज्य (**यामनि**) जीवन यात्रा में (**जीवा**) हम जीव (**ज्योतिः**) परम ज्योति को (**अशीमहि**) प्राप्त करें ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है ऐसे ही तू हमें ज्ञान दे। हे ईश्वर ! हमें शिक्षा दे कि हम अपनी जीवनयात्रा में ज्ञान को प्राप्त करें ।७।

२६०—*रेभः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मा न इन्द्र परा वृणग्भवा न सधमाद्ये ।
१ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥८॥

पदार्थ—(**मा**) मत (**नः**) हम को (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**परावृणक्**) परित्याग करो (**भव**) सहायक हो (**सधमाद्ये**) आनन्ददायक यज्ञ में । (**त्वं**) तू (**नः**) हमारी (**ऊती**) रक्षा है (**त्वम्**) तू (**इत्**) ही (**नः**) हमारे (**आप्यम्**) प्राप्त करने योग्य है ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे आनन्ददायक यज्ञ में सहायक हो । हे ईश्वर ! तू ही हमारी रक्षा करने वाला और तू ही हमारे प्राप्त करने योग्य है । तू हमारा परित्याग मत कर ॥८॥

२६१—*मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥९॥

पदार्थ—(**वयम्**) हम (**घ**) प्रसिद्ध (**त्वा**) तुमको (**सुतावन्तः**) पुत्र आदि से सम्पन्न (**आपो न**) जल के समान (**वृक्तबर्हिषः**) आसन लगाये हुए (**पवित्रस्य**) शुद्धस्वरूप तेरे (**प्रस्रवणेषु**) नीचे स्थानों में (**वृत्रहन्**) हे पापनाशक ! (**परि**) सब प्रकार से (**स्तोतारः**) उपासक (**आसते**) उपासना करते हैं ॥९॥

भावार्थ—हे पापनाशक ! ईश्वर ! साधन से सम्पन्न तथा आसन जमाये हुए हम उपासक तेरी शरण में (उपस्थित होते हैं) नीची जगहों में जल जैसे चारों तरफ से द्वीप बनाते हैं, ऐसे ही तुझ शुद्धस्वरूप की उपासना करने वाले सब प्रकार से उपासना करते हैं ॥९॥

२६२—*भरद्वाजः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३ ३ १ २
यदिन्द्र नहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र३ १ २
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**नाहुषीषु**) मानुषी (**ओजः**) बल (**नृम्णम्**) सम्पत्ति (**च**) और (**कृष्टिषु**) प्रजाओं में (**यत्**) जो (**वा**) अथवा (**पञ्च क्षितीनाम्**) योग की पांच भूमियों के (**द्युम्नम्**) यश है (**आभर**) दे (**सत्रा**) सत्य (**विश्वानि**) सब (**पौंस्या**) पुरुषार्थ ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मनुष्य प्रजाओं में जो बल तथा धन है, या योग की पांच भूमियों में जो यश है, उनको और सच्चे पुरुषार्थों को भी हमें दे ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

२६३—*मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।*

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१॥

पदार्थ—(**सत्यम्**) सत्य है कि (**इत्था**) इस प्रकार तू (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला (**इत्**) ही (**असि**) है (**वृषजूतिः**) कामपूरक व्याप्तिवाला (**नः**) हमारे (**अविता**) रक्षक हो (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला (**हि**) ही (**उग्र**) हे ओजस्वी (**शृण्विषे**) सुने जाते हो (**परावति**) दूर में (**वृषा**) वर्षा करनेवाला (**उ**) और (**अर्वावति**) समीप में भी (**श्रुतः**) सुने जाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे ओजस्वी ! ईश्वर ! सत्य ही तू कामनाओं की वर्षा करने वाला है, कामना पूरक, व्याप्ति वाला तू हमारा रक्षक हो । तू अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला सुना जाता है । क्या दूर क्या समीप सब जगह तू कामनाओं की पूर्ति करने वाला प्रसिद्ध है ॥१॥

२६४—*रेभः । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस कारण (**शक्र**) हे शक्तिमान् (**असि**) है (**परावति**) दूर (**यत्**) जिस कारण (**अर्वावति**) समीप (**वृत्रहन्**) हे अज्ञाननाशक ! (**अतः**) इसलिए (**त्वा**) तुझ को (**गीर्भिः**) स्तुतियों से (**द्युगत्**) शीघ्र (**केशिभिः**) जटाधारियों के साथ (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**सुतावान्**) साधनसम्पन्न (**आविवासति**) पुकारता है ॥ २ ॥

भावार्थ—हे शक्तिमान् ! अज्ञाननाशक ईश्वर ! चूंकि तू अज्ञानियों से दूर तथा ज्ञानियों के समीप है, इस लिए साधनों वाले मनुष्य सन्तों के साथ वेदवाणियों द्वारा तेरा आह्वान करते हैं ॥२॥

२६५—*वत्सः । पिपीलिकमध्या बृहती । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥३॥

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार से (**वः**) तु (**वीरम्**) बलवान् (**अन्धसः**) अन्न सम्बन्धी (**मदेषु**) आनन्दों में [मग्न हो] (**गाय**) गान कर (**गिरा**) स्तुति से (**महा**) उत्तम (**विचेतसम्**) विशेष ज्ञान वाले (**इन्द्रम्**) ईश्वर का (**नाम**) प्रसिद्ध (**श्रुत्यम्**) वैदिक (**शाकिनं**) शक्तिमान् (**वचः**) वचन (**यथा**) जैसे ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! तू अन्न सम्बन्धी आनन्द में मग्न होकर, वेद के वचन की स्तुति की भांति विशेष ज्ञानवाले शक्तिमान् ईश्वर की उत्तम वाणियों से स्तुति कर ॥ ३ ॥

२६६—*भरद्वाजः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**त्रिधातु**) वात, कफ, पित्तयुक्त (**शरणं**) धाम (**त्रिवरूथं**) त्रिविध ताप के आश्रय (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**छर्दिः**) शरीर (**यच्छ**) दे (**मघवद्भ्यः**) याज्ञिकों के लिए (**मह्यं च**) हमारे लिए भी (**यावय**) पृथक् कर (**दिद्युम्**) दिव्य (**एभ्यः**) इन ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हमारे कल्याण के लिये त्रिधातु से बने तथा त्रिविध तापों के आश्रयभूत शरीर को हमसे पृथक् कर । तू हमें और इन उत्तम कर्म वालों के लिए मोक्ष नाम का दिव्य धाम प्रदान कर ॥४॥

२६७—*नृमेधः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २र
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥५॥

पदार्थ—(**श्रायन्त**) आश्रय से रहने वाली (**इव**) समान (**सूर्यं**) सूर्य्य के (**विश्वा**) सकल (**इत्**) ही (**इन्द्रस्य**) ईश्वर के (**भक्षत**) विभाग करो । (**वसूनि**) धनों का (**जाता उ**) उत्पन्न हो चुके हुए (**जनिमानि**) उत्पन्न होने वाले (**ओजसा**) बल के सहित (**भागं न**) भाग के समान (**प्रति दीधिम**) धारण करते हैं ॥५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न हो चुके और जो होंगे बलसहित वे समस्त धन परमेश्वर के ही हैं । तुम लोग पिता की सम्पत्ति के भाग को पुत्र के समान उन धनों का भाग वैसे ही ग्रहण करो और हम भी उन्हें ही धारण करते हैं जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से उत्पन्न होकर उसी से प्रकाश भी लेती हैं ॥५॥

२६८—*पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
न सीमदेव आपतदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
१ २ ३ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एतग्वाचिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६॥

पदार्थ—(न सीम्) नहीं इसको (अदेवः) ईश्वर से विमुख मनुष्य (आतत) पाता है (इषम्) ज्ञान को (दीर्घायो) हे दीर्घजीवी ! (मर्त्यः) मनुष्य (एतग्वाचित) घोड़े वाला ही (यः) जो (एतशः) घोड़ों को (युयोजते) जोतता है (इन्द्रः) सूर्य (हरी) रात्रि और दिन (युयोजते) जोड़ता है ॥६॥

भावार्थ—हे जीव ! ईश्वर से विमुख मनुष्य इसके ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकता । जो घोड़े वाला है वही घोड़ों को जोत सकता है, जैसे कि सूर्य रात्रि और दिन को जोड़ता है ॥६॥

२६९—नृमेधपुरुमेधौ । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्र समत्सु भूषत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम् ॥७॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमारे (विश्वासु) सब (हव्यम्) आह्वान के योग्य (इन्द्रम्) ईश्वर को (समत्सु) संग्रामों में [बाधाओं में] (भूषत) आश्रय मानो (उप) समीप (ब्रह्माणि) वेदत्रयी को (सवनानि) तीन सवन रूप [प्रातर्माध्यन्दिन तृतीय] (वृत्रहन्) हे पापनाशक ! (परमज्याः) हे सबसे महान् (ऋचीषम्) हे स्तुति के सदृश ॥७॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! प्रत्येक आपत्ति तथा बाधा के समय स्तुति के योग्य ईश्वर की शरण म जाओ । हे सबसे महान् ! स्तुति के योग्य !! पापनाशक प्रभो !!! तीन सवन रूप तीन वेदों (ऋग्, यजुः, साम) का उपदेश दो ॥७॥

२७०—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
३ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८॥

पदार्थ—(तव) तेरा (इत्) ही (इन्द्र) हे ईश्वर (अवमम्) साधारण (वसु) धन है (त्वं) तू (पुष्यसि) पुष्ट करता है (मध्यमम्) मध्य कोटि के धन को (सत्रा) सत्य ही (विश्वस्य) सम्पूर्ण (परमस्य) सब से श्रेष्ठ धन का (राजसि) स्वामी है (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुमको (गोषु) पृथिव्यादि लोकों में (वृण्वते) व्यापने से रोकता है ॥८॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उत्तम, मध्यम और साधारण इन तीन प्रकार के धनों का तू ही स्वामी है । क्योंकि तेरी व्यापकता में कोई रुकावट नहीं है ॥ ८ ॥

अथवा—हे परमेश्वर ! (अवमम्) अधस्थ पृथिवी लोक तेरा ही धन है तूही (मध्यम) अन्तरिक्ष लोक का पोषण करता है । तू (परम) द्युलोक का राजा है । व्यापक होने से पृथिव्यादि लोकों में तुझे कोई भी रोक नहीं सकता । अर्थात् सबमें व्याप्त है ॥८॥

२७१— भरतः मेधातिः मेध्यातिथिश्च, माधवः, प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्लाषि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥

पदार्थ—(क्व) कहां (इयेथ) व्यापक है (क्वेदसि) कहां पर है (पुरुत्रा) बहुतों में (चित्) ही (ते) तेरा (मनः) ज्ञान (अर्लाषि) व्यापक है (युध्म) सर्वंग (खजकृत्) हे ब्रह्माण्ड के कर्त्ता ! (पुरन्दर) शरीर बन्धन से रहित (प्र) उत्तम (गायत्रा) गानकुशल (अगासिषुः) गान करते हैं ॥९॥

भावार्थ—हे सर्वंग (सर्वव्यापक) ब्रह्माण्ड के कर्त्ता ! शरीर-बन्धनरहित तू कहां व्यापक है ? और कहाँ पर है ? अर्थात् हे भगवान्! तुम्हारा ज्ञान सब पदार्थों में है, तू सर्वत्र व्यापक है । गानकुशल तेरा ही गान करते हैं ॥ ९ ॥

२७२—कलिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुतेः ॥१०॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (एनम्) इसको (इदा) इस समय (ह्यः) गत दिन (अपीपेम) पुष्ट किये और करते हैं (इह) इस (वज्रिणम्) वज्रधारी को (तस्मै) उसके लिए (उ) ही (अद्य) आज (सवने) यज्ञ में (सुतम्) सोम (भरा) पूर्ण कर (नूनम्) निश्चित (भूषत) सुशोभित करो (श्रुतेः) कीर्ति के लिए ॥ १० ॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! हम लोगों ने इस यज्ञ में विद्वान् इन्द्र को कल पुष्ट किया था और इस समय भी पुष्ट करते हैं । आज भी उसी को अमृत रस दो और निश्चित ही अपनी कीर्ति के लिए इस को सुशोभित करो ॥१०॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

२७३—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (राजा) ईश्वर है (चर्षणीनां) मनुष्यों का (याता) प्राप्त होता है (रथेभिः) योग मार्गों से (अध्रिगुः) सहज व्यापक (विश्वासाम्) सारी (तरुता) तारने वाला है (पृतनानां) मनुष्य अधिकतर (ज्येष्ठम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (यः) जो (वृत्रहा) पापनाशक है (गृणे) उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो ईश्वर मनुष्यों का स्वामी है, जो योग साधन से प्राप्त होता है, जो व्यापक है तथा मनुष्य मात्र को तारने वाला है, उसकी अधिक से अधिक स्तुति करता हूँ ॥१॥

२७४—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयङ्कृधि ।
१२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२॥

पदार्थ—(यतः) जिससे (इन्द्र) हे ईश्वर (भयामहे) हम भयभीत होते हैं (ततः) उस से (नः) हम लोगो को (अभयं) अभय (कृधि) कर(मघवन्) हे ऐश्वर्य वाले ! (शग्धि) दे (तव) तेरे (तत्) उसे (नः) हमें (ऊतये) रक्षा के लिए (वि) विविध प्रकार से (द्विषः) द्वेषभावों को (वि) विविध प्रकार से, (मृधः) हिंसा के भावों को (जहि) नष्ट कर ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम जिससे डरते हैं, उससे हमें निर्भय बना ! प्रभो ! हमारी रक्षा के लिए तूने जो सम्पत्ति देनी है वह दे, तथा निरपराधों से द्वेष, और हिंसा के भावों का विनाश कर ॥२॥

२७५--इरिम्बिठिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्रप्सः पुरांभेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३॥

पदार्थ—(वास्तोष्पते) हे संसार रूप गृह के स्वामी ! (ध्रुवा) दृढ़ (स्थूणां) स्तम्भ के समान स्तम्भ (सत्रम्) कवच के समान रक्षक (सोम्यानां) उत्तम कर्म करने वालों का (द्रप्सः) सर्वव्यापक (पुरां) संसारस्थ लोकों का (भेत्ता) प्रलयकर्ता (शश्वतीनां) प्रवाहरूप से स्थित (इन्द्रः) ईश्वर (मुनीनां) मुनियों का (सखा) मित्र है ॥३॥

भावार्थ—हे संसार गृह के स्वामी परमेश्वर ! तू समस्त संसार का दृढ़ स्तम्भ के समान स्तम्भ है, तू उत्तम कर्म करने वालों का कवच के समान रक्षक तथा प्रवाह रूप से आने वाले संसारस्थ लोगों का प्रलयकर्ता है । तू ही सर्वव्यापक और मुनियों का सखा है ॥३॥

२७६—जमदग्निः । बृहती । सूर्य्यः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बण्महाँ असि सूर्य्य बडादित्य महां असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महां असि ॥४॥

पदार्थ—(बट्) सत्य (महान्) बड़ा (असि) है (सूर्य) हे सकल संसार के लोगों को कर्म करने की प्रेरणा करने वाले (बट्) सत्य ही (आदित्य) हे प्रकाश स्वरूप ! (महां) महान् (असि) है (महः) महान् (ते) तेरी (सतः) श्रेष्ठ की (महिमा) माहात्म्य (पनिष्टम) अत्यन्त स्तुति के योग्य है (अथवा) हे स्तुति के योग्य (मह्ना) अपनी महिमा से तू (देव) हे दाता (महान्) बड़ा (असि) है ॥४॥

भावार्थ—हे सब को कर्तव्य पालन करने की प्रेरणा करने वाले ईश्वर ! सत्य ही तू महान् है । हे प्रकाशस्वरूप ! सत्य ही तू सब से बड़ा है । तू महान् और श्रेष्ठ है । तेरी महिमा भी स्तुति के योग्य है । हे दाता ! तू अपनी ही बड़ाई से बड़ा है ॥४॥

२७७—देवातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमां यदिन्द्र ते सखा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५॥

पदार्थ—(अश्वी) घोड़ोंवाला (रथी) रथोंवाला (सुरूपः) सुन्दर रूपवान् (इत्) ही (गोमान्) गौ आदि सम्पत्तिवाला (अथवा) जितेन्द्रिय (यत्) जो (इन्द्र) हे ईश्वर ! (ते) तेरा (सखा) मित्र है (श्वात्रभाजा) शीघ्र भजन के योग्य (वयसा) युवा अवस्था से (सचते) युक्त होता है । (सदा) सर्वदा (चन्द्रैः) सोने से सुभूषित होकर (सभाम्) सभा में (उपयाति) जाता है ॥५॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! जो राजा तेरा मित्र होता है, वह घोड़ों, रथों, सुन्दर रूपों और गौ आदि सम्पत्तियों से युक्त होकर शीघ्र भजन करने योग्य युवावस्था को पाता है । वह सर्वदा सोने के गहनों से सज कर सभा में जाता है ॥५॥

२७८—पुरुहन्मा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३२
यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमिरुत स्युः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

पदार्थ—(**यत्**) यद्यपि (**द्यावः**) द्युलोक (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**ते**) तेरे (**शतम्, शतम्**) सैकड़ों (**भूमिः**) पृथिवी (**उत**) भी (**स्युः**) हों (**न**) नहीं (**त्वा**) तुमको (**वज्रिन्**) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! (**सहस्र**) हजारों (**सूर्याः**) सूर्य (**अनु**) अच्छी तरह (**न**) नहीं (**जातम्**) प्रसिद्ध (**अष्ट**) पा सकते हैं (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक भी ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर, सैकड़ों द्युलोक और सैकड़ों पृथिवी इकट्ठी हों, तो भी ये सब तुम से न्यून हैं । हे न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! हजारों सूर्य भी तुमसे न्यून हैं और प्रसिद्ध द्युलोक और पृथिवीलोक भी इकट्ठे हों, तो भी तेरी महिमा के सामने तुच्छ हैं ॥६॥

२७९—देवातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१२ ३ २उ ३ २ ३क२ २ ३२ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागु दङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३१ २
सिमा पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्द्ध तुर्वशे ॥७॥

पदार्थ—(**यत्**) यद्यपि (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**प्राक्**) पूर्व दिशा से (**अपाक्**) पश्चिम दिशा से (**उदक्**) उत्तर दिशा से (**न्यक्**) और दक्षिण दिशा से (**वा**) अथवा (**हूयसे**) पुकारे जाते हो (**नृभिः**) मनुष्यों से तथापि (**सिमा**) सब जगह (**पुरु**) बहुत (**नृषूतः**) मनुष्यों को स्तुतियों से प्रेरित (**असि**) हो (**आनवे**) मनुष्यों के (**असि**) हो (**प्रशर्द्ध**) हे बलवान् (**तुर्वशे**) समीप ही ॥७॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! यद्यपि पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण सब तरफ से मनुष्य तुझे पुकारते हैं; हे बलवान् ! चाहे मनुष्य सब जगह स्तुतियों से तुझे बार-बार बुलाते हैं, तो भी तू तेरे समीपवर्ती मनुष्य के लिए समीप है ॥७॥

२८०—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २र
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८॥

पदार्थ—(**कः**) कौन (**तम्**) उस (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**त्वा**) तुझको (**वसो**) हे व्यापक ! (**आ**) सब प्रकार से (**मर्त्यः**) मनुष्य (**दधर्षति**) तिरस्कृत कर सकता है । (**श्रद्धा**) श्रद्धा से (**हि**) ही (**ते**) आप से (**मघवन्**) हे ऐश्वर्य वाले ! (**पार्ये**) पार होने के (**दिवि**) दिन (**वाजी**) बलवान् (**वाजम्**) बल को (**सिषासति**) पाना चाहता है ॥८॥

भावार्थ—हे सर्व व्यापक ईश्वर ! कौन मनुष्य तेरा तिरस्कार कर सकता है? (कोई नहीं कर सकता) । हे ऐश्वर्य वाले ! बलवान् पुरुष पार होने के दिन (मृत्यु के समय) श्रद्धा से तुझ से ही बल पाना चाहता है ॥८॥

२८१—भरद्वाजः । बृहती । इन्द्राग्नी ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३१ २
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
३ १ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
हित्वा शिरो जिह्वयारारपच्चरत्त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥९॥

पदार्थ—(**इन्द्राग्नी**) हे अध्यापक ! उपदेशक ! (**अपात्**) पावों से रहित (**इयं**) यह (**पूर्वा**) पूर्व (**आगात्**) आती है (**पद्वतीभ्यः**) पावों वाली प्रजाओं से (**हित्वा**) छोड़कर (**शिरः**) शिर (**जिह्वया**) जिह्वा से (**अरारपत्**) शब्द कराती हुई (**चरत्**) चलती हुई (**त्रिंशत् पदानि**) तीस मुहूर्तरूपी पदों को (**न्यक्रमीत्**) रखती है ॥९॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! बिना पैर की होती हुई भी यह उषा पांव वाली प्रजाओं से पूर्व आ जाती है और विचरती है । इस का अपना तो शिर नहीं है, परन्तु कुक्कुट आदि प्राणियों की जिह्वा से शब्द कराती हुई तीस मुहूर्तरूपी पदों को रखती है ॥९॥

२८२—बालशिल्पः । बृहती । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ शन्तम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**नेदीयः**) अत्यन्त समीप (**आ, इत्, इहि**) प्राप्त होवे (**मितमेधाभिः**) उत्तम बुद्धि सहित (**ऊतिभिः**) रक्षाओं सहित (**आ**) सब प्रकार (**शन्तम**) हे सुखस्वरूप (**शन्तमाभिः**) शान्तिदायक (**अभिष्टिभिः**) मनोवाञ्छित फलों के देने वाली (**स्वापे**) हे सुन्दर मित्र ! (**स्वापिभिः**) सुन्दर मित्रता से ॥१०॥

भावार्थ—हे सुखस्वरूप ! हे परम मित्र !! हे परमेश्वर !!! तू उत्तम बुद्धि, शान्ति देने वाले मनोवाञ्छित, फल और पूर्ण मित्रता स्थिर रखने वाली रक्षाओं सहित हमें प्राप्त हो ॥१०॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

२८३—नृमेधः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१॥

पदार्थ—(**इतः**) यहां से (**ऊती**) पालन के लिए (**वः**) तुमको हे ईश्वर! (**अजरम्**) अजर (**प्रहेतारम्**) संसार को प्रेरणा देने वाले (**अप्रहितम्**) स्वतन्त्र (**आशुम्**) व्यापक (**जेतारम्**) सब से श्रेष्ठ (**होतारं**) सबके जानने वाले (**रथीतमम्**) महारथी [नेता] (**अमूर्त्तम्**) अमर (**तुग्रिया, वृधम्**) प्रकाश के बढ़ाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम अपनी रक्षा के लिए अजर, अमर, स्वतन्त्र सब को प्रेरणा देने वाले, सबसे श्रेष्ठ, सर्वज्ञ, मनुष्य मात्र के नेता और प्रकाश के दाता, तुझे पुकारते हैं ॥१॥

२८४—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥२॥

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**उ षु**) पादपूरक (**त्वा**) तुझको (**वाघतः च न**) मेधावी जन भी (**आरे**) दूर (**अस्मत्**) हम से (**निरीरमन्**) स्तुति करें । (**आरात्तात्**) समीप (**वा**) अथवा (**सधमादम्**) यज्ञ में (**नः**) हमारे (**आगहि**) प्राप्त हो (**इह**) इस (हृदय में) (**वा**) अथवा (**सन्**) विद्यमान होकर (**उपश्रुधि**) सुन ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेधावी जन भी हम से दूर तेरी उपासना न करें अपितु हमारे समीप ही करें । तू भी व्यापक होने से समीपवर्त्ती होता हुआ हमारे यज्ञ में हमें प्राप्त हो, अथवा हमारे हृदय में विद्यमान हुआ हमारी प्रार्थना सुन ॥२॥

२८५—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २र ३ १ २र
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥३॥

पदार्थ—(**सुनोत**) तैयार करो (**सोमपाव्ने**) सोम पान करने वाले (**सोमम्**) सोम को (**इन्द्राय**) विद्वान् के लिए (**वज्रिणे**) अज्ञाननिवारक (**पचता**) पकावो (**पक्तीः**) पाकों को (**अवसे**) रक्षा के लिए (**कृणुध्वम्**) करो (**इत्**) ही (**पृणन्**) पालना में तत्पर (**इत्**) ही (**पृणते**) पूरा करता है (**मयः**) सुख से ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सोमपायी तथा अज्ञाननिवारक विद्वान् के लिए सोम तैयार करो । अपनी रक्षा के लिए उसके निमित्त पाकों को पकाओ, सारे सत्कार कार्यों को करो । निश्चय ही पालन में तत्पर वह विद्वान् तुम्हें सुख देता है ॥३॥

२८६—शंयुः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**सत्राहा**) सत्य से असत्य को मिटाता है (**विचर्षणिः**) संसार का साक्षी (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**तम्**) उस (**हूमहे**) पुकारते हैं (**वयम्**) हम सब (**सहस्रमन्यो**) हे अनन्तज्ञान वाले ! (**तुविनृम्ण**) हे अत्यन्त बलवान् (**सत्पते**) हे सज्जनों के रक्षक (**भवा**) हो (**समत्सु**) संग्रामों में (**नः**) हमारी (**वृधे**) जय की वृद्धि करने के लिए ॥४॥

भावार्थ—जो ईश्वर सत्य से असत्य का नाश देखने वाला है और चर-अचर संसार का साक्षी है, उसे हम पुकारते हैं । हे अनन्त ज्ञान वाले ! बलवान् !! भले पुरुषों की रक्षा करने वाले ईश्वर !!! संग्रामों में हमें विजय दे ॥४॥

२८७—परूच्छेपः । बृहती । अश्विनौ ।

१ २ ३ २ ३ १ २
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥५॥

पदार्थ—(शचीभिः) शक्तियों से (नः) हमें (शचीवसू) कर्म को स्थान देने वाले (दिवानक्तम्) दिन और रात (दिशस्यतम्) देते हैं (मा) नहीं (वां) इन दोनों का (रातिः) दान (उपदसत्) कम होता है (कदाचन) कभी भी (अस्मद्रातिः) हमारा दान (कदाचन) कभी भी ॥५॥

भावार्थ—कर्म को स्थान देने वाले सूर्य और चन्द्र अपनी शक्तियों से हमें रात्रि और दिन प्रदान करते हैं, उनका यह दान सदा रहे, इसी प्रकार हमारा भी दान सदा बना रहे ॥५॥

२८८—वामदेवः । बृहती । वरुणः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥६॥

पदार्थ—(यदा कदा च) जब कभी (मीढुषे) कामनाओं की वर्षा करने वाले ईश्वर की (स्तोता) स्तुति करने वाला (जरेत) स्तुति करे (मर्त्यः) मनुष्य (आदित्) उसी समय (वन्देत) नमस्कार भी करे (वरुणम्) ईश्वर को (विपा) उसके विविध गुणों का वर्णन करने वाली (गिरा) वेदवाणी से (धर्त्तारम्) धारण करने वाले (विव्रतानाम्) विविध नियमों के ॥६॥

भावार्थ—स्तुतिशील मनुष्य, कामनाओं की वर्षा करने वाले ईश्वर की, जब कभी स्तुति करे, उसी समय अनेक नियमों के नियन्ता और विविध गुणों के वर्णन करने वाले ईश्वर को वेदमन्त्रों से नमस्कार भी करे ॥६॥

२८९—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्र : ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यः संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७॥

पदार्थ—(पाहि) बचा (गाः) इन्द्रियों को (अन्धसः) भोग्य पदार्थों के (मदे) मद में (इन्द्राय) ईश्वर को पाने के लिए (मेध्यातिथे) हे गृहस्थ ! (यः) जो (संमिश्लः) मिलाने वाला है (हर्योः) ऋग्वेद और सामवेद का (यः) जो (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप (इन्द्रः) ईश्वर (वज्री) न्यायरूप दण्ड को धारण करने वाला (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥७॥

भावार्थ—हे गृहस्थ पुरुष ! वेदज्ञान के देनेवाले, प्रकाशस्वरूप न्यायकारी परमात्मा को पाने के लिए भोग्य पदार्थों के जगत् में अपने आपको संयम में रख ॥७॥

२९०—भर्गः । बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥

पदार्थ—(उभयम्) दोनों [स्तुति प्रार्थना को] (शृणवत्) सुनें (च) भी (नः) हमारी (इन्द्रः) ईश्वर (अर्वाक्) प्रथम (इदम्) यह (वचः) स्तुति और प्रार्थनारूप वचन (सत्राच्या) सत्य का ज्ञान कराने वाली (मघवान्) सकल धनों का स्वामी (सोमपीतये) हमारे उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिए (धिया) बुद्धि से (शविष्ठ) बलवान् (आगमत्) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थ—ईश्वर शीघ्र हमारे इन दोनों—स्तुति और प्रार्थनारूप वचनों को सुनें । शक्तिमान् तथा समस्त धनों का स्वामी वह हमारे उत्तम पदार्थों की रक्षा के लिए सत्य ज्ञान करानेवाली बुद्धि से हमें प्राप्त होवे ॥८॥

२९१—प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९॥

पदार्थ—(महे च) बड़ी धनराशि के (न) नहीं (त्वा) तेरा (अद्रिवः) हे दण्डधारी (परा) परे (शुल्काय) मूल्य से भी (दीयसे) परित्याग किया जा सकता (न) नहीं (सहस्राय) हजार रुपयों के बदले (न) नहीं (अयुताय) दश हजार के बदले (वज्रिवः) हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले (न) नहीं (शताय) असंख्य धनराशि के बदले में ही (शतामघ) हे असंख्य धन वाले ! ॥९॥

भावार्थ—हे दण्डधारी ! हे न्यायरूप दण्ड के धारण करनेवाले !! हे असंख्य धनराशि के स्वामी !!! ईश्वर ! महान् से महान् धन ऐश्वर्य के बदले तेरा परित्याग नहीं किया जा सकता । न हजार के बदले, न दस हजार के बदले और न असंख्य धनभण्डार के बदले ॥९॥

२९२—प्रगाथः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥

पदार्थ—(वस्यान्) वसुमत् (इन्द्र) हे ईश्वर ! (असि) है (मे) मेरे (पितुः) पिता से (उत) और (भ्रातुः) भाई से (अभुञ्जतः) रक्षा नहीं कर सकने वाले (माता) माता (च) और (मे) मुझे (छदयथः) रक्षा करता है (समा) समान (वसो) हे सब के वसाने वाले (वसुत्वनाय) निवास के लिये (राधसे) धन के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे सर्वसम्पत्ति के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारे पिता और न रक्षा करने वाले भाई से भी अधिक मेरी रक्षा करने वाला है । तू मेरी माता है । मेरी रक्षा और ऋद्धि के लिये समान रूप से रक्षित करते हो ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

२९३—वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।

३१ २र ३ १ २ ३ १ २
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥१॥

पदार्थ—(इमे) ये (इन्द्राय) ऐश्वर्यशाली के लिए (सुन्विरे) सम्पन्न किए गये हैं (सोमासः) सोम (दध्याशिरः) दध्यादि से युक्त (तान्) उनको (आ) भली प्रकार से (मदाय) हर्ष के लिये (वज्रहस्त) हे शस्त्रधारी (पीतये) पीने के लिए (हरिभ्यां) हाव भाव से (याहि) प्राप्त हो (ओकः) गृह पर ॥१॥

भावार्थ—दही आदि से युक्त ये सोम ऐश्वर्यशाली राजा के लिए तैयार किये जाते हैं । हे शस्त्रधारी राजन् ! तू अपने हर्ष के लिये और उनको पीने के लिये हाव-भाव के साथ हमारे गृहों को प्राप्त हो ॥१॥

२९४—वामदेवः । विश्वामित्रो वा बृहती । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२॥

पदार्थ—(इमे) ये (इन्द्र) हे ईश्वर ! (मदाय) सुख के लिये (ते) तेरे (सोमाः) सोमपदार्थ (चिकित्रे) चिकित्सा करते हैं, (उक्थिनः) स्तुति करने वाले के (मधोः) मधुरभाषी (पपानः) रक्षा करता हुआ (उप) समीप (नः) हमारे (गिरः) स्तुतियां (शृणु) सुन (रास्व) दे (स्तोत्राय) स्तुति के लिये (गिर्वणः) हे स्तुत्य ॥२॥

भावार्थ—हे स्तुतिवादियों से स्तुत्य परमेश्वर ! मधुरभाषी स्तोता के सुख के लिए सोम पदार्थ चिकित्सा करते हैं । तेरी स्तुति के लिये बोली गई हमारी वाणियों को तू सुन । हमारी रक्षा करता हुआ हमें हमारा अभीष्ट प्रदान कर ॥२॥

२९५—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
१ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझे (सबर्दुघाम्) दूध देनेवाली (हुवे) पुकारता हूँ (गायत्रवेपसम्) प्रशस्त (इन्द्रम्) ईश्वर को (धेनुं) धेनु के समान (सुदुघाम्) सुख से दोहने योग्य (अन्याम्) विलक्षण (इषम्) चाहने योग्य (उरुधाराम्) अनेक प्रकार की धारा वाली (अरङ्कृतम्) पर्याप्त रूप से पूर्ण करने वाले ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पर्याप्त रूप से पूर्ण करने वाले तुझ ऐश्वर्यशाली को दुग्ध देनेवाली प्रशस्तगति विलक्षण, अनेक प्रकार की धारा वाली तथा चाहने योग्य धेनु के समान पुकारता हूँ ॥३॥

२९६—नोधा । बृहती । इन्द्रः ।

१ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
१ २र ३ १ २र ३ २३ २ ३ १ २र
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४॥

पदार्थ—(**न**) नहीं (**त्वा**) तेरी व्यापकता को (**बृहन्तः**) महान् (**अद्रयः**) पर्वत (**वरन्ते**) रोक सकते (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**वीडवः**) दृढ़ [मजबूत] (**यत्**) जब तू (**शिक्षसि**) देना चाहता है (**स्तुवते**) स्तुति करने वाले को (**मावते**) मेरे समान (**वसु**) सम्पत्ति (**नकिः**) कोई नहीं (**तत्**) उस धन के देने में (**आमिनाति**) बाधा कर सकता (**ते**) तुझे ।।४।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! महान् से महान् और मजबूत से मजबूत पर्वत भी तेरे लिये कोई रोक नहीं है । हे प्रभो ! जब तू मेरे समान स्तुति करने वाले को सम्पत्ति देना चाहता है तो उसे कोई भी रोक नहीं सकता ।।४।।

२९७—मेध्यातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

१ २   ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।

३ १   २र   ३ १ २र   ३ २ ३ १ २

अयं यः पुरो बिभिनत्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ।।५।।

पदार्थ—(**कः**) कौन (**ईम्**) इसको (**वेद**) जानता है (**सुते**) उत्पन्न जगत् में (**सचा**) साथ (**पिबन्तम्**) भोग करते हुए (**कत्**) कितनी (**वयः**) आयु को (**दधे**) धारण करता है (**अयम्**) यह (**यः**) जो (**पुरः**) समूहों का (**बिभिनत्ति**) नष्ट करता है (**ओजसा**) अपने तेज से (**मन्दानः**) आनन्दस्वरूप (**शिप्री**) द्यु और पृथिवी लोक का स्वामी (**अन्धसः**) अन्धकार के ।।५।।

भावार्थ—इस उत्पन्न जगत् में शरीर के साथ भोगों को भोगते हुए जीव को "वह कितनी आयु धारण करता है" यह कौन जान सकता है ?

उत्तर—जो आनन्दस्वरूप द्यु और पृथिवी लोक का स्वामी परमेश्वर अपने तेज से अन्धकार के खण्डों का भेदन करता है, वही जानता है ।।५।।

२९८—वामदेवः । बृहती । इन्द्रः ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २

यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ।।६।।

पदार्थ—(**यत्**) जब (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**शासः**) दण्डद्वारा शिक्षा देता है (**अव्रतम्**) नियम का पालन न करने वाले को (**च्यावया**) नीचे गिराता है (**सदसः**) लोक से (**परि**) सब प्रकार से (**अस्माकम्**) हमारे (**अंशुं**) ज्ञान-प्रकाश को (**मघवन्**) सब सम्पदाओं के स्वामी (**पुरुस्पृहं**) सर्वथा चाहने योग्य (**वसव्ये**) वासयोग्य शरीर में (**अधि बर्हय**) बढ़ा ।।६।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जब तू नियम को पालन न करने वाले को दण्ड द्वारा शिक्षा देता है तो उच्च स्थान 'लोक' से नीचे कर देता है । हे सकल सम्पदाओं के स्वामी भगवन् ! सर्वथा चाहने योग्य ज्ञान प्रकाश को हमारे निवास योग्य शरीर में बढ़ा ।।६।।

२९९—तौरश्रवाः । बृहती । बहवः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

२ १ २र ३ १ २ ३ १   २   ३ २३ १ २ ३ १ २

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ।।७।।

पदार्थ—(**त्वष्टा**) सब दुखों का नाश करने वाला (**नः**) हमारे (**दैव्यम्**) वैदिक (**वचः**) वचन की (**पर्जन्यः**) मेघ के समान सब का उपकार करने वाला (**ब्रह्मणस्पतिः**) वेदों का स्वामी (**पुत्रैः**) पुत्रों और (**भ्रातृभिः**) भाइयों के साथ (**अदितिः**) अखण्डस्वरूप ईश्वर (**नु**) शीघ्र (**पातु**) रक्षा करे (**नः**) हमारे (**दुष्टरं**) नष्ट नहीं होने वाले (**त्रामणम्**) रक्षा के साधन (**वचः**) वचन भी ।। ७ ।।

भावार्थ—सब दुःखों का नाश करने वाला, मेघ के समान सब का उपकारक वेदों का स्वामी ईश्वर, वेद वचन तथा कभी नष्ट न होने वाले, और रक्षा के साधन, हमारे वचन की भी शीघ्र रक्षा करे । वही प्रभु हमारे पुत्रों और भाइयों का भी रक्षक हो ।।७।।

३००—बालखिल्याः । बृहती । इन्द्रः ।

३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २   ३ १ २

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।

२ ३१   २र   २३ २उ ३ १ २ ३१ २

उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ।।८।।

पदार्थ—(**कदाचन**) कभी भी [तू] (**स्तरीः**) हिंसक किसी का विध्वंसक (**न**) नहीं (**असि**) है (**इन्द्र**) हे ईश्वर (**सश्चसि**) तू देता है इस जन्म में (**दाशुषे**) दान करने वाले यजमान को [कर्मफल] (**उप-उप इन्नु**) समीप ही समीप में ही (**मघवन्**) हे दान देने वाले ! (**भूयः**) दूसरे जन्म में (**इन्नु**) भी (**ते**) तेरा (**दानम्**) कर्मफलों का दान (**देवस्य**) जीव के साथ (**पृच्यते**) सम्बन्ध करता है ।।८।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू हिंसक नहीं है, किन्तु परोपकार करने वाले को तू इस जन्म में भी और दूसरे जन्म में भी कर्मफल का दान अवश्य देता है ।।८।।

३०१—मेधातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।

३   १   २र   ३ १ २   ३ १ २

युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।

३   १ २ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २

अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ।।९।।

पदार्थ—(**युङ्क्ष्वा**) जोड़ता है (**हि**) निश्चय (**वृत्रहन्तम**) हे पाप के अत्यन्त विनाशक (**हरी**) अग्नि और वायु को (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**परावतः**) दूर भाववाले (**अर्वाचीनः**) नूतन (**मघवन्**) हे प्रभो ! (**सोमपीतये**) संसार की रक्षा के लिये (**उग्रः**) तेजस्वी (**ऋष्वेभिः**) शक्तियों से (**आगहि**) प्राप्त हो ।।९।।

भावार्थ—हे पाप के अत्यन्त विनाशक ! सर्वशक्ति !! परम धनवान् !!! परमेश्वर ! तू अपने गुणों से दूर भाववाले वायु और अग्नि को संसार की रक्षा के लिए जोड़ता है । हे प्रभो ! तू अपने महान् गुणों से सदा ही नूतन के समान हमें प्राप्त हो ।।९।।

३०२—नृमेधाः । बृहती । इन्द्रः ।

३ ३ १   २र   ३   १ २

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः ।

१ २ ३   १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स इन्द्र स्तोमवाहसः इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ।।१०।।

पदार्थ—(**त्वाम्**) तेरी (**इदा**) आज और (**ह्यः**) गत कल (**नरः**) स्तुति करने वाले (**अपीप्यन्**) स्तुति करते है ! (**वज्रिन्**) हे न्यायरूपदण्ड के धारण करने वाले ! (**भूर्णयः**) कर्मकाण्डी (**सः**) प्रसिद्ध (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**स्तोमवाहसः**) आर्य स्तोत्र आदि के जानने वाले (**इह**) इस यज्ञ में (**श्रुधि**) सुन (**उप**) समीप से (**स्वसरम्**) मानस भवन में (**आगहि**) दर्शन दे ।।१०।।

भावार्थ—हे न्यायरूपदण्ड के धारण करने वाले ईश्वर ! कर्मकाण्डी और आर्य स्तोत्र आदि के जानने वाले स्तोता [स्तुति करने वाले] लोग सर्वदा तेरी ही स्तुति करते हैं । तू मेरे मानस भवन में दर्शन दे और यहां ही मेरी पुकार सुन ।।१०।।

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

३०३—वसिष्ठः । बृहती । उषाः ।

१ २   ३ २ १   २ ३ २ ३ २

प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३   १ २   ३ १ २

अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।।१।।

पदार्थ—(**प्रति उ अदर्शि**) दीखता है (**आयती**) आती हुई (**उच्छन्ती**) दूर करती हुई (**दुहिता**) कन्या के समान (**दिवः**) सूर्य की (**अप उ**) दूर (**मही**) महान् (**वृणुते**) दूर करती है (**चक्षुषा**) तेज से (**तमः**) अन्धकार (**ज्योतिः**) प्रकाश (**कृणोति**) करती है (**सूनरी**) उषा ।।१।।

भावार्थ—अन्धकार को दूर करने वाली, प्राणिमात्र को राह दिखाने वाली सूर्य की कन्या उषा दिखाई देती है । वह अपने तेज से घने अन्धकार को दूर भगाती और प्रकाश भी करती है ।।१।।

३०४—वसिष्ठः । बृहती । अश्विनौ ।

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।

३ १ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २र

अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ।।२।।

पदार्थ—(**इमा उ**) ये (**वां**) तुम दोनों को (**दिविष्टये**) दिव्यगुण चाहनेवाले (**उस्रा**) ज्ञान को आश्रय देने वाले (**हवन्ते**) पुकारते हैं (**अश्विनौ**) हे अध्यापक ! और उपदेशक !! (**अयं**) यह (**वाम्**) तुम दोनों को (**अह्व**) आह्वान करता हूँ (**अवसे**) उद्देश्य के लिये (**शचीवसू**) हे अनेक ज्ञान और कर्मों को बसानेवाले (**विशं विशं**) प्रत्येक प्राणी के पास (**हि**) निश्चय ही (**गच्छथः**) जाते हो ।।२।।

भावार्थ—हे अध्यापक ! और उपदेशक !! दिव्यगुण चाहने वाले सभी लोग ज्ञान को आश्रय देनेवाले तुम दोनों को पुकारते हैं । मैं भी तुम दोनों का आह्वान करता हूँ । तुम लोग ज्ञान का उपदेश देने के लिये प्रजा प्रजा के पास जाते हो ।।२।।

३०५—अश्विनौ वैवस्वतौ, पौर आत्रेय इति माधवभरतयोः मतम् ।

बृहती । अश्विनौ ।

२ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २र

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

घ्नता वामश्मया क्षयमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ।।३।।

पदार्थ—(कुष्ठः) कुष्ठरोगवाला (कः) कोई (वाम्) दोनों (अश्विनौ) भिषग् स्त्री पुरुष (तपानः) तप करता हुआ (देवा) दिव्य गुणों वाले (मर्त्यः) मनुष्य (घ्नता) अनेक रोगों के नाश करने वाले (वाम्) दोनों को (अश्मया) शक्तिवाले (क्षयमाणः) रोगों से क्षीण होता हुआ (अंशुना) ज्ञान से (इत्थम्) ऐसा (उ) ही (आदु) अनन्तर (अन्यथा) रोगमुक्त होता है ।।३।।

भावार्थ—हे भिषक् स्त्री और पुरुष !! कुष्ठयुक्त जब कोई मनुष्य ज्ञानयुक्त, रोग को निवारण करने वाले, शक्तिशाली तुमको प्राप्त होता है तब नियम पर चलता हुआ रोग से निवृत्त होकर "लौटता" है इसमें कोई सन्देह नहीं ।।३।।

३०६—प्रस्कण्वः । बृहती । अश्विनौ ।

३ २ ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २
अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
१ २   ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २
तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ।।४।।

पदार्थ—(अयं) यह (वां) तुम्हारे लिए (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर (सुतः) तैयार किया गया है (सोमः) भोग्य पदार्थ (दिविष्टिषु) यज्ञों में (तम्) उसको (अश्विना) हे विद्वान् स्त्रीपुरुषा ! (पिबतम्) सेवन करो (तिरः) अत्यन्त (अह्न्यम्) दैनिक (धत्तम्) प्राप्त करावो (रत्नानि) रत्नादि पदार्थ (दाशुषे) यजमान के लिए ।। ४ ।।

भावार्थ—हे विद्वान् स्त्री पुरुष! तुम्हारे लिए यज्ञों में यह दैनिक भोग पदार्थ तैयार किया गया है । तुम दोनों हमें भली भांति सेवन और यजमान के लिए उत्तम रत्नादि पदार्थ प्राप्त करावो ।। ४ ।।

३०७—*मेधातिथि मेध्यातिथिर्वा । प्रगाथः इति माधवभरतयोः । बृहती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
१ २ ३ १   २र   ३ १ २र ३ १ २
भूर्णि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ।।५ ।।

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (सोमस्य) सोम के (गल्दया) उपभोग से (सदा) सदा (याचन्) याचना करता हुआ (अहं) मैं (ज्या) प्रशसनीय स्तुति से (भूर्णि) शक्ति धारण करनेवाले (मृगं) सिंह के समान (न) नहीं (सवनेषु) यज्ञों में (चुक्रुधं) क्रुद्ध करूँ (कः) कौन (ईशानं) स्वामी को (न) नहीं (याचिषत्) याचना करता है ।।५ ।।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्तुति से सदा आप के वरदान की याचना करता हुआ मैं यज्ञों में सोम के उपभोग से सब में धारण करने वाले तुझको सिंह के समान क्रुद्ध न करूँ । कौन अपने स्वामी से याचना नहीं करता ।। ५ ।।

३०८—*देवातिथिः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २   ३ २ ३   २उ   ३ १ २
अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ २
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ।। ६ ।।

पदार्थ—(अध्वर्यो) हे संसारयज्ञ के सम्पादक (द्रावया) प्राप्त करा (त्वं) तू (सोमम्) आनन्द रस को (इन्द्रः) जीवात्मा (पिपासति) पीने की इच्छा करता है । (उप उ) समीप (नूनं) निश्चय (युयुजे) जोड़ता है (वृषणा) शक्तिशाली (हरी) प्राण-अपान को (आ च जगाम) उद्देश्य पर आ जाता है (वृत्रहा) विघ्नों का निवारक ।।६ ।।

भावार्थ—हे संसाररूप यज्ञ के सम्पादक परमेश्वर, तू आनन्द रस को प्राप्त करा । यह आत्मा उसका पान करना चाहता है । विघ्नों का नाशक यह शक्तिशाली प्राण और अपान को योग से जोड़ता है, तथा उद्देश्य पर आ जाता है ।। ६ ।।

३०९—*वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।*

३ २ ३ २उ   ३२ ३   २ ३   १ २
अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरे भरे च हव्यः ।।७ ।।

पदार्थ—(अभीपतः) सब प्रकार से चाहते हुए मेरे (तत्) उस सम्पत्ति को (आभर) मुझे दे (इन्द्र!) हे ईश्वर ! (ज्यायः) श्रेष्ठ (बड़ा) तू (कनीयसः) और छोटे मुझे (पुरूवसुः) तू बहुत सम्पत्तियों का स्वामी है (हि) निश्चय (मघवन्) हे दानी ! (बभूविथ) हो (भरे भरे) प्रत्येक यज्ञ में (च) भी (हव्यः) तू ही आह्वान करने के योग्य है ।। ७ ।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अभिलाषा युक्त मुझ लघु जीव के जो श्रेष्ठ इष्ट पदार्थ हैं उन्हें दे । सकल सम्पदाओं का स्वामी तू प्रत्येक यज्ञ में पूजनीय है ।। ७ ।।

३१०—*वसिष्ठः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३   १ २ ३   २ ३ १ २ ३ १   २र
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ।।८।।

पदार्थ—(यत्) यदि (इन्द्र) हे ईश्वर ! (यावतः) जितने धन का (त्वम्) तू स्वामी है (एतावत्) इतने धन का (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी बन जाऊं तो (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को (इत्) ही (दधिषे) पुष्ट करूं (रदावसो) हे दानदाता (न) नहीं (पापत्वाय) पाप कर्म के लिए (रंसिषम्) दूं ।।८।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! जितनी सम्पत्तियों का तू स्वामी है, यदि उतनी का मैं बन जाऊं तो उत्तमकार्य करने वालों का ही पोषण और पालन करूँ । हे मानदाता ! पाप कर्म के लिए मैं कभी दान न दूं ।।८।।

३११—*नृमेधाः । बृहती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३   १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ।।९।।

पदार्थ—(त्वं) तू (इन्द्र) हे ईश्वर ! (प्रतूर्तिषु) प्रत्येक सताये जाने के समयों में (अभि) सब प्रकार से अभिभव करते (विश्वा) सारी (स्पृधः)चढ़ाई के भावों का (असि) है (अशस्तिहा) तू अशान्ति पैदा करने वाले कामादि शत्रुओं का नाशक है (जनिता) संसार का उत्पादक है (वृत्रतूः) पापों का नाश करने वाला (असि) है (त्वं) तू (तूर्य) नाश कर (तरुष्यतः) हिंसक भावों का ।।९।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू संग्रामों में होने वाले समस्त चढ़ाई के भावों को दे । तू ही विघ्नों का नाशक तथा पापनिवारक है, हमारी हिंसक वृत्तियों को दूर कर ।।९।।

३१२—*नोधा । बृहती । इन्द्रः ।*

१   २र ३ १   २र   ३ १   २र ३ १ २
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ;
१ २   ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ।।१०।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यः) जो (रिरिक्षे) अतिरिक्त स्थित है (ओजसा) शक्ति से(दिवः) द्युलोक के (सदोभ्यः) स्थानों को (परि) व्याप्त कर (त्वा) तुझ को (न) नहीं (विव्याच) व्याप सकता है (रजः) लोक (इन्द्र) हे ईश्वर (पार्थिवम्) पार्थिव (अति) अत्यन्त (विश्व) ब्रह्माण्ड का (ववक्षिथ) धारण करता है ।।१०।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू अपनी शक्ति से द्युलोक के सभी स्थानों में व्यापक होकर उससे भी पृथक् वर्त्तमान हो रहा है । पार्थिव लोक तेरी व्याप्ति को नहीं व्याप सकता । तू ही ब्रह्माण्ड को धारण करता ह ।।१०।।

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

३१३—*वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १   २र   ३ २ ३क २र ३ १   २ ३ १ २
असावि देवं गोऋजीकमन्धोन्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
१ २   ३ १ २र ३   २ ३ १ २ ३ १ २
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ।।२।।

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया है (देवम्) उत्तम (गोऋजीकम्) इन्द्रियों को सरलता देनेवाला (अन्धः अन्) नितरां (अस्मिन्) इस मे (इन्द्रः) आत्मा (जनुषा) जन्म से (उवोच) लग जाता है (बोधामसि) बोध करते हैं (त्वा) तुझको (हर्यश्व) हे अविनाशी और व्यापक (यज्ञैः) कर्मों से (बोधा) जानता है (नः) हमारे (स्तोमं) स्तोत्र को (अन्धसः) सोम के (मदेषु) सुखों में ।। १ ।।

भावार्थ—इन्द्रियों को सरलता देने वाले उत्तम अन्न को परमेश्वर ने उत्पन्न किया है । इसमें जीवात्मा की जन्म से प्रवृत्ति होती है । हे व्यापक परमेश्वर, हम उपासनादि कर्मों से तुझ को जानते हैं । सोम के आनन्दों में किए हुए स्तोत्र को तू जानता है ।।१।।

३१४—*वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २   ३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २
योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
२ ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ।। ।।

पदार्थ—(योनिः) स्थान [मञ्च] (ते) तेरे लिए (इन्द्र) हे वीर ! (सदने) सभा में बैठने के लिए (अकारि) बना दिया गया है (तम्) उसका (आ) सब प्रकार (नृभिः) मनुष्यों के साथ (पुरुहूत) हे बहुतों से चाहने योग्य (प्रयाहि) प्राप्त कर (असः) होवे (यथा) जैसे (नः) हमारे (अविता) पालन करने वाले (वृधः) हमारी उन्नति करने वाला (चित्) भी (ददः) दे (वसूनि) अनेक प्रकार की सम्पत्तियों को (ममदः) प्रसन्न रहो (च) और (सोमैः) भोग्य पदार्थों द्वारा ।।२।।

भावार्थ—हे राष्ट्रपति ! सभा के स्थान में तेरा मञ्च बना दिया गया है । हे बहुमत प्राप्त करने वाले ! तू सहायक मनुष्यों के साथ उस मञ्च पर विराजमान हो, जिस प्रकार हमारी रक्षा और उन्नति कर सके, कर । हमें हमारी सम्पत्तियां दे और स्वयं भी भोग्य पदार्थों से तृप्त हो ।।२।।

३१५—गातुः, गृत्समद इति माधवभरतयोः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि, त्वमर्णवान्बद्बधानाँ् अरम्णाः ।

३ १ २ ३ १२ ३ २उ ३ २उ ३ २ ३ १ २३ २

महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः, सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३॥

पदार्थ—(अदर्दः) छिन्नभिन्न करती है (उत्सम्) मेघ को (असृजः) खोल देती है (वि) विशेषरूप से (खानि) जल के मार्गों को (त्वम्) वह (अर्णवान्) जल संघातों को (बद्बधानान्) रुके हुए (अरम्णाः) गिराती है (महान्तम्) महान् (इन्द्र) बिजली (पर्वतम्) मेघ को (विवः) खोल देती है (यत्) जब (सृजत्) निकल चलती है (धारा) जल की धार (यत्) जब (दानवान्) रुकावट (अवहन्) दूर कर देती है तब ॥३॥

भावार्थ—बिजली मेघ को छिन्नभिन्न करती है। वह रुके हुए जल के मार्गों को साफ करती है जिससे जल बरसने लगता है।

वह जब महान् मेघ को तोड़मरोड़ कर रुकावट दूर कर देती है, तब जल की धारा बहने लगती है ॥३॥

३१६—पृथुर्वैन्यः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा, सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १२

आ नो भर सुवितं यस्य कोना, तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४॥

पदार्थ—(सुष्वाणासः) यज्ञ करते हुए (इन्द्र) हे ईश्वर (स्तुमसि) हम स्तुति करते हैं (त्वा) तेरी (सनिष्यन्तः) विभाजन करते हुए (तुविनृम्णः) हे अनन्तधनों के स्वामी (वाजम्) अन्न को (आ) सब प्रकार से (नः) हमें (भर) दे (सुवितम्) कल्याणकारी धन (यस्य) जो (कोना) शत्रुओं को (तना) पुत्र के साथ (त्मना) अपने (सह्याम्) नीचा दिखावें (त्वोताः) तुझ से सुरक्षित रह कर ॥४॥

भावार्थ—हे अनन्त सम्पत्तियों के स्वामी ईश्वर ! यज्ञ करते हुए तथा अन्न का बंटवारा करते हुए हम तेरी स्तुति करते हैं। जो भी कल्याणकारी सम्पत्ति हो वही हमें दे। तेरी रक्षा के भरोसे हम लोग अपनी सन्तानों के साथ नीच शत्रुओं को नीचा दिखलावें ॥४॥

३१७—सप्तगुः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

जगृह्या ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।

३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥

पदार्थ—(जगृह्य) ग्रहण करते हैं (ते) तेरे (दक्षिणम्) दांये (इन्द्र) हे राजन् ! (हस्तम्) हाथ को [धामाश्रिता वयमिति भावः] (वसूयवः) सम्पत्ति पाने की इच्छा से युक्त (वसुपते-वसूनाम्) हे सम्पत्ति के स्वामी ! (विद्मा) हम जानते हैं (हि) जिस लिए (त्वा) तुझको (गोनाम्, गोपतिम्) गौ आदि पशु-रूप सम्पत्ति के स्वामी (शूर) हे शक्तिमान् (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (चित्रम्) अद्भुत (वृषणम्) पोषणपालन वाले (रयिम्) धन को (दाः) दे ॥५॥

भावार्थ—हे हर प्रकार की सम्पत्तियों के स्वामी राजन् ! सम्पत्ति की कामना वाले हम लोग तेरी शरण में उपस्थित हैं। हे शक्तिमान् तुझको हम लोग गौ आदि पशुरूप सम्पत्ति का स्वामी जानते हैं। तू हमें अद्भुत और पालन-पोषण करने वाला धन देकर कृतार्थ कर ॥५॥

३१८—वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २३ २ ३ २

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) ईश्वर को (नरः) मनुष्य (नेमधिता) संग्राम या आपदाओं में (हवन्ते) पुकारते हैं (यत्) जो (पार्या) पार करने वाले (युनजते) युक्त होते हैं (धियः) बुद्धियों को (ताः) उन (शूरः) शक्तिमान् (नृषातौ) यज्ञादि उत्तम काम में (श्रवसः) कीर्ति की (च) और (कामे) कामना में (आ) सब प्रकार से (गोमति, व्रजे) गोयुक्तशाला में (आभजा) भागी बना (त्वं) तू (नः) हमें ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य लोग संग्राम आदि के समय परमेश्वर को पुकारते हैं। जो आपदाओं से पार लगाने वाली बुद्धियां हैं उनको प्राप्त होते हैं। हे परमेश्वर ! शक्तिमान् तू यज्ञादि उत्तम कर्मों में, कीर्ति की कामना में तथा गायादि से युक्त गृहों में हमें भागी बना ॥६॥

३१९—गौरीवीतिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रम्, प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २ ३ २

अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥७॥

पदार्थ—(वयः) पक्षियों के समान (सुपर्णाः) उत्तम परों वाले (उपसेदुः) उपस्थित होते हैं (इन्द्रम्) ईश्वर की शरण में (प्रियमेधा) बुद्धिमान् (ऋषयः) ऋषि लोग (नाधमानाः) याचना करते हुए (ध्वान्तम्) अज्ञानअन्धकार को (अपोर्णुहि) दूर कर (पूर्धि) पूर्ण कर (चक्षुः) ज्ञान की आंखें (मुमुग्धि) मुक्त कर दे (अस्मान्) हम लोगों को (निधया) बन्धन से (इव) समान (बद्धान्) बान्धे हुए के ॥७॥

भावार्थ—उत्तम पर वाले पक्षियों की भांति बुद्धिमान् ऋषिलोक याचना करते हुए परमेश्वर की शरण में उपस्थित होते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर ! अन्धकार को दूर कर, हमारे चक्षुओं को ज्ञान से पूर्ण कर और बेड़ी से बन्धे हुए के समान बन्धन में पड़े हुए हम लोगों को मुक्त कर ॥७॥

३२०—वेनः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं, हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं, यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८॥

पदार्थ—(नाके) आनन्द स्वरूप में (सुपर्णम्) पक्षीरूप (यत्पतन्तम्) सब जगह व्यापक (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) चाहते हुए योगी पुरुष (अभ्यचक्षत) देखते हैं (त्वा) तुझको (हिरण्यपक्षम) प्रकाशस्वरूप (वरुणस्य) जीव के (दूतम्) दुःखनिवारक (यमस्य) सूर्य्य के (योनौ) मण्डल में भी (शकुनम्) शक्तिमान् (भुरण्युम्) व्यापक ॥८॥

भावार्थ—आनन्द में विराजमान व्यापक परमेश्वर को हृदय से चाहते हुए ज्ञानीजन साक्षात् करते हैं। वह परमेश्वर प्रकाशस्वरूप, जीव के दुःखों का निवारक, शक्तिमान्, सूर्य के मण्डल में भी स्थित तथा सर्वपालक है ॥८॥

३२१—नकुलः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९॥

पदार्थ—(ब्रह्म) ब्रह्माण्ड (जज्ञानं) उत्पन्न होने वाले (प्रथमं) प्रथम (पुरस्तात्) प्रारम्भ काल में (विसीमतः) सीमा के साधन दिशाओं को (सुरुचः) अन्य प्रकाशों को (वेनः) परमेश्वर ने (आवः) विस्तृत किया (स) उसने (बुध्न्या) सूर्य से होने वाली दिशाओं और (उपमा) माप के साधन तथा (विष्ठाः) प्रकाशों को (सतः) वर्त्तमान (असतः) भविष्य में पैदा होने वाले भूतों के (योनिं) कारण प्रकृति को (विवः) विविध रूप से प्रकट किया ॥९॥

भावार्थ— सृष्टि के आरम्भ में प्रथम उत्पन्न होने वाले ब्रह्माण्ड (सौर मण्डल) को प्रकट किया। उसी ने अन्तरिक्ष में होने वाली इस सूर्य मण्डल के माप के साधन भूत तथा अपनी विशेषता से स्थित दिशाओं तथा सीमा में स्थित अन्य प्रकाशों को विस्तृत किया। इस प्रकार वर्तमान तथा असत् भविष्य में पैदा होने वाले भूतों के कारण भूत प्रकृति को उस परमेश्वर ने विविध रूप में प्रकट किया ॥९॥

३२२—सुहोत्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचाँ्स्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥

पदार्थ—(अपूर्व्या) नवीन नवीन (पुरुतमानि) अधिक मात्रा में (अस्मै) इसके लिए (महे, वीराय) महान् शूर (तवसे) बलवान् (तुराय) क्षण मात्र में सब कुछ करने वाले (शंतमानि) शांति देने वाली (वचांसि) स्तुतियां (अस्मै) इस (स्थविराय) पुराण पुरुष परमेश्वर के लिए (तक्षुः) करते हैं उपासक ॥१०॥

भावार्थ—उपासना करने वाले पुरुष, सबसे बढ़कर शूर और बलवान्, क्षण मात्र में सब कुछ करने वाले, सबसे अधिक स्तुति करने के योग्य और न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले, इस सनातन पुरुष परमेश्वर की सुख-शांति देने वाली बहुत नयी नयी स्तुतियाँ करते हैं ॥ १० ॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

३२३—द्युतानः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ दीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१॥

पदार्थ—(अव) रोकने अर्थ में (द्रप्सः) रूप वाला (अंशुमतीम्) सौर-मण्डल में (अतिष्ठत्) स्थित है (ईयानः) गतिशील (कृष्णः) आकर्षण करने वाला (दशभिः) दस (सहस्रैः) हजार (आवत्) रक्षित रखता है (तम्) उस (इन्द्रः) सूर्य (शच्या) शक्ति से (धमन्तम्) बहते हुए (अप) दूर (स्नीहितिम्) घातावघात करने वाले (नृमणाः) मनुष्यों के मनन का विषय (अध) नीचे (द्राः) प्रेरित करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—गतिशील लोकों का आकर्षण करने वाला तथा लोगों के मनन का विषय सूर्य दश सहस्र किरणों द्वारा नदी को प्राप्त होता हुआ स्थित हो रहा है। वह शक्ति से बहते हुए घातावघात करने वाले वायु को नीचे की तरफ प्रेरित करता है तथा रक्षित रखता है ॥ १ ॥

३२४—द्युतानो मारुतः, तिरश्चिर्वांगिरसः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथे मा विश्वाः पृतना जयासि ॥२॥

पदार्थ—(वृत्रस्य) पाप के (त्वा) तुझको (श्वसथात्) श्वास से (ईषमाणा) प्रभावित होकर (विश्वे) सब (देवा) इन्द्रियों ने (अजहुः) त्याग दिया (ये) जो (सखायः) मित्र थे केवल (मरुद्भिः) प्राण वायु से (इन्द्र) हे आत्मा (सख्यम्) मित्रता से (ते) तेरी (अस्तु) बनी रहे तो (अथ) बाद (इमाः) इन (विश्वाः) सब (पृतनाः) पाप की सेनाओं को (जयासि) जीतते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे जीवात्मा ! जो इन्द्रियाँ तेरी मित्र होती हैं, वे भी पाप के श्वास से ही प्रभावित होकर तेरा साथ छोड़ देती हैं, केवल प्राण ही तेरे साथी होते हैं। जबसे ये साथ देते हैं तो पाप की सारी सेना को तू जीत लेता है ॥ २ ॥

३२५—बृहदुक्थः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३॥

पदार्थ—(विधुं) संसार के धारण करने वाले (दद्राणं) दूर करने वाले (समने) बुरी और अच्छी भावनाओं के संग्राम में (बहूनां) सारी (युवानं) अजर (सन्तम्) होते हुए (पलितः) वृद्ध (जगार) स्तुति करता है। (देवस्य) देव के (पश्य) देखो (काव्यं) कृति को (महित्वा) महत्त्व से पूर्ण (अद्या) आज (ममार) मर गया (सः) वह (ह्यः) गत दिन (समान) जीता है ॥३॥

भावार्थ—वृद्ध मनुष्य, संसार के धारण करने वाले बुराई और भलाई के संग्राम में, बुराइयों को दूर भगाने वाले, अजर, विद्यमान परमेश्वर की स्तुति करता है। उस परम देव की महत्त्वपूर्ण कृति को देखो कि जो कल मर गया था आज फिर पैदा होता है अथवा जो कल जीवित था आज मरता है ॥ ३ ॥

३२६—तिरश्चीः, द्युतानो वा । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥४॥

पदार्थ—(त्वं) तू (ह) निश्चय ही (त्यत्) वह (सप्तभ्यः) सात इन्द्रियों के लिए (जायमानः) पैदा हुआ (अशत्रुभ्यः) मित्रस्वरूप (अभवः) होता है (शत्रुः) शत्रु (इन्द्र) हे जीव ! (गूढे) गूढ़ (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक को (अन्वविन्दः) प्राप्त होता है (विभुमद्भ्यः) ऐश्वर्यशाली (भुवनेभ्यः) लोकों के लिए (रणं) संग्राम को (धाः) धारण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू मित्ररूप सात इन्द्रियों के लिए उत्पन्न होकर भोगों में फंसा हुआ तू उनका शत्रु बन जाता है। तू अत्यन्त गूढ़ द्यु और पृथिवी लोक में भी कर्मानुसार प्राप्त होता है। तू ऐश्वर्यशाली लोकों की प्राप्ति के लिए जीवन-संग्राम को धारण करता है ॥ ४ ॥

३२७—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २

मेडिं न त्वां वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् ।

३ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५॥

पदार्थ—(मेडिम्) वाणी के (न) समान स्तुति के योग्य (वज्रिणम्) न्याय दण्ड का धारण करने वाले (भृष्टिमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (पुरुधस्मानं) संसार का पोषण-पालन करनेवाले (वृषभम्) हमारी कामनाओं की पूर्ति करनेवाले (स्थिरप्स्नुम्) संसार का संहार करनेवाले (करोषि) करता है (अर्यः) मानुषी प्रजा का (तरुषीः) आपत्तियों को पार करने की इच्छा वाला मैं (इन्द्र) हे ईश्वर ! (द्युक्षम्) तू ज्ञानस्वरूप (वृत्रहणम्) अज्ञान के नाश करनेवाले (गृणीषे) स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू सारी मनुष्य प्रजा को आपत्तियों को पार करने की शक्ति देता है। तेरी सेवा करने वाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ। तू सरस्वती के समान स्तुति करने के योग्य और न्यायरूप दण्ड का धारण करने वाला है। तू प्रकाशस्वरूप और हमारी कामनाओं को सफल करने वाला है। तू संसार का पालन-पोषण और संहार करता है। तू ज्ञानस्वरूप है, इसी लिए हमारे अज्ञानों का नाश करता है ॥५॥

३२८—वसिष्ठः । विराट् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥६॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम सब (महे) महान् (महे वृधे) मनुष्यों को उन्नत करने वाले (भरध्वम्) धारण करो (प्रचेतसे) सब से अधिक उत्तम ज्ञान वाले (प्र) उत्तम (सुमतिम्) मनोहर स्तुति (कृणुध्वम्) करो। (विशः) मनुष्य प्रजाओं को (पूर्वीः) सनातन (प्रचर) अपना बना (चर्षणिप्राः) हे मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर ! ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे श्रेष्ठ पुरुषो ! तुम सब मनुष्यों को उन्नत करने वाले परमेश्वर को (हृदय में) अपने ज्ञान में धारण करो। उस सबसे बड़े ज्ञानी की मनोहर स्तुति करो। हे मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभो ! अपनी मनुष्य प्रजाओं को अपना सेवक बना ॥ ६ ॥

३२९—विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥७॥

पदार्थ—(शुनम्) व्यापक (हुवेम) हम स्तुति करते हैं (मघवानम्) ऐश्वर्यवाले (इन्द्रम्) ईश्वर की (अस्मिन्) इस (भरे) ज्ञानयज्ञ में (नृतमम्) सब के महान् नेता (वाजसातौ) बल प्राप्त करानेवाले (शृण्वन्तम्) हमारा आह्वान सुनने वाले (उग्रम्) ओजस्वी (ऊतये) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए [पाप और पुण्य के] (समत्सु) संग्राम में (घ्नन्तम्) नाश करने वाले (वृत्राणि) पापों को (संजितम्) सम्यक् अधीन करनेवाले (धनानि) सम्पत्तियों को ॥ ७ ॥

भावार्थ—हम लोग बल को प्राप्त करानेवाले, ज्ञानयज्ञ में सम्मिलित होकर सुखों के दाता, ऐश्वर्यों के स्वामी, पुण्यों और पापों के संग्रामों में हमारी रक्षा और तृप्ति के लिए पापों के नाश करने वाले, और संसार की सारी सम्पत्तियों को अपने अधीन रखनेवाले ईश्वर को पुकारते हैं ॥ ७ ॥

३३०—वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥८॥

पदार्थ—(उदु) उत्कृष्ट (ब्रह्माणि) स्तोत्रों का (ऐरत) उच्चारण करो (श्रवस्या) सुनने योग्य मनोहर (इन्द्रम्) परमेश्वर का (समर्ये) ज्ञानयज्ञ में (महया) सत्कार कर (वसिष्ठ) हे जितेन्द्रिय पुरुष ! (आ) सब प्रकार से (यः) जिस ईश्वर ने (विश्वानि) अखिल ब्रह्माण्ड का (श्रवसा) अपनी कीर्ति से (ततान) विस्तार किया है (उपश्रोता) सुननेवाला हो (मे) मेरे (ईवतः) अशेष गुणों के प्रकाशक (वचांसि) स्तुतियों को ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे जितेन्द्रिय पुरुष ! ज्ञानयज्ञ में उस ईश्वर की मनोहर स्तुति का उच्चारण और सत्कार कर, जिसने अपनी कीर्त्ति से युक्त सारे संसार का विस्तार किया है। उसके सारे गुणों के वर्णन करने वाले मेरे स्तोत्रों को वह अवश्य सुनें। यही मेरी कामना है ॥ ८ ॥

३३१—गोरीवीतिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

पदार्थ—(चक्रम्) सृष्टि-नियमचक्र (यत्) जो (अस्य) इस परमेश्वर का (अप्सु) लोकों में (आ) भली भांति (निषत्तं) विद्यमान है (उत) और (उ) पादपूरक (तत्) वह (अस्मै) इस संसार के लिए (मधु) जल को (इत्) ही (चच्छद्यात्) आच्छादित करता है। (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष में (अतिषितं) निगूढ़ हुआ (यत्) जो (ऊधः) रात्री (पयः) दूध और रस (गोषु) गायों में (अदधाः) धारण करता है (ओषधीषु) ओषधियों में ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस परमेश्वर का जो सृष्टि-नियम-चक्र है, वह समस्त लोकों में विद्यमान है, इस संसार के उपयोग के लिए जल को आच्छादित करता है अन्तरिक्ष में अत्यन्त निगूढ छिपा हुआ वह रात्रि, गायों, और ओषधियों, दुग्ध तथा रस को धारण करता है ॥ ९ ॥

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

३३२—अरिष्टनेमिः । त्रिष्टुप् । तार्क्ष्यः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ।।१।।

पदार्थ—(**त्यम्**) उस (**उ**) पादपूरक (**षु**) उत्तम (**वाजिनम्**) धन आदि के स्वामी (**देवजूतम्**) देवताओं से उपास्य (**सहोवानम्**) बल से युक्त (**तरुतारम्**) ताराओं के तारक (**रथानाम्**) रमणीय तारकाओं के (**अरिष्टनेमिं**) अकुण्ठितशक्ति (**पृतनाजं**) बाधाओं के विजेता (**आशुं**) व्यापक (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**तार्क्ष्यं**) ईश्वर को (**इह**) इस जगत् में (**आ हुवेम**) पुकारते हैं ।। १ ।।

भावार्थ—उस धन आदि के दाता, विद्वानों द्वारा प्रसन्न किये हुए, रमणीय तारागणों के तारक, अकुण्ठितशक्ति, समस्त बाधाओं के विजेता, तथा व्यापक परमेश्वर को अपने कल्याण के लिए इस जगत् में हम पुकारते हैं ।। १ ।।

३३३—गर्गः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ।।२।।

पदार्थ—(**त्रातारम्**) पालन करनेवाले (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**अवितारं**) रक्षा करनेवाले (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**हवे हवे**) आह्वान के प्रत्येक अवसर पर (**सुहवं**) सुखपूर्वक पुकारने योग्य (**शूरम्**) बलवान् (**इन्द्रम्**) ईश्वर का (**हुवे**) आह्वान करता हूँ (**नु**) शीघ्र (**शक्रम्**) शक्तिमान् (**पुरुहूतम्**) बार बार प्रार्थना करने के योग्य (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**इदम्**) मेरे इस (**हविः**) स्तुति को (**मघवा**) महान् दानी (**वेतु**) जाने (**इन्द्रः**) ईश्वर ।। २ ।।

भावार्थ—मैं पालन करनेवाले, प्रत्येक अवसर पर पुकारने के योग्य, बलवान् शक्तिमान् और बार बार प्रार्थना के योग्य ईश्वर की स्तुति करता हूँ । वह महान् दानी ईश्वर मेरे इस यश स्तुति को जाने और स्वीकार करे ।। २ ।।

३३४—विमदः, वसुकृद्वा । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम् ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधाभुवद्विसेनाभिर्भयमानो वि राधसा ।।३।।

पदार्थ—(**यजामहे**) सत्कार करते हैं (**इन्द्रं**) राजा का (**वज्रदक्षिणम्**) शस्त्र को धारण करने वाले (**हरीणाम्**) मनुष्यों के (**रथ्यं**) नेता (**विव्रतानाम्**) विविध कर्मों वाले (**प्र**) उत्तम (**श्मश्रुभिः**) रोमों से (**दोधुवत्**) कंपा देता है (**उर्ध्वधा**) सब से बड़ा (**भुवत्**) है (**वि**) विशेष (**सेनाभिः**) सेनाओं से (**भयमानः**) डराता हुआ (**राधसा**) सम्पत्ति से ।।३।।

भावार्थ—शस्त्र को धारण करने वाले, अनेक कर्मोंवाले मनुष्यों के नेता उस राजा का हम सत्कार करते हैं, जो सेना और धन से शत्रुओं को डराता हुआ दाढ़ियों के हिलाने से सब को कंपा देता है और सर्वोपरि स्थित होता है ।।३।।

३३५—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

३ २३ १ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ।।४।।

पदार्थ—(**सत्राहणम्**) सत्य से असत्य का नाश करने वाला (**दाधृषिम्**) अधर्म को दूर भगानेवाले (**तुम्रम्**) अच्छे कार्य करने के लिए सब की प्रेरणा करने वाला (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**महाम्**) महान् (**अपारम्**) अनन्त (**वृषभम्**) कामनाओं को पूरा करनेवाला (**सुवज्रम्**) सुन्दर न्यायरूप दण्ड का धारी (**हन्ता**) नाश करने वाला (**यः**) जो (**वृत्रम्**) अज्ञान और अधर्म को (**सनिता**) दाता (**उत**) और (**वाजम्**) बल का (**दाता**) देने वाला (**मघानि**) सम्पत्तियों का (**मघवा**) ऐश्वर्यों का स्वामी (**सुराधाः**) उत्तम धन वाला ।।४।।

भावार्थ—हम लोग सत्य से असत्य को जीतनेवाले, अधर्म को दूर करने वाले, सब के प्रेरक, अपार और महान् सुख के दाता, उत्तम न्यायकारी उस इन्द्र की स्तुति करते हैं जो अज्ञान का निवारक सम्पत्ति का दाता, बल का दाता, धनों का दाता, उत्तम सम्पत्ति शाली तथा ऐश्वर्यों का स्वामी है ।।४।।

३३६—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभीष्याम वृषमणस्त्वोताः ।।५।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**नः**) हमें (**वनुष्यन्**) दुःख देने की इच्छा करता हुआ (**अभिदाति**) हमें दास बनाता है (**मर्त्तः**) मनुष्य (**उगणा**) बहुत गुणवाली प्रजा को (**वा**) अथवा (**मन्यमानः**) अपने आप को मनाता हुआ [अभिमान्य] (**तुरः**) पीड़ा देता है (**क्षिधी**) नाश कर (**युधा**) संग्राम में (**शवसा**) बल से (**वा**) अथवा (**तम्**) उसका (**इन्द्र**) हे राजन् (**अभीष्याम**) सामना करते हैं (**वृषमणः**) हे कल्याणबुद्धि (**त्वोताः**) तुझ से सुरक्षित हुए ।।५।।

भावार्थ—हे ! राजन् जो अभिमानी, हिंसक मनुष्य हमें तथा उत्कृष्टगुण वाली प्रजा को पीड़ा देता हुआ संमख आता है, तू उसे नष्ट कर । तुम्हारी रक्षा में रहते हुए हम बल और युद्ध से उसको दबावें ।।५।।

३३७—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ।।६।।

पदार्थ—(**यम्**) जिसका (**वृत्रेषु**) उपद्रवों के समय में (**क्षितयः**) मनुष्य (**स्पर्धमानाः**) परस्पर एक दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले (**यम्**) जिस का (**युक्तेषु**) योगयुक्त अवस्था में (**तुरयन्तः**) योग के उपद्रवों को जीतने के लिए शीघ्रता करनेवाले (**हवन्ते**) आह्वान करते हैं (**यम्**) जिसका (**शूरसातौ**) संग्राम उपस्थित होने पर (**यम्**) जिसका (**अपामुपज्मन्**) जलों की आवश्यकता के समय पर (**यम्**) जिसकी (**विप्रासः**) ज्ञानी पुरुष (**वाजयन्ते**) स्तुति करते हैं (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र है ।।६।।

भावार्थ—इन्द्र कौन है ? उपद्रवों के उपस्थित होने पर आपस में एक दूसरे को जीतने की इच्छा करते हुए, मनुष्य जिसको पुकारते हैं, योग से युक्त होकर, योग के उपद्रवों को दूर करने की धुन मे मस्त होकर योगी पुरुष जिसकी पुकार करते हैं, संग्रामों में वीर योद्धा जिसकी सहायता की आशा करते हैं, जल की आवश्यकता के समय किसान जिसको पुकारते हैं और ज्ञानी जन जिसकी स्तुति करते हैं, वही इन्द्र है ।।६।।

३३८—विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रापर्वतौ ।

१ २ ३ १ २र
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा
१ २ ३ १ २र ३ १ २
वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ।।७।।

पदार्थ—(**इन्द्रापर्वता**) विद्युत्, 'बिजली' और मेघ (**बृहता**) बड़े (**रथेन**) रथ के समान साधनरूप जल की वर्षा के द्वारा (**वामीः**) चाहने योग्य (**इषः**) अन्न आदि उत्तम-उत्तम भोग के पदार्थ (**आवहतम्**) हमें प्राप्त कराते हैं (**सुवीराः**) वीर सन्तानों वाले (**वीतम्**) प्राप्त करते हैं (**हव्यानि**) हवन की सामग्रियों को 'वायु के द्वारा' (**अध्वरेषु**) यज्ञों में दी गई (**देवाः**) दिव्य गुणोंवाले (**वर्धेथाम्**) बढ़ते हैं (**गीर्भिः**) गर्जन और कड़क रूपी वाणियों से (**इडया**) यज्ञीय अन्न से (**मदन्ता**) उन दोनों की तृप्ति होती है ।।७।।

भावार्थ—विद्युत् और मेघ बड़े रथ के समान वर्षा के द्वारा चाहने योग्य अन्न को प्राप्त कराते हैं । जिसमे हम उत्तम सन्तान वाले होते हैं, तीव्र गुण वाले पदार्थ यज्ञों में दी हुई आहुतियों को ग्रहण करें, तथा कड़क आदि से सस्यादियों को बढ़ावें मेघ और विद्युत् यज्ञीय 'आहुति दिए हुए' अन्न से शक्तिशाली होते हैं ।।७।।

३३९—रेणुः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विष्वक् तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ।।८।।

पदार्थ—(**इन्द्राय**) ईश्वर के लिए (**गिरः**) स्तुतियों (**अनिशितसर्गाः**) निरन्तर प्रारम्भ रहने वाली 'पूरी' (**अपः**) जल की वर्षा के लिए (**प्रैरयत्**) प्रेरणा करता है (**सगरस्य**) अन्तरिक्ष के (**बुध्नात्**) स्थान से (**यः**)जो ईश्वर (**अक्षेण**) धुरा से (**चक्रियौ**) चक्कों को (**इव**) जैसे (**शचीभिः**) अपने कर्मों से (**विष्वक्**) चारों तरफ से (**तस्तम्भ**) दृढ़ता से धारण कर रखता है (**पृथिवीम्**) भूमि को (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्यलोक को ।।८।।

भावार्थ—जो ईश्वर आकाश से जलों की वर्षा की प्रेरणा करता है, जिसने धुरे से पहियों के समान अपने अनन्त कर्मों से भूमि और सूर्यलोक को चारों तरफ से स्थिर बना दिया है, उस ईश्वर के लिए बार बार स्तुतियाँ होवें ।। ८ ।।

३४०—वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २
अ त्वा सखायः सख्या ववृत्यु -
३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः ।
३ १ २र३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥९ ॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (सखायः) उपासक लोग (सख्या) उपासना रूप मित्रता से (ववृत्युः) अपने अनुकूल करते हैं (तिरः) तू हमारे समीप ही है किन्तु अज्ञात है (पुरू अर्णवान्) विस्तृत आकाश में (चित्) ही (जगम्याः) तू सूक्ष्म गति से व्यापक हो रहा है (पितुर्न) पिता के समान (पातम्) रक्षा (आदधीत) करे (वेधाः) विधाता तू (अस्मिन् क्षये) इसी शरीर में (प्रतराम्) उत्तम (दीद्यानः) प्रकाशमान होता हुआ दीर्घायु दे ॥९॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! उपासक लोग उपासना रूप मित्रता से तुझ को अपने अनुकूल करते हैं। हमारी अज्ञानता के कारण तू हमें दूर प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में तू विस्तृत ब्रह्माण्ड में व्यापक है । तू सृष्टिकर्ता है, इसलिए पिता के समान रक्षक है। तू स्वयं प्रकाशमान होता हुआ हमें दीर्घ जीवन प्रदान कर ॥९॥

३४१—गोतमः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः

२ ३ १ २ ३ २र १ २ ३ ३ १ २ ३ २
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३ १ २
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१०॥

पदार्थ—(कः) सुखस्वरूप (अद्य)इस समय (युङ्क्ते) जोड़ता है (धुरि) धुरे में (गाः) वाणी को (ऋतस्य) ज्ञान के (शिमीवतः) अनेक कर्मों वाली (भामिनो) अर्थ को प्रकाशित करने वाली(दुर्हणायून्) न त्यागने योग्य (आसन्) मुख में (एषाम्) इनका (अप्सुवाहः) आकाश में स्थित (मयोभून्) सुखदायक (यः) जो (एषाम्) इनकी (भृत्याम्) पुष्टि को (ऋणधत्) करता है (स) वह (जीवात्) जीवन धारण करता है ॥१०॥

भावार्थ—सुखस्वरूप परमेश्वर ने अब भी ज्ञान के धुरे में कर्मभूमि, अर्थ का प्रकाश करने वाली, लोकों में प्रचलित सुखकारी दुर्हर वाणी को जो रखा है, जो इन वाणियों को तथा इन की भरण सामग्री को अपने मुख में रखता है वह जीवन प्राप्त करता है ॥१०॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

३४२—मधुच्छदा । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

पदार्थ—(गायन्ति) गाते हैं (त्वा) तुझको (गायत्रिणः) उद्गाता (अर्चन्ति) स्तुति करते हैं (अर्कम्) पूज्य तेरी (अर्किणः) ऋग्वेद के जानने वाले (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी जन (त्वा) तुझको (शतक्रतो) हे अनन्त ज्ञानवाले (उत) उत्तम (वंशमिव) वंश के समान (येमिरे) तेरा कीर्त्तन करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! सामवेदी तेरा गान करते हैं, ऋग्वेदी तेरी स्तुति करते हैं । ब्रह्मज्ञानी तेरा कीर्तन करते हैं, जसे [कवि] किसी के वंश का ॥१॥

३४३—जेता । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रं) ईश्वर को (विश्वाः) सब (अवीवृधन्) अधिक गान करते हैं (समुद्रव्यचसम्) आकाश के समान व्यापक (गिरः) स्तुतियां (रथीतमम्) नेता (रथीनाम्) नेताओं के (वाजानाम्) बलों के (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक (पतिम्) स्वामी ॥२॥

भावार्थ—सारी स्तुतियां आकाश के समान व्यापक, नेताओं के नेता, बलों के स्वामी और सज्जनों के रक्षक परमात्मा की स्तुति करती हैं ॥२॥

३४४—गोतमः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥३॥

पदार्थ—(इमम्) इस (इन्द्र) हे जीव ! (सुतं) उत्पन्न जगत् का (पिब) भोगकर (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (अमर्त्यं) मृत्युरहित (मदम्) आनन्द का। (शुक्रस्य) शुद्धस्वरूप (त्वा) तुझको (अभ्यक्षरन्) सुख की वर्षा करें (धाराः) वेदवाणियां (ऋतस्य) परमेश्वर की (सादने) संसार में ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! इस उत्पन्न जगत् का भोग कर । पुनः नित्य ज्येष्ठ आनन्द का उपभोग कर। संसार में शुद्धस्वरूप परमेश्वर की वेदवाणियाँ तुझ पर सुख की वर्षा करें ॥३॥

३४५—अत्रिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥४॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्र) हे राजन् (चित्र) अद्भुत (मे) मेरे (इह) इस घर में (नास्ति) नहीं है (त्वादातम्) जिसका तू दाता है (अद्रिवः) हे न्याय-रूप दण्ड के धारण करनेवाले (राधः) सम्पत्ति को (तत्) उस (नः) हमारे लिए (विदद्वसः) हे धन के स्वामी ! (उभया, हस्त्या) दोनों हाथों से (आभर) दे ॥४॥

भावार्थ—हे अद्भुत सब सम्पत्ति के स्वामी, न्यायरूप दण्ड के धारण करने वाले, राजन् ! जिस सम्पत्ति का तू ही दाता है, तथा जो हमारे समीप नहीं है, उसे अपने दोनों हाथों से हमें दे ।४॥

३४६—तिरश्चिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्य्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥५॥

पदार्थ—(श्रुधी) सुन (हवं) स्तुति [पुकार] (तिरश्च्या) अन्तर्हित भाव के ज्ञाता महा ज्ञानी की (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यः) जो (त्वा) तुझ [तेरी] (सपर्यति) पूजा करता है (सुवीर्य्यस्य) उत्तम बलवाले (गोमतः) गौ आदि से युक्त (रायः) धन (पूर्धि) दे (महान्) महान् (असि) है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् है, जो तेरी उपासना करता है उस महा-ज्ञानी की स्तुति को सुन, गौ आदि से युक्त उत्तम बलशाली धन दे ॥५॥

३४७—गोतमः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्य्यो न रश्मिभिः ॥६॥

पदार्थ—(असावि) तय्यार किया हुआ है (सोमः) सोम (इन्द्र) हे राजन् (ते) तेरे लिए (शविष्ठ) हे बलशाली (धृष्णो) शत्रुनाशक (आगहि) आ (आ) सब प्रकार से (त्वा) तेरी (पृणक्तु) पूर्ण करे (इन्द्रियम्) इन्द्रियों को (रजः) पृथिवी लोक को (सूर्य्यो, न) सूर्य के समान (रश्मिभिः) किरणों से ॥६॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली शत्रुनाशक राजन् ! तू, आ, तेरे लिए सोम तैयार है, जैसे अपनी किरणों से सूर्य पृथ्वी को पूर्ण करता है, वैसे ही तू अपनी इन्द्रियों को परिपूर्ण कर ॥६॥

३४८—नीपातिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (याहि) प्राप्त कर (हरिभिः) अज्ञाननिवारक ज्ञानों से (उप) समीप (कण्वस्य) मेधावी पुरुष के (सुष्टुतिम्) स्तुति को (दिवः) द्युलोक के (अमुष्य) इस (शासतः) शासन करने वाले (दिवं) दिव्य गुण को (यय) प्राप्त करूं (दिवावसो) हे उत्तम गुणों के आधार ॥७॥

भावार्थ—हे दिव्य गुणों के आधार परमेश्वर, अज्ञान-निवारक अपने ज्ञानों के द्वारा मेधावी पुरुष के समान हमारी स्तुति को अच्छी प्रकार स्वीकार कर। द्युलोक के शासक इस तुझ प्रभु के दिव्य गुणों को मैं प्राप्त करूं ॥७॥

३४९—तिरश्चिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अभि त्वा समनूषत गोवो वत्सं न धेनवः ॥८॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (त्वा) तेरे (गिरः) स्तुतियां (रथीरिव) जैसे रथ का स्वामी रथ पर (अस्थुः) आश्रय में उपस्थित है (सुतेषु) यज्ञों में

(गिर्वणः) हे वेदमन्त्रों से स्तुति के योग्य ! (अभि) सब ओर से (त्वा) तेरी (समनूषत) स्तुति करते हैं [स्तावक] (वत्सं, न) बछड़े को (धेनवः) गायों के समान ॥८॥

भावार्थ—हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! प्रत्येक यज्ञ में हमारी स्तुतियाँ तेरे आश्रय में उसी तरह उपस्थित होती हैं जैसे रथ का स्वामी अपने रथ में। स्तुति करनेवाले भी तेरी स्तुति ऐसे ही करते हैं, जैसे गाय अपने बछड़े को हुँकार से बुलाती है ॥८॥

३५०—*तिरश्चिः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धराशीर्वान्ममत्तु ॥९॥

पदार्थ—हे स्तोता लोगो ! (एत, उ) आओ (नु) शीघ्र (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें। (शुद्धम्) शुद्धस्वरूप (शुद्धेन) पवित्र(साम्ना) साम गाने से (शुद्धैः) पवित्र (उक्थैः) स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) शक्ति में सब से महान् (शुद्धैः) हमारे पवित्र स्तोत्रों से (आशीर्वान्) आशीर्वाद देने वाला (ममत्तु) हम पर प्रसन्न होवे ॥९॥

भावार्थ—हे स्तुति करने वालो ! शीघ्र आओ, हम एक साथ पवित्र सामगान से तथा पवित्र ऋग्वेद के स्तोत्रों से, अपनी शक्ति से महान् और शुद्धस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करें। वह हमारे पवित्र स्तोत्रों से प्रसन्न होकर हमें आशीर्वाद दें ॥९॥

३५१—*शंयुः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो रयिं वो रयिंतमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो (रयिम्) धन को (वः) तुम लोगों को (रयिंतमः) सबसे उत्तम सम्पदा वाला (यः) जो (द्युम्नैः) यशों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशस्वी (सोमः) संसार (सुतः) उत्पन्न (सः) वह (इन्द्र) हे जीव ! (ते) तेरे लिये (अस्ति) है (स्वधापते) हे प्रकृति के भोक्ता ॥१०॥

भावार्थ—जो स्वयं सबसे उत्तम संपदाओं वाला और यशों से अत्यन्त यशस्वी है वह परमेश्वर तुम्हें धन प्रदान करे। हे प्रकृति के भोक्ता स्वामी जीव ! उत्पन्न हुआ यह संसार तेरे लिए हर्षकारी है ॥१०॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

चतुर्थोऽध्यायः

३५२—*भरद्वाजः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥

पदार्थ—(अस्मै) इस (पिपीषते) पान करने की इच्छा वाले (विश्वानि) सम्पूर्ण देने योग्य वस्तुओं को (विदुषे) विद्वान् के लिए (भर) दे (अरङ्गमाय) विद्या का पारंगत (जग्मये) विज्ञान की वृद्धि के लिए (अपश्चादध्वने) उत्तम व्यवहारों में आगे चलने वाले (नरः) नेता (प्रतिभरतु) तुझे भी ज्ञान दे ॥१॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! विज्ञान की उन्नति के लिए वेदविद्या में पारङ्गत [पूर्ण विद्वान्] उत्तम व्यवहारों में आगे चलने वाले अधिकारी विद्वान् को सम्पूर्ण देने योग्य वस्तु दे। विद्या का नेता विद्वान् भी तुझे ज्ञान दे ॥१॥

३५३—*वामदेवः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
महान्तं पूर्विणेष्ठाम् उग्रं वचो अपावधीः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (नः)हमें (वयः) आयु (वयः, शयं) जीव (महान्तं) महत्तर (गह्वरेष्ठाम्) अन्तःकरणस्थ (महान्तं) महान् (पूर्विणेष्ठाम्) पूर्व जन्म से आने वाले (उग्रम्) कठोर (वचः) वचन को (अपावधीः) दूर कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें आयु, महान् जीव तथा अन्तःकरणस्थ पूर्व जन्म से आए बुद्धितत्त्व को ज्ञात करा। हमारे कठोर वचन को दूर कर ॥२॥

३५४—*प्रियमेधा । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

२ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुवीकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वा) तुझ को (रथं यथा) रथ के समान (ऊतये) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए (सुम्नाय) सुख के लिए (आ वर्तयामसि) हम स्तुतियों से अपने अनुकूल करते हैं (तुवीकूर्मिम्) सृष्टि की रचना आदि अनेक कर्म करने वाले (ऋतीषहम्) हमारे शत्रुरूप बुरे विचारों को दबाने वाले (इन्द्रम्) ईश्वर को (शविष्ठ) अत्यन्त बलवान् (सत्पतिम्) सन्तों के पालक ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! हम रथ के समान अपनी तृप्ति, रक्षा और सुख के लिए सृष्टि की रचना आदि अनेक कर्मों के करने वाले हमारे बुरे विचारों को दबाने वाले अत्यन्त बलवान् और सन्तों के पालक तुझ को स्तुतियों के द्वारा अपने अनुकूल करते हैं ॥३॥

३५५—*प्रगाथः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ २
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

पदार्थ—(स) वह ईश्वर (पूर्व्यः) प्रथम (महोनाम्) धनवानों (वेनः) ज्ञानवान् (क्रतुभिः) सब कर्मों के द्वारा (आनजे) प्राप्त होता है (यस्य) जिसके (द्वारा) द्वारा ही सारे उत्तम काम होते हैं (मनुः) सब का ज्ञाता (पिता) सब का पालन करने वाला, (देवेषु) विद्वानों में (धियः) ज्ञानों को (आनजे) देता है ॥४॥

भावार्थ—धनवानों का धनवान्, पूज्यों का पूज्य और ज्ञान का भण्डार वह ईश्वर ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा प्राप्त होता है। उसके द्वारा ही सारे उत्तम काम होते हैं। वह सर्वज्ञ तथा सब का पिता है। वही विद्वानों को ज्ञान देता है ॥४॥

३५६—*श्यावाश्वः । अनुष्टुप् । मरुतः ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५॥

पदार्थ—(यदि) जिस प्रदेश में यज्ञ के लिए (वहन्ति) ले जाते हैं (आशवः) शीघ्र कार्यसाधन में तत्पर (भ्राजमानाः) ओजस्वी कर्मकाण्डी पुरुष (रथेषु) रथों पर (आ) सब प्रकार से (पिबन्तः) पान करते हुए (मदिरं) प्रसन्न करने वाले (मधु) सोमरस (तत्र) उस प्रदेश में [वर्षा के द्वारा] (श्रवांसि) विविध प्रकार के अन्नादि भोग के पदार्थ (कृण्वते) उत्पन्न करते हैं ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रदेश में यज्ञ करने के लिए शीघ्र कार्य करने में तत्पर और तेजस्वी कर्मकाण्डी पुरुष प्रसन्न करने वाले मधुर रस का पान करते हुए यज्ञ के साधन को रथों पर रख कर पहुंचाते हैं, उस प्रदेश में वर्षा के द्वारा विविध प्रकार के अन्नादि उत्पन्न होते हैं ॥५॥

३५७—*शंयुः । अनुष्टुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

पदार्थ—(त्यम् उ) उस (वः) तुझ (अप्रहणम्) उपासकों पर कृपा करने वाले (गृणीषे) स्तुति करता हूँ (शवसस्पतिम्) लोकों के स्वामी (इन्द्रम्)

ईश्वर को (विश्वासाहम्) हमारे सब प्रकार के शत्रुओं को दबाने वाले (नरं) उत्तम मार्ग पर चलनेवाले (शचिष्ठम्) शक्तिमान (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू भक्तों पर कृपा करनेवाला, बलों का एक मात्र स्वामी, हमें उत्तम मार्ग पर चलाने वाला, शक्तिमान् और सर्वज्ञ है। मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥६॥

३५८—वामदेवः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २ ३ १ २र ३१२

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।

३ २ ३ १२ ३२ ३ १२

सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥७॥

पदार्थ—(दधिक्राव्णः) धर्म के धारण करनेवाले तथा संसार के संचालक (अकारिषम्) करें (जिष्णोः) संसार पर विजय प्राप्त करनेवाले (अश्वस्य) व्यापक (वाजिनः) बलवान् (सुरभि) सुगन्ध द्रव्य को (नः) हमारे (मुखा) मुख के साथ सब इन्द्रियों के कल्याण के लिए (करत्) करे (प्र) उत्तम (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (तारिषत्) बढ़ावें ॥७॥

भावार्थ—मैं धर्म को धारण कर संसार को अपने नियम से चलाने वाले, सबसे बढ़कर बलवान् और व्यापक परमात्मा की स्तुति करता हूँ कि वह ईश्वर मेरे सब अङ्गों के कल्याण के लिए सुगन्धित पदार्थ दे और मेरी आयु भी बढ़ावे ॥७॥

३५९—जेता। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

३२ ३ १ २र ३ १ २र

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।

२ ३ १ २ ३ १२ ३१ ३ १२ ३२

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥

पदार्थ—(पुरां) मिले हुए घने पदार्थों को (भिन्दुः) छिन्न-भिन्न करनेवाला (युवा) अपने गुणों से पदार्थों का मेल करानेवाला (कविः) दृश्य पदार्थों का अपनी किरणों से प्रकाश करने वाला (अमितौजाः) अनन्त प्रकाश वाला (अजायत) उत्पन्न होता है (इन्द्रः) सूर्य (विश्वस्य) सारे (कर्मणः) कार्यों का (धर्ता) अपने आकर्षण गुणों से धारण करनेवाला (वज्री) किरणरूप शस्त्रोंवाला (पुरुष्टुतः) अपने गुणों से स्तुति के योग्य ॥८॥

भावार्थ—सूर्य घने पदार्थ मेघों को छिन्न भिन्न करता है। वह प्रकाश करने वाला है, और अनेक पदार्थों का मेल कराता है। वह समस्त कार्यों का धारक किरण रूप शस्त्रों का धारण करने वाला तथा प्रशंसनीय है ॥८॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

३६०—प्रियमेधः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे।

३ १२ ३१२३ २३ १२

धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१॥

पदार्थ—(प्र प्र) उत्कृष्ट (वः) तू (त्रिष्टुभम्) तीन लोक, तीनशरीरसम्बन्धि (इषम्) ज्ञान को (वन्दद्वीराय) वन्दना करनेवाले वीर (इन्दवे) ऐश्वर्यशाली (धिया) कर्म से (वः) तेरे (मेधसातये) यज्ञादि के लिए (पुरन्ध्या) ज्ञान से (विवासति) परिचर्य्या करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वन्दना करने वाले वीर तथा ऐश्वर्यशाली जीव के लिए, तीन लोक, तीन शरीर तथा नाम स्थान और जन्म को प्रदान करता है। जीव यज्ञादि करने के लिए तेरी परिचर्य्या करता है ॥१॥

३६१—वामदेवः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति।

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २र ३ १ २

ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२॥

पदार्थ—(कश्यपस्य) सर्वज्ञ (स्वर्विदः) परमार्थ तत्त्व को जाननेवाले (यौ) जिन दोनों को (आहुः) कहते हैं (सयुजौ) साथ में संयुक्त (इति) ऐसा (ययोः) जिन दोनों के (विश्वं) सकल (अपि) भी (व्रतं) कर्म (यज्ञं) संसार (धीराः) धीर पुरुष (निचाय्य) निश्चय करके ॥२॥

भावार्थ—परमार्थ प्रकाश तत्त्व को जानने वाले धीर पुरुष, संसार यज्ञ को जानकर, सर्वद्रष्टा परमेश्वर के जिन दो को सहयोगी कहते हैं, जिन दोनों का कार्य यह सब संसार है, वे प्रकृति और जीव हैं ॥२॥

३६२—प्रियमेधातिथिः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३क २र

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३॥

पदार्थ—(अर्चत) स्तुति करो (प्रार्चत) उत्तम प्रकार से स्तुति करो (नरः) हे नेता लोगो ! (प्रियमेधासः) हे यज्ञ के प्रेमी पुरुषो ! (अर्चत) अवश्य स्तुति करो (अर्चन्तु) स्तुति करें (पुत्रकाः) हमारे पुत्र और पौत्र भी स्तुति करें (उत) और (पुरम्) हमारी कामनायें सफल करने वाले (इत्) ही की (धृष्णु) अनवरत या बिना दबे (अर्चत) स्तुति करो सब मिलकर ॥३॥

भावार्थ—हे नेता लोगो ! ईश्वर की स्तुति करो। हे यज्ञ के प्रेमी पुरुषो ! तुम लोग भी ईश्वर की स्तुति करो। हमारे पुत्र और पौत्र भी उसी की स्तुति करें। संसार के सब मनुष्य, हमारी कामनाओं को सफल बनाने तथा बुरी भावनाओं को दूर भगाने वाले ईश्वर की ही स्तुति करें ॥३॥

३६३—मधुच्छन्दा। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे।

३ १ २र ३१२ ३१२३१२

शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥४॥

पदार्थ—(उक्थम्) वेदमन्त्ररूप स्तोत्र (इन्द्राय) जीव के लिए (शंस्यम्) प्रशंसा के योग्य (वर्धनम्) विद्या आदि शुभ गुणों के बढ़ानेवाले (पुरुनिःषिधे) वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों में विचारनेवाले (शक्रः) शक्तिमान् ईश्वर (यथा) जैसे कोई (सुतेषु) पुत्रों के विषय में (नः) हमारे (रारणत्) वार बार उपदेश करते हैं (सख्येषु च) मित्रों के विषय में भी ॥४॥

भावार्थ—जैसे हमारे मित्रों और पुत्रों को कोई परोपकारी पुरुष उपदेश करता है, ऐसे सर्वशक्तिमान् ईश्वर कामों में विचरने वाले जीव के लिए विद्यादि शुभ गुणों के बढ़ाने वाले प्रशंसा के योग्य वेदमन्त्रों का वार वार उपदेश करता है ॥४॥

३६४ - प्रियमेधाः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

३ १२ ३ २ ३१२ ३१२

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः।

१२ ३ ३१ २३ १ २

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥५॥

पदार्थ—(विश्वानरस्य) सारे संसार का नेतृत्व करनेवाले (वः) तुझको (पतिम्) स्वामी (अनानतस्य) न दबने वाले (शवसः) बल के (एवैः) ज्ञान और कर्म के द्वारा (च) और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (ऊती) रक्षा के लिए (हुवे) आह्वान करता हूँ (रथानाम्) शरीर की ॥५॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! संसार पर शासन करनेवाले और कभी न दबने वाले बल के स्वामी तुझ को सारी कामनाओं की पूर्ति तथा मनुष्यों के शरीरों की रक्षा के लिए पुकारता हूँ ॥ ५ ॥

३६५—भरद्वाजः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १२

स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः।

३ १ २र३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥६॥

पदार्थ—(सः) वह (घा) निश्चय (यः) जो (ते) तेरे (दिवः) सूर्य के समान (नरः) मनुष्य (धिया) ज्ञान से (मर्तस्य) मनुष्य के (शमतः) शंयुक्त (ऊती) रक्षा के द्वारा (स) वह (बृहतः) महान् (दिवः) दिव्यस्वरूप (द्विषः) शत्रुओं को (अंहः) पाप के (न) समान (तरति) पार कर जाता है ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर, जो जो द्युलोक के नायक के समान दिव्यगुण का ग्राहक मनुष्य, आप के दिए ज्ञान के द्वारा पुरुष के अनुकूल व्यापार करता है, वह तुझ महान् दिव्य स्वरूप की रक्षा के द्वारा अपने शत्रुओं को पाप के समान लाँघ जाता है ॥६ ॥

३६६—अत्रिः। अनुष्टुप्। इन्द्रः।

३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २

विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो।

१ २ ३ १ २

अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥७॥

पदार्थ—(विभोः) व्यापक (ते) तेरा (इन्द्र) हे ईश्वर ! (राधसः) धन का (विभ्वी) पर्याप्त (रातिः) दान (शतक्रतो) हे ज्ञान के भण्डार ! (अथ) इस लिये (नः) हमें (विश्वचर्षणे) हे संसार के साक्षी ! (द्युम्नम्) यशदायक धन (सुदत्र) हे सुन्दर दानी ! (मंहय) दे ॥७॥

भावार्थ—हे ज्ञान के भण्डार ! संसार के साक्षी ! सुन्दर दानी ! परमेश्वर! तू व्यापक है और तेरी सम्पत्ति का दान भी व्यापक है। इसलिए तू हमें यशदायक धन दे ॥७॥

३६७—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

१२ ३१ २ ३ १ २र

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जु नि ।

२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८॥

पदार्थ—(**वयः**) पक्षी (**चित्**) ही (**ते**) उस (**पतत्रिणः**) पक्षोंवाले (**द्विपात्**) दो पांववाले मनुष्यादि (**चतुष्पाद्**) चार पांववाले पशु आदि (**अर्जु नि**) प्रकाशयुक्त (**उषः**) उषा (**प्रारन्**) विचरते हैं (**ऋतूम् अनु**) ऋतुओं के अनुसार (**दिवः**) आकाशमण्डल के (**अन्तेभ्यः**) छोर से (**परि**) सब ओर ॥८॥

भावार्थ—जब प्रकाशमान उषा ऋतुओं के अनुसार आकाशमण्डल से प्रकाशित होती है, तब सारे पशु पक्षी तथा मनुष्यादि वर्ग कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं ॥८॥

३६८—*वितः । अनुष्टुप् । विश्वेदेवाः ।*

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।

१ २ ३ २उ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २

कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥९॥

पदार्थ—(**अमी**) ये (**ये**) जो (**देवाः**) सूर्यादि लोक (**स्थन**) हैं (**मध्ये**) मध्य में (**आरोचने**) प्रकाशमान द्युलोक में (**दिवः**) परमेश्वर के (**कत्**) कहां (**ऋतं**) सत्यनियम (**वः**) उनका (**कत्**) कहां (**अमृतं**) कारणतत्त्व (**कः**) क्या (**प्रतना**) पुरातन (**आहुतिः**) प्रलय ॥९॥

भावार्थ—जो प्रकाशमान द्युलोक में स्थित दिव्यलोक हैं, उनका सत्य नियम कहां रहता है ? उनका कारण तत्त्व कहां है ? और उनका प्रलय कहां है ?

उत्तर—परमेश्वर और आकाश में ॥९॥

३६९—ऋषिदेवताछन्दांसि पूर्ववत् ।

२ ३ १२ ३ २ ३ १२ ३ १२

ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।

१ २र ३ २ ३ १ २

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥१०॥

पदार्थ—(**ऋचं**) ज्ञानकाण्ड रूप ऋग्वेद (**साम**) अमर होने का साधन उपासनाकाण्ड रूप सामवेद (**यजामहे**) अभ्यास करते हैं (**याभ्याम्**) जिन दोनों से (**कर्माणि**) जप, उपासना आदि सब काम (**कृण्वते**) किये जाते हैं तथा मानव समाज के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं (**वि**) विशेष रूप से (**ते**) ये दोनों (**सदसि**) सभा या यज्ञमण्डप में (**राजतः**) शोभा पाते हैं और (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**देवेषु**) प्रत्येक देव के समीप (**वक्षतः**) पहुंचाते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हम ऋग्वेद और सामवेद का अभ्यास करते हैं। इन्हीं के द्वारा उत्तम काम किये जाते हैं। ये ही सभा और यज्ञमण्डप में शोभा पाते हैं। ये ही देवों का भाग उन तक पहुँचाते हैं ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

३७०—*रेभः । जगती । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

पदार्थ—(**विश्वाः**) सारी (**पृतनाः**) संग्राम में फैली हुई दुश्मन की सेना (**अभिभूतरम्**) जीतने में समर्थ (**नरः**) जनता (**सजूः**) संगठित होकर (**ततक्षुः**) शस्त्रादि से सुसज्जित करती हैं (**इन्द्रम्**) अध्यक्ष या शासन करने वाले को (**जजनुः**) चुनते हैं (**च**) भी (**राजसे**) राजभार ग्रहण करने के लिए (**क्रत्वे**) परोपकार के कार्यों को ठीक चलाने के लिए भी (**वरे**) श्रेष्ठ (पत्थर आदि से बने हुए) (**स्थेमनि**) चिरस्थायी सुरक्षित स्थान [किले] में विराजमान (**आमुरीम्**) शत्रु का संहार करने वाले (**उग्रम्**) तेजस्वी (**ओजिष्ठम्**) बलवान् (**तरसम्**) विजय प्राप्त करने की योग्यता वाले (**तरस्विनम्**) वेगवाले ॥१॥

भावार्थ—सारे मनुष्य मिलकर संग्रामस्थ सेना को जीतने वाले चिरस्थायी दुर्ग में स्थित शत्रु का संहार करने वाले, प्रचण्ड, ओजस्वी, तीव्र, बलशाली राजा भार चलाने के लिए चुनते हैं और सुसज्जित करते हैं ॥१॥

३७१—*सुदेवः । जगती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद्दस्युं नर्यम् विवेरपः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२॥

पदार्थ—(**श्रत्**) सत्य को (**ते**) तेरे (**दधामि**) धारण करता हूँ (**प्रथमाय**) प्रथम (**मन्यवे**) ज्ञान के लिए (**अहन्**) नाश करता है (**यत्**) जो (**दस्युं**) अकार्य को (**नर्यम्**) मनुष्यसम्बन्धि (**विवेः**) खोल देता है (**अपः**) जल को (**उभे**) दोनों (**यत्**) जिससे (**त्वा**) तेरी (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक (**धावताम्**) चलते हैं (**अनु**) अनुकूलता में (**भ्यसात्**) गति करते हैं (**ते**) तुम्हारे (**शुष्मात्**) बल से (**पृथिवी**) पृथिवी (**चित्**) भी (**अद्रिवः**) हे आदरणीय ॥२॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मैं तेरे ज्ञान के प्रति सत्यता को धारण करता हूँ या श्रद्धा रखता हूँ। तू मनुष्यसम्बन्धी शत्रु अकाल को नष्ट करता है। जलों को वर्षाता है। तेरे बल से भूमि भी डरती है तथा द्यु और पृथिवी तेरी अनुकूलता में चलते हैं ॥ २ ॥

३७२—*वामदेवः । जगती । इन्द्रः ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २

स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३॥

पदार्थ—(**समेत**) सम्मिलित होकर आओ (**विश्वाः**) सब (**ओजसा**) आत्मिक बल से (**पतिम्**) स्वामी (**दिवः**) द्युलोक के (**यः**) जो (**एक इत्**) एक ही (**भूः**) होता है (**अतिथिः**) पूज्य (**जनानाम्**) मनुष्यमात्र के (**सः**) वह (**पूर्व्यः**) सनातन है (**नूतनम्**) नवीन (**विजिगीषन्तम्**) अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने की इच्छा करने वाले को (**वर्तनीः**) मार्ग (**अनुवावृते**) चलाता है (**एक इत्**) एक ही ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे उपासक पुरुषो ! तीनों लोकों के स्वामी परमेश्वर की स्तुति करने के लिये मिलकर आओ और स्तुति करो। केवल वही एक मनुष्यमात्र का पूज्य है। वह सनातन परमात्मा नए उपासक को इन्द्रियों पर विजय पाने वाले एक ही मार्ग पर चलाता है ॥३॥

३७३—*सव्यः । जगती । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४॥

पदार्थ—(**इमे**) ये (**ते**) तेरे (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**ते**) वे (**वयम्**) हम लोग (**पुरुष्टुत**) बहुतों से स्तुति के योग्य (**ये**) जो (**त्वारभ्य**) तेरे आधार पर ही (**चरामसि**) चलते हैं (**प्रभूवसो**) हे पर्याप्त सम्पत्तिवाले प्रभो ! (**नहि**) नहीं (**त्वदन्यः**) तुझ से भिन्न कोई (**गिर्वणः**) हे वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य पिता ! (**गिरः**) स्तुतियों को (**सघत्**) सह सकता है (**क्षोणीरिव**) भूमि के समान (**प्रतिहर्य**) स्वीकार कर (**तत्**) इसलिए (**नः**) हमारे (**वचः**) स्तुति वचन को ॥४॥

भावार्थ—हे सब सम्पत्तियों के स्वामी प्रभो ! हे वेद-मन्त्रों तथा बहुतों से स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! हम सब तेरे हैं और तेरे ही आश्रय से निर्भय होकर संसार में विचरते हैं। तुझ से भिन्न कोई भी हमारी स्तुतियों का पात्र नहीं। हे नाथ ! तू भूमि के समान सहनशील है, इसलिये हमारे साधारण स्तुति-वचन को स्वीकार कर ॥४॥

३७४—*विश्वामित्रः । जगती । इन्द्रः ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यामिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥५॥

पदार्थ—(**चर्षणीधृतम्**) मनुष्यमात्र के पालन-पोषण और धारण करने वाले (**मघवानम्**) सब से बढ़कर दानी (**उक्थ्याम्**) स्तुति करने के योग्य (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**गिरः**) वेदवाणियां (**बृहतीः**) ज्ञान और कर्म के द्वारा बढ़ी-चढ़ी (**अभ्यनूषत**) स्तुति करती हैं। (**वावृधानम्**) अपने गुणों से महान् (**पुरुहूतं**) बहुतों से आह्वान करने के योग्य (**सुवृक्तिभिः**) निर्दोष स्तुतियों से (**अमर्त्यम्**) नित्य (**जरमाणम्**) जिसकी स्तुति की जाती है (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन ॥५॥

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यमात्र का धारण तथा पालन-पोषण करने वाला, सबसे बड़ा दानी, अपने गुणों से महान्—नित्य समय पर स्तुति और उपासना के योग्य है। वेदवाणियां निर्दोष स्तुतियों के द्वारा उसी का प्रतिदिन वर्णन करती हैं ॥५॥

३७५ – *कृष्णः । जगती । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परिष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥६॥

पदार्थ—(**अच्छा**) प्राप्त करने के लिए (**वः**) तुम्हारी (**इन्द्रम्**) ईश्वर को (**मतयः**) स्तुतियां (**स्वयु वः**) सुख देने वाली (**सध्रीचीः**) एक साथ (**विश्वाः**) सारी (**उशतीः**) पहुँचने की कामना वाली (**अनूषत**) स्तुति करते हैं (**परिष्वजन्त**) आश्रय में पहुँचती हैं (**जनयः**) पत्नियां (**यथा**) जैसे (**पतिम्**) पति को (**मर्यन्न**) मनुष्य को जैसे (**शुन्ध्युम्**) शुद्ध करने वाले (**मघवानम्**) धनवान् को निर्धन जैसे (**ऊतये**) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—पत्नियां जैसे अपने अपने पति के आश्रय में पहुँचती हैं, शुद्ध होने वाले जैसे शुद्धि करने वाले की शरण में जाते हैं और निर्धन अपनी रक्षा के लिए धनवान् का आश्रय लेते हैं, वैसे ही विशेष सुख की तथा परमात्म देव की प्राप्ति की कामना से की हुई हमारी सारी स्तुतियां उसी की शरण में पहुँचती हैं ॥६॥

३७६—*अङ्गिरा, सव्य इति भरतः। जगती। इन्द्रः।*

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम् इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३१ २र
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७॥

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार (**त्यं**) उस (**मेषम्**) कामनाओं की वर्षा करने वाले (**पुरुहूतम्**) बहुत विद्वानों के द्वारा आह्वान के योग्य (**ऋग्मियम्**) ऋचाओं द्वारा स्तुति के योग्य (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**गीर्भिः**) पवित्र वेद की वाणियों से (**मदता**) स्तुति करो (**वस्वः**) धन का (**अर्णवम्**) अगाध समुद्र (**यस्य**) जिसका (**द्यावः**) द्यु लोक (**न**) नहीं (**विचरन्ति**) लङ्घन करता है (**मानुषम्**) मनुष्यों के हितकारक (**भुजे**) अपने पालन के लिए (**मंहिष्ठम्**) अत्यन्त महान् (**अभि**) सब प्रकार (**विप्रम्**) मेधावी की (**अर्चत**) स्तुति करो ॥७॥

भावार्थ—हे उपासना करने वालो! बहुतों से पुकारे जाने योग्य, मन्त्रों द्वारा स्तुति के योग्य, कामनाओं की वर्षा करने वाले, सम्पत्तियों के अगाध समुद्र उस ईश्वर की स्तुति करो। सूर्यादि लोक उसके अधीन रहते हैं। वह मनुष्यों का हित करनेवाला और महान् है। अपनी रक्षा के लिए उस सर्वज्ञ ईश्वर की स्तुति करो।७।

३७७—*सव्यः। जगती। इन्द्रः।*

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते।
२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथम् इन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥८॥

पदार्थ—(**त्यम्**) उस (**सुमेषं**) कामनाओं को उत्तमता से पूर्ण करनेवाले (**महया**) स्तुतियों से (**स्वर्विदम्**) सर्वज्ञ (**शतं**) सैंकड़ों (**यस्य**) जिसकी (**सुभुवः**) मनोहर स्तुतियां (**साकम्**) एक साथ (**ईरते**) बोली जाती हैं (**अत्यं न**) अश्व के समान (**वाजम्**) वेगवाले (**हवनस्यदं**) पुकार सुनने वाले (**रथम्**) रमणीय (**आ**) सब प्रकार (**इन्द्रं**) ईश्वर को (**ववृत्याम्**) अपनी तरफ करता हूँ (**अवसे**) रक्षा के लिए (**सुवृक्तिभिः**) निर्दोष स्तुतियों के द्वारा ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिसकी सैकड़ों स्तुतियां एक साथ बोली जाती हैं, ऐसे उस सर्वज्ञ प्रभु की हम स्तुति करते हैं। वेगवान् अश्व के समान मनोहर उस परमेश्वर को रक्षा के लिए स्तुतियों द्वारा अपनी तरफ फेरते हैं ॥ ८ ॥

३७८—*भरद्वाजः। जगती। इन्द्रः।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३१ २
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९॥

पदार्थ—(**घृतवती**) पानी और तेजवाले (**भुवनानां**) संसार के (**अभिश्रिया**) आश्रय (**उर्वी**) अनेक अवयवों वाले (**पृथ्वी**) विस्तृत (**मधुदुघे**) साक्षात् और परम्परा से जल की वर्षा करने वाले (**सुपेशसा**) सुन्दर रूपवान् (**द्यावापृथिवी**) सूर्यलोक और पृथिवीलोक (**वरुणस्य**) वरणीय (**धर्मणा**) धारणशक्ति से (**विष्कभिते**) अपनी जगह से इधर उधर नहीं होते (**अजरे**) चिरस्थायी (**भूरिरेतसा**) जिनके द्वारा बहुत से काम होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—पानी और तेजवाले भुवनों के आश्रय, महान् विस्तृत जल को देने वाले, सुन्दर रूपवान्, अजीर्ण, शक्तिशाली द्यु और पृथिवी लोक वरणीय परमेश्वर और वायु के आधार पर थमे हुए हैं ॥ ९ ॥

३७९—*मान्धाता। महापङ्क्तिः। इन्द्रः।*

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।
३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१०॥

पदार्थ—(**उभे**) दोनों (**यत्**) जो (**इन्द्र**) हे परमेश्वर! (**रोदसी**) द्यु और पृथिवीलोक (**आपप्राथ**) विस्तृत किया (**उषा इव**) उषा के समान (**महान्तं महीनां**) महानों के भी महान् (**त्वा**) तुझ (**सम्राजं**) सम्राट् (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**देवी**) वेदवाणी (**जनित्री**) उत्पन्न करने वाली (**अजीजनत्**) उत्पन्न करती है (**भद्रा**) मङ्गलकारिणी (**जनित्री**) पैदा करने वाली (**अजीजनत्**) पैदा करती है ॥ १० ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! उषा के समान तुमने द्यु और पृथ्वीलोक को विस्तृत किया है। बड़ों में भी महान् मनुष्यों के सम्राट् तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ। लोकों को पैदा करनेवाली वेदवाणी संसार को प्रकट करती है और कल्याणकारिणी वह प्रकट भी होती है ॥ १० ॥

३८०—*कुत्सः। जगती। इन्द्रः।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणम् मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥११॥

पदार्थ—(**प्रमन्दिने**) प्रशंसा के योग्य (**पितुमद्**) अन्नयुक्त (**अर्चत**) उच्चारण करो (**वचः**) सत्कार वचन (**यः**) जो (**कृष्णगर्भा**) कठिन स्वभाव-वाला (**निरहन्**) हनन करता है (**ऋजिश्वना**) अपनी शक्ति से (**अवस्यवः**) रक्षार्थी हम लोग (**वृषणं**) सुख के वर्षक (**वज्रदक्षिणम्**) वज्र को धारण करने वाले (**मरुत्वन्तं**) चांदी आदि से युक्त (**सख्याय**) मित्रता के लिए (**हुवेमहि**) पुकारते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम प्रशंसा के लिए योग्य राजा का अन्नादि सहित सत्कार करो। जो प्रचण्ड स्वभाववाला समस्त शत्रुओं को अपनी नीति से नष्ट करता है। रक्षार्थी हम लोग सुख के दाता, शस्त्रधारी, सुवर्णादि से युक्त, उसकी मैत्री के लिए उसे पुकारते हैं ॥ ११ ॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

३८१—*नारदः। उष्णिक्। इन्द्रः।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर! तू (**सुतेषु**) सुसम्पन्न होने पर (**सोमेषु**) सोम लता आदि मिश्रित यज्ञ के साधन के (**क्रतुम्**) यज्ञादि उत्तम काम को (**पुनीषे**) पवित्र करता है (**उक्थ्यम्**) गुण की दृष्टि से प्रशंसा के योग्य (**विदे**) प्राप्त करने के लिए (**वृधस्य**) उत्तम (**दक्षस्य**) बल को (**महान्**) बड़ा है (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह यज्ञ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सोम लता आदि यज्ञ के साधनों के तैयार होने पर प्रशंसा के योग्य, परोपकरी, श्रेष्ठ काम को पवित्र करता है, क्योंकि उत्तम बल प्राप्त करने के लिए परोपकार एक महान् साधन है ॥ १ ॥

३८२—*गोषूक्ति वाश्वसूक्ती वा। उष्णिक्। इन्द्रः।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गोर्भिस्तविषमा विवासत ॥२॥

पदार्थ—(**तमु**) उसी के (**अभि**) सब प्रकार से (**प्रगायत**) गीत गाओ (**पुरुहूतम्**) बहुतों से जिसका आह्वान किया जाता है (**पुरुष्टुतम्**) बहुतों से जिसकी स्तुति की जाती है (**इन्द्रम्**) उस परमेश्वर की (**गीर्भिः**) वेदवाणियों से (**तविषम्**) महान् (**आ विवासत**) आज्ञापालन रूप सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग बहुतों से पुकारे जाने तथा स्तुति करने योग्य महान् उस परमेश्वर की ही मन्त्र द्वारा स्तुति करो। उस की आज्ञा का पालन करो ॥ २ ॥

३८३—*ऋषिछन्दोदैवतानि पूर्ववत्।*

२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३॥

पदार्थ—(**तम्**) उस प्रसिद्ध (**ते**) तेरे (**मदम्**) शक्ति की (**गृणीमसि**) हम लोग स्तुति करते हैं (**वृषणम्**) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (**पृक्षु**) संग्रामों में (**सासहिम्**) साहस देने वाले (**उ**) पादपूरक (**लोककृत्नुम्**) संसार की रचना करनेवाले (**अद्रिवः**) हे मेघ और पर्वत आदि महान् सृष्टि की रचना करने वाले! (**हरिश्रियम्**) सामवेद और ऋग्वेद के आश्रय ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे आदरणीय परमेश्वर! कामनाओं की पूर्ति करनेवाले, संग्रामों में साहस देनेवाले, संसार की रचना करने वाले, साम और ऋक् के आश्रय, तेरी महान् शक्ति की हम प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

३८४—पर्वतः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥४॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**सोमम्**) अमृत (**इन्द्र**) हे जीव ! (**विष्णवि**) व्यापक परमेश्वर में है (**यद्वा**) अथवा जो (**घ**) प्रसिद्ध (**त्रिते**) वेदत्रयी में है (**आप्त्ये**) आप्त पुरुष [धर्म के साक्षात् करनेवाले] (**यद्वा**) अथवा जो (**मरुत्सु**) यज्ञादि परोपकार करनेवालों में है (**मन्दसे**) तृप्त होता है (**सम्**) सम्यक् (**इन्दुभिः**) परम ऐश्वर्य रूप इन सबों से ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे इन्द्रियों के स्वामी जीव ! जो आनन्दरस सर्वव्यापक परमात्मा में है, अथवा जो आनन्द, ज्ञान और कर्म, वेदत्रयी में है, आप्त [धर्म के साक्षात् करने वाले] पुरुष में है, अथवा जो आनन्द यज्ञादि परोपकार के कामों को करने वाले में है, तू उन सबों से तृप्त होता है ॥ ४ ॥

३८५—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

३२उ ३१ २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥५॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**मधोः**) मधु से भी (**मदिन्तरम्**) अत्यन्त आनन्द दायक (**सिञ्च**) यज्ञ के पात्र को पूरा कर (**अध्वर्यो**) ! हे कल्याणकारी यज्ञ के ऋत्विक् ! (**अन्धसः**) अन्न से तैयार (**एवाहि**) ऐसे ही (**वीर**) हे वीर अध्वर्यु ! (**स्तवते**) स्तुति की जाती है (**सदावृधः**) परोपकार के करनेवालों को सर्वदा बढ़ावा देने वाले परमात्मा की ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे यज्ञ आदि उत्तम काम करने वाले पुरुष ! अन्न से तैयार, मधु से भी अधिक आनन्द देने वाले, सोमरस को यज्ञ के लिए यज्ञ-पात्र में भर कर रखो । हे वीर ! यज्ञ आदि उत्तम काम करना ही सर्वदा उन्नत करने वाले परमात्मा की स्तुति कहा गया है ॥ ५ ॥

३८६—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥६॥

पदार्थ—(**आ**) भलीभांति (**इन्दुम्**) यज्ञ को (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिए (**सिञ्चत**) सम्पन्न करो (**पिबाति**) रक्षा करता है (**सोम्यं**) ऐश्वर्यकारी (**मधु**) ज्ञान की । (**प्र**) उत्तम (**राधांसि**) धनों को (**चोदयते**) देता है (**महित्वना**) महिमा से ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिए सब प्रकार से अपने यज्ञ को सम्पन्न कर ! वह ऐश्वर्यकारी ज्ञान की रक्षा करता है तथा अपनी महिमा से धनादि पदार्थों को देता है ॥ ६ ॥

३८७—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७॥

पदार्थ—(**एत**) आओ (**नु**) जल्द (**इन्द्रम्**) परमेश्वर की (**स्तवाम**) स्तुति करें (**सखायः**) हे मित्रो ! (**स्तोम्यम्**) स्तुति के योग्य (**नरम्**) हमारे नेता (**कृष्टीः**) उल्टे मार्ग पर चलनेवाली प्रजा को (**यः**) जो (**विश्वाः**) सारी (**अभ्यस्ति**) सीधी राह पर चलने को विवश करता है (**एक इत्**) केवल एकाकी वही ॥७॥

भावार्थ—हे मित्रो ! आओ, सम्मिलित होकर उस नेताओं के नेता और स्तुति के योग्य परमेश्वर की स्तुति करें, जो अकेला ही, उल्टे मार्ग पर चलने वाली सारी मनुष्य जनता को सीधी राह पर चलने के लिए विवश करता है ॥७॥

३८८—नृमेधः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८॥

पदार्थ—(**इन्द्राय**) सारे ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर के लिए (**साम गायत**) साम का गान करो (**विप्राय**) ज्ञानस्वरूप (**बृहते**) महान् (**बृहत्**) बृहत्नामक (**ब्रह्मकृते**) वेदों के कर्त्ता (**विपश्चिते**) सर्वज्ञ (**पनस्यवे**) स्तुति के योग्य ॥८॥

भावार्थ—हे साम के गान करने वालो ! ज्ञान स्वरूप, महान्, वेदों के कर्त्ता, सर्वज्ञ, और स्तुति के योग्य, परमैश्वर्यशाली, परमेश्वर की प्राप्ति के लिए "बृहत्" नाम के साम का गान करो ॥८॥

३८९—गोतमः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२उ ३ २ ३ १२३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**एक इत्**) एक ही (**विदयते**) विविध प्रकार से देता है (**वसु**) सम्पत्ति को(**मर्ताय**) मनुष्य को (**दाशुषे**) यजमान को (**ईशानः**) ईश्वर (**स्वामी**) संसार का अधिष्ठाता (**अप्रतिष्कुतः**) जिसके नियम के विरुद्ध एक शब्द भी कोई नहीं बोल सकता (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**अङ्ग**) शीघ्र ॥९॥

भावार्थ—जो ईश्वर संसार का स्वामी है, जिसके नियम के विरुद्ध किसी का कुछ नहीं चलता, जो बिना किसी की सहायता के अकेला ही परोपकारी पुरुष को, अनेक प्रकार से सम्पत्ति देता है उसी परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ॥९॥

३९०—विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०॥

पदार्थ—(**सखायः**) हे मित्रो ! (**आशिषामहे**) हम लोग प्रार्थना करते हैं (**ब्रह्म**) वेद, सोना, मणि, माणिक्य, गौ, अन्न आदि के लिए (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यशाली परमात्मा की (**वज्रिणे**) न्यायरूप शस्त्र के धारण करनेवाले (**स्तुषे**) स्तुति करते हैं (**ऊषु**) भलीभाँति (**वः**) तुम्हारे (**नृतमाय**) सब से बढ़ कर नेता (**धृष्णवे**) बुराइयों के नाश करने वाले ॥१०॥

भावार्थ—हे मित्रो ! हम सब न्यायरूप शस्त्र के धारण करनेवाले परमात्मा की, वेदविद्या और सुवर्ण आदि सम्पत्तियों के लिए आशा के साथ प्रार्थना करते हैं। वह हम सबका सबसे बड़ा नेता और बुराइयों को दूर करने वाला है। हम उस की मनोहर स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

३९१—प्रगाथः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २र

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये । यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१॥

पदार्थ—(**गृणे**) स्तुति करता हूँ (**तत्**) उस (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**ते**) तेरे (**शवः**) बल का (**उपमाम्**) सब के उपमारूप (**देवतातये**) इन्द्रियों और परमार्थ के कामों के लिए (**यत्**) क्योंकि (**हंसि**) नाश करता है (**वृत्रम्**) पाप का (**ओजसा**) बल से (**शचीपते**) हे कर्मों के स्वामी ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सारे कर्मों के स्वामी परमेश्वर ! मैं इन्द्रियों में शक्ति तथा परोपकार के कामों को पूर्ण करने के लिए, जिस बल से तू पापों का नाश करता है, तेरे अनुपम बल की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

३९२—भरद्वाजः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र३ २३ १ २ ३ १ २

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

३ १ २र ३ १ २र

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिस के (**त्यत्**) उस (**शंबरम्**) बल को (**मदे**) हर्ष में (**दिवोदासाय**) विज्ञानवेत्ता के लिए (**रन्धयन्**) रोक रखता है । (**अयं**) यह (**सः**) वह (**सोमः**) सोम (**इन्द्र**) हे विद्वन् ! (**ते**) तेरे लिए (**सुतः**) तैयार है (**पिब**) पान कर ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जिसके हर्ष में तू विज्ञानवेत्ता के लिए अपने महान् बल को सुरक्षण में रोक रखता है, वह सोम औषध तेरे लिए तैयार है । तू पान कर ॥ २ ॥

३९३—नृमेधाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३२र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**नः**) हमें (**गधि**) प्राप्त हो (**प्रिय**) हे प्यारे (**सत्राजित्**) हे सत्य से असत्य पर विजय करने वाले ! (**अगोह्य**) हे सर्वदा प्रकाश स्वरूप ! (**गिरिर्न**) पर्वत के समान (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**पृथुः**) महान् (**पतिः**) स्वामी (**दिवः**) द्यु लोक का ॥ ३ ॥

भावार्थ—सत्य से असत्य पर सदा विजय प्राप्त करने वाले, सर्वदा प्रकाश स्वरूप ! प्यारे ईश्वर ! तू पर्वत के समान सब प्रकार से महान् तथा द्युलोक आदि का स्वामी है। तू हमें प्राप्त हो ॥ ३ ॥

३९४—पर्वतः । उष्णिक् । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

२ ३ २ ३ २र २ ३ १ २

येनाऽहंसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (सोमपातमः) संसार का अत्यन्त रक्षक (मदः) शक्ति (शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (चेतति) जानती है (येन) जिस के बल से (आहंसि) नाश करता है (अत्रिणं) पाप का (तम्) उसको (ईमहे) हम चाहते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! तेरी शक्ति को जिसे सब वस्तुएं जानती हैं, तथा जिसके बल से संसार का अत्यन्त रक्षक तू अज्ञता रूप पाप का विनाश करता है, हम चाहते हैं ॥ ४ ॥

३९५—*इरिम्बिठिः । उष्णिक् । इन्द्रः, आदित्यो वा ।*

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।

१ २ ३ १ २

आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥५॥

पदार्थ—(तुचे) सन्तान के लिए (तुनाय) पौत्र के लिए (तत्) वह (सु) सुन्दर (नः) हमारे (द्राघीयः) दीर्घ (आयुः) आयु (जीवसे) जीने के लिए (आदित्यासः) हे आदित्य विद्वान् जन (समहसः) सत्कार से युक्त (कृणोतन) करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सत्कार से युक्त आदित्य विद्वान् हमारे पुत्र और पौत्रों को दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥ ५ ॥

३९६—*विश्वमनाः । उष्णिक् । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

पदार्थ—(वेत्थाः) जानता है (हि) निश्चय (निर्ऋतीनां) उपद्रवों का (वज्रहस्त) हे शस्त्रपाणे ! (परिवृजम्) निवारण (अहरहः) प्रतिदिन (शुन्ध्युः) शोधक (परिपदामिव) पक्षियों के अड्डों के समान ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे शस्त्रपाणे राजन् ! तू पक्षियों के अड्डों के समान उपद्रवों का प्रतिदिन निवारण जानता ह ॥ ६ ॥

३९७—*इरिम्बिठिः । उष्णिक् । आदित्याः ।*

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२

अपामीवामप स्निधमप सेधत दुर्मतिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥७॥

पदार्थ—(अप) दूर करो (अमीवाम्) रोग को (अप) दूर करो (स्रिधम्) हिंसा आदि अनर्थ करने वाले का (अप) दूर (सेधत) करो (दुर्मतिम्) दुर्बुद्धि पुरुष को (आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारियो ! (युयोतन) दूर करो (नः) हमें (अंहसः) पाप से ॥ ७ ॥

भावार्थ—हम में न कोई रोग रहे, न हिंसा आदि अनर्थ करनेवाला पुरुष रहे, न पाप बुद्धिवाला मनुष्य रहे और न ही पाप रहे ॥ ७ ॥

३९८—*वसिष्ठः । विराट् । इन्द्रः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥८॥

पदार्थ—(पिबा) पान कर (सोमं) सोम का (इन्द्र) हे वैद्य (मन्दतु) प्रसन्न करे (त्वा) तुझे (यम्) जिसको (ते) तेरे लिए (सुषाव) चुआता है (हर्यश्व) हरणशील इन्द्रियों वाले (अद्रिः) पाषाणखण्ड (सोतुः) चुआने वाले के (बाहुभ्यां) हाथों से (सुयतः) पकड़ा हुआ (न) समान (अर्वा) अश्व के ॥८॥

भावार्थ—हे हरणशील इन्द्रियों से युक्त भिषक् ! तू इस सोम का पान कर । जिसको कि तैयार कर्ता के हाथ से पकड़ा हुआ पाषाण खण्ड चुआता है । वह सोम तुझे वैसे ही हर्ष प्राप्त करावे जैसा कि शिक्षित अश्व यथाभिमत स्थान को प्राप्त करता है ॥८॥

卐 पाँचवी दशती समाप्त 卐

३९९—*सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।*

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

३ १ २ ३ १ २

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

पदार्थ—(अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) बिना नेता के (त्वं) तू (अनापिः) बिना बन्धु (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (जनुषा) स्वभाव से (सनात्) सनातन (असि) है (युधा) व्याप्ति से (इत्) ही (अपित्वम्) मित्रभाव को (इच्छसे) चाहता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू स्वभाव से शत्रुरहित, बिना नेता, तथा बिना बन्धु बान्धव के है । तू सनातन है । व्यापक होने के कारण सब से सम्बन्ध रखता है ॥१॥

४००—*सोभरिः । विराट् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

सखाय इन्द्रमूतये ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (नः) हमें (इदम्, इदम्) नाना प्रकार की वस्तुएं (पुरा) पूर्व काल में पूर्व कल्प के समान (प्र) उत्कृष्ट (वस्यः) उत्तम-उत्तम (आनिनाय) प्रकट रूप में देता है (तम्) उसका (वः) उसी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (सखायः) हे मित्रो ! (इन्द्रम्) परमेश्वर की (ऊतये) अपनी तृप्ति और रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! जिससे पूर्व कल्प [पूर्व सृष्टि] के समान वर्तमान सृष्टि में हमें नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम जीवन के साधन प्रदान किये हैं, मैं अपनी रक्षा के लिए उसी परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥२॥

४०१—*सोभरिः । ककुप् । मरुतः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।

३ १ २

दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥३॥

पदार्थ—(आगन्ता) आओ (मा, रिषण्यत) किसी को दुःख मत दो अथवा किसी के साथ संग्राम मत करो (प्रस्थावानः) हे अपने शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान करने वालो ! (मा) मत (अपस्थात) जाओ (समन्यवः) एक समान विचार वाले आप लोग (दृढाचित्) बलवान् से बलवान् को भी (यमयिष्णवः) अपने नियम में रखने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ—हे यज्ञादि परोपकार के करने वालो ! ऋत्विजो एवं वीरो! आओ किसी को कष्ट मत दो तथा किसी के साथ संग्राम मत करो । तुम लोग शत्रुओं पर विजय पाने के लिए प्रस्थान [कूच] करने वाले हो, किन्तु ऐसा न करो । यदि तुम लोगों का एक विचार [संगठन] हो तो बलवान् से बलवान् शत्रु पर भी विजय पाना और उसको अपने वश में रखना कठिन नहीं है ॥३॥

४०२—*सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।*

१ २३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥४॥

पदार्थ—(आयाहि) आ (अयम्) यह उपस्थित है (इन्दवे) तेजस्वी के लिए (अश्वपते) हे घोड़े आदि पशुओं के स्वामी ! (गोपते) हे गौ आदि परोपकारी पशुओं के अधिष्ठाता (उर्वरापते) हे उपजाऊ भूमि के अधिपति ! (सोमम्) अमृत रस का (सोमपते) हे सोमरूप औषध के स्वामी (पिब) पान कर ॥४॥

भावार्थ—हे घोड़े आदि पशुओं के स्वामी ! हे गौ आदि उपकारी जीवों के स्वामी ! हे उपज से भरपूर भूमि के अधिष्ठाता ! पुरुष ! तेरे लिए यह सोमरस सुरक्षित है, तू इसका पान कर ॥४॥

४०३—*सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।*

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।

३ १ २र ३ १ २

संस्थे जनस्य गोमतः ॥५॥

पदार्थ—(त्वया) तेरी (ह, स्वित्) ही (युजा) सहायता से (वयम्) हम लोग (श्वसन्तं) क्रोधी शत्रु को (वृषभ) हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले प्रभो ! (प्रति, ब्रुवीमहि) प्रतिकार करते हैं [भगाते हैं] (संस्थे) युद्ध में (जनस्य) मनुष्य के (गोमतः) गौ आदि उपकारी पशुओं के स्वामी ॥५॥

भावार्थ—हे हमारी कामनाओं को सफल करने वाले प्रभो ! तेरी ही सहायता से हम लोग गौ आदि उपकारी पशुओं वाले मनुष्य के साथ संग्राम छिड़ने पर लड़ना तो दूर की बातें हैं, उस मनुष्य के विरुद्ध श्वास लेने वाले को भी मार भगाते हैं ॥५॥

४०४—*सोभरिः । ककुप् । मरुतः ।*

१ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

रिहते ककुभो मिथः ॥६॥

पदार्थ—(गावः) ऋत्विक् लोग (चिद्, घ) निश्चय ही (समन्यवः) एक समान तेजस्वी (सजात्येन) समान जन्म द्वारा (मरुतः) मनुष्य मात्र (सबन्धवः) समानबन्धु (रिहते) विचरते हैं (ककुभः) दिशाओं में (मिथः) परस्पर ॥६॥

भावार्थ—समान तेज वाले, समान जन्म द्वारा समान बन्धुत्व वाले ऋत्विग् और मनुष्य लोग परस्पर प्रेम भाव से दिशाओं को विचरते हैं ॥६॥

४०५—नृमेधाः । ककुप् । इन्द्रः ।

१ २३ १ २३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।

२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥७॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमें (इन्द्र) हे प्रभो (आभर) दे (ओजः) बल (नृम्णं) धन (शतक्रतो) हे अनन्त ज्ञान के भण्डार ! (विचर्षणे) हे ब्रह्माण्ड के स्वामी ! (आ) सब प्रकार से (वीरम्) वीरपुत्र (पृतनासहम्) विजयी ॥७॥

भावार्थ—हे अनन्त ज्ञान के भण्डार! हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के साक्षी परमेश्वर! तू हमें बल, धन और वीर पुत्र दे ॥७॥

४०६—नृमेधाः । ककुप् । इन्द्रः ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ १२
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।

३२ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८॥

पदार्थ—(अधा) इस समय (हि) क्योंकि (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (गिर्वण) हे स्तुतियों के योग्य (उप) समीप (त्वा) तेरे (कामः) कामना से युक्त (ईमहे) याचना करते हैं । (ससृग्महे) संयुक्त होते हैं । (उदा) जल के साथ (इव) समान (ग्मन्त) जाते हुए (उदभिः) जलों से ॥८॥

भावार्थ—हे स्तुत्य परमेश्वर ! जल से जाते हुए, जैसे जल से होते हैं वैसे ही कामनाओं से युक्त हम लोग तेरे समीप याचना करते हैं और अपनी कामनाओं को सिद्ध करते हैं ॥८॥

४०७—सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।

३ १ २र
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥९॥

पदार्थ—(सीदन्तः) बैठते हुए (ते) वे (वयो यथा) जैसे पक्षीगण (गोश्रीते) दुग्ध से मिश्रित (मधौ) मधुर (मदिरे) आनन्ददायक (विवक्षणे) वाक् शक्ति देनेवाले (अभि) लक्ष्यकर (त्वाम्) तुझे (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (नोनुमः) नमस्कार करते हैं ॥९॥

भावार्थ—जिस प्रकार दुग्धादि युक्त आनन्ददायक पदार्थ पर पक्षी आदि टूटते हैं, उसी प्रकार हम हे परमेश्वर ! आपकी शरण में आकर उपासना करते हैं ॥९॥

४०८—सोभरिः । ककुप् । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।

१ २ ३ १ २
वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१०॥

पदार्थ—(वयं) हम लोग (उ) पादपूरक (त्वाम्) तुझे (अपूर्व्य) हे अनादि (स्थूरं) कुठिले के (न) समान (कश्चित्) कोई (भरन्तः) भरता हुआ (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाला । (वज्रिन्) हे न्याय करने वाले ! (चित्रं) अद्भुत (हवामहे) पुकारते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे न्यायकारी ! अनादि परमेश्वर ! जैसे कोई मनुष्य कुठिले को अपनी रक्षार्थ गेहूँ आदि से भरता है, वैसे ही अपनी रक्षा चाहने वाले हम लोग आपको स्तुतियों से भर कर पुकारते हैं ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

४०९—गोतमः । पंक्तिः । इन्द्रः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—(स्वादोः) स्वादिष्ट (इत्था) इस प्रकार (विषूवतः) विस्तृत (मधोः) मधुर जल (पिबन्ति) पीती हैं (गौर्यः) सूर्य की किरणें (यः) जो (इन्द्रेण) सूर्य से (सयावरीः) निकलने वाली (वृष्णा) वर्षा करनेवाले (मदन्ति) शोभा पाती हैं जिस प्रकार (शोभथाः) शोभती हैं (वस्वीः) पृथ्वी का (अनु) बाद (स्वराज्यम्) अपना राज्य प्राप्त करने को ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! (सारी प्रजायें) धन-धान्य से पूर्ण पृथिवी पर प्रजातन्त्र-शासन होने पर उसी प्रकार तृप्त और प्रसन्न होती हैं, जिस प्रकार वर्षा करने वाले सूर्य के साथ चलनेवाली किरणें स्वादिष्ट और मधुर जल ग्रहण करती और लोगों को सुखी करती हैं ॥१॥

४१०—गोतमः । पंक्तिः । इन्द्रः ।

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।२॥

पदार्थ—(इत्था) इस प्रकार विधिपूर्वक (हि) क्योंकि (सोमे) आनन्द में मग्न होने पर (इत्) ही (मदः) स्तोता (ब्रह्म) स्तोत्र (चकार) करता है (वर्धनम्) उन्नति का कारण (शविष्ठ) बलवान् (वज्रिन्) शस्त्रधारी सभाध्यक्ष (ओजसा) बल से (पृथिव्याः) भूमि के (निःशशाः) पूर्णतया शासन कर (अहिम्) आक्रमण करनेवाले का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (अनु) पीछे (स्वराज्यम्) अपना राज्य होने के ॥२॥

भावार्थ—हे बलवान् शस्त्रधारी योद्धा पुरुष ! अपने राज्य का स्वागत करता हुआ, काले सांप के समान आक्रमण करनेवाले भूमि के शत्रुओं का सत्यानाश कर, क्योंकि आनन्द में मग्न होकर स्तुति करनेवाले इसी प्रकार तेरी उन्नति का वर्णन करते हैं ॥२॥

४११—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) सेनापति (मदाय) अपने अनुयायियों की प्रसन्नता के लिए (वावृधे) स्वयं शक्ति-संचय कर बढ़ता है (शवसे) बल के लिए (नृभिः) सेना और प्रजाओं के साथ (वृत्रहा) शत्रु का नाश करनेवाला (तमित्) उसी को (महत्स्वाजिषु) बड़े बड़े संग्रामों में (ऊतिम्) रक्षा के लिए (अर्भे) छोटे संग्राम में भी (हवामहे) आह्वान करते हैं । (सः) वह (वाजेषु) संग्रामों में (प्र) उत्कृष्ट (नः) हमारी (अविषत्) रक्षा करे ॥३॥

भावार्थ—शत्रु का नाश करने में समर्थ जो सेनापति शक्ति और प्रसन्नता के लिए सेना और प्रजाओं से अपनी शक्ति का संचय कर स्वयं बढ़ता है, हम लोग बड़े तथा छोटे संग्रामों में अपने रक्षक रूप से उसी की पुकार करते हैं । वही हमारी रक्षा करने में समर्थ हो सकता है ॥३॥

४१२—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्य्यम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्मायया वधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे सभ्याध्यक्ष ! (तुभ्यमित्) तेरे ही लिए (अद्रिवः) मेघ अथवा पर्वत के समान दुर्ग से युक्त (अनुत्तम्) स्वाभाविक (वज्रिन्) हे शस्त्रास्त्रों वाले (वीर्य्यम्) सामर्थ्य से (यत्) जिस (ह) निश्चित (त्यम्) उस (मायिनम्) छली-कपटी (मृगम्) दूसरे का धन हरण करनेवाले (तमु) उसी को (मायया) बुद्धिमानी से (अवधीः) मारता है (अर्चन्, अनु, स्वराज्यम्) सत्कारपूर्वक स्वराज्य का पालन करता हुआ ॥४॥

भावार्थ—हे मेघवाले ! पर्वत के समान स्वराज्य से सुशोभित ! शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सभ्याध्यक्ष! तू अपनी स्वाभाविक शक्ति से स्वराज्य का पालन करता हुआ सब छली-कपटी तथा दूसरों के धनों को छीनने वालों को बुद्धिमत्ता से मार डालता है, इसलिए तू ही अधिकारी होने के योग्य है ॥४॥

४१३—गोमतः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
इन्द्र नम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥

पदार्थ—(प्रेहि) जा (अभीहि) सम्मुख जा (धृष्णुहि) आक्रमण कर (न) नहीं (ते) तेरा (वज्रः) शस्त्र (नियंसते) रोका जा सकता है (इन्द्र) हे सभ्याध्यक्ष ! (नृम्णम्) शत्रुओं को नम्र करने वाला (हि) निश्चय (ते) तेरा (शवः) बल है । (हनः) नाश कर सूर्य के समान (वृत्रम्) मेघ को (जया) वर्षा करता है (अपः) जल की (अर्चन् अनु स्वराज्यम्) स्वराज्य का सत्कारपूर्वक पालन करता हुआ ॥५॥

भावार्थ—हे राष्ट्रपति ! कोई शत्रु तेरा शस्त्र नहीं रोक सकता। तेरा बल शत्रुओं को झुका देने वाला है। जैसे सूर्य मेघ को छिन्न-भिन्न कर जल की वर्षा करता है, ऐसे ही तू अपने शत्रुओं के सम्मुख जा, आक्रमण कर, तथा उनका नाश करके अपने राष्ट्र की रक्षा कर ॥५॥

४१४--गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२३१२ ३१२ ३१२ ३१२
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
३ १२३२३२३२उ ३१ २र ३ १२३१२
युंक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥६॥

पदार्थ—(यत्) जब (उदीरते) उत्पन्न होते हैं (आजयः) संग्राम तो (धृष्णवे) विजयी पुरुष को (धीयते) दिया जाता है (धनम्) धन (युंक्ष्वा) युक्त कर (मदच्युता) बहादुर (हरी) घोड़ों को और (कम्) किसी अन्यायी को (हन) मार और किसी उदार को (वसौ) धन की राशि पर (दधः) रख (अस्मान्) हमें (इन्द्र) हे सेनापति ! (वसौ) धन पर (दधः) अधिकारी बना ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सेनापति ! जब जब संग्राम होते हैं, तब तब वीर पुरुष ही धनों के अधिकारी होते हैं। तू बलवान् घोड़ों को अपने रथ में जोड़ और अन्यायियों को मारकर न्याय करने वालों को धन का अधिकारी बना ॥६॥

४१५—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२३१ २ ३१२ ३१ २
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
१ २ ३ १२ ३ २३१२ ३२उ ३क २र ३ १२
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७॥

पदार्थ—(अक्षन्) शुभ गुणों को प्राप्त करो (अमीमदन्त) अत्यन्त प्रसन्न हो (हि) निश्चय (अव, अधूषत) दुःखों से छुड़ा (प्रियाः) प्यारा हो (अस्तोषत) प्रशंसा करो (स्वभानवः) अपने आप तेजस्वी (विप्राः) हे बुद्धिमान् पुरुषो ! (नविष्ठया) बिलकुल नवीन (मती) बुद्धि से (योजानु) जोड़। (इन्द्र) हे सभाध्यक्ष ! (ते) अपने (हरी) घोड़ों को ॥७॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! अपने घोड़ों को हमारे कल्याण के लिए जोड़िए। हे स्वयं तेजस्वी तथा बुद्धिमान् पुरुषो ! अत्यन्त नवीन ज्ञान से सब के प्रिय हूजिए, शास्त्रों की प्रशंसा कीजिए, और हमारे दुःखों को दूर कीजिए। शुभ गुणों की प्राप्ति से अपने आप अत्यन्त प्रसन्न रहिए ॥७॥

४१६—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३१२३ १२
उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
३१२ ३१२ ३ २३ २३१२३२उ ३क२र ३ १२
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा विन्द्र ते हरी ॥८॥

पदार्थ—(उप) समीप (सु) सुन्दर (शृणुही) सुन (गिरः) स्तुतियां (मघवन्) सकल सम्पदाओं के स्वामी ! (मा) नहीं (अतथाः) विपरीत (कदा) कब (नः) हमें (सूनृतावतः) सच्ची स्तुतियों वाला (करः) करता है (अर्थयासे इत्) याचना की जाती है (योजा) युक्त करता है (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (ते) अपने (हरी) वायु और अग्नि को ॥८॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारी स्तुतियों को सुन, कभी मेरे विपरीत न हो, हमें सत्यवक्ता बना। तेरी उपासना की जाती है। तू ही अग्नि और वायु को युक्त करता है ॥८॥

४१७—चितः । पङ्क्तिः । विश्वेदेवाः ।

३१२ ३ २ १ २र३१२ ३२
चन्द्रमा अप्स्वाऽ३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
१ २ ३१२ ३१२३ १ २
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

पदार्थ—(चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अप्स्वन्तरा) व्यवस्थित है (सुपर्णः) उत्तम किरण वाला [क्रियावान्] (धावते) भ्रमण करता है (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (न) नहीं (वः) तुम्हारे (हिरण्यनेमयः) चमकदमकवाली (विद्युतः) बिजली (पदम्) शिल्प की कारीगरी या अन्य उत्पादनों के कामों में (विन्दन्ति) प्राप्त होती हैं [अर्थात् तुम लोग बिजली का ठीक उपयोग नहीं करते] (वित्तं) जाने (मे) मुझ पदार्थविद्या को जाननेवाले की उत्तेजना से (अस्य) इस पूर्वोक्त विषय को (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान शासन करनेवाले प्रजाजन ॥९॥

भावार्थ—हे सूर्य और पृथिवी के समान राजा और प्रजाजनो ! अन्तरिक्ष में सूर्य के प्रकाश में अच्छी किरणोंवाला चन्द्रमा अतिशीघ्रता से घूमता है। तुम लोग चमक-दमक वाली बिजली को अनेक वस्तुओं के बनाने में नहीं वर्त्तते। मुझ पदार्थ-विद्या के जाननेवाले से उत्साह पाकर ऊपर कहे विषय को जानो ॥९॥

४१८—अवस्युः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

१२३१२३२३१२ ३१२
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३१२ ३२३ १२ ३२३२ ३१२३ १२
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१०॥

पदार्थ—(प्रति) उपसर्ग (प्रियतमम्) अत्यन्त प्रिय (रथम्) रथ (वृषणम्) सुखदायक (वसुवाहनम्) धन देने के योग्य (स्तोता) स्तुति करने वाला (वाम्) तुम दोनों के (अश्विनौ) हे अध्यापक और उपदेशक (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा (स्तोमेभिः) स्तुति के द्वारा (प्रतिभूषति) सुशोभित करता है (माध्वी) मधु [ब्रह्म] की शिक्षा देनेवाले (मम) मेरे (श्रुतम्) सुनें (हवम्) आह्वान को ॥१०॥

भावार्थ—हे ब्रह्मविद्या की शिक्षा देनेवाले अध्यापक और उपदेशक ! जो स्तुति करनेवाला कवि प्रशंसा के द्वारा आप लोगों के अत्यन्त सुन्दर सुखदायक और धन ढोने वाले रथ को सुशोभित करता है उसकी और मेरी भी प्रार्थना आप सुनें।१०।

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

४१९—वत्सः, वसुश्रुतः । पङ्क्तिः । अग्निः ।

१ २ ३१२ ३१२
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
२३ २ ३१२ ३२ ३१२३१ २र ३२ ३१२
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (इधीमहि) ध्यान करते हैं (द्युमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (देव) हे देव ! (अजरम्) अजर(यत्-ह) जो कि (स्या) वह (ते) तेरी (पनीयसी) प्रशंसनीय (समिद्) दीप्ति (दीदयति) प्रकाशित करती है (द्यवि) आकाश में (इषम्) ज्ञान और अन्न (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिए (आभर) दे ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्मदेव ! प्रकाशस्वरूप, अजर, तुझे हम अपने ज्ञान में या आत्मा में प्रकाशित करते हैं। तेरी प्रशंसनीय समित्=दीप्ति द्युलोक में प्रकाशित करती है। हे भगवन् ! तू उपासकों के लिए अन्न और ज्ञान दे ॥१॥

४२०—विमदः । पङ्क्तिः । अग्निः ।

१ २र ३ १२
आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
३१२३१२ ३ ३ ३१२३१२ ३ १२ ३१२
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥

पदार्थ—(आ, अग्निम्) अग्रणी परमेश्वर की (न) इस समय (स्ववृक्तिभिः) दोषरहित स्तुतियों से (होतारम्) दाता (त्वा) तुझ (वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं (शीरं) सर्वव्यापक (पावकशोचिषम्) पावक तेजस्वी (वि) विशेष (वः) तेरी (मदे) उपासना में (यज्ञेषु) यज्ञों में (स्तीर्णबर्हिषम्) बैठनेवाले को (विवक्षसे) निर्वाह का साधन देता है ॥२॥

भावार्थ - हे परमेश्वर ! हम इस समय निर्दोष स्तुतियों के द्वारा, सब के सामने विद्यमान दाता, सर्वव्यापक और पवित्र तेजवाले तेरी उपासना में विशेषरूप से प्रार्थना करते हैं। तू यज्ञ करनेवालों को निर्वाह का साधन देता है ॥२॥

४२१—सत्यश्रवाः । पङ्क्तिः । उषा ।

३१२ ३१ २३१२३२३१ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१२ ३ १२ ३१२ ३१ २र३१२
यथा चिन्नो अबोधय सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—(महे) बड़ी (नः) हमें (अद्य) आज भी (बोधय) जगाती है (उषा, उ) उषादेवी (राये) सम्पत्ति का उपार्जन करने के लिये (दिवित्मती) प्रकाशवाली (यथाचित्) जैसे ही (नः) हमें (अबोधयः) सृष्टि के प्रारम्भ से जगाती आई है वैसे ही (सत्यश्रवसि) सत्यविद्या और कीर्त्ति के निमित्त (वाय्ये) तन्तु के समान सन्तति का विस्तार करने वाली स्त्री ! (सुजाते)सुन्दर कुल में उत्पन्न (अश्वसूनृते) सत्य और प्रिय बोलने वाली ॥३॥

भावार्थ - हे श्रेष्ठगुणोंवाली ! धागे के समान सन्तान का विस्तार करने वाली ! सत्य और मधुर बोलनेवाली कुलीन स्त्री ! मनुष्य जैसे चमकती हुई उषा देवी के उदय होने पर महान् धन के उपार्जन के लिये अपने अपने कामों में लग जाते हैं, ऐसे ही आज हमें तू भी सम्पत्ति, विद्या तथा सच्ची कीर्त्ति के लिये ज्ञान का प्रकाश दे ॥३॥

४२२—विमदः । पङ्क्तिः । सोमः ।

३२ ३१२ ३ २३१२३१ २र
भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
१२ ३१ २र३२ ३ २३२३२३ १ २र३१२
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४॥

पदार्थ—(भद्रन्) कल्याणकारक (नः) हमारा (अपि) भी (वातय) प्राप्त करा (मनः) संकल्प-विकल्प करने वाला मन (दक्षम्) बल को (उत) और (क्रतुम्) ज्ञान को भी (अथ) उसके बाद (ते) तेरी (सख्ये) मित्रता में लगा हुआ (अन्धसः) अन्न के दाता (वि) विशेष रूप से (वः) हम तेरे (मदे) आनन्द में (रणाः) रमण करनेवाली (गावो न) गौओं के समान (यवसे) घास में क्योंकि (विवक्षसे) तू महान् है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे मन को कल्याणकारी तथा चतुरतायुक्त बना और ज्ञान प्राप्त करा । तेरी मित्रता तथा अन्न आदि के आनन्द में हम तुझे स्वीकार करते हैं, जिस प्रकार गौएँ घास में आनन्द प्राप्त करती हैं ॥ ४ ॥

४२३—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५॥

पदार्थ—(क्त्वा) ज्ञान और कर्म से (महान्) बड़ा (अनुष्वधं) अन्नादि की अनुकूलता से (भीमः) भयङ्कर (आ) सब प्रकार से (वावृते) संग्रह करता है (शवः) बल को (श्रिये) शोभा के लिये (ऋष्व) विद्वान् (उपाकयोः) समीप की सेनाओं में (नि) निश्चय (शिप्री) उत्तम मुखवाला (हरिवान्) उत्तम घोड़ोंवाला (दधे) धारण करता है (हस्तयोः) हाथों में (आयसम्) लोहे का ॥ ५ ॥

भावार्थ—अश्वादि से युक्त उत्तम मुखवाला भयङ्कर महान् ज्ञानी राजा कीर्त्ति के लिये अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार शक्ति का संग्रह करता है । संग्राम में उपस्थित हुई सेनाओं के मध्य में हाथों में लोहे का वज्र धारण करता है ॥ ५ ॥

४२४—गोतमः । पङ्क्तिः । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

१ २र ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥६॥

पदार्थ—(स घा) वही (तं) उस (वृषणं) कामनाओं की पूर्ति करने वाला (रथं) यान पर (अधितिष्ठाति) बैठता है (गोविदम्) भूमि प्राप्त कराने वाला (यः) जो (पात्रम्) रक्षा के निमित्त (हारियोजनम्) घोड़ों से युक्त (पूर्णं) सारी सामग्री से परिपूर्ण (इन्द्र) हे परम विद्याधन से युक्त (चिकेतति) जानता है (योजानु) शीघ्र जोड़ (इन्द्र) हे सेनापति ! (ते) अपने (हरी) बहादुर घोड़ों को ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सेनापति ! तू घोड़ों से युक्त सारी सामग्री वाले और रक्षा करने में समर्थ जिस रथ को जानता है उसी रथ में अपने घोड़ों को जोड़ दे । हे सेनापति ! कामनाओं को सफल करनेवाले और भूमि की विजय करानेवाले तेरे रथ में जो बैठेगा वह विजय क्यों न पायेगा ॥ ६ ॥

४२५—वसुश्रुतः । पङ्क्तिः । अग्निः ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थ—(अग्नि) राजा (तं) उसे (मन्ये) मानता हूँ (यः) जो (वसु) प्रजा को निवास देनेवाला (अस्तं) आश्रयरूप (यं) जिसको (यन्ति) प्राप्त होते हैं (धेनवः) गौएँ (अस्तं) आश्रयरूप (अर्वन्तः) विद्वान् (आशवः) कुशाग्रबुद्धि (नित्यासः) सदा रहनेवाले (वाजिनः) घोड़े (इषं) धन से (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के लिये (आभर) भरपूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—मैं उसको ऐश्वर्यवान् राजा मानता हूँ जो सब प्रजा को निवास देनेवाला है, आश्रयरूप जिसको गौएँ प्राप्त होती हैं, कुशाग्रबुद्धि विद्वान् जिस आश्रय-रूप को प्राप्त होते हैं तथा जिस महाशरण को सदा रहनेवाले घोड़े प्राप्त होते हैं । हे राजन् ! वह तू स्तोताओं को धन से भरपूर कर ॥ ७ ॥

४२६—अंहोमुग्वामदेव्यः । विश्वेदेवाः । उपरिष्टाद् बृहती ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥८॥

पदार्थ—(न) नहीं (तं) उस (अंहः) पाप (न) नहीं (दुरितम्) पाप से उत्पन्न दुःख ही (देवासः) हे विद्वान् पुरुषो ! (अष्ट) प्राप्त हो सकता है (मर्त्यम्) मनुष्य को (सजोषसः) प्रेम से युक्त (यं) जिसके (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (मित्रः) परमेश्वर (अतिनयति) शासन करता है (वरुणः) हितैषी पुरुष (अति) दूर कर (द्विषः) द्वेष करने वालों को ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! जिस पुरुष को न्यायकारी परमेश्वर और हितैषी लोग ठीक रास्ते से ले चलते तथा उससे द्वेष करने वालों को दूर कर देते हैं, उस मनुष्य को न तो पाप लगता है और न पाप से होने वाले दुःख ही सताते हैं ॥ ८ ॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

४२७—ऋणत्रसदस्यूसहितावृषी । द्विपदा पङ्क्तिः । पवमानः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (प्रधन्व) वर्षा कर (इन्द्राय) जीव के लिए (सोम) हे परमेश्वर ! (स्वादुः) अनिर्वचनीय आनन्द रस वाले तू (मित्राय) मित्र के लिए (पूष्णे) पालन-पोषण करनेवाले तथा (भगाय) ऐश्वर्यशाली पुरुष के लिए ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! स्नेही, पालनपोषण करनेवाले और ऐश्वर्यशाली जीव को अपने आनन्द रस का पान करा ॥ १ ॥

४२८—ऋषिदेवते पूर्ववत् । पिपीलिकामध्या त्रिपदानुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२॥

पदार्थ—(परि उ सु प्रधन्व) अच्छी प्रकार जना (वाजसातये) अन्न और जल की प्राप्ति के लिए (वृत्राणि) पापों को (परि सक्षणिः) दूर करनेवाला (द्विषः) कामादि शत्रुओं को (तरध्या) तरने के लिए (ऋणया) ऋणों को (ईरसे) प्रेरणा देता है (नः) हमारे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बल और अन्न की प्राप्ति, कामादि शत्रुओं से तरने के लिए पापों का नाश करने वाला तू हमें पितृ, देव तथा ऋषि ऋण का ज्ञान कराता है और उनके उतारने की प्रेरणा देता है ॥ २ ॥

४२९—ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । द्विपदा पङ्क्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥३॥

पदार्थ—(पवस्व) व्यापक हो रहा है (सोम) हे परमेश्वर ! (महान्) सबसे बड़ा (समुद्रः) आकाश के समान (पिता) उत्पन्न और रक्षा करने वाला (देवानां) सब देवों का (विश्वा) सब (अभि) सर्वतः (धाम) स्थानों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आकाश के समान सर्वव्यापक और महान् है तू सब देवों का पिता है । तू सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विराजमान है ॥३॥

४३०—ऋषिच्छन्दोदैवतानि पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (सोम) हे परमेश्वर ! (महे) महान् (दक्षाय) बल के लिये (अश्वः न) अग्नि के समान (निक्तः) शुद्ध (वाजी) गतिशील (धनाय) सम्पत्ति के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध गतिशील अग्नि के समान महान् बल और धन की प्राप्ति के लिए पवित्र कर ॥४॥

४३१—ऋषिच्छन्दो दैवतानि पूर्वोक्तानि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥

पदार्थ—(इन्दुः) परमैश्वर्यवाला परमेश्वर (पविष्ट) पवित्र (चारुः) उत्तम (मदाय) आनन्द के लिए (अपामुपस्थे) अन्तरिक्ष में (कविः) सर्वज्ञ (भगाय) सम्पत्ति के लिए ॥५॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली, उत्तम गुण वाला तथा सर्वज्ञ परमेश्वर अन्तरिक्ष (आकाश) में विद्यमान है । वह ऐश्वर्य और आनन्द के लिए हमें पवित्र करे ॥५॥

४३२—ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । पिपीलिका मध्या त्रिपदानुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६॥

पदार्थ—(अनु) पश्चात् (त्वा) तुझ (सुतम्) उत्पादक (सोम) हे आनन्दस्वरूप परमेश्वर (मदामसि) आनन्द का अनुभव करते हैं (महे) महान् (समर्यराज्ये) ज्ञानी जनों के राज्य [ज्ञानयज्ञानुष्ठान] में (वाजान्) अन्न और बलों को (पवमान) हे पवित्रकर्त्ता ! (अभिप्रगाहसे) हर प्रकार से प्रदान करता है ॥६॥

भावार्थ—हे पवित्र करने वाले परमेश्वर ! तुझ उत्पादक (सृष्टिकर्त्ता) के राज्य में तेरे साक्षात् होने के बाद हम आनन्द का अनुभव करते हैं। तू अन्न और बलों का दाता है ॥६॥

४३३—वसिष्ठः। मरुतः। द्विपदापङ्क्तिः।

२ ३क २र ३ २३ १२ ३२३ २ ३ २ ३ १ २
क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥७॥

पदार्थ—(कः) कौन (ईं) इस (व्यक्ता) स्पष्ट (नरः) प्राप्त कराते हैं (सनीडा) समान स्थान में करने वाले (रुद्रस्य) परमेश्वर के (मर्या) मरणधर्मा मनुष्य (अथ) अर्थात् (स्वश्वाः) उत्तम विद्वान् ॥७॥

भावार्थ—कौन मरणधर्मा मनुष्य परमेश्वर की प्राप्ति के पथप्रदर्शक हैं ? समान रूप से संसारगृह में रहने वाले उत्तम विद्वान् जन ॥७॥

४३४—वामदेवः। त्रिपदापङ्क्तिः। अग्निः।

२३ २३२३ २उ ३ २३ २३१ २३ १२ ३ १२ ३ १२
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदि स्पृशम्। ऋध्यामा त ओहैः ॥८॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (तम्) उस (अद्य) आज (अश्वं न) यज्ञाग्नि के समान (स्तोमैः) स्तोत्रों से (क्रतुन्न) बुद्धि के समान (भद्रं) कल्याण को (हृदिस्पृशम्) हृदयस्थ (ऋध्यामा) बढ़ाते हैं, (ते) तेरे (ओहैः) ज्ञान को प्राप्त कराने वाले ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे ज्ञान प्राप्त करानेवाले स्तोत्रों से हम यज्ञाग्नि के समान तथा बुद्धि के समान हृदयस्थ आनन्द को बढ़ाते हैं ॥८॥

४३५—वामदेवः। पुरउष्णिक्। वाजिनः।

३ १२३ १ २र ३ १२ ३ १२ ३ २ ३ २
आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम्।

३ १ २
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥९॥

पदार्थ—(आविः) आविर्भूत (मर्याः) मनुष्य (आ) सब प्रकार से (वाजं) अन्न को (वाजिनः) विद्वान् (अग्मन्) प्राप्त होते हैं (देवस्य) देव (सवितुः) सबके उत्पादक (सवम्) सृष्टिरचना के अनुसार (स्वर्गां) अनेक सुखों को (अर्वन्तः) पूर्णज्ञाता (जयत) लाभ करते हैं ॥९॥

भावार्थ—उत्पन्न हुए मरणधर्मा विद्वान् पुरुष सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की सृष्टि रचना के अनुसार सुख के साधन अन्न आदि को संसार में प्राप्त होते हैं। पुनः पूर्ण ज्ञाता होते हुए स्वर्ग सुखविशेष को प्राप्त करते हैं ॥९॥

४३६—ऐश्वर्यरयाधिष्टरायाः ऋषयः। द्विपदापङ्क्तिः। पवमानः।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १२३ २
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥१०॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (सोम) हे परमेश्वर ! (द्युम्नी) यश वाले (सुधारः) सुन्दर धारण करनेवाले (महान्) शक्ति से महान् (अवीनाम्) रक्षा करनेवालों के (अनु) पीछे (पूर्व्यः) सर्वप्रथम ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू यशस्वी, संसार को धारण करने वाला और महान् है। तू रक्षा करनेवालों का भी श्रेष्ठ रक्षक है, तू हमें पवित्र कर ॥१०॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

४३७—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥

पदार्थ—(विश्वतोदावन्) हे सब प्रकार से दान करने वाले ! (विश्वतो नः) सब प्रकार से हमें (आभर) परिपूर्ण कर (यम्) जिस (त्वा) तुझे (शविष्ठम्) अति बलवान् को (ईमहे) याचते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सब प्रकार से दान करने वाले दाता प्रभो ! तू अति बलवान् है, तुझी से याचना करते हैं। तू हमें सब प्रकार से परिपूर्ण कर ॥१॥

४३८—त्रसदस्युः। द्विपदा विराट्। इन्द्रः।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२॥

पदार्थ—(एष) यह (ब्रह्मा) सबसे महान् है (यः) जो (ऋत्वियः) ऋतु के अनुसार संसार के सारे कार्यों का संचालन करने की प्रसिद्धि वाला है (इन्द्रो नाम) ईश्वर नाम से (श्रुतः) संसार में विख्यात है (गृणे) उसकी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो प्रत्येक ऋतु के अनुसार संसार के सारे कार्यों का संचालन करता है, वह सबसे महान् तथा ईश्वर नाम से प्रसिद्ध है। मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

४३९—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

३ २३ १२ ३१२ ३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्माणः) उपासना करने वाले लोग (इन्द्रं) परमेश्वर का (महयन्तः) पूजा करते हुए (अर्कैः) चारों वेदों से (अवर्धयन्) प्रसन्न करते हैं (अहये) साँप के समान पाप के (हन्तवा उ) नाश के लिए ॥३॥

भावार्थ—सांप के समान पाप के नाश के लिये चारों वेदों से परमेश्वर की पूजा करते हुए उपासक लोग उसको प्रसन्न करते हैं ॥३॥

४४०—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१२ ३ २३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४॥

पदार्थ—(अनवः) मनुष्य (ते) तेरे (रथम्) रथ को (अश्वाय) घोड़े के लिए (तक्षुः) बनाये हैं (त्वष्टा) परमात्मा ने (वज्रम्) शस्त्र का (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे गये विशेष पुरुष ! (द्युमन्तं) प्रकाशमान ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली सभाध्यक्ष ! बहुत लोग तुझे पुकारते हैं, कारीगरों ने तेरे घोड़ों के लिए योग्य रथ बनाये हैं। परमात्मा ने तेरे शस्त्र अचूक बनाये हैं (तू उनका उपयोग कर) ॥४॥

४४१—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५॥

पदार्थ—(शं) कल्याणकारक (पदं) स्थान (मघं) धन (रयीषिणे) धन चाहने वाले संयमी पुरुष के लिए है (न) नहीं (कामं) कामना को (अव्रतः) अकर्मी (हिनोति) प्राप्त कर सकता है (न) नहीं (स्पृशत्) छू सकता (रयिम्) धन को ॥५॥

भावार्थ—कर्मों के विधिपूर्वक करने वालों के लिए कल्याणकारी पदवी और सम्पत्ति होती है, कर्महीन जन न कोई प्रतिष्ठा पाता है और न कोई सम्पत्ति ॥५॥

४४२—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। विश्वेदेवाः।

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १२ ३१ २३१२
सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥

पदार्थ—(सदा) सर्वदा (गावः) चारों वेदों की वाणियां सूर्य की किरणें (शुचयः) पवित्र हैं (विश्वधायसः) संसार को धारण करने वाली हैं (सदा) सर्वदा (देवाः) देव (अरेपसः) पापरहित होते हैं ॥६॥

भावार्थ—जैसे चारों वेदों की वाणियां, भूमि पर का जल, सूर्य की किरणें और गौएँ सर्वदा पवित्र हैं तथा संसार को धारण करती हैं, ऐसे ही परमात्मा के भक्त भी सर्वदा परोपकारी और पापों से रहित होते हैं ॥६॥

४४३—संवर्तः। द्विपदाविराट्। उषा इन्द्रो वा।

१ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २र
आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७॥

पदार्थ—(आयाहि) जब आती हैं (वनसा सह) तेज के साथ (गावः) गौएँ (सचन्त) रहती हैं (वर्तनि) गोशाला में (यत्) जो गौएँ (ऊधभिः) दूध से पूर्ण स्तनों वाली हैं ॥७॥

भावार्थ—जब उषादेवी प्रकाश करती हुई उदय होती है तब गोशाला में स्थित गौओं के स्तन दूध से भरे रहते हैं ॥७॥

[दूसरे पक्ष में] जिस समय सूर्य उदय होने लगता है उस समय उसकी किरणें तमाम फैलती हुई पूर्ण प्रकाश से युक्त होती हैं और अपने मार्ग पर दौड़ती हैं ॥७॥

४४४—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८॥

पदार्थ—(क्षियन्तः) निवास करते हुए (प्रक्षे) घर में (मधुमति) भोग्य पदार्थों से युक्त (पुष्येम) पुष्ट करें (रयिम्) धन का भी (धीमहे) चिन्तन करें (ते) तेरा (इन्द्र) हे ईश्वर ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भोग के योग्य पदार्थों से युक्त अपने घरों में निवास करते हुए हम सम्पत्ति बढ़ायें और तेरा ध्यान या चिन्तन भी करें ॥८॥

४४५—त्रसदस्युः। द्विपदाविराट्। इन्द्रः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥

पदार्थ—(अर्चन्ति) पूजा करते हैं (अर्कम्) पूजा करने के योग्य परमेश्वर की (मरुतः) विद्वान् लोग (स्वर्काः) मनोहर मन्त्रों से युक्त (आस्तोभति) स्तोत्रों से स्तुति करते हैं (श्रुतः) विख्यात (युवा) एक रस से विद्यमान (सः) वह (इन्द्रः) परमेश्वर ॥९॥

भावार्थ—मनोहर मन्त्रों से विद्वान् लोग पूजने योग्य परमेश्वर की पूजा करते हैं तथा स्तोत्रों से स्तुति करते है। वह एक रस से विद्यमान परमेश्वर विख्यात है ॥८॥

४४६—त्रसदस्युः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१०॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**वः**) तुम लोग (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिये (**वृत्रहन्तमाय**) पापों के अत्यन्त नाश करनेवाले (**विप्राय**) बुद्धि के भण्डार (**गाथम्**) गान को (**गायत**) गाओ (**यम्**) जिस को प्रेम करता है (**जुजोषते**) स्वीकार करता है ॥१०॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! सर्वज्ञ और पापों के अत्यन्त निवारक परमेश्वर के लिए तुम जिस मन्त्र का गान करते हो, वह उसे स्वीकार करता है ॥१०॥

卐 दशमी दशती समाप्त 卐

४४७—पृषध्रः । द्विपदाविराट् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥१॥

पदार्थ—(**अचेति**) सब जानते हैं (**अग्निः**) परमेश्वर (**चिकितिः**) विश्व का ज्ञाता है (**हव्यवाड्**) कर्मफल तथा भोग्यों का दाता है (**न**) और (**सुमद्रथः**) शुद्ध ज्ञान ही उसका रथ है ॥१॥

भावार्थ—परमात्मा को सब जानते हैं और वह भी सब को जानता है। परमात्मा मनुष्यों को उन के भले और बुरे कर्मों के फल तथा भोग्य पदार्थों को देता है। शुद्ध ज्ञान ही भगवान् का रथ है ॥१॥

४४८—बन्ध्वादयः । द्विपदाविराट् । अग्निः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारे (**अन्तमः**) समीप है (**उत**) और (**त्राता**) रक्षक (**शिवः**) कल्याणकारक (**भुवः**) है (**वरूथ्यः**) भजन करने के योग्य है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे अत्यन्त समीप है और रक्षा करने वाला है। तू कल्याणकारक और भजन के योग्य है ॥२॥

४४९—सुबन्ध्वादयः । द्विपदाविराट् । भगः, अग्निः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३॥

पदार्थ—(**भगा न**) सूर्य के समान (**चित्रः**) अद्भुत (**अग्निः**) परमेश्वर (**महोनां**) धनवानों को (**दधाति**) देता है (**रत्नम्**) नाना प्रकार के देने योग्य रत्न ॥३॥

भावार्थ—सूर्य के समान अद्भुत परमेश्वर ही धनवानों को नाना प्रकार के रत्न आदि देता है ॥३॥

४५०—बन्ध्वादयः । द्विपदा विराट् । अग्निः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ॥४॥

पदार्थ—(**विश्वस्य**) सब के (**प्रस्तोभ**) स्तुति के योग्य है (**पुरो वा सन्**) हमारे सम्मुख हो (**यदि वा**) अथवा (**इह**) हमारे अन्तःकरण में विराजमान (**नूनम्**) यह सत्य है ॥४॥

भावार्थ—हे पूज्य परमेश्वर ! तू जहाँ सब के पहले या आगे है, तो निश्चय ही इस संसार में भी विराजमान है ॥४॥

४५१—संवर्तः । द्विपदाविराट् । उषा ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्त्तनिं सुजातता ॥५॥

पदार्थ—(**उषा**) उषादेवी (**अप**) दूर (**स्वसुः**) रात्रि का (**तमः**) अन्धकार (**संवर्तयति**) दूर करती है (**वर्तनिम्**) मार्ग को (**सुजातता**) अपने प्रकाश से अपनी उत्पत्ति की विशेषता से ॥५॥

भावार्थ—उषादेवी उदय होकर रात्रि का अन्धकार नष्ट करती है और उत्पत्ति की विशेषता से मार्गों को दिखलाती है, यही उसकी महिमा है ॥५॥

४५२—भौवन आप्त्यः । द्विपदाविराट् । विश्वे देवाः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥

पदार्थ—(**इमा**) इन (**नु**) शीघ्र (**कम्**) सुख को (**सीषधेम**) सिद्ध करें (**भुवना**) सारा संसार (**इन्द्रश्च**) परमेश्वर भी (**विश्वे च**) और सब (**देवाः**) देव लोग भी ॥६॥

भावार्थ—परमेश्वर, सारा संसार, और सारे सूर्यादि देवता हमें शीघ्र सुखी करें ॥६॥

४५३—कवष एलूषः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७॥

पदार्थ—(**विस्रुतयः**) छोटे छोटे मार्ग (**यथा**) जैसे (**पथा**) राजमार्ग से निकलते हैं (**इन्द्र**) हे प्रभो ! (**त्वत्**) तुझसे (**यन्तु**) प्राप्त हों (**रातयः**) सारे दान ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जैसे राजमार्ग (बड़ी सड़क) से छोटी छोटी पगडंडियां निकलती हैं, ऐसे ही तुझ से अनेक प्रकार के दान हमें प्राप्त हों ॥७॥

४५४—भरद्वाजः । द्विपदाविराट् । इन्द्रः ।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥

पदार्थ—(**अया**) इस स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा (**वाजं**) अन्न और बल को (**देवहितम्**) परमेश्वर के दिये हुए (**सनेम**) प्राप्त करें (**मदेम**) प्रसन्न रहें (**शतहिमाः**) सौ वर्ष तक की आयु वाले हुए (**सुवीराः**) सुन्दर और सुशिक्षित पुत्र और पौत्रों से संयुक्त होकर ॥८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा हम परमात्मा के दिये हुए अन्न और बल को प्राप्त करें तथा सुशिक्षित पुत्र और पौत्रों से युक्त हो कर सौ वर्ष तक प्रसन्न रहें ॥८॥

४५५—आत्रेयः । द्विपदा विराट् । विश्वेदेवाः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९॥

पदार्थ—(**ऊर्जा**) बल से (**मित्रः**) सूर्य (**वरुणः**) जल (**पिन्वत**) दें (**इडाः**) अन्न आदि पदार्थ (**पीवरीं**) पर्याप्त (**इषम्**) विज्ञान (**कृणुही**) उत्पन्न कर (**नः**) हमारे लिये (**इन्द्र**) हे परमेश्वर ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे लिये पर्याप्त ज्ञान दे, सूर्य और जल अपनी शक्ति से अन्न पैदा करें ॥९॥

४५६—वसिष्ठः । एकपदा गायत्री । इन्द्रः ।

२ ३ १ २
इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वस्य**) ब्रह्माण्ड का (**राजति**) शासन करता है ॥१०॥

भावार्थ—परमेश्वर सारे संसार का स्वामी है ॥१०॥

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

४५७—गृत्समदः । अष्टिः । इ॰ ।

१ २ ३ १ २र ३ २
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
२र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

पदार्थ—(**त्रिकद्रुकेषु**) तीन प्रकार के शरीरों में (**महिषः**) महान् (**यवाशिरं**) भोगों को देनेवाले (**तुविशुष्मः**) अति बलवान् (**तृम्पत्**) तृप्त करता है (**सोमम्**) जीव को (**अपिबत्**) रक्षा करता है (**विष्णुना**) वायु के द्वारा (**सुतं**) उत्पन्न जगत् को (**यथावशम्**) यथेष्ट (**स**) वह (**ईं**) इसको (**ममाद**) आनन्दित करता है (**महि**) महान् (**कर्म**) कर्म (**कर्तवे**) करने के लिये (**महाम्**) महान् (**उरुं**) महान् (**सश्चद्**) प्राप्त होता है (**देवः**) देव (**देवम्**) देव (**सत्यः**) सत्य (**इन्दुः**) ऐश्वर्यशाली (**सत्यम्**) अविनाशी (**इन्द्रम्**) जीवको ।१।

भावार्थ—महान् शक्तिशाली जो तीनों शरीरों में विद्यमान सोम को सुखादि से तृप्त करता है, भोग के देने वाले संसार को वायु के द्वारा यथेष्ट रूपसे रक्षित करता है, और इस जीवको महान् कर्म करने के लिये आनन्दित करता है, वह अविनाशी परमेश्वर देव महान् देव जीवात्मा को प्राप्त होता है ॥१॥

४५८—गौराङ्गिरसः । अतिजगती । सूर्यः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ।२।

पदार्थ—(अयं) यह (सहस्रम्) हजारों (आनवः) मनुष्यसम्बन्धी (दृशः) दर्शनीय (कवीनाम्) बुद्धिमानों के (मतिः) मनन का विषय (ज्योतिः) ज्योति (विधर्म) सबको धारण करनेवाली (ब्रध्नः) महान् (समीचीः) सुन्दर (उषसः) उषाओं को (समैरयत्) प्रेरित करता है (अरेपसः) अन्धकाररहित (सचेतसः) ज्ञानीजन (स्वसरे) दिन में (मन्युमन्तः) ज्ञानवाले (चिताः) चेतन (गोः) प्रकाश से ॥ २ ॥

भावार्थ—यह सहस्रों मनुष्यों से सम्बन्धित दर्शनीय, बुद्धिमानों के मनन का विषय तथा सबको धारण करनेवाली ज्योति महान् सूर्य सुन्दर उषा को प्रेरित करता है। दिन में सूर्य से प्रकाश पाये हुए ज्ञानी तथा समस्त चेतनवर्ग अन्धकार से मुक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

४५९—परुच्छेपः। अत्यष्टिः। इन्द्रः।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः।
१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पितर वाजसातये मँहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (आयाहि) प्राप्त हो (नः) हमें (परावतः न) अज्ञान के कारण दूर वर्तमान हुओं के समान (अयं) यह (अच्छा) भली प्रकार (विदथानी) यज्ञों को (स इव) समान (सत्पतिः) सत्य का पालक (अस्ता) गृह को (राजेव) राजा के समान (सत्पतिः) सत्याचरण से युक्त (हवामहे) पुकारते हैं। (त्वा) तुझे (प्रयस्वन्तः) अन्नादि से युक्त (सुतेषु) भोग्य पदार्थों के सम्पन्न होने पर (पुत्रासः) पुत्र (न) समान (पितरं) पिता को (वाजसातये) अन्न का विभाजन करने के लिए (मंहिष्ठ) हे पूजनीय ! (वाजसातये) बल की प्राप्ति के लिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अज्ञानवश दूर वर्तमान हुओं के समान हम उपासकों को उसी प्रकार प्राप्त हों, जैसे यह सत्पति विद्वान् यज्ञों को प्राप्त होता है तथा सज्जनों का पालक राजा जैसे न्यायगृह को प्राप्त होता है, समस्त भोग्य पदार्थों के सम्पन्न होने पर अन्नादि से युक्त हम लोग बल प्राप्ति के लिए तुझ पूजनीय को वैसे पुकारते हैं जैसे कि पुत्र अन्न के विभाजन के लिए पिता को पुकारते हैं ॥ ३ ॥

४६०—रेभा। अतिजगती। इन्द्रः।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रँ सत्रादधानमप्रतिष्कुतँ श्रवाँसि भूरि।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
मँहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रम्) परमेश्वर का (जोहवीमि) बार-बार आह्वान करता हूँ (मघवानम्) दानी और धनवान् (उग्रम्) ओजस्वी (सत्रा) सर्वदा (दधानम्) धारण करने वाले (अप्रतिष्कुतम्) कभी भूल नहीं करने वाले (श्रवांसि) यश और अन्न (भूरि) बहुत (मंहिष्ठः) अतिपूज्य (गीर्भिः) स्तुतियों के द्वारा (आ) सब प्रकार से (च) और (यज्ञियः) उपासना के योग्य (ववर्त) प्राप्त हो (नः) हमें (विश्वा) सब (सुपथा) प्रशस्त मार्ग (राये) ऐश्वर्य के लिए (कृणोतु) करे (वज्री) न्यायरूप शस्त्र का धारण करने वाला ॥ ४ ॥

भावार्थ—कभी भी भूल न करने वाले, सबसे बड़े दानी और ओजस्वी परमेश्वर को बार-बार पुकारता हूँ। वह पूज्य और महान् है। स्तुतियों के द्वारा हम उसको प्राप्त करें। न्यायरूप शस्त्र को धारण करनेवाला वह हमारे धन के सारे मार्ग निर्विघ्न बना दे ॥ ४ ॥

४६१—परुच्छेपः। अतिशक्वरी। अत्यष्टिर्वा। विश्वेदेवाः।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु
२र ३ १ २ ३ १ २
त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छ न धीतयः ॥५॥

पदार्थ—(अस्तु) हो (श्रौषट्) सत्य (पुरो) आगे (अग्निं) अग्नि और परमेश्वर को (धिया) ज्ञान और कर्म से (दधे) धारण करते हैं (आ) भली भाँति (नु) निश्चय ही (त्यत्) वह (शर्धः) बल को (दिव्यम्) दिव्य (वृणीमहे) प्राप्त करते हैं (इन्द्रवायू) विद्युत् और वायु (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (यत् ह) जो भी (क्राणा) कार्यों को सिद्ध करनेवाले (विवस्वते) सूर्य के लिए (नाभा) जगत् के मध्य में (सन्दाय) ध्यान को लगाकर (नव्यसे) नित्य नूतन (अध) अनन्तर (प्रनूनम्) निश्चय (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं (धीतयः) न धारण करने वाली शक्तियों के समान (धीतयः) सृष्टि के विधान (देवान्) देवों को (अच्छा) अच्छी प्रकार ॥ ५ ॥

भावार्थ—हम परमेश्वर को अपने ज्ञान और कर्म से आगे रखते हैं। उसके उस उत्तम दिव्य बल को स्वीकार करते हैं। जगत् के नाभि में स्थित नित्य नए सूर्य के विचार के लिए अपने ध्यान को लगाकर जब हम जगत् के समस्त कार्यों को सिद्ध करनेवाले विद्युत् और वायु को अपने ज्ञान में ग्रहण करते हैं तब धारण करनेवाली शक्तियों के समान सृष्टि के विधान (नियम) समस्त देवों को व्याप्त होकर स्थित हुए हमें ज्ञान में प्राप्त होते हैं, इस प्रकार यह कथन ठीक है ॥ ५ ॥

४६२—एवयामरुत्। अतिजगती। मरुतः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।
१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥६॥

पदार्थ—(प्र) प्रकृष्ट (वः) तुझे (महे) बड़ाई के लिए (मतयः) बुद्धिएँ (यन्तु) प्राप्त हों (विष्णवे) यज्ञ के लिए (मरुत्वते) ऋत्विजों से युक्त (गिरिजा) वेदवाणी से उत्पन्न हुई (एवयामरुत्) हे ज्ञानयुक्त मनुष्य ! (प्रशर्धाय) उत्तम बल के लिए (प्रयज्यवे) उत्तम यज्ञसाधन के लिए (सुखादये) सुखपूर्वक भोग के लिए (तवसे) स्फूर्ति के लिए (भन्दविष्टये) कल्याण सुखसंगत के लिए (धुनिव्रताय) अनेक व्यवहारों के लिए (शवसे) मानसबल के लिए ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे ज्ञानयुक्त मनुष्य ! बड़ाई, ऋत्विजों से युक्त यज्ञ, उत्तम बल, यज्ञ साधन, सुखपूर्वक भोग, स्फूर्ति, कल्याण, सुखसंगति, अनेक व्यवहारों तथा मानस बल के लिए वेदवाणी से उत्पन्न बुद्धियाँ तुम्हें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

४६३—अनानतः। अत्यष्टिः। सोमः।

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाँसि
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—(अया) इस (रुचा) तेजसे (हरिण्या) रस का हरण करने वाले (पुनानः) पवित्र करता हुआ (विश्वा) समस्त (द्वेषांसि) द्वेषों को (तरति) नष्ट करता है (सयुग्वभिः) साथ जुड़े हुए ज्ञानों से (सूरः न) सूर्य के समान (सयुग्वभिः) जुड़ी हुई किरणों से (धारा) धारा से (पृष्ठस्य) द्युलोक के (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अरुषः) रूपवान् (हरिः) मनुष्य (विश्वा) सारे (यत्) जो (रूपा) रूपों को (ऋक्वभिः) ज्वालाओं रूप (सप्तास्येभिः) सात मुखों से (ऋक्वभिः) तेजों से (परियासि) व्यापता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! इस रस हरण करने वाली दीप्ति से जैसे सूर्य साथ जुड़ी किरणों से सब विरोधी अन्धकारों को नष्ट करता है, ऐसे ही पवित्रात्मा पुरुष द्वेषादि दुर्गुणों को साथ जुड़े ज्ञानों से नष्ट करता है और जैसे रूपवान अग्नि द्युलोक की तीव्र ज्योति धारा से दीप्त होता है और समस्त रूपों को सात प्रकार की ज्वालाओं रूप मुखों से व्यापता है, इसी प्रकार पवित्रात्मा पुरुष प्रशंसाओं से सर्वत्र ख्यात होता है ॥७॥

४६४—नकुलः। अत्यष्टिः। सविता।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतु-
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
मर्चामि सत्यसवँ रत्नधामभि प्रियं मतिम्।
३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
१ २ ३ १ २ ३ १ २
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (त्यम्) उस (देवम्) दान आदि गुणों वाले (सवितारम्) संसार के उत्पादक (ओण्योः) द्युलोक और पृथिवी लोक के अन्दर (कविक्रतुम्) बुद्धिपूर्वक जिसके सब काम हैं (अर्चामि) पूजा करता हूँ

(सत्यसवम्) सत्यज्ञान वाले (रत्नधाम्) सम्पूर्ण रत्नों के धारण करने वाले (अभि प्रियम्) सबके प्यारे (मतिम्) मनन करने योग्य (ऊर्ध्वा) ऊपर नीचे सब तरफ (यस्य) जिसकी (अमतिः) सबसे श्रेष्ठ (भाः) प्रकाश (अदिद्युतत्) चमकता है (सवीमनि) आज्ञा में (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण हाथ में प्राप्त के समान (अमिमीत) बनाया है (सुक्रतुः) सुन्दर ज्ञान वाले (कृपा) कृपा से (स्वः) अपनी ॥ ८ ॥

भावार्थ—हाथ में सुवर्ण भूषण धारण कर सुन्दर यज्ञ करने वाला तथा पवित्र बुद्धि वाला मैं, जिसकी आज्ञा में प्रखर तेज ऊपर की तरफ प्रकाशित हो रहा है, जिसने अपनी कृपा से सकल ब्रह्माण्ड की रचना की है, द्युलोक और पृथिवी लोक में जिस के सारे काम बुद्धिपूर्वक देखे जाते हैं, सत्य ज्ञान वाले, सारे रत्नों के दाता, मनन करने के योग्य और संसार की प्रेरणा करने वाले उस प्यारे प्रभु की पूजा करता हूं ॥ ८ ॥

४६५—परुच्छेपः । अत्यष्टिः । अग्निः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥

पदार्थ—(अग्निम्) तेजस्वी (होतारम्) ग्रहण करने वाले (मन्ये) जानूं (दास्वन्तं) दानी (वसोः) ब्रह्मचारी का (सुनुम्) पुत्र (सहसः) बलवान् का (जातवेदसम्) विद्या में प्रसिद्ध (विप्रम्) बुद्धिमान् के (न) समान (जातवेदसम्) विद्या को प्रकट करने वाले (यः) जो (ऊर्ध्वया) उत्तम विद्या से (स्वध्वरः) कल्याणकारी सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले (देवः) मनोहर (देवाच्या) दिव्यशक्ति देने वाली (कृपा) कृपा से (घृतस्य) घी के (विभ्राष्टिम्) विविध पदार्थों को पकाने वाली अग्नि के समान (अनु) पीछे कामना करे (शुक्रशोचिषः) शुद्ध दीप्ति वाला (आजुह्वानस्य) होम करने के योग्य (सर्पिषः) प्राप्त करने के योग्य ॥९॥

भावार्थ—हे कन्ये ! जो पुरुष उत्तम विद्या से कल्याणकारी यज्ञ करने वाला हो, विद्वानों को प्राप्त होने वाली ईश्वर की कृपा से मनोहर हो, जो होम के लिये प्राप्त करने के योग्य शुद्ध पवित्र घी के साथ अनेक प्रकार के पदार्थों को पकाने वाली अग्नि के समान तेजस्वी हो, जो अग्नि के समान ग्रहण करने की योग्यता रखता हो, जो स्वयं दानी हो, जो बलवान् वसु ब्रह्मचारी का पुत्र हो, जो प्रसिद्ध विद्वान् पुरुष के समान अपनी विद्या को भी प्रकट करने की शक्ति रखता हो, मैं ऐसे पुरुष को ही पति स्वीकार करती हूँ, तू भी ऐसा ही कर ॥९॥

४६६—गृत्समदः । अतिशक्वरी । इन्द्रः ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्ज शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥

पदार्थ—(तव) तेरा (त्यत्) वह (नर्यम्) मनुष्यों का हितकारक (नृतः) हे सबको नचाने वाले (अपः) प्राणों को (इन्द्रः) हे जीव (प्रथमम्) पहला (पूर्व्यम्) पहले वालों ने किया हुआ (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में (प्रवाच्यम्) प्रवचन करने के योग्य (कृतम्) कर दिया है (यः) जो (देवस्य) सब के प्रकाशक के (शवसा) बल से (प्रारिणाः) प्राप्त करता है (असुः) प्राण को (रिणन्) प्राप्त करता हुआ (अपः) जलों को (भुवः) तिरस्कार करता है (विश्वम्) सब (अभि) चारों तरफ से (अदेवम्) पापी को (ओजसा) अपनी शक्ति से (विदेत्) प्राप्त करावे (ऊर्जम्) बल को (शतक्रतुः) परमेश्वर (विदेत्) प्राप्त करावे (इषम्) अन्न को भी ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रकृति से नाना प्रकार के काम लेने वाले जीव ! सब से प्रथम करने योग्य, परमेश्वर के विषय में वर्णन करने योग्य, मनुष्यों के हितकारी कर्म को तूने किया है। जिस परमेश्वर के बल से तूने प्राण धारण किया है तथा सारे असुरों को नीचा दिखाया है, वही सर्वज्ञ तुम्हें अन्न दे और बल दे ॥ १० ॥

卐 बारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

पवमान पर्व

पञ्चमोऽध्यायः

४६७—अमहीयुः । पवमानः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

उच्चा ते जातमन्धसो दिविः सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१॥

पदार्थ—(उच्चा) उत्तम (ते) तेरे (जातम्) उत्पन्न (अन्धसः) अन्न से (दिवि) मोक्षधाम में (सत्) विद्यमान (भूम्या) भूमिपर (आददे) प्राप्त करता है (उग्रं) अत्यंत (शर्म) सुख(महि) प्रचुर (श्रवः) कीर्ति ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पृथिवीस्थ मनुष्य तुम्हारे दिए हुए अन्न से उत्पन्न यश और सुख को तथा तुम्हारे उत्तम मोक्षधाम में विद्यमान सुख को भी प्राप्त करता है ॥१॥

४६८—मधुच्छन्दा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥२॥

पदार्थ—(स्वादिष्ठया) सुस्वादु (मदिष्ठया) अति आनन्ददायक (पवस्व) बहता है (सोम) जल (धारया) धारा प्रवाह से (इन्द्राय) जीव के (पातवे) पीने के लिए (सुतः) उत्पन्न या निचोड़ा हुआ ॥२॥

भावार्थ—चुआया हुआ सोमरस, जीवात्मा के पीने के लिए, सुन्दर स्वादिष्ट और आनन्ददायक धार के रूप में टपकता है ॥२॥

४६९—भृगुर्वारुणिः, जमदग्निर्वा भार्गवः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥३॥

पदार्थ—(वृषा) सुख की वर्षा करने वाला (पवस्व) पवित्र कर अथवा प्रदान कर (धारया) वेदवाणी के द्वारा (मरुत्वते) प्राणधारण करनेवाले(च) और (मत्सरः) आनन्द का दाता (विश्वा) विश्व को (दधानः) धारण करता हुआ (ओजसा) शक्ति से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुखों की वृष्टि करने वाला आनन्ददाता तथा प्राणधारी जीव को अपनी शक्ति से सम्पूर्ण विश्व का धारण करता हुआ तू वेदवाणी से ज्ञान प्रदान कर या पवित्र कर ॥३॥

४७०—अहमीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (मदः) प्रसन्न करने या आनन्द देनेवाला (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ (तेन) उससे (पवस्व) पवित्र कर (अन्धसा) आनन्द या ज्ञान (देवावीः) विद्वानों की रक्षा करनेवाले (अघशंसहा) पापवृत्तियों का नाश करनेवाला ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! देवों का रक्षक और पापवृत्तियों का नाशक तू अपने आनन्द से हमें आनन्दित कर ॥४॥

४७१—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥५॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीन (वाचः) वाणियां [ऋग्यजुसामरूप] (उदीरते) बोली जाती हैं (गावः) गायें (मिमन्ति) हुँकारती हैं (धेनवः) दूध देने वाली (हरिः) वायु (एति) बहती है (कनिक्रदत्) सनसनाती हुई ॥५॥

भावार्थ—वेदपाठी वेदों के तीनों प्रकार के मन्त्रों का पाठ करते हैं, जल्द की ब्यायी गाएं दुहने के लिए हुँकारती हैं, शीतल सुगन्ध मन्द वायु सन-सन करती हुई बहती है, अर्थात् सवेरा हो गया है ॥५॥

४७२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्राय) यजमान के लिए (इन्दो) सोमरस (मरुत्वते) ऋत्विजों से युक्त विराजमान (पवस्व) चूता है (मधुमत्तमः) अतिमधुर

(अर्कस्य) मन्त्र का (योनिम्) कारण परमात्मा को (आसदम्) प्राप्त करता हूँ ॥६॥

भावार्थ—अतिमधुर सोमरस ऋत्विजों के साथ यजमान के लिए चूता है। मैं मन्त्रों के रचने वाले परमात्मा को प्राप्त करता हूँ ॥६॥

४७३—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥७॥

पदार्थ—(असावि) चुआया गया है (अंशुः) सोम (मदाय) आनन्द के लिए (अप्सु) यज्ञ कर्मों में (दक्षः) शीघ्र (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न होने वाला (श्येनो न) श्येन [बाज] पक्षी के समान (योनिम्) अपने स्थान [यज्ञ गृह] में (आसदत्) लाया जाता है ॥७॥

भावार्थ—पर्वतीय प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला, सोम, यज्ञों में आनन्द के लिए शीघ्र चुआया गया है। जैसे पक्षी अपने घोंसलों में आ जाते हैं, ऐसे ही सोमरस भी यज्ञगृह में लाया जाता है ॥७॥

४७४—दृढच्युतः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८॥

पदार्थ—(पवस्व) ज्ञान दे (दक्षसाधनः) आत्मबल का साधन (देवेभ्यः) विद्वानों के (पीतये) रक्षा के लिए (हरेः) हे दुःखहारक (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के (वायवे) वायु के (मदः) आनन्ददाता ॥८॥

भावार्थ—हे दुःखहारक सोम परमेश्वर ! आत्मबल का साधन तथा आनन्द-दाता तू विद्वानों, मनुष्यों तथा वायु की रक्षा के लिए हमें ज्ञान दे ॥८॥

४७५—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥९॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) उपदेष्टा (गिरिष्ठाः) मेघ में व्यापक (पवित्रे) पवित्रात्मा में (सोमः) परमेश्वर (अक्षरत्) आनन्द की वर्षा करता है (मदेषु) उपासनाओं में (सर्वधा) सबका धारण करनेवाला (असि) है ॥९॥

भावार्थ—सर्वप्रकार उपदेष्टा, मेघ तथा पर्वतादि में व्यापक परमेश्वर पवित्र आत्मा में आनन्द की वर्षा करता है। हे परमेश्वर, तू उपासनाओं में सबका धारण करने वाला है ॥९॥

४७६—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (प्रिया) उत्तम (दिवः) दिव्यलोक अथवा दिव्य पदार्थों का (वयांसि) अवस्थाओं का (नप्त्योः) दिन और रात्रि में (हितः) कल्याणकारी (स्वानैः) उत्तम उपदेशों से युक्त (याति) पाता है (कविक्रतुः) बुद्धिमान् ॥ १० ॥

भावार्थ—दिव्य पदार्थों का उपदेश करनेवाला, रात्रि और दिन में भी हित-कारी उत्तम उपदेशों से युक्त बुद्धिमान् पुरुष, उत्तम पद पाता है ॥ १० ॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

४७७—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

२ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) विद्वान् जन (मदच्युतः) आनन्द का प्रवाह बहानेवाले हैं (श्रवसे) अन्न और कीर्ति के लिए (नः) हमारे (मघोनाम्) धनवानों के या दानी अथवा यजमानों के (सुता) जगत् में उत्पन्न हुए (विदथे) यज्ञशाला में (अक्रमुः) पहुँचते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जगत् में उत्पन्न हुए विद्वान् पुरुष, आनन्ददायक सोमरस हमारे यजमानों और धनवानों की कीर्ति तथा अन्न के लिये यज्ञशाला में पहुँचाये जाते हैं।१।

४७८—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ २ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) मनुष्य (विपश्चितः) विद्वान्, जन (अपः) जल जैसे (नयन्तः) ले जाते हैं (ऊर्मयः) तरंगों को (वनानि) वनों में (महिषा) भैंसे के (इव) समान ॥ २ ॥

भावार्थ—जलों की लहरों के समान और वनों के भैंसों के समान समूह बनाकर विद्वान् लोग सोमरस प्राप्त करते हुए लोगों के पास जाते हैं ॥ २ ॥

४७९—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली ! (वृषा) सुखों की वृष्टि करनेवाला (सुतः) निमित्त कारण या सृष्टिकर्त्ता (कृधी) कर (नः) हमारे (यशसः) यश के लिए (जने) जनता में (विश्वा) सारे (अप) दूर (द्विषः) द्वेषभावों को (जहि) दूर भगा ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! सुख की वृष्टि करनेवाला सृष्टिकर्त्ता तू जनता में हमें यशस्वी कर तथा हमारे समस्त काम क्रोधादि शत्रुओं को दूर भगा ॥ ३ ॥

४८०—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(वृषा) मनोवांछित फल के दाता (हि) निश्चय (असि) है (भानुना) अपने तेज से (द्युमन्तं) प्रकाशस्वरूप (त्वा) तुझे (हवामहे) आह्वान करते हैं (पवमान) हे पवित्र करनेवाले शान्तिस्वरूप परमात्मन् (स्वर्दृशम्) मोक्षरूप सुख विशेष के दिखाने वाले ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब को पवित्र करने वाले शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू मनो-वांछित फलों का दाता है। तू अपने तेज से तेजस्वी और मोक्ष का दाता है। हम तुझे पुकारते हैं ॥ ४ ॥

४८१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥

पदार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (पविष्ट) पवित्र (चेतनः) चेतनस्वरूप (प्रियः) प्यारा (कवीनां) विद्वानों का (मतिः) पूजा के योग्य (सृजत्) उत्पन्न करता है (अश्वं) संसार को (रथीरिव) रथ के स्वामी के समान ॥ ५ ॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली, चेतनस्वरूप, सबका प्रिय तथा विद्वानों का माननीय परमेश्वर रथी के समान, गतिशील संसार को उत्पन्न करता है और व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

४८२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (वाजिनः) बलयुक्त (गव्या) गौ की इच्छा से (सोमासः) पुरुष (अश्वया) घोड़े की इच्छा से (शुक्रासः) पवित्र (वीरया) पुत्र की कामना से (आशवः) कर्मण्य ॥ ६ ॥

भावार्थ—बलयुक्त, शुद्ध तथा कर्मण्य पुरुष गाय, अश्व तथा पुत्र की इच्छा से संसार में उत्पन्न किए जाते हैं ॥ ६ ॥

४८३—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देवः) दिव्यगुण वाला [आत्मा] (आयुषक्) जीवन [जिन्दगी] का सेवन करने वाला (इन्द्रम्) परमेश्वर की शरण में (गच्छतु) प्राप्त हो [जाय] (ते) तेरा (मदः) स्तोत्र (वायुम्) हवा में (आरोह) चढ़कर चल (धर्मणा) धारण करने वाले यन्त्र [यान] की सहायता से या प्राणायाम रूप धर्म से ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू नाना योनियों में भ्रमण करने वाला तथा मनुष्य की आयु का भी सेवन करनेवाला है। तू अपने को पवित्र कर। तेरा स्तोत्र परमेश्वर को मिले। तू यान या प्राणायाम के द्वारा वायु पर चढ़ (हवा में उड़ान ले) ॥ ७ ॥

४८४—अमहीयुः । पवमानः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २
पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(पवमानः) पवित्र करने वाले परमात्मा ने (अजीजनत्) उत्पन्न किया है (दिवः) द्युलोक के (चित्रं) विचित्र (तन्यतुम्) विद्युत् के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश (वैश्वानरं) सौर्य को (बृहत्) महान् ॥ ८ ॥

भावार्थ—पतितपावन परमात्मा ने द्युलोक की विचित्र वस्तु (बिजली) के समान महान् सूर्य के प्रकाश को उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

४८५—असितः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानासः) सत्य का उपदेश करने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्यशाली (मदाय) आनन्द को (बर्हणा) महान् (गिरा) वाणी से (मधो) ज्ञान के (अर्षन्ति) प्राप्त करते हैं (धारया) धारण करने वाली ॥९॥

भावार्थ—सब प्रकार सत्य का उपदेश करने वाले ऐश्वर्यशाली विद्वान् महान् तथा ज्ञान को धारण करने वाली वाणी को आनन्द के लिए प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

४८६—*असितः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१०॥

पदार्थ—(परि) सब तरफ से (प्रासिष्यदत्) उत्तमता से धार के साथ बहता है [पानी पर चलता है] (कविः) मेधावी [योगी] पुरुष (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मौ) तरंग पर (अधिश्रितः) बैठकर या उसके आश्रय से (कारुम्) संसार के कर्त्ता को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने के योग्य ॥१०॥

भावार्थ—बहुतों से चाहने योग्य, संसार के कर्त्ता परमेश्वर को धारण और उसका ध्यान करता हुआ मेधावी (योगी) पुरुष नदी की लहर पर बैठ कर, उसके साथ बड़ी सरलता से बहता है ॥१०॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

४८७—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २३२३ १ २ ३ १ २र १२ ३ १ २

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गंपरिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१॥

पदार्थ—(उप उ) समीप (जातम्) उत्पन्न या प्रसिद्ध (अप्तुरम्) जल मिश्रित (गोभिः) दूध से (परिष्कृतम्) साफ किया हुआ और मिलाया हुआ (भंगम्) चुआया गया [रसरूप से निकाला गया] (इन्दुम्) सोम को (देवाः) विद्वान् (अयासिषुः) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन चुआए, दूध से साफ किए हुए और जल से मिलाए हुए प्रसिद्ध सोमरस को प्राप्त करते हैं ॥१॥

४८८—*बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥२॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करने वाला (अक्रमीत्) दबा लेता है (विश्वा) समस्त (मृधः) बाधाओं को (विचर्षणिः) सर्वद्रष्टा (शुम्भन्ति) शोभित करते हैं (विप्रं) सर्वज्ञ को (धीतिभिः) स्तुतियों से ॥२॥

भावार्थ—पवित्र कर्त्ता तथा सर्वद्रष्टा परमेश्वर समस्त बाधाओं को दबा देता है। उस महान् सर्वज्ञ को लोग स्तुतियों से सुशोभित करते हैं ॥२॥

४८९—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २

आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥३॥

पदार्थ—(आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ (कलशं) शरीर में (सुतः) चुआया हुआ (विश्वा) समस्त (अर्षन्) प्राप्त कराता हुआ (अभि) भली प्रकार (श्रियः) श्रियों को (इन्दुः) सोम (इन्द्राय) जीव के लिए (धीयते) शक्तिदाता होता है ॥३॥

भावार्थ—शरीर में प्रविष्ट होता हुआ सोमरस समस्त श्रियों को प्राप्त कराता हुआ जीव के लिए शक्तिदाता होता है ॥३॥

४९०—*प्रभूवसुः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३क २र ३ २ १ २ ३ १ २

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥४॥

पदार्थ—(असर्जि) छोड़ दिया जाता है (रथ्यः) रथ में जोड़ने योग्य (यथा) जैसे (पवित्रे) पवित्र संसार में (चम्वोः) दो सेनाओं में (सुतः) उत्पन्न (कार्ष्मन्) संग्राम में (वाजी) घोड़ा (न्यक्रमीत्) चलता है ॥४॥

भावार्थ—जिस प्रकार रथ में जुता घोड़ा संग्राम में छोड़ा जाता है और सेनाओं के मध्य में भली भांति चलता है, उसी प्रकार जन्म धारण करनेवाला जीव पवित्र संसार में छोड़ दिया जाता है और वह क्रमानुसार द्यु और पृथिवी पर विचरता है ॥४॥

४९१—*मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥५॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यत्) जो (गावः) चन्द्रमा की किरणों के (न) समान (भूर्णयः) भ्रमण करनेवाली (त्वेषा) चमकनेवाली (अयासः) गतिशील (अक्रमुः) फैलती हैं (घ्नन्तः) नाश करती हुई (कृष्णाम्) कृष्णरात्रि के (त्वचम्) अन्धकार को (अप) दूर ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार दीप्तिवाली तथा गमनशील किरणें कृष्णा रात्रि के तम को नष्ट करती हुई फैलती हैं, इसी प्रकार कर्मण्य विद्वान् जन अज्ञान का नाश करते हुए सर्वत्र विचरते हैं ॥५॥

४९२—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३१ २र ३ १ २

अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥६॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) नाश करता हुआ (पवसे) पवित्र करता है (मृधः) हिंसावृत्तियों का (क्रतुवित्) संसार के सारे कर्मों के जाननेवाले (सोम) हे शान्तस्वरूप ! परमेश्वर ! (मत्सरः) आनन्द के दाता (नुदस्व) प्रेरणा कर (अदेवयुम्) नास्तिक (जनम्) मनुष्य को ॥६॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू संसार के सब कर्मों का जानने वाला और आनन्द का दाता है। तू हिंसा करानेवाले भावों का नाश करता हुआ संसार को पवित्र करता है। हे नाथ ! आसुरी भावों को दूर करके दैवी भावों को भर दे ॥६॥

४९३—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥७॥

पदार्थ—(अया) इस (पवस्व) पवित्र कर (धारया) धारा से (यया) जिससे (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाश दिया है (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (मानुषीः) मनुष्यों के (अपः) कर्मों की ॥७॥

भावार्थ—हे तेजस्वरूप परमेश्वर ! तू मनुष्यों के करने के कर्मों की प्रेरणा करता हुआ, उस पवित्र तेज की धारा से हमें पवित्र कर जिससे सूर्य को प्रकाशित किया है ॥७॥

४९४—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥८॥

पदार्थ—(सः) वह तू (पवस्व) पवित्र कर (यः) जो तूने (आविथ) रक्षा की है (इन्द्रम्) जीवात्मा की (वृत्राय) अज्ञान या पाप को (हन्तवे) नष्ट करने के लिए (वव्रिवांसम्) रोकने वाले (महीः) महान् (अपः) कर्मों को ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बड़े-बड़े उत्तम कर्मों में बाधा पहुंचाने वाले पाप या अज्ञान के नाश करने के लिए जीवात्मा की रक्षा करता है। इसलिये तू ही हमें पवित्र कर ॥८॥

४९५—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥९॥

पदार्थ—(अया) इस (वीती) ज्ञान से (परिस्रव) दे (यः) जो (ते) तेरा (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली ! (मदेषु) हमें आनन्दित करने पर (आ) सब प्रकार से (अवाहन्) नाश करता है (नवतीर्नव) आठ सौ दश प्रकार के बुरे विचारों का पापों का अथवा निन्यानवे प्रकार के बुरे भावों का नाश करता है ॥९॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर ! उसी आनन्दरस के साथ भक्तों और ज्ञानियों के हृदयों में दर्शन दो, जिस आनन्दरस के मद में मस्त होकर वह भक्त या ज्ञानी जन आठ सौ दश प्रकार के बुरे विचारों, भावों अथवा पापों का नाश करने में समर्थ हो ॥९॥

४९६—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१०॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (द्युक्षं) दीप्तिमान् (सनद्) दे (रयिं) धन को (भरद्) दे (वाजं) अन्न को (नः) हमारे (अन्धसा) अन्न से (स्वानः) सत्योपदेष्टा (अर्ष) प्राप्त हो (पवित्रे) पवित्रात्मा में (आ) भली भांति ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर सत्योपदेष्टा ! तू हमें प्रकाशयुक्त धन दे, तथा देव अन्नादि से युक्त विशेष खाद्य पदार्थों को दे। हे प्रभो ! तू हमारी पवित्र आत्माओं में प्राप्त हो ॥१०॥

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

४९७—*मेध्यातिथिः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २र

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ॥१॥

पदार्थ—(अचिक्रदद्) शब्द करता हुआ (वृषा) वर्षा का करने वाला (हरिः) वायु (महान्) महान् (मित्रः) अग्नि के (न) समान (दर्शतः) दर्शनीय (सं सूर्येण) सूर्य के साथ (दिद्युते) प्रकाशमान हो रहा है ॥१॥

भावार्थ—शब्द करता हुआ वृष्टिकारक महान् वायु दर्शनीय अग्नि के समान सूर्य के साथ प्रकाशमान हो रहा है ॥१॥

४९८—*भृगुः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (ते) तेरे (दक्षम्) बलवान् (मयोभुवम्) सुखकारी (वह्निम्) अग्नि को (अद्य) आज (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं (पान्तमा) रक्षक (पुरुस्पृहम्) विज्ञानवेत्ताओं से चाहने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान्, सुखदाता, रक्षक तथा विज्ञानवेत्ताओं से चाहने योग्य तेरे अग्नि पदार्थ को हम अपने ज्ञान में स्वीकार करते हैं ॥२॥

४९९—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतँ सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥३॥

पदार्थ—(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अद्रिभिः) पाषाणों से (सुतम्) चुआये हुए (सोमम्) सोम को (पवित्रे) दशा पवित्र में (आनय) डाल (पुनाहि) पवित्र कर (इन्द्राय) यजमान के (पातवे) पीने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे अध्वर्यु ! पाषाणों से चुआये हुए सोम को दशा पवित्र में डाल यजमान के पीने के लिए पवित्र कर ॥३॥

५००—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

पदार्थ—(तरत्) तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तुति करनेवाला (धावति) स्तुति करता है (धारा) धार से (सुतस्य)चुआए गए (अन्धसः) अन्नरूप सोम के (तरत्) अवश्य तर जाता है (सः) वह (मन्दी) स्तुति करनेवाला (धावति) अवश्य उत्तम गति पाता है ॥४॥

भावार्थ—जो पुरुष, अन्नरूप, सुन्दर चुआए गये सोमरस की धारा से यज्ञ करता हुआ परमेश्वर की स्तुति करता है, वह स्तुति करनेवाला अवश्य ही तर जाता है, अर्थात् उत्तम गति पाता है ॥४॥

५०१—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
आ पवस्व सहस्रिणँ रयिँ सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवाँसि धारया ॥५॥

पदार्थ—(आ) सब ओर से (पवस्व) दे (सहस्रिणं) सहस्रों प्रकार का (रयिं) धन को (सोम) हे परमेश्वर ! (सुवीर्यम्) उत्तम बल (अस्मे) हमें (श्रवांसि) अन्न और यश (धारया) वेदवाणी के द्वारा ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें वेदज्ञान के द्वारा सहस्रों प्रकार का धन, उत्तम बल और अन्न तथा यश प्रदान कर ॥५॥

५०२—असितः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥६॥

पदार्थ—(अनु) अनुकूलता से (प्रत्नासः) ज्ञानवृद्ध (आयवः) मनुष्य (पदम्) ज्ञान को (अक्रमुः) प्राप्त करते हैं (नवीयः) नए-नए (रुचे) ज्ञानप्रकाश के लिए(सूर्यम्) कर्म में प्रवृत्त करानेवाले सोम को (जनन्त) उत्पन्न करता है ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानवृद्ध मनुष्य नवीन-नवीन ज्ञान को क्रमशः प्राप्त करते हैं। वे ज्ञानप्रकाश के लिए कर्म तथा ज्ञान में प्रवृत्त करानेवाले सोमरस को ओषधियों से निकालते हैं ॥६॥

५०३—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ २ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन् योनौ वनेष्वा ॥७॥

पदार्थ—(अर्षा) प्राप्त हो (सोम) हे परमेश्वर ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त प्रकाशस्वरूप (अभि) में (द्रोणानि) यज्ञों के विषय में (रोरुवत्) उपदेश करता हुआ (सीदन्) स्थित (योनौ) आकाश में (वनेषु) परमाणुओं में (आ) सब प्रकार से ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त प्रकाशस्वरूप तथा आकाश और परमाणुओं में विद्यमान तू यज्ञों के विषय में उपदेश करता हुआ हमें प्राप्त हो ॥७॥

५०४—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥८॥

पदार्थ—(वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (सोम) हे शान्तस्वरूप ईश्वर ! (द्युमान्) तू प्रकाशस्वरूप (असि) है (वृषा) तू जल की वर्षा का नियामक है (देव) हे दाता ! (वृषव्रतः) हमारी सारी अभिलाषाओं की पूर्ति करने का तेरा नियम है तू वृषा है (धर्माणि) धर्मों को (दध्रिषे) धारण करता है ।८।

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू हमारी कामनाओं को सफल करता है और प्रकाशस्वरूप है। हे दाता ! तू वर्षा को नियम में रखता हैं, इसलिए हमारी सब कामनाओं की पूर्ति करना तेरा व्रत है। तू इन सब कामों के करने में समर्थ है तथा मनुष्यों के सारे कार्यों को नियम से चलाता है ।।८॥

५०५—कश्यपः । सोमः गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥९॥

पदार्थ—(इषे) इच्छा की पूर्ति के लिए (पवस्व) ज्ञान दे (धारया) धारणा के द्वारा (मृज्यमानः) अन्वेषण किए जाने पर (मनीषिभिः) मननशील पुरुषों के द्वारा (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यशाली (रुचा) अपने ज्ञानरूप प्रकाश से (गाः) हमारी वाणी और इन्द्रियों में (अभीहि) उत्तम क्रिया को करने के लिए प्रेरणा दे ॥९॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् ! मननशील पुरुष धारणा तथा ध्यान से तुम्हारी खोज करते हैं। तू उनकी इच्छा पूर्ति के लिए ज्ञान दे। हे नाथ ! अपने तेज से हमारी वाणी तथा इन्द्रियों में उत्तम शक्ति की प्रेरणा कर ॥९॥

५०६—असितः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २
मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१०॥

पदार्थ—(मंद्रया) आनन्ददायक (सोम) हे परमेश्वर ! (धारया) वेदवाणी से (वृषा) सुख का वर्षक (पवस्व) प्राप्त हो (देवयुः) दिव्य गुणों का दाता (अव्याः) रक्षा कर (वारेभिः) उत्तम गुणों से (अस्मयुः) हमें उत्तम बनाने वाला ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें उत्तम बनाने की कामनावाला, सुख का वर्षक तथा दिव्यगुणों का दाता तू वरणीय गुणों से हमारी रक्षा कर तथा आनन्ददायक वेदवाणी के द्वारा हमें प्राप्त हो ॥१०॥

५०७—कविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २र
अया सोम सुकृत्यया महांत्सन्नभ्यवर्धथाः । मंदान इद्वृषायसे ॥११॥

पदार्थ—(अया) इस (सोम) हे परमेश्वर ! (सुकृत्यया) उत्तम कर्त्तव्य से युक्त (महान्) सबसे बड़ा (सन्) होता हुआ (अभ्यवर्धथाः) हमें उन्नत बनाता है (मन्दानः) स्वयं प्रसन्न होता हुआ (इत्) ही (वृषायसे) वर्षणशील मेघ के समान व्यवहार करता है ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्दस्वरूप महान् तू इस कर्त्तव्य युक्त वेदवाणी से हमें बढ़ाता है और स्वयं बरसने वाले मेघ के समान सुखी करता है ॥११॥

५०८—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३२
अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२॥

पदार्थ—(अयं) यह (विचर्षणिः) साक्षीरूप से सबका द्रष्टा (हितः) प्राणिमात्र का कल्याणकारक (पवमानः) पवित्र (सः) वह (चेतति) जानता है (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (आप्यम्) कर्म के द्वारा होने या प्राप्त होने वाले (बृहत्) महान् ज्ञान की ॥१२ ॥

भावार्थ—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साक्षीरूप से द्रष्टा, प्राणिमात्र का कल्याण कारक, स्वयं पवित्र, कर्म से होनेवाले ज्ञान की प्रेरणा करनेवाला वह परमेश्वर सब को जानता है ॥१२॥

५०९—अयास्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३१ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥१३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (नः) हमें (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यशाली ! (महे) महान् (तुने) सम्पत्ति के लिए (ऊर्मिम् न) तरंग के समान (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (अभि) लक्ष्य कर (देवान्) विद्वानों को (अयास्यः) प्राप्त करने के योग्य ॥१३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू प्राप्त करने के योग्य है, हमें महान् सम्पत्ति प्रदान करने के लिए, जैसे लहर को धारण करने वाला समुद्र रत्नाकर कहलाता हुआ प्राप्त होता है वैसे ही, सारी सम्पत्तियों का धारण करने वाला तू भी विद्वानों को लक्ष्य कर प्राप्त होता है ॥१३॥

५१०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) नाश करता हुआ (पवते) पवित्र करता है (मृधः) बुराइयों का (अप) दूर (सोमः) आत्मा (अराव्णः) दुर्गुणों को (गच्छन्) प्राप्त होता हुआ (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (निष्कृतम्) मोक्ष को ॥१४॥

भावार्थ—आत्मा बुराइयों और दुर्गुणों को नाश करता हुआ अपने को पवित्र करता है और परमेश्वर के मोक्षधाम को प्राप्त करता है ॥१४॥

卐 चौथी दशती समाप्त 卐

५११—वसिष्ठः । सोमः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोम) हे परमेश्वर ! (धारया) धारण शक्ति से (अपः) लोकों और जीवों को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त हो (आरत्नधा) समस्त रत्नों का दाता (योनिम्) कारण (ऋतस्य) सत्य के (सीदसि) स्थित है (उत्सः) कूप के समान (देवः) देव (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे लिए समस्त रत्नों का धारक या दाता, प्रकाशस्वरूप तथा कूप के समान गम्भीर तू वेदवाणी या अपनी धारण शक्ति से समस्त लोक और जीवों को पवित्र और आच्छादित करता हुआ हमें प्राप्त हो । महान् देव! तू सत्य के कारण अपने स्वरूप में स्थित है ॥१॥

५१२—ऋष्यादयः पूर्वोक्ताः ।

२ ३ १ २　　३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
परीतो षिञ्चता सुतँ सोमो य उत्तमं हविः ।
३ १　　२र ३ २　　२उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (इतः) इसमें (षिञ्चत) रक्खो (सुतं) सुसम्पन्न अमृतरस (सोमः) सोमरस (यः) जो (उत्तमम्) श्रेष्ठ (हविः) सोम की सामग्री है (दधन्वान्) संसार का उपकार कराने वाला है (यः) जो (नर्यः) मनुष्यमात्र का हित करने वाला है (अप्सु) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों (अन्तरा) में (सुषाव) यजमान चुआता है (सोमम्) सोमरस को (अद्रिभिः) पत्थर के टुकड़ों से ॥२॥

भावार्थ—हे यज्ञ करने वालो ! चुआए हुए सोमरस को इस पात्र में रक्खो, यह यज्ञ की उत्तम सामग्री है । इससे संसार की रक्षा होती है, यह मनुष्यमात्र का हितकारक है । इसको यजमान या ऋत्विक् लोग यज्ञों के अवसरों पर पत्थरों के टुकड़ों से चुआते हैं ॥२॥

५१३—अत्रिः । सोमः । बृहती ।

१ २　३ १　२र　३ १　२र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
२ ३ २ ३ २ ३क २र　३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार (सोम) सोमरस (स्वानः) तैयार किया हुआ (अद्रिभिः) पाषाण के टुकड़ों द्वारा (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (वाराणि) बालों को (अव्यया) भेड़ों के (जनो न) मनुष्य के समान (पुरि) नगर में (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में (विशत्) प्रवेश करता है (हरिः) हरितवर्ण सोम करनेवाला परमेश्वर ! (सदः) सभा में (वनेषु) यज्ञों में (दध्रिषे) धारण किया जाता है ॥३॥

भावार्थ—पाषाणों से चुआया हुआ सोम, भेड़ के बालों (ऊनी कपड़े) से छन कर, द्यु और पृथिवीलोक में शान्ति से वैसे ही प्रविष्ट होता है, जैसे कोई मनुष्य किसी नगर में । यह सोम सभा में और यज्ञों में उपयोग किया जाता है ॥३॥

५१४—अत्रिः । सोमः । बृहती ।

१ २　३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
३ १　२र　३ १　　२र ३ २ ३ १ २　३ १ २
अँशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्कृष्ट (सोम) हे परमेश्वर ! (देववीतये) विद्वान् और उपासना करनेवालों की तृप्ति के लिए (सिन्धुर्न) समुद्र के समान (अर्णसा) जल से (पिप्ये) भर कर परिपूर्ण होता है (अंशोः) सोम के (पयसा) रस से (मदिरः) आनन्ददायक (न) सम्प्रति (जागृविः) चेतनस्वरूप (अच्छ) प्राप्त होता है (कोशं) कोश को (मधुश्चुतम्) अमृतरस को टपकाने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! विद्वान् जनों की तृप्ति के लिए जैसे जल से समुद्र परिपूर्ण है, ऐसे ही तू आनन्द से परिपूर्ण और अगम है । हे नाथ ! तू सोमलता के रस के द्वारा आनन्ददायक और सदा सावधान है । तू हमें आनन्दमय कोश में प्राप्त हो ॥४॥

५१५—विश्वामित्रः । सोमः । गायत्री ।

१ २　३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २　३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥

पदार्थ—(सोम) सोम (उ) पादपूरक (ष्वाणः) निचोड़ा हुआ (सोतृभिः) यज्ञकर्त्ताओं द्वारा (अधि) में (ष्णुभिः) टुकड़ों से (अवीनाम्) पत्थरों के (अश्वया) शीघ्रगामिनी (इव) जैसे (हरिता) हरितवर्ण (याति) प्राप्त होता है (धारया) धारा से (मन्द्रया) आनन्दयुक्त (धारया) प्रवाह से (याति) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—जिस प्रकार यज्ञकर्त्ताओं द्वारा पाषाणखण्ड से निचोड़ा गया, सोमरस विशेष शीघ्रगामिनी हरितवर्ण की धारा के साथ पात्र को प्राप्त होता है वैसे परमेश्वर आनन्दायक धारा के साथ योगी पुरुष को प्राप्त होता है ॥५॥

५१६—जमदग्निः । सोमः । बृहती ।

२ ३ १ २　　३ १ २　३ १ २
तवाहँ सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
३ १ २　३ १ २　३ १ २र　३ २उ　३ १ २
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥६॥

पदार्थ—(तव) तेरी (अहम्) मैं (सोम) हे परमेश्वर ! (रारण) आनन्द करता हूँ (सख्ये) मित्रता में (इन्दो !) हे परम ऐश्वर्यवान् (दिवे दिवे) प्रतिदिन (पुरूणि) बहुत शरीर आदि बाधक (बभ्रो) हे धारण और पोषण करने वाले (नि) निश्चित (चरन्ति) आचरण करते हैं (माम्) मेरी (अव) उपसर्ग (परिधीन्) हर प्रकार से अनेक बाधाओं को (तान्) उन (अति-इहि) दूरकर ॥६॥

भावार्थ—हे विश्व के पालन-पोषण करनेवाले, सकल ऐश्वर्य के स्वामी परमेश्वर ! मैं प्रतिदिन तेरी मित्रता में आनन्द करता हूँ । हे प्रभो ! अनेक प्रकार की बाधाएँ मुझे सताती हैं, तू उन्हें दूर कर ॥६॥

५१७—वसिष्ठः । सोमः । बृहती ।

३ १ २　　　३ १ २र
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥

पदार्थ—(मृज्यमानः) शुद्ध पवित्र हुआ (सुहस्त्या) हे हस्तकला में निपुण (समुद्रे) आकाश में (वाचम्) वाणी को (इन्वसि) प्रेरित करता है (रयिम्) धन को (पिशंगम्) सुवर्ण (बहुलम्) बहुत (पुरुस्पृहम्) अत्यन्त चाहने योग्य (पवमान) ज्ञाता (अभ्यर्षसि) प्राप्त करता और कराता है ॥७॥

भावार्थ—हे हस्तकला में निपुण पुरुष ! शुद्ध पवित्र हुआ तू आकाश में शब्द को प्रेरित करता है, अर्थात् विज्ञान द्वारा आकाश में शब्द का विस्तार करके सब के सुनने योग्य बनाता है । तू चाहने योग्य सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करता और कराता है ॥७॥

५१८—विश्वामित्रः । सोमः । बृहती ।

३१　२र　३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३ १　२र ३ १ २　३ १ २　३ १ २　३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

पदार्थ—(अभिपवन्ते) हर प्रकार से पवित्र करते और निचोड़ते हैं (सोमासः) शान्तस्वभाव वाले (आयवः) मनुष्य (मद्यम्) आनन्द प्रदान करने वाले (मदम्) रस को (समुद्रस्य) हृदयरूप आकाश (अधि) में (विष्टपे) स्थान (मनीषिणः) विचारक (मत्सरासः) आनन्द में लीन (मदच्युतः) आनन्द की वर्षा करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—विचारशील, स्वयं आनन्द में लीन और उपदेश के द्वारा आनन्द की वर्षा करनेवाले, शान्तस्वभाव के मनुष्य, हृदयरूप आकाश में आनन्ददायक अमृतरस का स्वयं अनुभव करते हैं तथा दूसरों को भी कराते हैं ॥८॥

५१९—काश्यपः । सोमः । बृहती ।

३　१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २　३ २
पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
१　　२र　　　३ १ २ ३ १ २
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९॥

पदार्थ—(पुनानः) स्वयं पवित्र और हमें पवित्र करनेवाला (सोम) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! (जागृविः) सदा सावधान (अव्याः) रक्षा कर (वारैः) वरण के योग्य (प्रियः) प्रिय (त्वम्) तू (विप्रः) सबसे बढ़ कर ज्ञानी (अभवः) है (अङ्गिरस्तम) हे बुद्धिमानों से भी बढ़ कर बुद्धिमान् (मध्वा) मधुर आनन्द रस से (यज्ञम्) सारे संगत व्यवहार को (मिमिक्ष) सींचने की कृपा कर (नः) हमारे ॥९॥

भावार्थ—हे सबसे बड़े बुद्धिमान्! शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू सदा सावधान स्वयं पवित्र तथा हमें भी पवित्र करनेवाला, परमज्ञानी और हमारा प्यारा है । तू वरण करने के योग्य प्रिय अपने गुणों से हमारी रक्षा कर तथा अपने आनन्दरस से हमारे सारे उचित व्यवहारों को सींचदे ॥९॥

५२०—जमदग्निः । सोमः । बृहती ।

१ २　　३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २　३ २
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
३ १ २　३ १　२र　३ १ २　　　३ १ २
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्राय**) यजमान के लिये (**पवते**) चुआया जाता है (**मदः**) प्रसन्न करनेवाला (**सोमः**) सोमरस (**मरुत्वते**) ऋत्विजों से संयुक्त (**सुतः**) सुसम्पन्न (**सहस्रधारः**) अनेक धारा से बहनेवाला (**अव्यम्**) रक्षा करने के योग्य पुरुष को (**अर्षति**) प्राप्त होता है (**तम् ईम्**) इसको (**मृजन्ति**) शुद्ध करते हैं (**आयवः**) मनुष्य ॥१०॥

भावार्थ—अनेक धाराओं से बहनेवाला, आनन्ददायक सोमरस ऋत्विजों से युक्त यजमान के लिये चुआया जाता है। वह रक्षा के योग्य मनुष्यों को प्राप्त होता है। मनुष्य ही उसको पवित्र करते हैं ॥१०॥

५२१—वसिष्ठः। सोमः। बृहती।

१२ ३१२३ १ २र३ १२
पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या।
१ २३१२३१ २र ३१ ३२
त्वँ समुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११॥

पदार्थ—(**पवस्व**) प्राप्त हो (**वाजसातमः**) बल तथा अन्नों का दाता (**अभि**) लक्ष्य कर (**विश्वानि**) समस्त (**वार्या**) स्तोत्रों का (**त्वम्**) तू (**समुद्रः**) प्राणियों के सुखों का आधार (**प्रथमे**) मुख्य (**विधर्मे**) यज्ञों में (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिये (**सोम**) हे परमेश्वर (**मत्सरः**) आनन्दस्वरूप ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! आनन्दस्वरूप धनों का दाता, सुखों का आधार तू विद्वानों के लिये उनके उत्तम स्तोत्रों को स्वीकार कर और उनके महान् ज्ञान यज्ञ में प्राप्त हो ॥ ११ ॥

५२२—वसिष्ठः। सोमः। बृहती।

१२ ३२३२३ १२
पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया।
३१२ ३१२ ३१ २र ३२३१ २र
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयाँसि च ॥१२॥

पदार्थ—(**पवमाना**) पवित्र स्वभाववाले (**असृक्षत**) त्याग देते हैं (**पवित्रम्**) परमेश्वर को (**अति**) अत्यन्त (**धारया**) वेदवाणी से (**मरुत्वन्तः**) प्राणों को वश में रखनेवाले (**मत्सरा**) प्रसन्नचित्त (**इन्द्रिया**) इन्द्रिय रूप (**हया**) अश्वों को (**मेधाम्**) अन्तःकरण को(**अभिप्रयांसि च**) धन.धान्य आदिकों को—और।१२।

भावार्थ—पवित्र स्वभाव, प्राणों को वश में रखनेवाले तथा प्रसन्नचित्त मनुष्य वेदवाणी से परमेश्वर को प्राप्त कर इन्द्रियरूपी अश्वों, अन्तःकरण तथा धन-धान्य आदि को त्याग देते हैं ॥ १२ ॥

卐 पांचवीं दशती समाप्त 卐

५२३—उशना। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २र३२३२३ १२३१२ ३२ ३१ २र
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
२ ३१ २ ३ १२३२३१ २ ३१२३१२
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्कृष्ट (**तु**) और (**द्रव**) चूता है (**परि**) सब प्रकार (**कोशम्**) घड़े में (**निषीद**) स्थिर होता है (**नृभिः**) यजमान या अध्वर्यु लोगों से (**पुनानः**) पवित्र किया गया (**अभि**) लक्ष्य कर (**वाजम्**) बल को (**अर्ष**) प्राप्त करता है (**अश्वन्न**) घोड़े के समान (**त्वा**) तुझ को (**वाजिनम्**) बलवान् और अन्नवान् (**मर्जयन्तः**) साफ करते हुए (**अच्छ**) भलीभांति (**बर्हिः**) यज्ञ में (**रशनाभिः**) रस्सों से बांध कर (**नयन्ति**) ले चलते हैं ॥१॥

भावार्थ—सोमरस चुआया जाता है और ऋत्विक् लोग उसको पवित्र कर घड़े में रखते हैं। उससे बल प्राप्त होता है, जैसे बलवान् घोड़े को रस्सों से बांध कर ले जाते हैं,ऐसे ही सोमरस को छान करके यज्ञ में भलीभांति ले जाते हैं।१।

५२४—वृषगणः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २र३१२ ३ २ ३२ ३२३१२
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
१२ ३ १२ ३२ ३१ २३२ ३क २र३१२
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥

पदार्थ—(**प्र**) श्रेष्ठ (**काव्यम्**) वेद का (**उशना-इव**) काव्य बनाने की इच्छा करता हुआ कवि के समान (**ब्रुवाणः**) उपदेश करता हुआ (**देवः**) आदि देव परमात्मा (**देवानाम्**) सब देवों को (**जनिमा**) जन्म उत्पत्तियों को (**विवक्ति**) विवरण करता है [वर्णन करता है] (**महिव्रतः**) महान् संसार की रचना रूप कर्म का करनेवाला (**शुचिबन्धुः**) पवित्र तेजवाला (**पावकः**) शुद्ध [पवित्र] करनेवाला (**पदा**) देव के परमपद को (**वराहः**) उत्तम आहार [भोजन] करनेवाला मनुष्य (**अभ्येति**) प्राप्त करता है (**रेभन्**) स्तुति और उपासना करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सृष्टि रचनारूप महान् कर्म करनेवाला, पवित्र तेजवाला और हमें पवित्र करनेवाला, परमदेव परमात्मा कविता रचने की इच्छा करता हुआ कवि के समान वेदरूप काव्य का उत्तम रीति से प्रवचन करता हुआ सब देवों की उत्पत्ति का वर्णन करता है। उत्तम शुद्ध भोजन करनेवाला मनुष्य स्तुति, प्रार्थना और उपासना के द्वारा परमपद को प्राप्त करता है ॥२॥

५२५—पराशरः। सोमः। त्रिष्टुप्।

३ १ २र ३ १ २र३ १२ ३ १ २र ३ २
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
१२ ३१२ ३ १२ ३ १२ ३१२ ३२
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३॥

पदार्थ—(**तिस्रः**) तीन प्रकार की (**वाचः**) वाणियों की (**ईरयति**) प्रेरणा करता है (**प्र**) उत्तम (**वह्निः**) आत्मा (**ऋतस्य**) सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का (**धीतिम्**) अनुष्ठान उपाय (**ब्रह्मणः**) ईश्वर के सम्बन्ध की (**मनीषाम्**) बुद्धि की प्रेरणा भी करता है (**गावः**) इन्द्रियाँ (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं (**गोपतिम्**) आत्मा को (**पृच्छमानाः**) चाहती हुई के समान (**सोमं**) आत्मा को (**यन्ति**) जनाती हैं (**मतयः**) सारी स्तुतियाँ (**वावशानाः**) उसी का वर्णन करती हुई ॥३॥

भावार्थ—आत्मा तीन प्रकार की वाणियों की, सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के उपाय की, और ईश्वर विषयक मननशील बुद्धि की प्रेरणा करती है। इन्द्रियाँ आत्मा को चाहती हुई सी प्राप्त होती हैं। सारी स्तुतियाँ आत्मा के वर्णन की कामना करती हुई आत्मा ही को प्राप्त होती हैं, अर्थात् उसी को जनाती हैं ॥३॥

५२६—वसिष्ठः। सोमः। त्रिष्टुप्।

३ २ ३२३१२ ३१२ ३ २ ३२३ १२३ १२
अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
३२ ३२३१२३१ २ ३२३१२ ३ २ ३१ २
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

पदार्थ—(**अस्य**) इस (**प्रेषा**) प्रेरणा से (**हेमना**) प्रकाशमान (**पूयमानः**) पवित्र होता हुआ (**देवः**) विद्वान् जीव (**देवेभिः**) दिव्य गुणों से (**समपृक्त**) सम्पर्क करता है (**रसं**) रस को (**सुतः**) उत्पन्न (**पवित्रं**) परमेश्वर को (**पर्येति**) प्राप्त करता है (**रेभन्**) स्तुति करता हुआ (**मिता**) गिननेवाला (**इव**) जैसे (**सद्म**) गृह को (**पशुमन्ति**) पशुयुक्त (**होता**) बुलानेवाला ॥४॥

भावार्थ—इस वेद के सुवर्णवत् प्रकाशमान प्रेरणारूप ज्ञान से पवित्र होता हुआ उत्पन्न विद्वान् जीव दिव्य गुणों द्वारा आनन्द रस का सम्पर्क करता है, तथा स्तुति करता हुआ परमेश्वर को उसी प्रकार प्राप्त करता है जिस प्रकार गिननेवाला तथा बुलानेवाला पशुओं से युक्त गृह को प्राप्त होता है ॥४॥

५२७—प्रतर्दनः। सोमः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
जनिताऽग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

पदार्थ—(**सोमः**) शान्तस्वरूप परमेश्वर (**पवते**) इन लोकों को व्यापन करता है (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**मतीनाम्**) नाना बुद्धियों और स्तुतियों को (**जनिता**) बनानेवाला (**दिवः**) द्युलोक और (**पृथिव्याः**) पृथिवीलोक को (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**अग्नेः**) अग्नि को (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**सूर्यस्य**) सूर्य को (**जनिता**) देह के साथ संयोग करा कर उत्पन्न करनेवाला (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा को (**जनिता**) उत्पन्न करनेवाला (**उत**) और (**विष्णोः**) विविध भांति के यज्ञ को ॥५॥

भावार्थ—नाना प्रकार की स्तुतियों और बुद्धियों को उत्पन्न करनेवाला, द्युलोक तथा पृथिवीलोक, अग्नि तथा सूर्य को उत्पन्न और नियमन करनेवाला, शरीर के साथ संयोगरूप में जीवात्मा और अनेक प्रकार के जीवोपकारक यज्ञों को भी उत्पन्न करनेवाला परमात्मा संसार के सारे लोकों को व्यापन करता है ॥५॥

५२८—वसिष्ठः। सोमः। त्रिष्टुप्।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥

पदार्थ—(**अभि**) सब तरह से (**त्रिपृष्ठं**) तीन वस्तु, लोक, वेद और विद्वान् अथवा पृथिवी आदि देवों वाले (**वृषणं**) कामनाओं की पूर्ति करनेवाले (**वयोधाम्**) अन्नादि पदार्थों के दाता अथवा यश के दाता (**अंगोषिणम्**) स्तुतिसमूह वाले परमेश्वर की (**अवावशन्त**) कामना करती हैं (**वाणीः**) स्तुतिरूप वाणियां (**वना**) जल को (**वसानः**) ग्रहण करता हुआ (**वरुणः**) परमेश्वर (**न**) समान (**सिन्धुः**) समुद्र के (**वि**) विविध प्रकार के

(रत्नधा) रत्नों को धारण करनेवाले (दयते) देता है (वार्याणि) चाहने योग्य सम्पत्ति ॥६॥

भावार्थ—वेद की वाणियाँ पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों के अधिष्ठाता, कामनाओं के सफल करनेवाले, अन्न तथा यश के दाता, सम्पूर्ण स्तुतियों के अधिकारी परमेश्वर की कामना करती और उसी के गुणों का गान करती हैं। जैसे जल को धारण करनेवाला समुद्र नाना प्रकार के रत्नों को धारण करता हुआ तथा उपाय करनेवालों को देता भी है, ऐसे ही परमेश्वर भी अनेक रत्नों को धारण करता तथा चाहने योग्य धनों को देता है ॥६॥

५२९—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२३१ २र ३१२ ३१ २र ३२

अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।

१२३२३२३ २३१२३१ २र ३१ २र

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥७॥

पदार्थ—(अक्रान्) अधिष्ठाता होता है (समुद्रः) जीवात्मा वा परमेश्वर (प्रथमे) श्रेष्ठ (विधर्मन्) विशेष धारण करने और पालन करने में (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (प्रजाः) अनेक शरीरधारी सृष्टि या सन्तान (भुवनस्य) ब्रह्माण्ड वा अपने प्रजावर्ग का (गोपा) रक्षक (वृषा) ज्ञान की वर्षा करने वाले (पवित्रे) शुद्ध सत्य रूप आत्मा मे (अधिसानः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ सम्बन्ध करने वाले [नियामक ईश्वरपक्ष में, जीवात्मा पक्ष में साक्षात्] (अव्ये) ज्ञान स्वरूप वा रक्षा के योग्य (बृहत्) महान् (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर वा जीव (वावृधे) अपनी कृपा से उत्पन्न करता वा बढ़ता है (स्वानः) जीवन ज्योति जगाता हुआ वा जीवन धारण करता हुआ (अद्रिः) पापियों को दण्ड देने वाला वा आदर के योग्य ॥७॥

भावार्थ—अपनी सन्तान और इन्द्रियों का आधार पवित्र धर्म से प्रजा (पुत्र-पौत्र) को उत्पन्न करने वाला, संसार के नियम का पालन करने वाला, रक्षा के योग्य तथा अच्छे आचरण करने वाले पर कृपा की वर्षा करने वाला, शब्द-स्पर्श आदि से सीधा सम्बन्ध रखने वाला, महान् जीवन धारण करने वाला, आदर के योग्य जीवात्मा अपनी शक्ति से उन्नति करता है ॥७॥

५३०—प्रस्कण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३२३२३ १२३२३१२ ३१२ ३२

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।

१२३१२ ३२३ १ २र३१२ ३१२

नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥

पदार्थ—(कनिक्रन्ति) जानता है [ज्ञान प्राप्त करता है] (हरिः) दुःखों का हरण करने वाला पुरुष (आ) सब प्रकार (सृज्यमानः) संयुक्त किया गया (सीदन्) स्थित होकर (वनस्य) जंगल के (जठरे) मध्य में (पुनानः) अपने को पवित्र करता हुआ (नृभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (यतः) जिस प्रकार से (कृणुते) करता है (निर्णिजम्) शुद्ध (गाम्) स्तुति का (अतः) इस कारण (मतिं) स्तुति को (जनयत) करो (स्वधाभिः) अपनी शक्ति द्वारा ॥८॥

भावार्थ—दुःखों का हरण चाहनेवाला पुरुष विद्वान् मनुष्यों द्वारा उपासना कार्य में संयुक्त किया गया, अपने को स्वयं पवित्र करता हुआ जंगल के मध्य में बैठ कर ज्ञान प्राप्त करता है और वह जिस प्रकार से शुद्ध स्तुति का उच्चारण करता है, ऐसे ही हे मनुष्यो ! तुम भी अपनी शक्ति द्वारा किया करो ॥८॥

५३१—उशना । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३२उ ३१२ ३२३ २३२ ३ १२३१२

एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।

३ १२३१२३१२ ३२३२उ ३क २र

सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (ते) तेरा (मधुमान्) विज्ञानवान् (इन्द्र) हे जीव ! (सोमः) परमेश्वर (वृषा) सुख का वर्षक (वृष्णः) यज्ञ द्वारा वर्षा करने वाले (परि) सब ओर से (पवित्रे) अग्नि आदि पदार्थों में (अक्षाः) व्यापक हो रहा है। (सहस्रदाः) सहस्रों देने वाला (शतदा) सैकड़ों देनेवाला (भूरिदावा) बहुत देनेवाला (शश्वत्तमम्) सर्वदा वर्तमान (बर्हिः) आकाश में (आ) भलीभांति (वाजि) शक्तिमान् (अस्थात्) स्थित है ॥९॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! विज्ञानवान् वह यह परमेश्वर अग्नि आदि पदार्थों में स्थित तथा यज्ञ द्वारा वर्षा करने वाले तुझ जीव के लिए सुख की वृष्टि करनेवाला है। वह सर्वदा रहने वाले आकाश में व्यापक हो रहा है। वही सहस्रों, सैकड़ों तथा बहुत धनों का दाता बलवान् परमेश्वर सर्वत्र स्थित है ॥९॥

५३२—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२ ३२३१ २र३२३२३१२

पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधिसानो अव्ये ।

२३१२ ३१२ ३१२ ३१२३१२

अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥

पदार्थ—(पवस्व) चूता है (सोम) सोमरस (मधुमान्) मधुर (ऋतावा) यज्ञ का साधन (अपः) जल का (वसानः) धारण करता हुआ (अधिसानः) ऊपर (अव्ये) ऊनी पवित्र (अव) उत्सर्ग है (द्रोणानि) घड़े (घृतवन्ति) जल से युक्त (अवरोह) रक्खा जाता है (मदिन्तमः) आनन्ददायक (मत्सरः) प्रसन्नता का साधन (इन्द्रपानः)यजमान से पान करने योग्य ॥१०॥

भावार्थ—मधुर, यज्ञ का साधन, जलयुक्त, आनन्ददायक, प्रसन्नता का दाता, यजमान आदि के पीने योग्य सोम, ऊन के बने हुए दशा पवित्र में छनता है, पुनः कलश में रखा जाता है ॥१०॥

卐 छठी दशती समाप्त 卐

५३३—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२३२उ ३२३१२ ३१२३१२ ३१२

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।

३२ ३१२ ३१ २र३२उ ३१२ ३१२

भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

पदार्थ—(प्र) श्रेष्ठ (सेनानीः) सेनापति (शूरः) संग्राम में उत्साह करने वाला (अग्रे) आगे (रथानाम्) रथों के (गव्यन्) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले शत्रु के धनों की प्राप्ति की इच्छा करता हुआ (एति) आता है (हर्षते) प्रसन्न होती है (अस्य) इस सेनापति की (सेना) सेना (भद्रान्) कल्याणकारक (कृण्वन्) करता हुआ (इन्द्रहवां) आत्मा की पुकारों को (सखिभ्यः) मित्र पक्ष वालों के लिये, मित्रों के लिये (आ) सब तरह (सोमः) सूर्य जैसे किरणों को विस्तृत कर देता है (वस्त्रा) शत्रु को विवश कर देने वाले (रभसानि) शीघ्रतापूर्वक आक्रमणों को (दत्ते) करता है ॥१॥

भावार्थ—शत्रु की भूमि और उस पर उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति पर विजय पाने की इच्छा करता हुआ, जनता की पुकारों को अपने सहायक राष्ट्रों के लिये कल्याणकारक सिद्ध करता हुआ, वीर सेनापति संग्राम में सबसे आगे आता है। उस समय उसकी सेना प्रसन्न होती है। तब सेनापति, जैसे सूर्य अपनी किरणों से संसार को ढक देता है, ऐसे ही शत्रु पर घातक आक्रमण करता है ॥१॥

५३४—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२३२३१२ ३२३२३२३१ २

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।

१२ ३१२३१२ १२ ३२३१२ ३२

पवमान पवसे धाम गोनां जनयंत्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (ते) तेरी (धाराः) वेदवाणियाँ (मधुमतीः) विज्ञानमयी (असृग्रम्) उत्पन्न होती हैं (वारं) आवरण को (यत्) जब (पूतः) पवित्र (अत्येषि) हटाता है (अव्यम्) प्रकृतिसम्बन्धी (पवमान) हे पवित्र करने वाले (पवसे) गतिमान् हो रहा है (धाम) पुञ्ज को (गोनाम्) किरणों के (जनयत्) उत्पन्न करता हुआ (सूर्यम्) सूर्य को (अपिन्वः) पूर्ण करता है (अर्कः) प्रकाश से ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्र करनेवाले परमेश्वर ! पवित्र तू जब प्राकृतिक आवरण को कल्प के आदि में हटाता है, तब तेरी विज्ञानमयी वेदवाणियाँ तुझसे उत्पन्न होती हैं। तू किरणों के प्रकाशपुञ्ज को पैदा करता हुआ गतिशील होता है और प्रकाशसे सूर्य को भरपूर करता है ॥२॥

५३५—इन्द्रप्रभृतिः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २३क २र ३ १ २र ३ १ २र

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमँ हिनोत महते धनाय ।

३१२ ३२३२३२३१ २ ३१२३१ २र

स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥३॥

पदार्थ—(प्र गायत) अच्छी प्रकार गान करो (अभ्यर्च) भली प्रकार पूजा करो (देवान्) विद्वानों की (सोमं) परमेश्वर को (हिनोत) प्राप्त करो (महते धनाय) महान् धन के लिए (स्वादुः) स्वादु (पवताम्) छन कर बहे (अति) अत्यन्त (वारं) बाल में (अव्यम्) भेड़ के (आसीदतु) स्थिति पावे (कलशं) घड़े में (देवः) उत्तम (इन्दुः) सोम ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वानों का कीर्तन करो और उनका सत्कार करो, महान् धन की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की उपासना करो। स्वादु और उत्तम सोमरस दशा पवित्र से छन कर द्रोणकलश में स्थिति पावे ॥३॥

५३६—वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२३१२३१ २र३२३१ २ ३१२

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजँ सनिषन्नयासीत् ।

२३२३१२ ३ १२३२३२३१२ ३१२

इन्द्रं गच्छन्नायुधा सँ शिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (हिन्वानः) प्रेरणा देता हुआ (जनिता) उत्पादक (रोदस्योः) द्यु और पृथिवी लोक को (रथः न) सूर्य के समान (वाजं) अन्न को (सनिषन्) देता हुआ (अयासीत्) प्राप्त कराता है (इन्द्रम्) विद्युत्, सूर्य और जीव को (गच्छन्) जानता हुआ (आयुधा) जलादिकों को (संशिशानः) सूक्ष्म करता हुआ (विश्वावसु) सकल सम्पदाओं को (हस्तयोः) हाथों में (आदधानः) देता हुआ ॥४॥

भावार्थ—द्यु और पृथिवी लोक का उत्पादक तथा उत्तम भावों की प्रेरणा देता हुआ परमेश्वर अन्न आदि को देता तथा सूर्य, विद्युत् और जीव को यथायोग्य जानता हुआ, जल आदि को सूक्ष्म करता हुआ हाथों के समान धारण और आकाश में लोकों को धारण करते हुए आदित्य के समान सकल सम्पदाओं को प्राप्त करता है ॥४॥

५३७—वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २र
तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
१ २ ३ २ ३ १ २   ३ २उ   ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥

पदार्थ—(तक्षत्) सूक्ष्म हो जाती है (यदि) जब (मनसः) मन की (वेनतः) कामना करनेवाले (वाक्) वाणी (ज्येष्ठस्य) ज्येष्ठ (धर्मन्) धर्म विषय में (द्युक्षोः) दीप्त तेजवाले (अनीके) प्रमुख (आत्) उसके बाद (ईम्) उस (आयन्) प्राप्त करते हैं (वरम्) वरणीय (आ) सब प्रकार से (वावशानः) कामना करनेवाले (जुष्टं) प्रेमपात्र (पतिं) पालक (कलशे) हृदय कलश (गावः) विद्वान् (इन्दुम्) परमेश्वर को ॥५॥

भावार्थ—जब कामनायुक्त ज्येष्ठ [श्रेष्ठ] प्रकाशशील मन की स्तुतिरूप वाणी प्रमुख उपासना रूप धर्म विषय में स्थिति पा लेती या सूक्ष्म हो जाती है, तब इस प्रीतिपात्र पालक तथा वरणीय परमेश्वर को कामना करनेवाले हृदय कलश में ज्ञानी जन प्राप्त करते हैं ॥५॥

५३८—नोधा । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३   १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ २   ३ १ २
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
२ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ २
हरिः पर्य्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥

पदार्थ—(साकमुक्षः) एक साथ सेचनादि व्यापार करनेवाली (मर्जयन्त) शुद्ध करती (स्वसारः) गतिशील (दश) दस (धीरस्य) धीर पुरुष की (धीतयः) अंगुलियां (धनुत्रीः) क्षेपणयुक्त (हरिः) हरित वर्णवाला (पर्यद्रवत्) फैलता है (जाः) उत्पन्न (सूर्यस्य) सूर्य के (द्रोणं) द्रोण कलश (ननक्षे) व्यापता है (अत्यः न) वायु के समान (वाजी) बलवान् ॥६॥

भावार्थ—एक साथ सेचन करनेवाली, गतिशील तथा उत्तम क्षेपणवाली वीर पुरुष की दश अंगुलियाँ सोम को शुद्ध करती हैं। पुनः हरित वर्ण वाला सोमरस वेगवान् वायु के समान सूर्य से उत्पन्न दिशा में (अर्थात् घड़े से सम्बन्ध रखनेवाली दिशाओं में) फैलता है और घड़े को गन्ध व्याप्त हो जाता है ॥६॥

५३९—कण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३   २ ३ २ ३ १   २र
अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २
अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७॥

पदार्थ—(अधि) में (यत्) जिस तरह (अस्मिन्) इसमें (वाजिनि) घोड़े पर (शुभ) शोभायमान (इव) समान (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं (धियः) ज्ञानी जन (सूरे) सूर्य में (विशः) जन (न) समान (अपः) कर्म को (वृणानः) करता हुआ (पवते) प्राप्त करता है (कवीयान्) मेधावी पुरुष (व्रजम्) गोशाला को (न) समान (पशुवर्धनाय) पशुओं की वृद्धि के लिए (मन्म) मन को ॥७॥

भावार्थ—जैसे बलवान् घोड़े पर सवार, सूर्य में शोभायमान किरणें शोभा पाती हैं और स्पर्धा करती है, उसी प्रकार ज्ञानी जन इस परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्पर्धा करते हैं। जिस प्रकार चतुर गोपाल पशुओं की वृद्धि के लिए गोशाला में जाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कर्म को करता हुआ मेधावी पुरुष मन को प्राप्त होता और उसे शुद्ध करता है ॥७॥

५४०—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २   ३ १   २ ३   २ ३ २ ३   २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ २   ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८॥

पदार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (बाजी) बलवान् (पवते) पवित्र करता है (गोन्योघाः) इन्द्रियों के समूहवाला (इन्द्रे) परमेश्वर में (सोमः) जीवात्मा (सहः) बल को (इन्वन्) प्राप्त होता हुआ (मदाय) आनन्द के लिए (हन्ति) हनन करता है (रक्षः) बुराई का (बाधते) संहार करता है (पर्यरातिम्) काम, क्रोधादि शत्रु का (वरिवस्कृण्वन्) आनन्दघन को प्राप्त करता हुआ (वृजनस्य) महान् बल का (राजा) राजा ॥८॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान्, बलवान् तथा इन्द्रिय समूहवाला यह जीवात्मा परमेश्वर में बल को प्राप्त होता हुआ अपने को पवित्र करता है। वह बुराई का हनन करता है, काम-क्रोध रूप शत्रु का संहार करता है तथा वरणीय आनन्दघन को प्राप्त करता हुआ महान् बल को प्राप्त होता है ॥८॥

५४१—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १   २   ३ १   २र   ३   १ २ ३ १ २ ३   १ २
अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
३ २   ३   २ ३ २   ३   २ ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९॥

पदार्थ—(अया) इस (पवा) मार्ग से (पवस्व) प्रदान कर (एना) इन (वसूनि) सम्पदाओं को (मांश्चत्व) अभिमान का नाश करनेवाला (इन्दो) ऐश्वर्यशील (सरसि) गतिशील मार्ग पर (प्रधन्व) प्रेरणा कर (चला) (ब्रध्नः) महान् (चित्) ही (यस्य) जिस तेरी (वातो न) वायु के समान (जूतिं) गति को (पुरुमेधाः) अनन्त ज्ञानवाला (तकवे) स्तुति करनेवाले के लिए (नरं) सन्तान को (धात्) देता है ॥९॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली, परमेश्वर ! अभिमान-नाशक, महान्, अत्यन्त ज्ञानवाला तू इस मार्ग से इन धनों को प्राप्त करा, अच्छे मार्ग पर चला, वेग को वायु के समान स्तुति करने वाले के लिए उत्तम मनुष्य दे ॥९॥

५४२—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १   २र   ३ १ २   ३ १   २र   ३ २
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
१ २ ३ २ ३ १ २   ३ १   २र ३ २ ३ २   ३ १ २
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥

पदार्थ—(महत्) महान् (तत्) उसका काम है (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर (महिषः) महान् (चकार) करता है (अपां) पंचभूतों (तत्त्वों) को (गर्भः) आधार होकर (अवृणीत) उनका अधिष्ठाता होता है (देवान्) इंद्रियों को (अदधात्) देता है (इन्द्रे) आत्मा में (पवमानः) विशेष ज्ञान की शक्ति से पवित्र करता हुआ (ओजः) अणिमा, महिमा आदि बल भी देता है (अजनयत्) उत्पन्न करता है (सूर्ये) सूर्य में (ज्योतिः) प्रकाश (इन्दुः) परम ऐश्वर्यशाली ॥१०॥

भावार्थ—परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा महान् है। उसका कार्य भी महान् है। वह पाँच तत्त्वों का अधिष्ठाता और उनको उत्पन्न करनेवाला है। वह जीवों को इन्द्रियाँ और उन इन्द्रियों में बल देता है। सूर्य में प्रकाश भी वही देता है ॥१०॥

५४३—काश्यपः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २   ३   २ ३   २ ३ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २
असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
२ ३   १ २ ३   २ ३   २   ३ १ २ ३ २   ३ २   ३ १ २ ३ १ २
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निँ सदनेष्वच्छ ॥११॥

पदार्थ—(असर्जि) छोड़े जाते हैं (वक्वा) नायक के द्वारा (रथ्ये) रथयुक्त (यथा) जैसे (आजौ) संग्राम में (धिया) बुद्धि से (मनोता) मन की संलग्नतायुक्त (प्रथमा) मुख्य (मनीषा) मन की स्वामिनी (दश) दस (स्वसारः) अंगुलिएं (अधिसानो) पाषाण खण्ड में (अव्ये) दशा पवित्र में (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं (वह्नि) यज्ञ को पूरा करनेवाले (सदनेषु) स्थानों में ॥११॥

भावार्थ—जिस प्रकार रथयुक्त संग्राम में नायक के द्वारा उत्तम मन की संलग्नतायुक्त तथा मनीषी स्वामी की बुद्धि से घोड़े आदि छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार सोम के निचोड़नेवाली दश अँगुलियाँ पाषाण खण्ड में तथा सोम के स्थानों में अच्छी प्रकार यज्ञ को पूरा करनेवाले सोम को शुद्ध करती हैं ॥११॥

५४४—प्रस्कण्वः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २   ३ २ ३ २३ १ २   ३   १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
३   २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २र   ३ २ ३ १ २
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥

पदार्थ—(अपां) जलों के (इव) समान (इत्) ही (ऊर्मयः) लहरों के (तर्तुराणाः) शीघ्रता से चलनेवाली (प्र) उत्तम (मनीषा) स्तुतियाँ (ईरते) की जाती हैं (सोमं) परमेश्वर को (अच्छ) भलीप्रकार (नमस्यन्तीः) नमस्कार करती हुई (उप) समीप (च) और (यन्ति) प्राप्त होती हैं (सं) भलीभाँति (च) और (आ) भली प्रकार (च) भी (विशन्ति) प्राप्त कर लेती है (उशतीः) कामना करती हुई (उशन्तम्) वांच्छनीय ॥१२॥

भावार्थ—जल की शीघ्रगामिनी लहरों के समान कामना करती हुई, सब के चाहने योग्य परमेश्वर के प्रति नमस्कारमयी स्तुतियां सब भांति उस तक पहुँचती हैं और उसको प्राप्त करती हैं ॥१२॥

卐 सातवीं दशती समाप्त 卐

५४५—श्यावाश्विः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २   ३ १ २   ३ २ १   ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
२ ३ १ २   ३ १ २   ३क २र
अप श्वानँ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—(पुरः) समूह को (जिती) जीतने के लिए (वः) तुम लोग (**अन्धसः**) अन्धकार के (**सुताय**) संसार के भोग के लिए (**मादयित्नवे**) सुख देने वाले (अप) दूर (श्वानं) कुत्ते के समान (श्नथिष्टन) दूर करो (सखायः) हे मित्रो ! (दीर्घजिह्व्यम्) जीभ की लोलुपता को ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अज्ञानान्धकार पर विजय पाने के लिए इंद्रिय लोलुपता को दूर भगा दो, जो सुख देने वाले विषयभोग के पीछे कुत्ते की तरह भागती हैं ॥१॥

५४६—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २   ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
१ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २   ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (पूषा) हमें पुष्ट करनेवाला (रयिः) सम्पत्ति है (भगः) भजन करने के योग्य (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (पतिः) स्वामी है (विश्वस्य) विशाल (भूमनः) बहुत बड़े ऐश्वर्य का (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोकों को (उभे) दोनों ॥२॥

भावार्थ—पुष्ट करनेवाला, सम्पदाओं का भंडार, स्वयं पवित्र तथा संसार को पवित्र करनेवाला यह परमेश्वर सर्वव्यापक है, यह महान् ऐश्वर्य का स्वामी द्यु और पृथिवी लोकों को प्रकाशित करता है ॥२॥

५४७—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २   ३ १   २   ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३॥

पदार्थ—(**सुतासः**) तैयार किए गए (**मधुमत्तमाः**) अत्यन्त मधुर (**सोमाः**) अनेक प्रकार के सोमरस (इन्द्राय) आत्मा के लिए (**मन्दिनः**) आनन्ददायक [सिद्ध हों] (**पवित्रवन्तः**) वे पवित्रतायुक्त (**अक्षरन्**) पात्र में चुआए जाएं (**देवान्**) देवों को (**गच्छन्तु**) प्राप्त हों (वः) इनका (मदाः) आनन्द ॥३॥

भावार्थ—अत्यन्त मधुर, आनन्ददायक निचोड़े और पवित्र किए गए अनेक प्रकार के सोमरस जीव के लाभार्थ पात्र में टपकते है । इनके आनन्द इंद्रियों और विद्वानों को प्राप्त हों ॥३॥

५४८—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४॥

पदार्थ—(**सोमाः**) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् जन (**पवन्ते**) प्राप्त होते हैं (**इन्दवः**) तेजस्वी (**अस्मभ्यं**) हमें (**गातुवित्तमाः**) मार्ग दिखाने वाले (**मित्राः**) स्नेही (**स्वानाः**) स्वतन्त्र जीवन वाले (**अरेपसः**) पापों से रहित (**स्वाध्यः**) भली भांति ध्यान करने वाले (**स्वर्विदः**) स्वर्गीय सुखों को सिद्ध कराने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेजस्वी, उत्तम मार्ग दिखाने वाले स्नेही, स्वतन्त्र जीवन वाले, पापों से रहित, भली भांति ध्यान करने वाले और हमारी सारी स्वर्गीय कामनाएं सिद्ध कराने वाले, विद्या और उम्र में बड़े विद्वान् पुरुष हमें प्राप्त हों ॥ ४ ॥

५४९—अम्बरीष-ऋजिश्वानौ । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
अभी नो वाजसातमँ रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३ १ २   ३ १   २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नम् विभासहम् ॥५॥

पदार्थ—(अभी) सब प्रकार से (वाजसातमं) पर्याप्त बल प्रदान करने वाले (रयिं) धन को (अर्ष) दे (शतस्पृहम्) जिसको सैकड़ों लोग चाहें (**इन्दो**) ऐश्वर्यशाली (सहस्रभर्णसं) हजारों तरह पुष्ट करने वाले (नः) हमें (**तुविद्युम्नं**) बहुत यशदायक (विभासहम्) शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले ॥५॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू पूर्ण बल प्रदान करने वाले, सैकड़ों लोगों को चाहने योग्य, हजारों प्रकार से पुष्ट करने वाले, यशदायक और शत्रुओं को भी नीचा दिखाने वाले धन हमें दे ॥५॥

५५०—रेफसूनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३१ १ २   ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २उ   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातँ रिहन्ति मातरः ॥६॥

पदार्थ—(अभी) सब प्रकार से (नवन्ते) झुकते हैं (अद्रुहः) द्रोह नहीं करने वाले (प्रियम्) प्यारे अमृत की ओर (इन्द्रस्य) आत्मा के (**काम्यम्**) कामना करने के योग्य (वत्सम्) बच्चे को जैसे (**पूर्वे**) पहली (**आयुनि**) अवस्था [उमर] में (जातम्) उत्पन्न हुए (रिहन्ति) प्यार करती हैं (**मातरः**) मातायें ॥६॥

भावार्थ—जिस प्रकार अपनी पहली संतानों को मातायें प्यार करती हैं, उसी प्रकार द्रोह न करने वाले मनुष्य कामना के योग्य उस प्यारे प्रभु की ओर झुकते हैं ॥६॥

५५१—रेफसूनुः । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौँस्यम् ।
३ २उ   ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७॥

पदार्थ—(आ हर्यताय) दूसरे के अपकार में रत (**धृष्णवे**) धृष्ट (**धनुः**) धनुष को (तन्वन्ति) तानते हैं (पौंस्यम्) पुरुषार्थ के द्योतक (**शुक्राः**) वीर्यवान् (वियन्ति) लड़ते हैं (असुराय) दुष्ट (निर्णिजे) रूप की रक्षा के लिए (**विपाम्**) बुद्धिमानों के (अग्रे) आगे (महीयुवः) भूमि की कामना करने वाले ॥७॥

भावार्थ—वीर्यवान् पुरुष पराये के अपकार में रत, धृष्ट तथा आक्रमण करने वाले पुरुषार्थ के द्योतक धनुष को तानते हैं । भूमि की कामना वाले विद्वानों के आगे वर्तमान हुए रूप की रक्षा के लिये लड़ते हैं ॥७॥

५५२—ऋजिश्वाम्बरीषौ । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३   १ २ ३ १ २र ३ १ २   ३ १ २
परि त्यँ हर्यतँ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
२ ३ २उ   ३ २उ ३ १ २ ३ १   २र
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥८॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (त्यं) उस (हर्यतं) मनोहर (हरिं) हरण करने वाले (बभ्रुं) शुभ्रवर्ण (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) वितर्क आदि के विरुद्ध भावना करके (यः) जो (देवान्) देवों को (विश्वान्) सब (इत्) ही (परि) सब तरह (मदेन) आनन्द के (सह) साथ (गच्छति) प्राप्त करता है ॥८॥

भावार्थ—योगी पुरुष गुरु बनने के योग्य आत्मा को वितर्कों से विरुद्ध भावना से पवित्र करते हैं । आत्मा मनोहर और शुद्ध स्वरूप होती है । वह आनन्द के साथ सारी इन्द्रियों को प्राप्त होती है ॥८॥

५५३—प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १   २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २र
अप श्वानमराधसँ हता मखं न भृगवः ॥९॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सुन्वानाय) उत्तम कर्म करने वाले के (अन्धसः) अज्ञानान्धकार से (मर्तः) मनुष्य (न) नहीं (वष्ट) चाहता है (तत्) उस (वचः) वचन को (अपश्वानम्) निकृष्ट कुत्ते की वृत्तिवाले को (अराधसम्) न उपासना करने वाले को (हता) हटाओ (अमखम्) अपरोपकार के कार्य को [अनुत्तम कार्य को] (न) समान (भृगवः) ज्ञानीजन के ॥९॥

भावार्थ—अज्ञानान्धकार के कारण मनुष्य यज्ञ आदि उत्तम कर्म के करने वाले मनुष्य के वचन को नहीं सुनता । हे मनुष्य ! तू कुत्ते के समान वृत्तिवाले इस न उपासना करने वाले को उसी प्रकार दूर हटा जैसे ज्ञानीजन बुरे कार्यों को दूर हटाते हैं ॥९॥

卐 आठवीं दशती समाप्त 卐

५५४—कविः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—(अभि) समक्ष (प्रियाणि) प्रिय (पवते) पवित्र करता है (चनोहितः) अन्न को धारण करने वाला (नामानि) अनेक नामों को (यह्वः) महान् (अधि) अधिक (येषु) जिनमें (वर्धते) बढ़ता है (आ) सब प्रकार से (सूर्यस्य) सूर्य के (बृहतः) महान् (बृहन) वृद्धि करने वाला (अधि) ऊपर (रथम्) रथ पर (विष्वञ्चम्) चारों तरफ चलने वाले (अरुहत्) चढ़ता है (विचक्षणः) विश्व का द्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—अन्न आदि भोग्य पदार्थों को धारण करने वाला, महान् वह आत्मा जिन प्यारे नामों को पवित्र करता है वह उन्हीं से उन्नति करता है । अनेक प्रकार से देखने वाला वह महान् सूर्य के भी प्रकाश रूप, रथ पर चढ़ता है, अर्थात् सौर्यायिणी दशा को प्राप्त होता है ॥१॥

५५५—कविः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २३२ ३ १ २
अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिदश्नाना इषयो अरातयो ऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥२॥

पदार्थ—(अचोदसः) बिना किसी प्रेरणा के (नः) हमें (धन्वन्तु) पहुँचावें (इन्दवः) परम ऐश्वर्यशाली (प्र) उत्तम (स्वानासः) उपदेश करने वाले (बृहद्देवेषु) महान् दिव्य गुणों में (हरयः) अज्ञाननाशक (विचित्) निर्गत (अश्नानाः) विषयवाले (इषयः) विषयेच्छावाले (अरातयः) दुःखदायी (अर्यः) कामादि शत्रु (नः) हमारे (सन्तु) हों (सनिषन्तु) विभक्त हों (नः) हमारे (धियः) ज्ञान और कर्म ॥२॥

भावार्थ—बिना प्रेरणायुक्त उपदेश करनेवाले, अज्ञाननिवारक तथा ऐश्वर्यवान् ज्ञानीजन हमें महान् दिव्य गुणों को प्राप्त करावें । हमारे दुःखदायी, विषयेच्छा वाले काम आदि शत्रु विषयरहित हों । हमारे ज्ञान और कर्म विभक्त हों ॥ २ ॥

५५६—कविः । सोमः । जगती ।

३ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥३॥

पदार्थ—(एष) यह (प्र) उत्तम (कोशे) आनन्दमय कोश में (मधुमान्) ज्ञानयुक्त (अचिक्रदत्) साक्षात् करता है (इन्द्रस्य) जीवात्मा के (वज्रः) वर्जन करने हारे (वपुषः) शरीर के (वपुष्टमः) अत्यन्त रूपवान् (अमृतस्य) सत्य का (सुदुघा) सुन्दरता से दोहन करनवाला (घृतश्चुतः) प्रकाशयुक्त (वाश्राः) शब्दमयी (अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं (पयसा) ज्ञान के साथ (धेनवः) वेदवाणियें (च) और ॥ ३ ॥

भावार्थ—ज्ञान-विज्ञानयुक्त, दुर्गुणों का वर्जन करने हारा तथा अत्यन्त रूपवान् यह विद्वान् पुरुष जीवात्मा के शरीर के मध्यवर्ती आनन्दरूप कोश में पहुँचता है । सत्य का उत्तमता से दोहन करनेवाली प्रकाशयुक्त तथा शब्दमयी वेदवाणियां ज्ञान के साथ इस विद्वान् को प्राप्त होती हैं ॥३॥

५५७—ऋषिगणः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतँ सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥४॥

पदार्थ—(प्रो) उत्तम (अयासीत्) प्राप्त करता है (इन्दुः) परम ऐश्वर्यशाली जीवात्मा (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (निष्कृतम्) शुद्ध सम्पर्क (सखा) मित्र (सख्युः) प्रेमी जीव की (न) नहीं (प्रमिनाति) नाश करता है (सङ्गिरम्) स्तुति को (मर्य इव) मनुष्य के समान (युवतिभिः) युवतियों के साथ (समर्षति) संग करता है (सोमः) शान्तस्वरूप परमेश्वर (कलशे) कलश रूप जीवात्मा का (शतयामना पथा) सैकड़ों मार्गों से ॥४॥

भावार्थ—जीवात्मा परमात्मा के पवित्र सम्बन्ध को प्राप्त करता है, मित्र के समान प्रभु अपने मित्र जीव की स्तुति को व्यर्थ नहीं जाने देता । जैसे मनुष्य युवतियों से संग करता है, वैसे ही यह जीव अनेकों मार्गों से शरीर में कर्मानुसार प्राप्त होता है ॥५॥

५५८—कविः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजाँसि कृणुषे नदीष्वा ॥५॥

पदार्थ—(धर्ता) धारण करनेवाला (दिवः) द्युलोक का (पवते) व्यापक हो रहा है (कृत्व्यः) उत्पादक (रसः) आनन्दस्वरूप (दक्षः) शक्तिशाली (देवानाम्) देवों वा दिव्य पदार्थों का (अनुमाद्यः) स्तुत्य (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (हरिः) दुःखहर्ता (सृजानः) जगत् कर्त्ता (अत्यः न) वायु के समान (सत्वभिः) शक्तियों से (वृथा) विना प्रयास (पाजांसि) बल को (कृणुषे) पैदा करता है (नदीषु) नदियों में (आ) भलीभांति ॥४॥

भावार्थ—प्राणधारी मनुष्यों द्वारा स्तुत्य तथा दिव्य पदार्थों का उत्पादक, द्युलोक का धारक, जगत् का कर्त्ता आनन्दस्वरूप, शक्तिशाली तथा दुःखहर्ता परमेश्वर वायु के समान व्यापक हो रहा है तथा नदी के प्रवाहों में विना प्रयास ही बल पैदा कर देता है ॥५॥

५५९—खिगणः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥६॥

पदार्थ—(वृषा) वर्षक (मतीनां) ज्ञानों का (पवते) व्यापक हो रहा है (विचक्षणः) अत्यन्त ज्ञानी (सोमः) परमेश्वर (अह्नाम्) रात्रि का (उषसाम्) उषाओं का (प्रतरीता) प्रकाश करनेवाला (दिवः) द्यो का (प्राणाः) पूर्ण करनेवाला (सिन्धूनां) नदियों का (कलशां) घट-घट में (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (इन्द्रस्य) जीव के (हार्द्यं) हृदय में (आविशत्) प्रविष्ट होता है (मनीषिभिः) स्तुतियों से ॥६॥

भावार्थ—ज्ञानों की वर्षा करनेवाला, अत्यन्त ज्ञानी, रात्रि, दिन और उषा का प्रकाशक, नदियों को वृष्टि द्वारा पूरा करनेवाला परमेश्वर घट-घट में व्यापक हो रहा है । वह जीव के हृदय में प्रकट होता है और स्तुतियों द्वारा उपदेश करता है ॥६॥

५६०—रेणुः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्द्धत ॥७॥

पदार्थ—(त्रिः) तीन अवस्थाओं में [उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में] (अस्मै) जीवात्मा के लिए (सप्त) सात [शिरस्थित] प्राण (दुदुह्रिरे) पूर्ण करते हैं (सत्यां) सच्चा (आशिरं) ज्ञान (परमे) सबसे बढ़ कर (व्योमनि) ज्ञानयज्ञ में (चत्वारि) चार (अन्या) अन्य (भुवनानि) अवस्थाएं [जागृतादि भी] (निर्णिजे) आत्मा के स्वरूप प्राप्ति के लिए होती हैं । (चारूणि) उनको उत्तम (चक्रे) बनाता है (यत्) जो (ऋतैः) यज्ञों से (अवर्द्धत) बढ़ाता है ॥७॥

भावार्थ—सिर के सात प्राण तीनों कालों में आत्मा के लिए, ज्ञानयज्ञ की. अवस्था में सच्चे ज्ञान को पूर्ण करते हैं । आत्मा के मोक्ष तथा भिन्न भिन्न स्वरूप प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न चार अवस्थाएं बनाई गई हैं, वे सच्चे यज्ञों के द्वारा प्राप्त की जाती हैं ॥७॥

अथवा

पदार्थ—(त्रिः) तीन प्रकार [आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक] (सप्त) सात छन्दोंवाली (धेनवः) वेदवाणियां (दुदुह्रिरे) दोहन करती हैं (सत्यां) सच्चा (आशिरं) ज्ञान को (परमे) परमोत्कृष्ट (व्योमनि) आकाशवत् व्यापक ब्रह्म में (चत्वारि) चार [विज्ञान, कर्म, उपासना, ज्ञान] (अन्या) अन्य (भुवनानि) विषयों को (निर्णिजे) स्वरूप लाभ के लिए (चारूणि) सुन्दर (चक्रे) करता है (यत्) जब (ऋतैः) शिष्ट नियमों से [ज्ञान से] (अवर्द्धत) वृद्धि कर लेता है ॥७॥

भावार्थ—जब विद्वान् पुरुष सृष्टि के परमेश्वरीय नियमों और ज्ञान से अपने को उन्नत कर लेता है, तब सात प्रकार के छन्दों वाली वेदवाणियां इसको आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन विषयों में ज्ञानरूप दुग्ध से परिपूर्ण करती हैं और यह विद्वान् पुरुष महान् आकाशवत् व्यापक ब्रह्म के आश्रय में विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान को स्वरूप लाभ के लिए उत्तम बनाता है ॥७॥

५६१—वेनः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥८॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीवात्मा के लिए (सोम) हे शान्तस्वरूप प्रभो ! (सुषुतः) भलीभांति ध्यान किया हुआ (परिस्रव) ज्ञान का स्रोत खोल दे [कृपा कर] (अप) दूर (अमीवा) रोग (भवतु) हो (रक्षसा सह) राक्षसी विचार के साथ (मा) नहीं (ते) तेरे (रसस्य) रसका (मत्सत) आनन्द प्राप्त करते हैं (द्वयाविनः) वञ्चक [मन में कुछ, वाणी में कुछ और, करें कुछ और] (द्रविणस्वन्तः) ऐश्वर्यवाले (इह) इस ध्यानयज्ञ में (सन्तु) हों (इन्दवः) परम तेजवाले योगी जन ॥८॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमात्मा ! तू ध्यान किए जाने पर जीवात्मा के लिए ज्ञान का स्रोत खोल दे, बुरे विचारों के साथ रोग भी दूर हों। वञ्चक और कपटी आनन्द के भागी नहीं होते [किन्तु] इस ध्यानरूप यज्ञ में ज्ञानी जन ही सफल होते हैं ॥८॥

५६२—भरद्वाजो वसुः । सोमः । जगती ।

१ २३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारमत्येष्यव्ययꣳ श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥९॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया जाता है (सोमः) सूर्य (अरुषः) रूपवान् (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (हरी) हरणशील (राजा) प्रकाशमान (इव) सम्प्रति (दस्मः) अन्धकार का विनाशक (अभि) सब ओर से (गाः) पृथिवी आदि पदार्थों को (अचिक्रदत्) विकल करता है (पुनानः) पवित्र करने हारा (वारम्) आवरण को (अत्येषि) दूर करता है (अव्ययम्) मेघसंबन्धी (श्येनः) आत्मा के (न) समान (योनिं) प्रकृति (घृतवन्तम्) प्रकाशयुक्त आकाश में (आसदत्) स्थित है ॥९॥

भावार्थ—रूपवान, जल की वर्षा करनेवाला, पवित्र करने हारा, हरणशील, अन्धकार का विनाशक तथा प्रकाशमान सूर्य परमेश्वर द्वारा उत्पन्न किया गया है, वह पृथिवी आदि पदार्थों को अपने प्रचण्ड धूप से विकल करता है। वह पार्वती अथवा मेघ सम्बन्धी आवरण को भी अतिक्रान्त कर लेता है और प्रकृति के घोंसले में स्थित आत्मा के समान वह प्रकाशयुक्त आकाशस्थान अर्थात् द्युलोक में स्थित है ॥९॥

५६३—वत्सप्रीः । सोमः । जगती ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१०॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (देवम्) देवों के देव को (अच्छा) लक्ष्य कर (मधुमन्तः) मधुर गुणवाले (इन्दवः) ऐश्वर्यवाले योगीजन (असिष्यदन्त) धीरे धीरे आगे बढ़ते हैं (गावः) किरणें (आ) सब प्रकार से (न) समान (धेनवः) रस खींचने वाली (बर्हिषदः) आसन पर बैठते हुए (वचनावन्तः) वेदमन्त्रों के पाठ के करनेवाले (ऊधभिः) स्तनों से (परिस्रुतम्) टपकने वाले दूध को (उस्रिया) गायें जैसे (निर्णिजं) शुद्ध (धिरे) धारण करती हैं ॥१०॥

भावार्थ—प्रेम में पगे हुए ज्ञानी पुरुष रस का हरण करनेवाली सूर्य की किरणों के समान परमेश्वर को प्राप्त होते हैं, आसन पर स्थित स्तुति करते हुए, वे परमेश्वर के आनन्द को उसी प्रकार धारण करते हैं जैसे गायें स्तन से चूने वाले पवित्र दूध को धारण किए रहती हैं ॥१०॥

५६४—वत्सप्रीः । सोमः । जगती ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳ रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणꣳ हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥११॥

पदार्थ—(अञ्जते) विवेचन करते हैं (व्यञ्जते) विशेष विचार करते हैं (समञ्जते) भलीभांति विचार करते हैं (क्रतुम्) संसार के करनेवाले का (रिहन्ति) आनन्द अनुभव करते हैं विद्वान् जन (मध्वा) ज्ञान के साथ (अभ्यञ्जते) तुलना करते हैं (सिन्धोः) सागर के (उच्छ्वासे) प्रवाह में (पतयन्तम्) बहने वाले (उक्षणम्) शक्तिशाली (हिरण्यपावाः) सुवर्ण अथवा तेज से पवित्र ज्ञानी लोग (पशुम्) पशु के समान ज्ञानी को (अप्सु) अज्ञातरूप जल में डूबे हुए को (गृभ्णते) निकाल लेते हैं ॥११॥

भावार्थ—विद्या के तेज से तेजस्वी उपासक जन जगत्-कर्त्ता परमेश्वर का विचार करते हैं, अनुभव करते हैं, उसको जानते हैं और ज्ञान के साथ उसको प्राप्त करते हैं। संसार सागर में गिरे हुए अज्ञानी पुरुष को ज्ञानी जन गिरने से बचाते हैं ।११।

५६५—पवित्रः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१२॥

पदार्थ—(पवित्रं) पवित्रता (ते) तेरी (विततम्) विस्तृत है (ब्रह्मणस्पते) हे वेदों के स्वामी ईश्वर (प्रभुः) तू प्रभु [शक्तिमान् है] (गात्राणि) संसार के प्रत्येक अवयवों में (पर्येषि) व्यापक हो रहा है (विश्वतः) सब ओर से (अतप्ततनूः) तपस्या नहीं करनेवाला (न) नहीं (तत्) उस पवित्रता को (आमः) अपरिपक्वबुद्धि का मनुष्य (अश्नुते) पाता है (शृतासः) परिपक्व बुद्धि वाले (इत्) ही (वहन्तः) धारण करते हुए (तत्) उस पवित्रता को (आशत) पाते हैं ॥१२॥

भावार्थ—हे वेदों के स्वामी परमेश्वर ! तेरी पवित्रता विशाल है, तू शक्तिशाली है, तू घट-घट में भलीभांति व्यापक हो रहा है। जिसने तपस्या नहीं की और जो अपरिपक्व-बुद्धि है, वह तुझे नहीं पा सकता, किन्तु पक्की बुद्धि वाला ही तेरे पवित्र तेज को पा सकता है ॥१२॥

卐 नवमी दशती समाप्त 卐

५६६—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ।१।

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (अच्छ) लक्ष्य कर (सुताः) पुत्र (इमे) ये (वृषणम्) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (यन्तु) प्राप्त हों (हरयः) अज्ञान के हरण करनेवाले (श्रुष्टे) सुखपूर्वक (जातासः) उत्पन्न (इन्दवः) योग के ऐश्वर्य से युक्त (स्वर्विदः) सब जानने वाले ॥१॥

भावार्थ—अज्ञान को दूर करनेवाले, सुखपूर्वक उत्पन्न, सब तरह की जानकारी रखनेवाले, ये पुत्रस्वरूप, ज्ञानी पुरुष कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमेश्वर को प्राप्त हों ॥१॥

५६७—चक्षुः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्युमन्तꣳ शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२॥

पदार्थ—(प्रधन्वा) आगे बढ़ (सोम) हे शान्त स्वभाव के ज्ञानी पुरुष (जागृविः) तू जागने वाला है (इन्द्राय) परमात्मा की प्राप्ति के लिए (इन्दो) हे परम ऐश्वर्यवाले (परिस्रव) सब प्रकार से आगे बढ़ (द्युमन्तम्) तेजोमय (स्वर्विदम्) सब सुखों को प्राप्त करानेवाला (शुष्मम्) बल को (आभर) प्राप्त कर ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप ऐश्वर्यशाली भक्त ! उत्तमता के साथ आगे बढ़। तू जाग कर परमात्मा का परिशीलन करने के लिये आगे बढ़ और हर प्रकार से आगे बढ़। तू सब सुखों को प्राप्त कराने वाले तेजोमय बल को पूर्ण कर ॥२॥

५६८—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (आनिषीदत) आकर बैठो (पुनानाय) पवित्र करनेवाले परमेश्वर के लिए (प्रगायत) उत्तम रीति से गान करो (शिशुं न) पुत्रों को जैसे (यज्ञैः) ज्ञानयज्ञों के द्वारा (परिभूषत) सुशोभित करो (श्रिये) अपने कल्याण के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे मित्रो ! आओ बैठो, तथा उस पवित्र परमात्मा की मनोहर स्तुति करो। अपने कल्याण के लिये जैसे मां बच्चे को प्यार करती है, वैसे ही ज्ञानयज्ञों के द्वारा परमात्मा को प्रसन्न करो ॥३॥

५६९—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥४॥

पदार्थ—(तम्) उस प्रभु को (वः) तुम लोग (सखायः) हे मित्रो ! (मदाय) आनन्द के लिए (पुनानम्) पवित्र (अभिगायत) हर प्रकार से गान करो (शिशुं न) जैसे पुत्र को (हव्यैः) अनेकविध दानों या त्यागों के द्वारा (स्वदयन्त) रुचिकर बनाओ (गूर्तिभिः) स्तुति वाक्यों के द्वारा ॥४॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग अपने आनन्द के लिये उस पवित्र परमेश्वर की भलीभांति स्तुति करो। जैसे सुन्दर वस्तुओं से बच्चों को प्रसन्न किया जाता है, वैसे ही मनोहर स्तुतियों से परमेश्वर को प्रसन्न करो ॥४॥

५७०—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

पदार्थ—(प्राणा) प्राणाधार (शिशुः) प्रशंसनीय (महीनां) पृथिवी पर निवास करने वालों का (हिन्वन्) प्रेरित करता हुआ (ऋतस्य) सत्य के (दीधितिम्) प्रकाश को (विश्वा) सारे (परि) सब प्रकार से (प्रिया) उत्तम (भुवध) व्यापता है (द्विता) कार्य और कारण को ॥५॥

भावार्थ—भूमिस्थों का प्राणाधार तथा प्रशंसनीय परमेश्वर सत्य-ज्ञान की दीप्ति को प्रेरित करता हुआ समस्त उत्तम पदार्थों में व्यापक हो रहा है और वह कार्य तथा कारण रूप दोनों प्रकार के संसार में व्यापक है ॥५॥

५७१—मनुः । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३१२ ३ २ ३ १२ ३१२
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
२ ३२३ १२
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥६॥

पदार्थ—(पवस्व) प्राप्त होवे (देववीतये) विद्वानों की गति के लिये (इन्दो) हे परमेश्वर ! (धाराभिः) आनन्द की धाराओं से (ओजसा) अपने सामर्थ्य से (आ) भली भांति (कलशं) हृदयरूप कलश में (मधुमान्) मधुर आनन्द गुणवाला है (सोम) हे शान्तस्वरूप प्रभो ! (नः) हमारे (सदः) विराजमान होवे ॥६॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! आनन्द वाला तू विद्वानों की मुक्ति के लिये अपनी शक्ति से आनन्द युक्त कर, तू हमारे हृदयकलश मे विराजमान है ॥६॥

५७२—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(सोमः) शान्तविचार वाला भक्तजन (पुनानः) यौगिक क्रिया से पवित्र किया जाता हुआ (ऊर्मिणा) ज्ञान प्रकाश से (अव्यम्) रक्षा करने के योग्य (वारं) पवित्रता की ओर (विधावति) विशेष रूप से दौड़ लगाता है (अग्रे) पहले (वाचः) स्तुतियों के (पवमानः) पवित्र (कनिक्रदत्) स्वयं बोलता है ॥७॥

भावार्थ—पवित्र और शान्त भक्त, ज्ञान प्रकाश से पवित्र किया जाता है, वह रक्षा करने में समर्थ पवित्रता की ओर दौड़ लगाता है, वह मन्त्र से स्तुति करने के पूर्व अपने अन्तःकरण के शब्द का प्रयोग करता है ॥७॥

५७३—द्वितः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२
प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमता से (पुनानाय) पवित्र करनेवाले (वेधसे) विधाता (सोमाय) शान्तस्वरूप परमेश्वर की (वचः) स्तुति (उच्यते) की जाती है (भृतिं न) वेतन के समान (भरा) पूर्ण कर (मतिभिः) स्तुतियों से (जुजोषते) प्रार्थना स्वीकार करनेवाले ॥८॥

भावार्थ—हे उपासक ! हमारी प्रार्थना स्वीकार करने वाले, पवित्र विधाता शान्त-स्वरूप परमेश्वर की मनोहर स्तुति कर। जैसे वेतन पाने वालों को वेतन पूरा दिया जाता है वैसे ही उस परमेश्वर की भरपूर स्तुति कर ॥८॥

५७४—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३१२ ३१२ १२ ३२३२३१२
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ।९।

पदार्थ—(गोमत्) गोवाले (नः) हमें (इन्दो) हे परमेश्वर ! (अश्ववत्) घोड़ों वाले धन को (सुतः) उत्पादक (सुदक्ष) हे सुन्दर बलशाली (धनिव) दे (शुचिं च) और पवित्र (वर्णम्) रूप (अधिगोषु) इन्द्रियों में (धारय) दे ॥९॥

भावार्थ—हे सुन्दर बलवाले परमेश्वर ! सर्वोत्पादक तू हमें गाय और घोड़ों से युक्त धन दे । तू हमारी इन्द्रियों में पवित्र रूप भी दे ॥९॥

५७५—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥१०॥

पदार्थ—(अस्मभ्यम्) हमारे ज्ञान के लिए (त्वा) तेरी (वसुविदम्) धनदाता (अभि) भली भाँति (वाणीः) वेद की वाणी (अनूषत) स्तुति करती है (गोभिः) वेद की वाणियों से (ते) तेरे (वर्णम्) स्वरूप की (अभिवासयामसि) पहचान करते हैं ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे ज्ञान के लिये वेदवाणियां तेरी स्तुति करती हैं । हमलोग वेदमन्त्रों से तेरे स्वरूप को जानते हैं ॥१०॥

५७६—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११॥

पदार्थ—(पवते) पवित्र करता है (हर्यतः) चाहने योग्य है (हरिः) दुःखहर्त्ता (अति) लाङ्घकर (ह्वरांसि) कुटिलता का (रंह्या) तेज़ी से नाश करता है (अभ्यर्ष) देता है (स्तोतृभ्यः) भक्तों को (वीरवत्) पुत्रयुक्त (यशः) कीर्ति ॥११॥

भावार्थ—सब का प्यारा और दुःखहर्त्ता परमेश्वर हमें पवित्र करता है । वह हमारी कुटिलता का तेजी से नाश करता है । वह भक्तों को वीरपुत्र और कीर्ति देता है ॥११॥

५७७—द्वितः । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषतः ॥१२॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (कोशं) आनन्दमय कोश के (मधुश्चुतं) आनन्द को चुआने वाले (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (अभि) भली भांति (वाणीः) वचन (ऋषीणां) वेदों के (सप्त) सात छन्दों से युक्त (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥१२॥

भावार्थ—आनन्दरस की वर्षा करनेवाले आनन्दमय कोश को पवित्र करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है । सात छन्दों से युक्त वेदों की वाणियां उसका गान करती हैं ॥१२॥

卐 दसवीं दशती समाप्त 卐

५७८—गौरिवीतिः । सोमः । ककुप् ।

१२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (मधुमत्तमः) तू अतिशय गुणवाला है (इन्द्राय) जीव के लिए (सोम) परमेश्वर (क्रतुवित्तमः) तू सबसे अधिक हमारे कर्मों को जानता है (मदः) आनन्द (महि) तू महान है (द्युक्षतमः) तू तेज-स्वरूप है (मदः) तू स्तुति करने के योग्य है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का स्रोत और सबसे अधिक हमारे कर्मों को जाननेवाला है । तू स्वयं आनन्दस्वरूप, महान् तेजस्वरूप है तथा स्तुति करने के योग्य है । तू जीवात्मा को पवित्र कर ॥१॥

५७९—ऊर्ध्वसद्मा । सोमः । ककुप् ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २र ३ १ २
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ।२।

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (द्युम्नं) उज्ज्वल (बृहद्यशः) महान् यश (इषस्पते) हे अन्नों के स्वामी ! (दिदीहि) दे (देव) हे देव (देवयुम्) दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले (वि) विशेष रूप से (मध्यमं) मध्यवर्ती (कोशं) कोश से (युव) युक्त कर ॥२॥

भावार्थ—हे अन्नों के स्वामी परमात्मदेव ! तू हमें दिव्य गुणों को धारण कराने वाले उज्ज्वल यश को प्राप्त करा तथा मध्यवर्ती आनन्दमय कोश से युक्त कर ॥२॥

५८०—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १२
आ सोता परिषिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(आसोत) भली भांति स्तुति करो (परिषिञ्चत) सब तरह से अपनी श्रद्धाओं से सींचो (अश्वं न) अश्व के समान व्यापक शक्तिवाला (स्तोमम्) स्तुति के योग्य (अप्तुरम्) उत्तम कर्मों को प्रेरित करने वाला

(रजस्तुरम्) तेजों का प्रेरक (वनप्रक्षम्) जलों का प्रेरक (उदप्रुतम्) जल के समान ओत-प्रोत ।।३।।

भावार्थ—हे स्तुति करनेवाले मनुष्यो ! घोड़े के समान व्यापक शक्ति वाला प्रशंसा के योग्य, कर्मों, तेजों और जलों के प्रेरक तथा द्रव्य मात्र में जल के समान संसार भर में ओत-प्रोत उस परमात्मा की भली-भांति स्तुति करो, और अपनी श्रद्धाओं से सींचो ।।३।।

५८१—कृतयशाः । सोमः । ककुप् ।

१ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ।। ४ ।।

पदार्थ—(एतमु त्यं) इसी को (मदच्युतं) आनन्द की वर्षा करनेवाले (सहस्रधारं) विविध शब्दमयी वेदवाणियों वाले (वृषभं) कामनाओं की पूर्ति करनेवाले (दिवोदुहम्) हमारे लिये दिव्य पदार्थों को पूर्ण करने वाले (विश्वा) सारी (वसूनि) सम्पत्तियों को (बिभ्रतम्) धारण करनेवाले ।।४।।

भावार्थ—हम आनन्द की वर्षा करने वाले, विविध शब्दमयी वेदवाणियों वाले, शक्तिशाली, दिव्य गुणों के दाता, सारी सम्पदाओं के धारण करनेवाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं ।।४।।

५८२—श्रुतवा । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ।।५।।

पदार्थ—(सः) वही (सुन्वे) स्तुति किया जाता है (यः) जो (वसूनां) भाँति-भाँति के रत्नों को (यः) जो (रायाम्) अनेक प्रकार के धनों को (आनेता) हमें देता है (यः) जो (इडानाम्) वेदवाणियों को (सोमः) ईश्वर (यः) जो (सुक्षितीनाम्) सुन्दर मनुष्यों को ।।५।।

भावार्थ—जो परमेश्वर, भाँति-भांति के रत्नों, सम्पत्तियों, वेदवाणियों और सुन्दर मनुष्यजन्म का दाता है, हम उस की स्तुति करते हैं ।।५।।

५८३—शचितः । सोमः । ककुप् ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयम् ।।६।।

पदार्थ—(त्वं हि) तू ही (अङ्ग) हे प्रिय [प्यारे] (दैव्यम्) दिव्य विद्वानों के [उत्तम] (पवमान) हे प्रभो ! (जनिमानि) जन्मों को (द्युमत्तमः) प्रकाशकों का प्रकाशक (अमृतत्वाय) मोक्ष के लिए (घोषयन्) घोषणा करता हुआ विद्यमान है ।।६।।

भावार्थ—हे प्यारे प्रभो ! तू प्रकाशकों का भी प्रकाशक है । तू ही ज्ञानियों के जन्मों को मोक्ष के लिए वेदद्वारा बतलाता हुआ विद्यमान है ।।६।।

५८४—उरुः । सोमः । ककुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीडन्नूर्मिरपामिव ।७।

पदार्थ—(एषः) यह (स्य) वह (धारया) धारा से (सुतः) चलाया हुआ (अव्याः) भेड़ों के (वारेभिः) वालों से तैयार कपड़े से छन कर (पवते) टपकता है (मदिन्तमः) वह आनन्दायक है (क्रीडन्) इधर उधर छलकता हुआ (ऊर्मिः) लहर [तरंग] के (अपाम्) जल के (इव) समान ।।७।।

भावार्थ—आनन्ददायक निचोड़ा हुआ यह सोमरस ऊनी कपड़े से छन कर सहज ही टपकता है ।।७।।

५८५—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
३ २ ३ १ [२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज
१ ३ १ २ ३ १ २
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ।। ८ ।।

पदार्थ—(यः) जो (उस्रियाः) फैलने वाली (अपियाः) अन्तरिक्षस्थ (अन्तरश्मनि) मेघ में (निः) निःशेष रूप से (गाः) किरणों को (अकृन्तत्) छिन्न-भिन्न करता है (ओजसा) शक्ति से (अभिव्रजं) समूह को (तत्निषे) विस्तार करता है (गव्यम्) गोसम्बन्धी (अश्व्यं) अश्वसम्बन्धी (वर्मी) कवचधारी के (इव) समान (धृष्ण) बुराइयों के दबाने वाले (अवारुज) दुर्गुणों को दूर कर ।।८।।

भावार्थ—जो फैलने वाली, अन्तरिक्ष तथा मेघ में विद्यमान सूर्य की किरणों को अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न कर देता है और गो तथा अश्व सम्बन्धी समुदाय को विस्तृत करता है ऐसा तू हे बुराइयों के धर्षक परमेश्वर वर्मी के समान पापों को नष्ट कर तथा हे शक्तिशालिन् ! तू कवचधारी के समान दुर्गुणों को दूर कर ।।८।।

卐 ग्यारहवीं दशती समाप्त 卐

卐

आरण्यक पर्व

षष्ठोऽध्यायः

५८६—भारद्वाजः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
१ २र ३ १ २ ३ १र २र
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ।।१।।

पदार्थ—(इन्द्र) सभाध्यक्ष ! (ज्येष्ठम्) उत्तम (नः) हमें (आभर) दे (ओजिष्ठम्) अधिक बलदायक (पुपुरि) तृप्त करने वाला (श्रवः) अन्न और यश भी (वज्रहस्त) हे दण्डधारी ! (यत्) जिससे (दिधृक्षेम) धारण करने की इच्छा करते हैं (रोदसी उभे) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक के समान राजा-प्रजा-व्यवहार (सुशिप्र) हे सुन्दर नासिका वाले (पप्राः) पूर्ण करता है ।।१।।

भावार्थ—हे दण्डधारी सुन्दर नाकवाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक के समान राजा और प्रजा के व्यवहार को पूर्ण करता है, उस उत्तम, बलवान्, तृप्त करनेवाले धन और यश को हमें दे तथा जिस वस्तु को हम धारण करना चाहते हैं, वह भी दे ।।१।।

५८७—वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ ३ २ ३ १ २ ३ १र २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ।।२।।

पदार्थ—(इन्द्रः) ईश्वर (राजा) राजा (जगतः) चलने-फिरने वाले प्राणियों का (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (अधिक्षमा) पृथ्वी पर (विश्वरूपं) सारे रूपवान् पदार्थ (यत्) जो (अस्य) इसका है (ततः) उससे (ददाति) देता है (दाशुषे) दान [त्याग] करने वाले को (वसूनि) अनेक संपदाओं को (चोदत्) दे (राधः) धन (उपस्तुतम्) प्रशंसा के योग्य (चित्) और (अर्वाक्) सन्मुख ।।२।।

भावार्थ—ईश्वर, चलने-फिरने वाले प्राणियों और मनुष्यों का राजा है। पृथ्वी पर जो कुछ इसका रूपवान् पदार्थ है उससे दान करनेवाले को सम्पदाएँ देता है । वही हमारे सन्मुख प्रशंसा के योग्य धन दे ।।२।।

५८८—वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३क २र १ २ ३ १ २ ३ २
यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ।।३।।

पदार्थ—(यस्य) जिसका (इदम्) यह (रजोयुजः) तेजस्वी (तुजे) दाता (जने) पुरुष में (वनम्) चाहने योग्य (स्वः) सुख को (इन्द्रस्य) परमात्मा के (रन्त्यं) उत्तम (बृहत्) महान् ।३।

भावार्थ—तेजस्वी जिस ईश्वर का उत्तम, महान् और चाहने योग्य सुख दानी पुरुष के लिए वही सम्पत्तियों को देता है ।।३।।

५८९—शुनःशेपः । वरुणः । चतुष्पाज्जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४॥

पदार्थ—(उत्) ऊपर (उत्तमं) उत्तम श्रेणी का (वरुण) हे ईश्वर ! (पाशम्) बन्धन को (अस्मत्) हमसे (अव) और (अधमम्) निचली श्रेणी का (वि) विशेष (मध्यमम्) मध्यम श्रेणी के (श्रथाय) ढीलाकर (अथ) तब (आदित्य) हे सूर्य के समान तेजस्वरूप ! (व्रते) आज्ञा में (वयं) हम लोग (तव) तेरी (अनागसः) विना अपराध के (अदितये) अखण्ड सुख के लिए (स्याम) होवें ॥४॥

भावार्थ—हे सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू हमारी रक्षा करता हुआ उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन तीन प्रकार के बन्धनों को ढीला कर दे जिससे हम निरपराधी होकर अखण्ड सुख के लिए तेरे नियमों का पालन करें ॥४॥

५९०—गृत्समदः । सोमः । चतुष्पाज्जगती

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३२

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—(त्वया) तुझसे (वयं) हम (पवमानेन) पवित्र (सोम) हे प्रभो ! (भरे) जीवन संग्राम में (कृतम्) अपने कर्त्तव्य को (विचिनुयाम) विशेष रूप से चुनते हैं (शश्वत्) नित्य (तत्) उसको (नः) हमारे (मित्रः) सब का उपकार करने वाला (वरुणः) न्यायाधीश ! (मामहन्ताम्) उन्नत करें (अदितिः) तेजोमयी विद्या (सिन्धुः) अन्तरिक्ष (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) द्युलोक ॥५॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमात्मा ! तू पवित्र है । हम तेरी कृपा से, जीवन संग्राम में अपने नित्य कर्त्तव्य को चुनते हैं । तेरी दया से परोपकारी न्यायाधीश पवित्र तेजविद्या, अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक हमे उन्नत बनावें ॥५॥

५९१—वामदेवः । विश्वेदेवाः । एकपाज्जगती ।

३ १ २र ३ २उ ३ २

इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥६॥

पदार्थ—(इमम्) इस (वृषणं) कामनाओं के पूर्ण करनेवाले (कृणुत) करो (एकम्) एक (इत्) ही (माम्) मुझको ॥६॥

भावार्थ—हे मित्र आदि महानुभावो ! आप सब मुझे अकेला ही [दूसरे की सहायता के विना] अपने मनोरथों का पूर्ण करनेवाला बनावें ॥६॥

५९२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परिस्रव ॥७॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (इन्द्राय) राजा के लिए (यज्यवे) यज्ञकर्ता के लिए (वरुणाय) विद्वान् के लिए (मरुद्भ्यः) ऋत्विजों के लिए (वरिवोवित्) सकल सम्पत्तियों के दाता (परिस्रव) सुख की वर्षा कर ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सकल सम्पत्तियों के दाता तू हमारे राजा, उत्तम विद्वान्, ऋत्विज् और यज्ञ कर्त्ता यजमान के लिए सुख की वर्षा कर ॥७॥

५९३—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥८॥

पदार्थ—(एना) इन (विश्वानि) सारे (अर्यः) प्राप्त करते हुए (आ) सब तरफ से (द्युम्नानि) अन्नादि सम्पदायें और यश (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (सिषासन्तः) चाहते हुए (वनामहे) आपस में बांटते हैं ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम मनुष्यों के इन सारे अन्नों और यशों को प्राप्त करते हैं तथा आपस में बांटना चाहते हुए भली भांति बाँटते हैं (सम्मिलित होकर भोगते हैं) ॥८॥

५९४—आत्मा । अन्नम् । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥९॥

पदार्थ—(अहं) मैं (अस्मि) हूँ (प्रथमजा) आदिकारण (ऋतस्य) सृष्टि-नियम और सत्य ज्ञान का (पूर्वं) पहले (देवेभ्यः) मुक्त आत्माओं से (अमृतस्य) अमृत का (नाम) स्वरूप (यः) जो (मा) मेरा (ददाति) ज्ञान देता है (सः) वह (इत्) ही (एवं) इस प्रकार से (आवद्) रक्षा करता है (अहं) मैं (अन्नम्) अन्न नाम वाला हूँ मैं (अन्नम्) प्रलयकाल में संसार को अपने में ग्रहण करने वाला (अदन्तम्) अकेला खाने वाले को (अद्मि) खा जाता हूँ ॥९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रलय में सारे संसार को अपने अन्दर ग्रहण करने वाला मैं सत्य-ज्ञान तथा सृष्टि नियम का प्रवर्तक तथा मुक्तात्माओं से प्रथम ही अमृतस्वरूप हूँ । जो मेरा उपदेश करता है वही इस अमृत को पाता है । अन्नस्वरूप मैं एकाकी अन्नभोजी और एकाकी मेरे ज्ञान को रखनेवाले को मैं खा जाता हूँ, अर्थात् अमृत धाम का अधिकारी नहीं बनाता ॥९॥

卐 पहली दशती समाप्त 卐

५९५—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१॥

पदार्थ—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु) लाल (च) और (परुष्णीषु) टेढ़ी (रुशत्) चमकवाला (पयः) जल (त्वं) तू (एतत्) यह (अधारयः) धारण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! काली, लाल और टेढ़ी नदियों के चमकते हुए जलों को तू ने धारण किया है ॥१॥

५९६—पवित्रः । सोमः । जगती ।

१२ ३२३१२ ३२३१ २ ३ १२ ३२

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२॥

पदार्थ—(अरूरुचत्) सब पदार्थों को प्रकाशित करता है (उषसः) उषादेवी का (पृश्निः) प्रकाशक सूर्य (अग्रियः) मुख्य (उक्षा) मेघ (मिमेति) गर्जता है (भुवनेषु) संसार में (वाजयुः) अन्न की उत्पत्ति करनेवाला (मायाविनः) बुद्धिमान् पुरुष (ममिरे) उत्पन्न किए जाते हैं (अस्य) सोमरस की (मायया) बुद्धि से (नृचक्षसः) मनुष्यों को दिखाने वाली (पितरः) पालन करनेवाली सूर्य की किरणें (गर्भम्) जल का (आदधुः) संग्रह करती हैं ॥२॥

भावार्थ—सूर्य उषादेवी को प्रकाशित करता है । अन्न का उत्पादक मेघ गर्जता है । सोमरस द्वारा प्राप्त बुद्धि से पुरुष बुद्धिमान् होते हैं । मनुष्यों को दिखाने वाली सूर्य की किरणें वर्षा के लिए जल का संग्रह करती हैं ॥२॥

५९७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ! (इत्) ही ने (हर्योः) अग्नि और वायु के (सचा) साथ (सम्मिश्ल) मिला हुआ हूं (आ) सब प्रकार से (वचोयुजा) वाणी का जोड़नेवाले (इन्द्रः) परमेश्वर ही (वज्री) न्यायरूप दण्डधारण करनेवाला है । (हिरण्ययः) ज्योतिस्वरूप है ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर ही वाणी का प्रवर्तक और अग्नि तथा वायु के साथ सब प्रकार से मिला हुआ है । वही प्रकाशस्वरूप है ! और न्यायरूप दण्ड का धारण करने वाला है ॥३॥

५९८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर (सहस्रप्रधनेषु च) बड़े बड़े संग्रामों में भी (उग्रः) तू महाबली (उग्राभिः) परमतेजयुक्त (ऊतिभिः) रक्षाओं से ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महाबली है, तू छोटे और बड़े संग्रामों में भी प्रभावशाली रक्षाओं से हमारी रक्षा कर ॥४॥

५९९—प्रथः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥५॥

पदार्थ—(प्रथः) प्रथ (च) और (यस्य) जिसका (सप्रथः) सप्रथ (च) और (नाम) नाम है । (अनुष्टुभस्य) अनुष्टुप् आदि छन्दवाला (हविषः) वाणीरूप हविष का (यत्) जो (हविः) ग्रहणसामग्री (धातुः) विधाता (द्युतानात्) प्रकाशस्वरूप (सवितुः) संसार का उत्पादक (च) और (विष्णोः) परमात्मा से (रथन्तरम्) रथन्तर आदि नाम वाले सामों को (आजभार) संग्रह करता है ॥५॥

भावार्थ—अनुष्टुप् छन्द आदि हवि वाणी का प्रथ और सप्रथ नाम है और जो वाणीरूपी हवि है वही हवि विधान बनाने वाले प्रकाशस्वरूप, संसार के उत्पादक और व्यापक परमात्मा से रथन्तर आदि सामों को लाती है ॥५॥

६००—*गृत्समदः । वायुः । गायत्री ।*

३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥६॥

पदार्थ—(**नियुत्वान्**) आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध कराने वाला (**वायो**) हे परमेश्वर ! (**आगहि**) प्राप्त हो (**अयं**) यह मैं (**शुक्रः**) शुद्ध (**अयामि**) उपस्थित होता हूँ (**ते**) तेरी शरण में । (**गन्तासि**) तू प्राप्त होने वाला है (**सुन्वतः**) ध्यान करनेवाले के (**गृहम्**) हृदयरूप घर में ॥६॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध करनेवाला है । पवित्र होकर मैं तेरी शरण में उपस्थित होता हूँ । तू ध्यान करने वाले हृदय में प्राप्त होने वाला है ॥६॥

६०१—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।*

१ २२ ३ १ २ ३ १ २

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना उतो दिवम ॥७॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**जायथाः**) उत्पन्न करना चाहता है (**अपूर्व्य**) हे अनादि ! (**मघवन्**) हे पूजनीय [पूजा के योग्य] (**वृत्रहत्याय**) प्रलयान्धकार को विनष्ट करने के लिए (**तत्**) तब (**पृथिवीम्**) पृथिवी लोक को (**अप्रथयः**) सुखसमृद्धि से विस्तृत करता है (**तत्**) और उसी समय (**अस्तम्नाः**) धारण करता है (**उत**) और (**दिवम्**) द्युलोक को ॥७॥

भावार्थ—हे अनादि पूज्य परमेश्वर ! तू प्रलय के अन्धकार को विनष्ट करने के लिए पृथिवी और द्युलोक को उत्पन्न करता है, उनको विस्तृत करता है और उनको धारण करता है ॥७॥

卐 दूसरी दशती समाप्त 卐

६०२—*वामदेवः । प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।*

२ ३ २ ३ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २२

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २२

परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१॥

पदार्थ—(**मयि**) मुझ में (**वर्चः**) ब्राह्म तेज (**अथो**) और (**यज्ञस्य**) यज्ञसम्बन्धी (**यत्**) जो (**पयः**) अन्न-दूध और जल आदि हैं (**परमेष्ठी**) परमपद में विराजमान (**प्रजापतिः**) प्राणिमात्र का पालन करने वाला परमात्मा (**दिवि**) द्युलोक में (**द्यामिव**) सूर्यादि दिव्य पदार्थों के समान (**दृंहतु**) बढ़ावें ॥१॥

भावार्थ—अपने परमपद में विराजमान प्राणिमात्र के रक्षक परमात्मा द्युलोक में सूर्य आदि प्रकाशमय पदार्थों के समान मेरे ब्रह्मतेज, कीर्ति, और यज्ञ से उत्पन्न होने वाले अन्न, दूध और जलादि पदार्थों को बढ़ावें ॥१॥

६०३—*गोतमः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २२ ३ १ २

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२॥

पदार्थ—(**सम्**) सम्यक् (**ते**) तेरी कृपा से प्राप्त (**पयांसि**) जल और दूध (**सम्**) सम्यक् (**उ**) और (**यन्तु**) प्राप्त हों (**वाजाः**) अन्न (**सम्**) भली भांति (**वृष्ण्यानि**) बलवर्धक हों (**अभिमातिषाहः**) कामादि शत्रुओं का नाश करनेवाला (**आप्यायमानः**) महान् से भी महान् तू है (**अमृताय**) मोक्षपद के लिए (**सोम**) हे शान्तिस्वरूप प्रभो ! (**दिवि**) द्युलोकपर्यन्त (**श्रवांसि**) कीर्ति (**उत्तमानि**) उत्तम (**धिष्व**) धारण कर, पहुँचा दे ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप प्रभो ! तू हमारे कामादि शत्रुओं का दमन करने वाला है । तेरी कृपा से सुखदायक जल, बलवर्धक अन्न प्राप्त हों । तू महान् से भी महान् है । हमें अमर बना । हमारी कीर्ति द्युलोक में पहुँच जाय ॥२॥

६०४—*गोतमः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३ १ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

१ २२ ३ २ १ २ ३ १ २२ ३ १ २२

त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥

पदार्थ—(**त्वम्**) तू क्या (**इमाः**) इन (**ओषधीः**) ओषधियों को हे (**सोमः**) हे परमेश्वर ! (**विश्वाः**) सारी (**त्वम्**) तू (**अपः**) जलों को (**अजनयः**) उत्पन्न किया है (**त्वम्**) तू (**गाः**) गौ आदि पशुओं को भी (**त्वम्**) तूने (**आतनोः**) फैलाया है (**उरु**) विशाल (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**त्वम्**) तूने (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**वि**) अनेक प्रकार से (**तमः**) अन्धकार को (**ववर्थ**) छिन्न-भिन्न किया है ॥३॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तूने इन सारी ओषधियों को जलों और गायादि पशुओं को उत्पन्न किया है । तूने विशाल अन्तरिक्ष को फैलाया है । तूने ही प्रकाश से अन्धकार का नाश किया है ॥३॥

६०५—*मधुच्छन्दा । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होता रत्नधातमम् ॥४॥

पदार्थ—(**अग्निम्**) परमेश्वर की (**ईडे**) स्तुति करता हूँ (**पुरोहितम्**) सब का धारण और पोषण करनेवाले (**यज्ञस्य देवम्**) संसार के देव (**ऋत्विजम्**) सब ऋतुओं में पूजा के योग्य (**होतारं**) संसार को अपने में लीन करने वाले (**रत्नधातमम्**) सुवर्ण, हीरा आदि रत्नों का धारण करनेवाले ॥४॥

भावार्थ—सबका पोषण करने वाले, संसार के एकमात्र देव, सब ऋतुओं में पूजा के योग्य, सब को अपने में लीन करनेवाले और असंख्य रत्नों के धारण करने वाले परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

६०६—*वामदेवः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।*

१ २ ३ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२

ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

१ २ ३ १ ३ क २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २

ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥

पदार्थ—(**ते**) तेरा (**मन्वत**) मानते हैं (**प्रथमम्**) मुख्य (**नाम**) ओंकारादि नाम (**गोनाम्**) वेदवाणियों में (**त्रिः सप्त**) इक्कीस गायत्री आदि छन्द (**परमम्**) उत्तम (**नाम**) अन्य नामों को (**जानन्**) जानते हुए (**ताः**) प्रजायें (**जानतीः**) जानती हुई (**अभ्यनूषत**) स्तुति करती हैं (**क्षाः**) पृथिवी पर निवास करने वाली (**अरुणीः**) प्रकाश से युक्त (**यशसा**) कीर्ति से युक्त (**गावः**) वाणियां ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इक्कीस छन्दों को जानती हुई पृथिवी पर रहने वाली प्रजा तेरे नाम ओंकार को वाणियों में प्रथम मानती है और तेरी स्तुति करती है । यश से प्रकाशमान वाणियां संसार में प्रकट होती हैं ॥५॥

६०७—*गृत्समदः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ क २

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥६॥

पदार्थ—(**सम्**) सम्यक् (**अन्या**) दूसरे प्रकार के जल (**यन्ति**) ऊपर की ओर जाते हैं (**उपयन्ति**) जाते हैं (**अन्याः**) दूसरे जल (**समानम्**) एक समान होकर (**ऊर्वम्**) अधिकमात्रा में (**नद्यस्पृणन्ति**) नदी का रूप धारण करते हैं । (**तम्**) उसीके (**शुचिम्**) पवित्र (**शुचयः**) पवित्र (**दीदिवांसम्**) दीप्तियुक्त (**अपांनपातम्**) जल को न गिरने देने वाले सूर्यरूप अग्नि समीप (**उपयन्ति**) चले जाते हैं (**आपः**) जल ॥६॥

भावार्थ—एक प्रकार के जल ऊपर जाते हैं । दूसरे नीचे आते हैं । वे दोनों एक रूप होकर अग्निरूप सूर्य मंडल में जाते हैं । वहां से वर्षा होने पर नदी का रूप धारण करते हैं । पवित्र जल, तेजस्वी पवित्र, जलों को न गिरने देने वाले सूर्य के समीप जाते ही हैं ॥६॥

६०८—*वामदेवः । रात्रिः । अनुष्टुप् ।*

१ २२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २२

आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥७॥

पदार्थ—(**आ**) सब ओर से (**प्रागात्**) आती है (**भद्रा**) सुख देनेवाली (**युवतिः**) अन्धकार को मिलानेवाली (**अह्नः**) दिन के (**केतून्**) चिह्नों को (**समीर्त्सति**) दूर करती है (**अभूत्**) होती है (**भद्रा**) सुख देनेवाली (**निवेशनी**) सुख से सुलाने वाली (**विश्वस्य जगतः**) सारे संसार को (**रात्री**) रात ॥७॥

भावार्थ—सुखदेनेवाली तथा अन्धकार को लाने वाली रात्रि आती है वह दिन के चिह्न को दूर करती और दिन में काम करनेवाले सारे प्राणियों को सुखपूर्वक सुलाती है ॥७॥

६०९—*भरद्वाजः । वैश्वानरः । जगती ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे

३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥८॥

पदार्थ—(**प्रक्षस्य**) सर्वव्यापक (**वृष्णो**) सुख की वर्षा करनेवाले (**अरुषस्य**) प्रकाशस्वरूप (**नु**) शीघ्र (**महः**) पूजापरक (**प्र**) उत्कृष्ट (**नः**) हमारा (**वचः**) वचन (**विदथा**) यज्ञ में (**जातवेदसे**) सर्वज्ञ (**वैश्वानराय**) सर्वनियन्ता के लिए (**मतिः**) बुद्धि (**नव्यसे**) नये (**शुचिः**) पवित्र (**सोमः**) सोम (**इव**) जैसे (**पवते**) प्राप्त होता है (**चारु**) उत्तम (**अग्नये**) अग्नि के लिए ।।८।।

भावार्थ—सर्वव्यापक, आनन्ददाता, प्रकाशस्वरूप, परमेश्वर के लिए हमारा पूजापरक वचन समर्थ होवे । नूतन अग्नि को जैसे सोम प्राप्त होता है वैसे हमारी पवित्रबुद्धि सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिए समर्थ होवे ।।८।।

६१०—*भरद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३ ३ १ २र ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ।।९।।

पदार्थ—(**विश्वे**) सारे (**देवाः**) विद्वान् (**मम**) मेरे (**शृण्वन्तु**) सुनें (**यज्ञं**) श्रेष्ठ कर्म को (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्यु और पृथिवीलोक (**अपांनपात्**) शुभकर्मों का रक्षक (**च**) और (**मन्म**) उत्तम (**मा**) नहीं (**वो**) तुम लोगों के (**वचांसि**) वचनों को (**परिचक्ष्याणि**) निन्दा (**वोचम्**) बोले (**सुम्नेषु**) सुखों में (**इत्**) ही (**वः**) तुम्हारे (**अन्तमा**) समीपवर्ती होकर (**मदेम**) सुखी हों ।।९।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुभ कर्मों का रक्षक तू, सारे विद्वान् जन तथा द्यु और भूमि के साथ वर्तमान राजा प्रजा हमारे यज्ञादि उत्तम कर्मों को सुनें । हम तुम्हारी निन्दा के वचन न बोलें । तुम्हारे समीपवर्ती होकर सुखों में सुखी हों ।।९।।

६११—*वामदेवः । लिङ्गोक्ताः । महापङ्क्तिः ।*

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती यशो भगस्य विन्दतु यशो

३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

मा प्रतिमुच्यताम् यशसा३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ।।१०।।

पदार्थ—(**यशः**) यश (**मा**) मुझको (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और भूमि (**यशः**) यश (**मा**) मुझे (**इन्द्रबृहस्पती**) राजा और विद्वान् (**भगस्य**) ऐश्वर्य की (**यशः**) कीर्ति (**विन्दतु**) प्राप्त हो (**यशः**) यश (**मा**) नहीं (**प्रतिमुच्यताम्**) छूटे (**यशसा**) यश से युक्त (**अस्याः**) इस (**संसदः**) सभा का (**अहम्**) मैं (**प्रवदिता**) प्रगल्भ वक्ता (**स्याम**) होऊं ।।१०।।

भावार्थ—हे परमेश्वर आपकी कृपा से द्यु और पृथ्वी लोक हमारे यश के साधन बनें, राजा और विद्वान् मुझे कीर्ति प्राप्त करावें । ऐश्वर्य का यश भी हमें प्राप्त हो । यश मेरा साथ कभी न छोड़े । यश से युक्त हुआ मैं इस सभा का गंभीर वक्ता होऊं ।।१०।।

६१२—*हिरण्यस्तूपः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।*

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ।।११।।

पदार्थ—(**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**नु**) शीघ्र (**वीर्याणि**) शक्ति का (**प्रवोचम्**) वर्णन करता हूं (**यानि**) जिनको (**चकार**) किया था और करता हैं (**प्रथमानि**) प्रसिद्ध (**वज्री**) वज्रवाला (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) छिन्न-भिन्न करता है (**अनु**) पश्चात् (**अपः**) जलों को (**ततर्द**) बहाता है (**प्रवक्षणः**) बहने वाली नदियों को (**अभिनत्**) तोड़ डालता है (**पर्वतानाम्**) मेघों के ।।११।।

भावार्थ—मैं सूर्य की उन शक्तियों का वर्णन करता हूं जिन्हें शक्तिशाली सूर्य प्रसिद्ध कर चुका है और कर रहा है । वह मेघ को छिन्न-भिन्न करता है, जल को बहाता है और मेघों की नदियां बनाता है ।।११।।

६१३—*विश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ।।१२।।

पदार्थ—(**अग्निः**) अग्नि नाम वाला (**अस्मि**) हूं (**जन्मना**) स्वभाव से (**जातवेदाः**) सर्वज्ञ (**घृतं**) प्रकाश (**मे**) मेरा (**चक्षुः**) चक्षु (**अमृतं**) अविनाशी आकाश या मोक्षपद (**मे**) मेरा (**आसन्**) मुख है (**त्रिधातुः**) त्रिलोक का धर्ता (**अर्कः**) पूजनीय (**रजसो विमानः**) लोकों का निर्माता (**अजस्रम्**) सदा रहनेवाली (**ज्योतिः**) ज्योति (**हविः**) हवि का नाम वाला (**अस्मि**) हूं (**सर्वम्**) सर्व ।।१२।।

भावार्थ—योगी को प्रकाशित हुआ परमेश्वर कहता है—मैं अग्निनाम वाला स्वभाव से सर्वज्ञ हूं, सम्पूर्ण प्रकाश मेरा चक्षु है, अविनाशी आकाश या मोक्षपद मेरा मुख है अथवा आकाश या मोक्षपद मेरे मुख में है । मैं सर्वपूज्य त्रिलोक का धर्ता और लोकों का निर्माता हूं । मैं सदा वर्तमान यज्ञ तथा हविनाम वाला हूं ।।१२।।

६१४—*विश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।*

२ ३ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २

पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।

२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ।।१३।।

पदार्थ—(**पाति**) रक्षा करता है (**अग्निः**) व्यापक ईश्वर (**विपः**) मेधावी (**अग्रम्**) मुख्य (**पदम्**) स्थान को (**वे**) चलनेवाली पृथिवी के (**पाति**) रक्षा करता है (**यह्वः**) महान् (**चरणम्**) गति को (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**पाति**) रक्षा करता है (**नाभा**) केन्द्रस्थान अन्तरिक्ष में (**सप्तशीर्षाणम्**) सात मरुद्गणों को (**अग्निः**) परमेश्वर (**पाति**) रक्षा करता है (**देवानाम्**) देवताओं को (**उपमादम्**) प्रसन्न करनेवाले यज्ञ को (**ऋष्वः**) महान् ।।१३।।

भावार्थ—व्यापक, महान्, और मेधावी परमेश्वर घूमनेवाली पृथिवी के मुख्य स्थान की रक्षा करता है । वह सूर्य की गति की रक्षा करता है । महान् परमेश्वर, अन्तरिक्ष में सात प्रकार की वायुओं की रक्षा करता है । वह देवों को प्रसन्न करने वाले यज्ञ की भी रक्षा करता है ।।१३।।

卐 तीसरी दशती समाप्त 卐

६१५—*वामदेवः । अग्निः । पङ्क्तिः ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

आजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ।।१।।

पदार्थ—(**आजन्ती**) चमकती हुई (**अग्ने**) हे व्यापक परमेश्वर (**समिधान**) हे तेजस्वरूप ! (**दीदिवः**) हे सब से श्रेष्ठ ! (**जिह्वा**) सात किरण रूप या सात काली कराली आदि रूप से वर्तमान जिह्वा (**अन्तःआसनि**) विशाल आकाश रूपी मुख में (**चरति**) चलती है (**स त्वम्**) वह तूने (**नः**) हमारे (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**पयसा**) जल या दुग्ध के साथ (**वसुवित्**) धनदाता (**वर्चः**) तेज (**दृशे**) देखने के लिए (**अदाः**) दिया है ।।१।।

भावार्थ—हे सर्वश्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तुम्हारे आकाशरूपी मुख में प्रकाश की ज्वालाएं सात किरणों या सात अर्चियों के रूप में चलती हैं । तूने हमारे देखने के लिए प्रकाश के साथ धन और वर्चस् भी दिया है ।।१।।

६१६—*वामदेवः । ऋतवः । पङ्क्तिः ।*

३ १ २र ३ १ २र

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ।।२।।

पदार्थ—(**वसन्तः**) चैत्र और वैशाखमास वसन्त ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय है (**ग्रीष्मः**) ज्येष्ठ और आषाढ़ मास ग्रीष्म ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) मनोहर है (**वर्षाणि**) श्रावण और भाद्रपदमास वर्षा ऋतु (**अनु**) उसके बाद होने वाली (**शरदः**) आश्विन और कार्तिक मास ऋतु (**हेमन्तः**) अग्रहण और पौष हेमन्त ऋतु (**शिशिरः**) माघ और फाल्गुन मास शिशिर ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय होता है ।।२।।

भावार्थ—हे ईश्वर ! तेरी व्यवस्था से वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतुएं अपने-अपने समय पर मनोहर होती हैं ।।२।।

६१७—*नारायणः । पुरुषः । अनुष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।३।।

पदार्थ—(**सहस्रशीर्षाः**) हम सबके शिर हैं जिसमें (**पुरुषः**) परमेश्वर (**सहस्राक्षः**) हम लोगों के सहस्र आंख हैं जिसमें (**सहस्रपात्**) हम सब के सहस्रों पैर हैं जिसमें (**सः**) वह (**भूमि**) भूमि से ले के प्रकृति पर्यन्त (**सर्वतः**) सब (**वृत्वा**) व्यापन करके (**अत्यतिष्ठत्**) बाहर भी स्थित हो रहा है, (**दशाङ्गुलम्**) दश अवयवों से युक्त ब्रह्माण्ड ।।३।।

भावार्थ—संसार के अनेक शिर, अनेकों आंखें, अनेकों पैर हैं जिसमें ऐसा वह व्यापक परमेश्वर पृथ्वी से ले के प्रकृति पर्यन्त को व्याप्त करके ब्रह्माण्ड से अतिरिक्त भी स्थित हैं ।।३।।

६१८—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिपादूर्ध्व उदैतस्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।

२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २

तथा विष्यङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ।।४।।

पदार्थ—(**त्रिपात्**) तीन पाद जगत् से (**ऊर्ध्वः**) ऊपर भी (**उदैत्**) व्यापक हो रहा है (**पुरुषः**) परमेश्वर (**पादः**) एकपाद (**अस्य**) इसका (**इह**) संसार में (**अभवत्**) होता है (**पुनः**) फिर (**तथा**) उसकी सामर्थ्य से (**विश्वङ्**) समस्त विश्व (**व्यक्रामत्**) उत्पन्न होता है (**अशना-अनशने**) खानेवाले न खानेवाले [जड़जंगम] (**अभि**) लेकर ।।४।।

भावार्थ—परमेश्वर त्रिपाद जगत् से ऊपर व्यापक हो रहा है । यह संसार उसके एक पाद के समान है । उसकी सामर्थ्य से जड़-जंगम सहित समस्त जगत् उत्पन्न होता है ।।४।।

६१९—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २र ३ १ २

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।५।।

पदार्थ—(**पुरुषः**) परमेश्वर (**एव**) ही (**इदम्**) यह (**सर्वम्**) सब (**यत्**) जो (**भूतम्**) भूत (**यत्**) जो (**च**) और (**भाव्यम्**) होनेवाले (**पादः**) पाद के समान (**अस्य**) इसके (**सर्वा**) सारे (**भूतानि**) पृथिव्यादिभूत (**त्रिपात्**) तीन पाद के समान (**अस्य**) इसका (**अमृतम्**) अमृत है (**दिवि**) आकाश में ।।५।।

भावार्थ—परमेश्वर ही भूत, भविष्यत्, वर्तमान जगत् को उत्पन्न करता है, सारा जगत् इसके पाद में है और तीन पाद इसका अपने स्वरूप में मोक्ष रूप से स्थित हैं ।।५।।

६२०—ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।६।।

पदार्थ—(**तावान्**) उतनी (**अस्य**) इसकी (**महिमा**) महिमा (**ततः**) उससे भी (**ज्यायान्**) बड़ा (**च**) और (**पूरुषः**) परमेश्वर (**उत**) और (**अमृतत्वस्य**) मोक्ष का (**ईशानः**) स्वामी (**यत्**) जिस कारण से (**अन्नेन**) उत्पन्न हुए जगत् आदि से (**अतिरोहति**) अतिरिक्त स्थित है ।।६।।

भावार्थ—उतनी तो परमेश्वर की महिमा है, परमेश्वर उससे भी महान् है । वह मोक्ष सुख का स्वामी है । इसलिए उत्पन्न हुए जगत् आदि से अतिरिक्त है ।।६।।

६२१—नारायणः । स्रष्टा । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।

२ ३ १ २र ३ १उ ३ १ २ ३ २

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।।७।।

पदार्थ—(**ततः**) उस परमेश्वर से (**विराट्**) प्रकाशमान आकाशमण्डल (**अजायत**) पैदा हुआ (**विराजः**) विराट् का (**अधि**) अधिष्ठाता (**पूरुषः**) परमेश्वर (**सः**) वह (**जातः**) पैदा हुए के (**अत्यरिच्यत**) पृथक् होता है (**पश्चात्**) पश्चात् (**भूमिम्**) भूमि (**अथो**) अनन्तर (**पुरः**) लोकशरीरादि ।।७।।

भावार्थ—उस परमेश्वर से प्रकाशमान सौर मण्डल उत्पन्न हुआ । उसके पश्चात् भूमि को पैदा किया, तदनन्तर शरीरादिक हुए । विराट् का अधिष्ठाता परमेश्वर है और वह उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड से पृथक् वर्तमान है ।।७।।

६२२—वामदेवः । द्यावापृथिवी । उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ।।८।।

पदार्थ—(**मन्ये**) मानता हूँ (**वाम्**) तुम दोनों को (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक के समान माता और पिता (**सुभोजसौ**) भली भाँति पालन करने वाले (**ये**) जो (**अप्रथेथाम्**) फैले हुए हैं (**अमितं**) अपरिमित (**अभि**) सहित (**योजनम्**) योजनों तक (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और पृथिवीलोक (**भवतं**) होते हैं (**स्योने**) सुख देनेवाले (**ते**) वे दोनों (**नः**) हमें (**मुञ्चतम्**) अलग रखें (**अंहसः**) पाप से ।।८।।

भावार्थ—जो द्यु और पृथिवीलोक योजनों तक फैले हुए हैं, उनके समान रक्षक माता और पिता भली भाँति रक्षा करनेवाले माने जाते हैं । वे सुख देते हैं और पाप से बचाते हैं ।।८।।

६२३—वामदेवः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तन्त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ।।९।।

पदार्थ—(**हरी**) हरणशील (**ते**) उस (**इन्द्र**) सूर्य की (**श्मश्रूणि**) श्मश्रु के समान किरणें (**उत**) और (**ते**) उसके (**हरितौ**) बलवान् हैं (**हरी**) धारण और आकर्षण (**तम्**) उस (**त्वा**) तिस (**स्तुवन्ति**) तारीफ करते हैं (**कवयः**) विद्वान् (**पुरुषासः**) पुरुष (**वनर्गवः**) उत्तम वाणियोंवाले ।।९।।

भावार्थ—सूर्य की श्मश्रु के सदृश किरणें हरणशील हैं । उसके धारण और आकर्षण शक्तिशाली हैं । उत्तम वाणीवाले विद्वान् पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं ।।९।।

६२४—वामदेवः । आत्मा । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा संसृजामसि ।।१०।।

पदार्थ—(**यत्**) जो (**वर्चः**) तेज (**हिरण्यस्य**) सुवर्ण का है (**यद्वा**) अथवा जो (**वर्चः**) तेज (**गवाम्**) सूर्य की किरणों का है (**उत**) और (**सत्यस्य**) सत्य (**ब्रह्मणः**) वेद और ईश्वर का जो (**वर्चः**) तेज है (**तेन**) उससे (**मा**) अपने को (**संसृजामसि**) संयुक्त करें ।।१०।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सुवर्ण का तेज है, जो सूर्य की किरणों का तेज है और जो सत्य वेद तथा ईश्वर का तेज है उस तेज समुदाय से हम तुम्हें और अपने को तेजस्वी बनावें ।।१०।।

६२५—वामदेवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २ ३ १ २

सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।

२ ३ १ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ।।११।।

पदार्थ—(**सहः**) दमन करनेवाला (**तत्**) वह (**नः**) हमें (**इन्द्र**) हे ईश्वर ! (**दद्धि**) दे (**ओजः**) बल (**ईशे**) स्वामी है (**हि**) क्योंकि (**अस्य**) इस (**महतः**) महान् बल के (**विरप्शिन्**) हे महान् ! (**क्रतुं न**) यज्ञ के समान (**नृम्णम्**) सम्पत्ति (**स्थविरम्**) स्थिर (**वाजम्**) बल (**च**) भी (**वृत्रेषु**) बाधाओं के विषय में (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**सहना**) हनन करने के योग्य (**कृधी**) करो (**नः**) हम लोगों को ।।११।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! काम-क्रोधादि शत्रुओं का दमन करने वाला बल हमें दे क्योंकि तू महान् बल का स्वामी है । हमें यज्ञ के समान सम्पत्ति और स्थिर बल भी दे । बाधाओं के उपस्थित होने पर अज्ञानादि शत्रुओं के नाश करने की शक्ति भी हमें दे ।।११।।

६२६—वामदेवः । गौः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणः इह स्त ।।१२।।

पदार्थ—(**सहर्षभाः**) बैलों के साथ (**सहवत्साः**) बछड़ों के साथ (**उदेत**) प्राप्त हो (**विश्वारूपाणि**) अनेक रंगों को (**बिभ्रतीः**) धारण करती हुई (**द्व्यूध्नीः**) दोनों समय दूध दने वाली (**उरुः**) लम्बा (**पृथुः**) चौड़ा (**अयम्**) यह (**वः**) तुम गायों के लिए (**अस्तु**) हो (**लोकः**) ससार (**इमाः**) ये (**आपः**) जल (**सुप्रपाणः**) सुन्दर पीने के योग्य (**इह**) इस संसार में (**स्त**) होवें ।।१२।।

भावार्थ—अनेक रूपों वाली दोनों समय दूध देने वाली सांडों तथा बछड़ों के साथ गायें हमें प्राप्त हों । यह विस्तृत संसार गायों का हो । ये जल इनके सुखपूर्वक पीने के लिए हों । ऐसे स्थानों में गायें रखी जायें ।।१२।।

卐 **चौथी दशती समाप्त** 卐

६२७—वैखानसः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।

३ १ २ ३ १ २

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।।१।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर ! (**आयूंषि**) आयुओं को (**पवसे**) पवित्र करता है (**आसुव**) दे (**ऊर्जम्**) बल (**इषम्**) विज्ञान को (**च**) भी (**नः**) हमें (**आरे**) दूर (**बाधस्व**) भगा (**दुच्छुनाम्**) बुराइयों को ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी आयुओं की रक्षा कर। तू हमें विज्ञान और बल प्रदान कर और बुराइयों को हम से परे भगा ॥१॥

६२८—*विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।*

३ २ ३१ २ ३ २उ ३१२३१२ ३१२
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।

१२र ३ १ २ ३१२३ १ २३१ २ ३ १ २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥२॥

पदार्थ—(विभ्राट्) विशेषरूप से प्रकाशमान (बृहत्) महान् (पिबतु) पान करे (सोम्यम्) सोमरस युक्त औषधियों के सम्बन्धी (मधु) मधुररस का (आयुः) जीवन का (दधत्) धारण करता हुआ (यज्ञपतौ) यजमान (अविह्रुतम्) निष्कंटक (वातजूतः) वायु के द्वारा प्रेरणा पाकर (यः) जो (अभिरक्षति) हर प्रकार से रक्षा करता है (त्मना) अपने आप (प्रजाः) प्रजाओं का (पिपर्ति) पालन करता है (बहुधा) अनेक प्रकार से (विराजति) प्रकाश करता है ॥२॥

भावार्थ—वायु से प्रेरणा पाने वाला सूर्य यजमान की निष्कंटक आयु को धारण करता हुआ सोम औषधि का रस ग्रहण कर खींच लेता है, प्राणिमात्र की रक्षा और पालन भी करता है और वह बहुत प्रकाश करता है ॥२॥

६२९—*कुत्सः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।*

३ २ ३२३१२३१२३१२३२३ १२ ३ २
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

२ ३१ २३ २ ३१२३१२३ १ २र ३१२
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३॥

पदार्थ—(चित्रम्) अद्भुत (देवानाम्) विद्वान् तथा दिव्य पदार्थों का (उद्गात्) उत्तमता से प्रकाशित होता है (अनीकम्) अद्भुत (चक्षुः) प्रकाश करनेवाला (मित्रस्य) सूर्य का (वरुणस्य) न्यायकारी आनन्ददाता का (अग्नेः) बिजली का (आप्रा) परिपूर्ण करता है (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (अन्तरिक्षम्) अंतरिक्ष लोक को (सूर्यः) सबका प्रेरक परमात्मा (आत्मा) सर्वव्यापक (जगतः) जंगम (तस्थुषः) स्थावर का ॥३॥

भावार्थ—स्थावर और जंगम संसार का आत्मा, सबका प्रेरक परमेश्वर विद्वानों और दिव्य पदार्थों का मित्र, न्यायकारी तथा अग्नि आदि तेज तत्त्वों का इन्द्रियातीत [जो इन्द्रियों का विषय नहीं] अद्भुत द्रष्टा है। वह हमारे हृदयों में प्रकाशित होता है। वह द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोकों को पूर्ण कर रहा है ॥३॥

६३०—*सार्पराज्ञी । सूर्यः । गायत्री ।*

१ २र ३१२ ३१२३२ ३१२ ३१ २
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४॥

पदार्थ—(आ) हर प्रकार से (अयं) यह (गौः) भूगोल (पृश्निः) अन्तरिक्ष में (अक्रमीत्) घूमता है। (असदन्) प्राप्त करता हुआ (मातरं) माता के समान जल को (पुरः) आगे (पितरं) सूर्य को भी (प्रयन्) चलता हुआ ।४।

अथवा

पदार्थ—(आ) भली भांति (अयं) यह जीव (गौः) गतिशील (पृश्निः) सुखदुःखादि का स्पर्श करनेवाला (अक्रमीत्) घूमता है (असदन्) प्राप्त करता हुआ (मातरं) माता को (पुरः) आगे (पितरं) पिता को (च) भी । (प्रयन्) प्राप्त करता हुआ (स्वः) सुखपूर्वक रहनेवाला ॥४॥

भावार्थ—यह भूगोल सूर्य के चारों ओर घूमता है ॥४॥

अथवा

भावार्थ—सुख-दुःखादि का स्पर्श करनेवाला गतिशील यह जीवात्मा माता और पिता को प्राप्त करता हुआ सुखपूर्वक संसार में विचरता है ॥४॥

६३१—*सार्पराज्ञी । सूर्यः । गायत्री ।*

३ १ २ ३२उ ३ १२ ३२ २र ३१ २र
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५॥

पदार्थ—(अन्तः) संसार में (चरति) व्यापक हो रही है (रोचना) दीप्ति [प्रकाश] (अस्य) इस ईश्वर की (प्राणात्) प्राणन क्रिया से लेकर (अपानती) अपानन क्रिया तक का संचालन करती हुई । (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (महिषः) महान् (दिवम्) सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ को ॥५॥

भावार्थ—प्राण और अपान आदि क्रियाओं का संचालन करता हुआ इस परमात्मा का प्रकाश विश्व में व्यापक हो रहा है। महान् परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाशक पदार्थों को प्रकाशित भी करता है ॥५॥

६३२—*सार्पराज्ञी । सूर्यः । गायत्री ।*

३२उ ३ १२ ३१ २३१२ २३२ ३२३१ २
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ।६।

पदार्थ—(त्रिंशद्धाम) ३० मुहूर्त्त [२४ घण्टे] (विराजति) प्रकाश करता है। (वाक्) वेदवाणी (पतंगाय) परमात्मा के लिए (धीयते) धारण की जाती है (प्रतिवस्तोः) प्रतिदिन (अह) अच्छी प्रकार से (द्युभिः) ज्ञानरूप प्रकाशों से ॥६॥

भावार्थ—परमात्मा तीस घड़ी [समस्त दिन-रात] अपने ज्ञानरूप प्रकाशों से अच्छी प्रकार प्रकाश करता है। वेद-मन्त्रों के द्वारा उसकी स्तुति की जाती है ॥६॥

६३३—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

२३२३१२ ३१२ ३ १२ १२ ३१२
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥७॥

पदार्थ—(अप) दूर होना (त्ये) वे (तायवः) चोर (यथा) जैसे (नक्षत्राः) तारे (यन्ति) छिप जाते हैं (अक्तुभिः) रात्रि के साथ (सूराय) सूर्य के लिए (विश्वचक्षसे) सबका प्रकाशक ॥७॥

भावार्थ—विश्व के प्रकाशक सूर्य के उदय होते ही चोर की भांति रात्रि के साथ तारे जैसे छिप जाते हैं, वैसे ही सबके साक्षी परमात्मा का ज्ञान होते ही हमारे कामादि शत्रु दूर हो जाते हैं ॥७॥

६३४—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

१२ ३२३ २ ३२ ३२३१२ १२ ३१२
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८॥

पदार्थ—(अदृश्रन्) दिखलाई देते हैं (अस्य) इस परमात्मा के (केतवः) विज्ञानादिगुण (विरश्मयः) सर्वव्यापक (जनान्, अनु) प्राणिमात्र में (भ्राजन्तः) दीप्तियुक्त [प्रकाशमान] (अग्नयः यथा) अग्नि की भांति ॥८॥

भावार्थ—परमात्मा के सर्वव्यापक विज्ञान आदि गुण प्रकाशमान अग्नि के समान प्राणिमात्र में दिखलाई देते हैं ॥८॥

६३५—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

३१२३१२ ३ १२ २ ३ १२ ३२
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥९॥

पदार्थ—(तरणिः) संसार-सागर से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) मुमुक्षुओं द्वारा साक्षात् करने के योग्य (ज्योतिष्कृत्) सूर्यादि का बनानेवाला तथा ज्ञान का प्रकाशक (असि) है (सूर्य) हे सब के प्रेरक परमात्मन् ! (विश्वं) संसार को (आभासि) प्रकाशित करता है (रोचनम्) रुचिपूर्ण ॥९॥

भावार्थ—हे सृष्टि-कर्त्ता परमात्मन् ! तू संसार सागर से पार करनेवाला है। तू योगियों द्वारा साक्षात् करने के योग्य है। तू सूर्यादि प्रकाशों को उत्पन्न करनेवाला है, तू रुचिपूर्ण संसार को बनाता है ॥९॥

६३६—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

३२ ३२३ १२ ३१२र ३ १२
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।

३ २उ ३क २र३ २
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०॥

पदार्थ—(प्रत्यङ्) उपासनीय (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (विशः) प्रजायें (प्रत्यङ्) पुज्य (उदेषि) साक्षात् होता है (मानुषान्) मनुष्यों को (प्रत्यङ्) भजनीय (विश्वं) सब (स्वः) सुख का (दृशे) देखने के लिए ॥१०॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! तू विद्वानों के उपासना योग्य तथा मनुष्य-प्रजाओं के हृदयों में पूज्य रूप से साक्षात् होता है। सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करने के लिए तू ही भजन के योग्य है ॥१०॥

६३७—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

१२ ३१२ ३२३२३१२ १२ ३१२
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥११॥

पदार्थ—(येन) जिससे (पावक) हे पवित्र करनेवाले (चक्षसा) विज्ञान प्रकाश से (भुरण्यन्तं) धारण और पोषण करनेवाले लोकों (जनान्) मनुष्यों को (अनु) पश्चात् (त्वं) तू (वरुण) हे बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो (पश्यसि) देखता है ॥११॥

भावार्थ—हे पवित्र करनेवाले तथा बुराइयों को दूर करनेवाले प्रभो ! आप जिस विज्ञान के प्रकाश से धारण-पोषण करते हुए इस संसार और मनुष्यों को भली भांति देखते हैं, उस से हमें युक्त कीजिए ॥११॥

६३८—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

१ २र३१२ ३२३१२ ३१२ २३१२
उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ।१२।

पदार्थ—(उत्) उपरिभाव (द्यां) प्रकाश को (एषि) प्राप्त होता है (रजः) लोकसमूह (पृथु) विस्तृत (अहा) दिन (मिमानः) व्यवस्था में करता हुआ (अक्तुभिः) रात्रि के साथ (पश्यन्) देखता हुआ (जन्मानि) अनेक जन्मों को (सूर्य) हे चराचर जगत् के आत्मा, परमात्मन् ॥१२॥

भावार्थ—हे चराचर जगत् के आत्मा परमात्मन् ! तू द्युलोक और विस्तृत लोकसमूह तथा रात्रि के साथ दिन का विभाग करता हुआ, ऐसे ही हमारे अनेक जन्मों को देखता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१२॥

६३९—*प्रस्कण्वः । सूर्यः । गायत्री ।*

१२ ३२३ २३२३१२ ३क २र १२ ३१२
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३॥

पदार्थ—(अयुक्त) जोड़ता है (सप्त) सात धातुओं को (शुन्ध्युवः) पवित्र करने वाली (सूरः) सब का प्रेरक (रथस्य) शरीर रूप रथ का (नप्त्यः) नहीं गिरने देनेवाली अर्थात् शरीर की रक्षा करनेवाली (ताभिः) उनके साथ (याति) जाता है (स्वयुक्तिभिः) अपने स्वाभाविक गुणों के साथ ॥१३॥

भावार्थ—सब का प्रेरक परमात्मा मानव शरीर की रक्षा करनेवाली सात धातुओं को शरीर के साथ जोड़ता है। उनसे तथा अपने स्वाभाविक ज्ञान आदि गुणों के साथ युक्त होकर जीवात्मा अपना व्यवहार सिद्ध करता है ॥१३॥

६४०—प्रस्कण्वः। सूर्यः। गायत्री।

३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण ॥१४।

पदार्थ—(सप्त) सात, ५ ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि (त्वा) तुझको (हरितः) ले चलनेवाली (रथे) शरीररूप रथ में (वहन्ति) ले चलती हैं (देव) दिव्य (सूर्य) हे जीव (शोचिष्केशं) प्रकाशमय (विचक्षण) हे बुद्धिमान् ॥१४॥

भावार्थ—हे बुद्धिमान् दिव्य गुण युक्त जीव ! शरीर में ले चलनेवाली सात इन्द्रियां प्रकाशमय तुझ को प्राप्त होती हैं ॥१४॥

卐 पाँचवी दशती समाप्त 卐

卐

महानाम्न्यार्चिकः

६४१—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। शक्वरी सोपसर्गा।

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीनांपते पूर्वीणां पुरूवसो ॥१॥

पदार्थ—(विदाः) जानता है (मघवन्) हे सब धनों के स्वामी परमेश्वर (विदाः) जानता है (गातुं) गन्तव्य स्थान [जाने की जगह] (अनुशंसिषः) ज्ञान करा (दिशः) मार्गों को (शिक्षा) दे (शचीनाम्पते) अनेक ज्ञानों के स्वामी (पूर्वीणां) सनातन (पुरूवसो) हे पर्याप्त धन वाले ॥१॥

भावार्थ—हे सनातन ज्ञान के स्वामी, पर्याप्त धन वाले परमेश्वर ! तू सर्वज्ञ है। सब के जाने के स्थान को जानता है। हमें मार्ग का ज्ञान करा, धन दे ॥१॥

६४२—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। शक्वरी सोपसर्गा।

३ २उ ३ १ २ ३ २ २
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३र्न्नांशुः।
१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ ॥

पदार्थ—(आभिः) इन (त्वं) तू (अभिष्टिभिः) प्रार्थनाओं से (स्वः) सूर्य के (न) समान (अंशुः) व्यापक (प्रचेतन) हे प्रकाशक (प्रचेतय) चेता (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर (द्युम्नाय) यश के लिए (नः) हमें (इषे) अन्न विज्ञान के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे चेतनस्वरूप परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू सूर्य के समान तेज से व्यापक है। हमारी इन अभीष्टसिद्धि की प्रार्थनाओं से प्रसन्न हो, हमें यश, विज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए चेता ॥२॥

६४३—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

३ २उ ३ २ ३ १ २र १ २र ३ २ ३
एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः। शविष्ट वज्रिन्नृञ्जसे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व ॥ ॥

पदार्थ—(एव) निश्चित रूप से (हि) क्योंकि (शक्रः) शक्तिमान् राये) धन के लिए (वाजाय) अन्न के लिए (वज्रिवः) हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले (शविष्ठ) हे अति बलवान् (वज्रिन्) हे दुष्टों के दमन करनेवाले (ऋञ्जसे) धनवान् बना (वज्रिन् ऋञ्जसे) हे दुष्टों के दमन करनेवाले हमें अवश्य धन पान की योग्यता दे। (मंहिष्ठ) हे अत्यन्त पूज्य (आयाहि) आ (पिब) स्वीकार कर (मत्स्व) हम पर प्रसन्न हो ॥३॥

भावार्थ—हे अति बलवान्, पूज्य, दुष्टों के संहार करनेवाले परमेश्वर ! तू निश्चय ही दुष्टों का दमन करने में शक्तिमान् है। इसलिए हमें धन और अन्न आदि सम्पत्तियां दे। हमें धन पाने की योग्यता अवश्य प्रदान कर। हमें प्राप्त हो, हमारी प्रार्थना स्वीकार कर और प्रसन्न हो ॥३॥

६४४—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशां अनु।
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥४॥

पदार्थ—(विदा) प्राप्त करा (राये) धन के लिए (सुवीर्यं) उत्तम बल को (भवाः) बना (वाजानां पतिः) बलों के स्वामी (वशां) स्वाधीन (अनु) अनुकूल (मंहिष्ठ) हे अत्यन्त पूजनीय, (वज्रित्) हे दुष्टों को दण्ड देने वाले (ऋञ्जसे) प्रसन्न करते हैं (यः) जो (शविष्ठः) अत्यन्त बलवान् (शूराणां) शूरवीरों में ॥४॥

भावार्थ—हे पूज्य, दुष्टों को दण्ड देनेवाले परमेश्वर ! तू बलवानों में परम बलवान् और सब बलों का स्वामी है। हम तुझे प्रसन्न करते हैं। तू हमें सम्पत्ति के लिए सुन्दर बल दे और स्वाधीन बना ॥४॥

६४५—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ २
यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न्न शोचिः।
१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३र २र
चिकित्वो अभि नो नय इन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (मंहिष्ठः) महान् दानी (मघोनाम्) धनियों में (अंशुः न शोचिः) सूर्य के समान तेजस्वरूप (चिकित्वः) हे ज्ञानस्वरूप (अभि) सब ओर से (नः) हमें (नय) प्राप्त करा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (विदे) प्राप्त होता है (तमु) उसी की ही (स्तुहि) स्तुति कर ॥५॥

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! जो परमेश्वर धनवानों में महान् दानी, सूर्य के समान तेजस्वरूप और परम ऐश्वर्य वाला है, हमें उसे प्राप्त करा और उसी की ही स्तुति कर ॥६॥

६४६—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

२ ३ २ ३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १२
ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६॥

पदार्थ—(ईशे) शासन करता है (हि) क्योंकि (शक्रः) शक्तिमान् (तम्) उसे (ऊतये) रक्षा के लिए (हवामहे) पुकारते हैं (जेतारं) विजय करने वाले (अपराजितम्) न हारने वाले (सः) वह (नः) हमारे (स्वर्षत्) दूर करे (अति) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करनेवालों को (क्रतुः) यज्ञ (छन्दः) वेद (ऋतं) सत्य (बृहत्) महान् हो ॥६॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही सब पर शासन करता है। वह न हारने वाला और विजयी है। हम अपनी रक्षा के लिए उसको पुकारते हैं। वह हमारे शत्रुओं के द्वेषभाव को दूर करे। हमारा यज्ञ वेद और सत्य महान् हो ॥६॥

६४७—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स नः स्वर्षदति द्विषः। स नः स्वर्षदति द्विषः ॥७॥

पदार्थ—(इन्द्रं) परमेश्वर को (धनस्य) सम्पदाओं की (सातये) प्राप्ति के लिए (हवामहे) पुकारते हैं (जेतारम्) विजयी (अपराजितम्) नहीं पराजित होने वाले (सः) वह (नः) हमारे (स्वर्षत्) दूर करे (अति) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करनेवालों को (सः) वह (नः) हमें (स्वर्षत्) दूर करे (अति) अत्यन्त (द्विषः) द्वेष करने वालों से ॥७॥

भावार्थ—सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए हम कभी न हारने वाले विजयी परमेश्वर को पुर्कारते हैं। वह हमारे शत्रुओं को हमसे परे करे तथा शत्रुओं से हमें दूर रखे ॥७॥

६४८—प्रजापतिः। त्रैलोक्यात्मा। सोपसर्गा शक्वरी।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय। सुम्न आ धेहि नो वसो।
३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पूर्तिः शविष्ठ शस्यते। वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥८॥

पदार्थ—(पूर्वस्य) सनातन (यत्) जो (ते) तेरे (अद्रिवः) हे आदरणीय (अंशुः) प्रकाश (मदाय) आनन्द के लिए है (सुम्ने) सुख में (आधेहि) रख (नः) हमें (वसो) मोक्ष में हमें वास कराने वाले (पूर्त्तिः) पालन (शविष्ठ) हे बलशाली (शस्यते) प्रशंसा के योग्य है (वशी) सब को वश में रखने वाला (हि) निश्चय (शक्रः) शक्तिमान् (नूनम्) निश्चित रूप से (तम्) उस (नव्यम्) स्तुति के योग्य (संन्यसे) सम्यक् प्रकार से भजन करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—हे आदर के योग्य परमेश्वर ! तू सनातन है। तेरा प्रकाश आनन्द देने वाला है। हे सर्वाधार, हमें सुखी बना। हे शक्तिमान् प्रभो ! तेरे पालन-पोषण प्रशंसनीय हैं। निश्चय ही तू सब को वश में रखने वाला है। मैं तेरा भजन करता हूँ ॥८॥

६४९—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

३ १र २र ३ १ २

प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥९ ॥

पदार्थ—(प्रभो) स्वामी है (जनस्य) जनता का (वृत्रहन्) अज्ञान-निवारक (सं) भली भांति (अर्येषु) श्रेष्ठ पुरुषों में (ब्रवावहै) हम दोनों गुरु-शिष्य संवाद करते हैं (शूरः) शक्तिमान् (यः) जो (गोषु) पृथिव्यादि में (गच्छति) व्यापक होकर विद्यमान हैं (सखा) वह मित्र है (सुशेवः) सुन्दर सुखों का दाता (अद्वयुः) अद्वितीय ॥९॥

भावार्थ—जो परमेश्वर जनता का स्वामी, अज्ञान का नाशक, सर्वशक्तिमान्, स्नेही, सुन्दर सुखों का दाता, अद्वितीय और गतिशील पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापक होकर विद्यमान है, हम दोनों गुरु और शिष्य भद्र पुरुषों में उसका संवाद करें ॥९॥

६५०—प्रजापतिः । त्रैलोक्यात्मा । सोपसर्गा शक्वरी ।

३ २ १ ३ १ २ ३ १ २

एवाह्येऽ३ऽ३ऽ३ व एवां ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।

३ १ २र ३ १ २र

एवा हि पूषन् एवा हि देवाः ॥१०॥

पदार्थ—(एव) ऐसा ही (हि) निश्चय (एव) ही (एवं) ऐसा ही (हि) निश्चय (अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (एव) ऐसा ही (हि) निश्चय (इन्द्र) हे परम ऐश्वर्यवाले परमेश्वर (एवं) ऐसा ही (हि) निश्चय से (पूषन्) हे पालन करनेवाले परमेश्वर (एव) ऐसा ही (हि) निश्चय (देवाः) हे दिव्य-गुण युक्त परमेश्वर ! ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! हे पालन करने वाले पिता ! हे दिव्यगुणयुक्त ईश्वर ! तू जैसा वर्णन किया जाता है, वैसा ही है ॥ १० ॥

卐 पूर्वार्चिक समाप्त 卐

卐

सामवेद भाषाभाष्ये उत्तरार्चिकः

प्रथमोऽध्यायः

६५१—असितः देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १२ ३१ २ ३ २३ १ २र

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवां इयक्षते ॥१॥

पदार्थ—(उप) समीप (अस्मै) इस (गायता) गान करो (नरः) हे मनुष्यो (पवमानाय) पवित्रकारक (इन्दवे) ऐश्वर्यवाले परमेश्वर के लिए (अभि) सब प्रकार से (देवान्) महात्माओं को (इयक्षते) आत्मज्ञान प्रदान करने की इच्छा करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो, योगियों को आत्मज्ञान देनेवाले, पवित्रकारक, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का गान करो ॥१॥

६५२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (ते) तुझ (मधुना) कर्म से (पयः) ज्ञान को (अथर्वाणः) ज्ञानीजन (अशिश्रयुः) आश्रय लेते हैं। (देवं) दिव्य (देवाय) देव की प्राप्ति के लिए (देवयु) ईश्वर को प्राप्त कराने वाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, ज्ञानीजन तुझ देव की प्राप्ति के लिए निष्काम कर्म के द्वारा तुझे प्राप्त करने वाले दिव्यज्ञान का आश्रय लेते हैं ॥२॥

६५३—वैखानसः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह तू (न) हमारे (पवस्व) दे (शं) कल्याण (गवे) गौ के लिए (शं) कल्याण (जनाय) सन्तान के लिए (शं) कल्याण (अर्वते) घोड़े के लिए (शं) कल्याण (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (ओषधीभ्यः) रोगनिवारक द्रव्यों के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर तू हमारे गाय, पुत्रादि, घोड़े और रोग-निवारक द्रव्यों को कल्याणकारी बना ॥३॥

६५४—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१॥

पदार्थ— (दविद्युतत्या) अधिक प्रकाशवाली (रुचा) तेज से (परिष्टोभन्त्या) हर प्रकार से गुणों का वर्णन करनेवाली (कृपा) शक्ति से (सोमाः) सौम्य गुणवाले योगीजन (शुक्राः) पवित्र अन्तःकरण वाले (गवाशिरः) जितेन्द्रिय ।१।

भावार्थ— जितेन्द्रिय पवित्र अन्तःकरण वाले योगीजन ब्रह्म तेज तथा योग शक्ति से युक्त होते हैं ॥१॥

६५५—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३१ २ ३ १ २र ३क २र

हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।

१ २ ३ १ २

सीदन्तो वनुषो यथा ॥२॥

पदार्थ—(हिन्वानः) प्रेरित होकर (हेतृभिः) सांसारिक दुःखों से (हितः) अपना हित चाहने वाला (आ) सब प्रकार से (वाजं) ज्ञान को (वाजी) ज्ञानी पुरुष (अक्रमीत्) चलता है (सीदन्तः) संग्राम में प्रवेश करनेवाले (वनुषः) योद्धा (यथा) जैसे ॥२॥

भावार्थ—संसार के दुःखों से दुःखी होकर ज्ञानी पुरुष अपने हित की दृष्टि से ज्ञान की ओर चलते हैं, जैसे कि योद्धा लोग युद्ध में प्रवेश करते हैं ॥२॥

६५६—इरमिठः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ॥३॥

पदार्थ —(ऋधक्) समृद्धिकारक (सोम) हे शान्तस्वरूप परमेश्वर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (संजग्मानः) संगत होता हुआ (दिवा) प्रकाश के साथ (कवे) हे वेदरूपी काव्य के कर्त्ता (पवस्व) हमें पवित्र कर (सूर्यः) सूर्य (दृशे) देखने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान के दाता परमेश्वर ! तू हमारी उन्नति चाहनेवाला है। संसार के देखने के लिए प्रकाश से युक्त सूर्य की भाँति हमारे कल्याण के लिए हमें पवित्र कर ॥३॥

६५७—विश्वामित्रः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवमानस्य ते कवे वाजित्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१॥

पदार्थ—(पवमानस्य) पवित्रकारक (ते) तेरी (कवे) हे वेदरूप काव्य की रचना करनेवाले परमेश्वर (वाजिन्) ज्ञानवान् (सर्गाः) सृष्टि (असृक्षत) बनाई जाती है (अर्वन्तो न) यजमान के समान (श्रवस्यवः) अन्न और यश चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानमय वेदों के प्रकाशक परमेश्वर, तू पवित्र है। तू उसी प्रकार से भांति-भांति की सृष्टि की रचना करता है जिस प्रकार धन और यश के चाहने वाला यजमान अनेक प्रकार के यश की रचना करता है ॥१॥

६५८—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १२ ३ २३१२३१२३१२ १२ ३१२

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥२॥

पदार्थ—(अच्छा) प्राप्त करने के लिए (कोशं) आनन्दमय कोश को (मधुश्चुतम्) अमृतवर्षा करनेवाले (असृग्रम्) खोलते हैं (वारे) वरण करने योग्य (अव्यये) नित्य परमेश्वर की शरण में [विद्यमान होकर] (अवावशन्त) कामना करते हैं (धीतयः) ज्ञानीजन ॥२॥

भावार्थ—प्राप्त करने योग्य नित्य परमेश्वर की शरण में उपस्थित होकर ज्ञानीजन अमृत की वर्षा करनेवाले आनन्दमय कोष को भली भांति खोलते हैं और ब्रह्मानन्द की कामना भी करते हैं ॥२॥

६५९—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३१२ १२३२३ २३२

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥३॥

पदार्थ—(अच्छा) भली-भांति (समुद्रं) ईश्वर को (इन्दवः) उपासक जन (अस्तं) गोशाला में (गावः) गौओं के (न) समान (धेनवः) दूध देने वाली (अगमन्) प्राप्त करते हैं (ऋतस्य) सत्य ज्ञान [वेद] के (योनिम्) कारण (आ) सब प्रकार से ॥३॥

भावार्थ—भक्तजन सत्य के कारण परमेश्वर को भली भांति वैसे ही प्राप्त करते हैं जैसे कि दूध देनेवाली गौएँ गोशाला में चली जाती हैं ॥३॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

६६०—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री :*

२३ १ २ ३१२ ३२३१२ १ २र ३१२

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे ज्ञान गुणयुक्त जीव (आयाहि) आ (वीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिए (गृणानः) स्तुति करते हुए (हव्यदातये) धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष का उपदेश देने के लिए (नि) निश्चित रूप से (होता) उत्तम गुणों का ग्रहण करने वाला (सत्सि) विराजमान होओ (बर्हिषि) ब्रह्म में ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानगुणयुक्त जीव ! धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का उपदेश देने के लिए [इस संसार में] आ । गुण-ग्राहक तू आनन्द की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हुआ ब्रह्म की शरण में उपस्थित हो ॥१॥

६६१—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३१२ ३१२

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझको (समिद्भिः) शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले (अङ्गिरः) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (घृतेन) उत्तम विज्ञान के द्वारा (वर्द्धयामसि) प्रकाशित [प्रचार] करते हैं (बृहत्) महान् (शोच) पवित्र कर (यविष्ठ्य) हे अतिशय बलवान् ॥२॥

भावार्थ—हे अत्यन्त बलवान् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से होने वाले उत्तम विज्ञान के द्वारा तुझ ब्रह्म का हम प्रकाश करते हैं । तू महान् है, हमें पवित्र कर ॥२॥

६६२—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१२ ३२ ३२ ३१ २ ३ १२.३१२

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(स) वह (नः) हमें (पृथुः) विशाल (श्रवाय्यं) कीर्त्तिकर (अच्छा) भली भांति (देव) हे देव (विवाससि) प्राप्त करा (बृहद्) महान् (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप देव परमेश्वर, तू हमें विशाल कीर्ति फैलाने वाले, महान् और उत्तम पराक्रम को दे ॥३॥

६६३—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

१ २ ३१ २र २ ३ १२

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमारे (मित्रावरुणौ) हे परमेश्वर, तेरी मित्र, वरुण शक्तियें (घृतैः) तेजों से (गव्यतिम्) जहां तक सूर्य की किरणों इन्द्रियों और पृथिवी का सम्बन्ध है वहां तक (उक्षतम्) तृप्त करें (मध्वा) सुखदायक फल से (रजांसि) सब लोकों को (सुक्रतू) उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम व्यवहार सिद्ध करनेवाली तेरी मित्र और वरुण शक्तियां अपने तेजों से सूर्य के प्रकाशमार्ग, इन्द्रियगोचर विषय और पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाले स्थानों तक तथा सुखदायक फलों से लोक-लोकान्तरों को भी तृप्त करें ॥१॥

६६४—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२॥

पदार्थ—(उरुशंसा) प्रशंसा के योग्य (नमोवृधा) ब्रह्म का प्रकाश करने वाले (मह्ना) शक्ति से (दक्षस्य) आत्मा के (राजथः) शोभित होते हैं (द्राघिष्ठाभिः) बड़ी गतियों से (शुचिव्रता) पवित्र क्रिया करने वाले प्राण और अपान ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसा के योग्य परमेश्वर, प्रकाश करने वाले, पवित्र क्रियाओं वाले प्राण और अपान आत्मा की महिमा तथा अपनी लम्बी गतियों से शरीर में विराजमान हैं ॥२॥

६६५—*विश्वामित्रो जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।*

३ २३१२ ३ १२३१२ ३१ २र

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥३॥

पदार्थ—(गृणानः) स्तुति करते हुए (जमदग्निना) ज्ञान अग्नि से (योनौ) कारण में (ऋतस्य) वेदज्ञान (सीदतम्) विराजमान होते हैं (पातम्) पीते हैं (सोमम्) आनन्दरस (ऋतावृधौ) वेदज्ञान और ऋतम्भरा प्रज्ञा से प्रकाशमान ॥३॥

भावार्थ—स्तुति करते हुए वेदज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि से प्रकाशमान विद्वान् और योगीजन ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा वेदज्ञान के कारण परमेश्वर की शरण में स्थिति पाते हैं तथा आनन्दरस का पान भी करते हैं ॥३॥

६६६—*इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।

२३३१२३१२

एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (याहि) जा (सुषुमा) उत्पन्न किया है (इन्द्र) हे मुक्त पुरुष (ते) तेरे लिए (सोमम्) संसार को (पिब) स्वीकार कर (इमं) प्रत्यक्ष (आ) सब प्रकार से (इदं) इस (बर्हिः) मोक्षधाम को (सदः) प्राप्तकर (मम) मेरे ॥१॥

भावार्थ—हे मुक्त पुरुष ! तेरे लिए ही संसार को हमने बनाया है । तू जा इस संसार का भली भांति भोग कर । पश्चात् मेरे मोक्षधाम पर पहुँच जा ॥१॥

६६७—*इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३२३ २३१२ ३१ २ २३१२

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (त्वा) तुझको (ब्रह्मयुजा) मंत्रोंवाले (हरी) ऋग्वेद और सामवेद (वहताम्) प्राप्त करावें (इन्द्र) हे परमेश्वर (केशिना) ज्ञान के प्रकाशक (उप) समीप (ब्रह्माणि) स्तोत्र (नः) हमारे (शृणु) सुन ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर मन्त्रमय, ज्ञान के प्रकाशक सामवेद और ऋग्वेद तुझे प्राप्त करावें । तू हमारी स्तुतियों को सुन ॥२॥

६६८—*इरमिठः । इन्द्र । गायत्री ।*

३१ २ ३ २ ३१२३१२ ३१२ ३१२

ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्माणः) वेद के जानने वाले (त्वा) तुझे (युजा) योग से (वयं) हम (सोमपाम्) संसार के रक्षक (इन्द्र) हे परमेश्वर (सोमिनः) ऐश्वर्य-वाले (सुतावन्तः) संसारी (हवामहे) पुकारते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! योगरूप ऐश्वर्यवाले वेद के ज्ञान से युक्त संसारी हमलोग योग-बल से तुझ लोक-पालक को पुकारते हैं ॥३॥

६६९—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३२३२र३ १२ ३ १ २ ३२३२

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) ज्ञानी और ईश्वर भक्त (आगतं) आते है (सुतं) संसार में (गीर्भिः) वेद वाणियों के द्वारा (नभः) सुख को (वरेण्यं) चाहने योग्य (अस्य) इस (पातं) रक्षा करते हैं । (धिया) कर्म और ज्ञान से (इषितौ) प्रोत्साहन पाये हुए ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म से प्रेरित हुए ज्ञानी और ईश्वरभक्त जन इस संसार में आते हैं और वेद-वाणियों के द्वारा वर्णन किए गए सुख की रक्षा करते हैं ॥१॥

६७०—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) प्राण और अपान (जरितुः) वृद्धावस्था में (सचा) सहायक हैं (यज्ञो) परमात्मा (जिगाति) उपदेश करता है (चेतनः) चेतनस्वरूप (अया) अपनी गति से (पातम्) रक्षा करते हैं (इमं) इस (सुतं) संसार को ॥२॥

भावार्थ—चेतनस्वरूप परमात्मा उपदेश करता है कि प्राण और अपान वृद्धावस्था में सहायक हैं तथा अपनी बाहरी गति से इस संसार की भी रक्षा करते हैं ॥२॥

६७१—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (अग्निं) ज्ञानमय (कविच्छदा) मेधावी पुरुषों की रक्षा करनेवाली (यज्ञस्य) परमात्मा की (जूत्या) प्रेम से (वृणे) स्वीकार करता हूँ (ता) वे दोनों शक्तियाँ (सोमस्य) ऐश्वर्य और ज्ञान से (तृम्पतां) तृप्त करें ॥३॥

भावार्थ—परमात्मा की ऐश्वर्य और ज्ञानमय शक्तियों को हम प्रेम से अपनाते हैं । वे इस संसार में ऐश्वर्य और ज्ञान से हमें तृप्त करें ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

६७२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३१ २र ३१ २र ३२उ ३ २ ३ १ २
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१॥

पदार्थ—(उच्चा) परे (ते) तेरा (जातं) प्रसिद्ध (अन्धसः) अज्ञान वा अन्धकार से (दिवि) ज्ञान वा प्रकाश में (सत्) वर्तमान (भूमी) पृथिवी पर रहने वाला ज्ञानी मनुष्य (उग्रं) श्रेष्ठ (शर्म) सुख (महि) महान् (श्रवः) यश ॥१॥

भावार्थ—हे शान्तस्वरूप परमेश्वर ! तू अज्ञान से परे और ज्ञान में स्थित है । हम संसारी जन तेरे ही प्रसिद्ध उत्तम सुख और महान् यश को प्राप्त करते हैं ॥१॥

६७३—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (इन्द्राय) सभाध्यक्ष के लिए (यज्यवे) यज्ञ करने वाले यजमान के लिए (वरुणाय) न्याय करनेवाले के लिए (मरुद्भ्यः) उपासकों के लिए (वरिवः) सबसे श्रेष्ठ (वित्) ज्ञान का दाता (परिस्रव) ज्ञान का मार्ग खोल दे ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब से श्रेष्ठ और ज्ञानदाता है । तू हमारे सभाध्यक्ष, यजमान, न्यायाधीश और भक्तजनों के लिए ज्ञान का मार्ग खोल दे ॥२॥

६७४—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

पदार्थ—(एना) इन (विश्वानि) सारे (अर्यः) प्राप्त करने वाले (आ) सब प्रकार से (द्युम्नानि) सम्पत्तियों को (मानुषाणाम्) मनुष्य सम्बन्धी (सिषासन्तः) भोग करने की इच्छा करते हुए (वनामहे) भजन करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मनुष्य सम्बन्धी सारी सम्पदाओं को प्राप्त करते और उनके भोग की इच्छा करते हुए हम तेरा भजन करते हैं ॥३॥

६७५—अमहीयुः । सोमः । बृहती ।

३ १ २ ३ १२३ १ २र
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (सोम) हे परमेश्वर (धारया) वेदवाणी द्वारा (अपः) हमारे कर्मों को जल और अन्तरिक्ष को (वसानः) धारण करता हुआ (अर्षसि) व्यापक हो रहा है । (आ) सब प्रकार से (रत्नधा) रत्नों का धारण करने वाला (योनिम्) स्थान में (ऋतस्य) सत्य के (सीदसि) विद्यमान है (उत्सः) सरस (देवः) दाता (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू रत्नों का धारण करने वाला, सरस दाता और प्रकाशस्वरूप है । वेदवाणी से हमारे कर्मों को पवित्र करता तथा जल अन्तरिक्ष आदि को धारण करता हुआ व्यापक हो रहा है । तू अपने सत्य स्वरूप में स्थित है ॥१॥

६७६—अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
३१ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥२॥

पदार्थ—(दुहानः) दुहता हुआ (ऊधः) आनन्द के स्रोत परमात्मा से (दिव्यं) अलौकिक (मधु) स्वादिष्ट रस (प्रियं) प्यारे (प्रत्नं) सनातन (सधस्थं) साथ रहनेवाले (आसदत्) प्राप्त करता है (आपृच्छ्यं) पूछने योग्य (धरुणं) धारण करनेवाले परमेश्वर को (वाजी) ज्ञानी पुरुष (अर्षसि) प्राप्त होता है (नृभिः) योग सिखानेवाले नेताओं के साथ शिष्य (धौतः) शुद्ध अन्तःकरणवाला (विचक्षणः) बुद्धिमान् ॥२॥

भावार्थ—बुद्धिमान् पवित्र अन्तःकरणवाला योगी परमात्मा से अलौकिक, प्रसन्न करनेवाले पुराने, सदा एक साथ रहनेवाले मधुर रस का दोहन करता हुआ उसे प्राप्त करता है । प्रश्न के योग्य तथा संसार के धारण करने वाले परमात्मा को वृद्ध योगियों के साथ शिष्य प्राप्त करता है ॥२॥

६७७—अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

पदार्थ—(प्र) प्रकर्ष (तु) शीघ्र (द्रव) जा (परि) हर प्रकार से (कोशं) आनन्दमय कोष को (निषीद) स्थिर हो (नृभिः) ज्ञानियों के द्वारा (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (अभि) भली भांति (वाजं) ज्ञान (अर्ष) प्राप्त कर (अश्वं न) घोड़े के समान (त्वा) तुझको (वाजिनं) बलवान् (मर्जयन्तः) शुद्ध करते हुए (अच्छा) अच्छी तरह (बर्हिः) परमात्मा का (रशनाभिः) लगामों से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे जीव! तू शीघ्रता से आगे बढ़ । आनन्दमय कोश में स्थित हो । योगियों के द्वारा पवित्र हुआ तू ज्ञान को अच्छी तरह प्राप्त कर । ज्ञानी जन तुझको पवित्र करने के लिए परमात्मा की शरण में ले जाते हैं जैसे बलवान् घोड़े को लगाम से पकड़ कर नहलाने के लिये ले जाते हैं ॥१॥

६७८—अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥२॥

पदार्थ—(स्वायुधः) स्वाधीन (पवते) पवित्र करता है (देवः) दिव्य गुणयुक्त (इन्दुः) परमेश्वर (अशस्तिहा) बुराइयों का नाश करने वाला (वृजना) पापों से (रक्षमाणः) बचाने वाला (पिता) पालक (देवानां) सूर्य आदि दिव्य पदार्थ तथा विद्वानों का (जनिता) पैदा करनेवाला (सुदक्षः) बलदाता (विष्टम्भः) थामने वाला (दिवः) द्युलोक का (धरुणः) धारण करने वाला (पृथिव्याः) पृथिवी का ॥२॥

भावार्थ—स्वतंत्र, दुःखनाशक, पापों से बचानेवाला, रक्षक, सूर्य आदि दिव्य पदार्थों तथा विद्वानों को उत्पन्न करनेवाला, बलदाता द्युलोक का थामने वाला, पृथिवी का धारक, परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर हमें पवित्र करता है ॥२॥

६७९—अमहीयुः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २
ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३गुह्यं नाम गोनाम् ॥३॥

पदार्थ—(ऋषिः) सूक्ष्मदर्शी या इन्द्रियातीत पदार्थों का ज्ञाता [ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति आदि सूक्ष्म पदार्थों का जाननेवाला] (विप्रः) मेधावी (पुर एता) नेता (जनानां) सब लोगों का (ऋभुः) तेजस्वी (धीरः) धीर (उशना) सबका हित चाहनेवाला (काव्येन) वेदवाणी से (स चिद्) वही (विवेद) जानता है (निहितं) सुरक्षित (यत्) जो (आसां) इन (अपीच्यं) छिपा हुआ (गुह्यं)

रहस्यमय (नाम) ओं नाम (गोनां) वेदवाणियों का ॥ ३॥

भावार्थ—सूक्ष्मदर्शी, जनता का नेता, तेजस्वी, धीर, सबका हित चाहने वाला मेधावी पुरुष इन वेदवाणियों में सुरक्षित तथा छिपा हुआ जो ओं नाम है उसे वेद द्वारा जानता है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

६८०—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

पदार्थ—(**अभि**) सब ओर से (**त्वा**) तुझे (**शूर**) हे ज्ञानी (**नोनुमः**) वार वार नमस्कार करते हैं (**अदुग्धाः**) नहीं दुही हुई (**इव**) समान (**धेनवः**) दूध देने वाली गायें (**ईशानम्**) स्वामी (**अस्य**) इस (**जगतः**) गतिशील (**स्वर्दृशम्**) मोक्ष को दिखाने वाले (**ईशानं**) स्वामी (**इन्द्र**) हे जितेन्द्रिय (**तस्थुषः**) धर्मात्मा के ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी और जितेन्द्रिय योगी ! तू इस संसार के विद्वान् और धर्मात्मा पुरुषों का स्वामी तथा मोक्ष धाम का दिखलाने वाला है । बछड़े को देखकर बोलती हुई गायों के समान वे तुझे वार वार नमस्कार करते हैं ॥१॥

६८१—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(**न**) नहीं (**त्वावान्**) तेरे समान (**अन्यः**) दूसरा (**दिव्यः**) द्युलोक में (**न**) नहीं (**पार्थिवः**) पृथिवी पर (**न**) नहीं है (**जातः**) उत्पन्न (**न**) नहीं (**जनिष्यते**) उत्पन्न होगा । (**अश्वायन्तः**) अश्वों की कामना वाले (**मघवन्**) हे सम्पदाओं के स्वामी (**इन्द्र**) परमेश्वर (**वाजिनः**) बलवान् (**गव्यन्तः**) गायों की कामना वाले (**त्वा**) तुझे (**हवामहे**) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सब सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तेरे समान न द्युलोक में कोई है और न पृथिवी पर । न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा । उत्तम घोड़े, गाय और बल की कामना करते हुए हम तुझे पुकारते हैं ॥२॥

६८२—*वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ १ २ २ ३ १ २ ३ २

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

पदार्थ—(**कया**) सुखदायक (**नः**) हमें (**चित्रः**) आश्चर्य गुण, कर्म और स्वभाव वाला (**आ भुवत्**) होता है (**ऊति**) रक्षण से (**सदावृधः**) सदा हमें उन्नत बनाने वाला (**सखा**) मित्र (**कया**) सुखदायक (**शचिष्ठया**) ज्ञान (**वृता**) वरण प्राप्त करने के योग्य ॥१॥

भावार्थ—हमें सर्वदा उन्नत बनाने वाला, आश्चर्यमय गुणवाला परमेश्वर सुखकारक रक्षा और प्राप्त करने योग्य सुखदायक ज्ञान के साथ हमारा मित्र होता है ॥१॥

६८३—*वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

पदार्थ—(**कः**) सुखस्वरूप (**त्वाः**) तुझे (**सत्यः**) तीनों कालों में एकसा विद्यमान (**मदानां**) आनन्द वालों में (**मंहिष्ठः**) अत्यन्त महान् (**मत्सत्**) आनन्दित करता है (**अन्धसः**) अन्नादि भोग्य पदार्थों से (**दृढा**) दृढ (**चित्**) भी (**आरुजे**) दुःखनाश के लिए (**वसु**) मोक्ष रूप धन ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! सदा एकरस, आनन्द देने वालों में महान्, सुखस्वरूप परमेश्वर तुझे आनन्दित करता है और तेरे दुःख के नाश के लिए अन्न से प्राप्त होने वाले आनन्द से बढ़कर दृढ़ मोक्षरूप धन भी देता है ॥२॥

६८४—*वामदेवः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभी षू णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥३॥

पदार्थ—(**अभि**) भली प्रकार (**सु**) सुन्दररूप से (**नः**) हमारा (**सखीनां**) मित्रों का (**अविता**) रक्षक (**जरितॄणां**) सच्चे विद्वानों के (**शतं**) सैकड़ों (**भवासि**) होता है (**ऊतये**) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी, मित्रों की तथा सच्चे विद्वानों की तू सैंकड़ों प्रकार की रक्षाओं से रक्षा करता है ॥३॥

६८५—*नोधा । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

पदार्थ—(**तम्**) उसको (**वः**) तुम्हारे (**दस्मं**) नाशक (**ऋतीषहं**) कामादि शत्रुओं को दमन करने वाला (**वसोः**) परमात्मा से (**मन्दानम्**) प्रसन्न (**अन्धसः**) अज्ञान का (**अभि**) लक्ष्यकर (**वत्सं**) बछड़े का (**न**) समान (**स्वसरेषु**) गोशालाओं में (**धेनवः**) गायें (**इन्द्रं**) ज्ञानी पुरुष को (**गीर्भिः**) वाणियों से (**नवामहे**) प्रसन्न करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु लोगो ! तुम्हारे अज्ञान के नाशक, काम, क्रोध आदि शत्रुओं को दमन करनेवाले परमात्मा के आनन्द से आनन्दित ब्रह्मज्ञानी के प्रति आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों से उसी प्रकार प्रेम दर्शाते हैं जिस प्रकार गोशालाओं में गायें बछड़ों को अपनी आवाजों से प्रेम दर्शाती हैं ॥१॥

६८६—*नोधाः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

पदार्थ—(**द्युक्षम्**) प्रकाशस्वरूप (**सुदानुं**) महान् दानी (**तविषीभिः**) शक्तियों से (**आवृतं**) आच्छादित (**गिरिं न**) मेघ के समान (**पुरुभोजसम्**) सर्वरक्षक (**क्षुमन्तं**) अन्नवाले (**वाजं**) ज्ञान को (**शतिन**) सकड़ों (**सहस्रिणं**) हजारों वस्तुओं वाले (**मक्षू**) शीघ्र (**गोमन्तम्**) वेदमय (**ईमहे**) याचना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हम प्रकाशस्वरूप, महान् दानी, सर्वशक्तिमान्, मेघ के समान सब का पालन करने वाले परमेश्वर से अन्न प्राप्त करने वाले, सैंकड़ों और हजारों वस्तुओं की शिक्षा देनेवाले वेदमय ज्ञान की याचना करते हैं ॥२॥

६८७—*कलिः प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

पदार्थ—(**तरोभिः**) बल से (**वः**) तुम लोग (**विदद्वसुं**) ज्ञान के निवास स्थान (**इन्द्रं**) परमेश्वर को (**सबाधः**) त्रिविध ताप के सताये हुए (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**बृहद्गायन्तः**) भली भाँति भजन करते हुए (**सुतसोमे**) ज्ञान प्राप्ति के स्थान (**अध्वरे**) इस उत्पन्न जगत् में (**हुवे**) पुकारते हैं [विभक्तिव्यत्ययेन बहुत्वं] (**भरं**) भरण-पोषण करनेवाले (**न**) समान (**कारिणम्**) करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ज्ञान प्राप्ति के क्षेत्र इस संसार में त्रिविध ताप के सताये हुए भली भाँति भजन करनेवाले तुम और हम अपनी रक्षा के लिए पालन-पोषण करनेवाले ज्ञानदाता परमेश्वर को स्मरण करते हैं ॥१॥

६८८—*कलिः प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।*

२उ ३ १ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ ३ २ ३क २र

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(**न**) नहीं (**यं**) जिसको (**दुध्राः**) उद्दण्ड (**वरन्ते**) स्वीकार करते हैं (**न**) न तो (**स्थिराः**) स्थिर लोग (**मुरा**) मनुष्य (**मदेषु**) अभिमान में (**शिप्रं**) ज्ञानस्वरूप (**अन्धसः**) अन्न आदि के (**यः**) जो (**आदृत्या**) आदर से (**शशमानाय**) बिना गान के मन्त्रों से स्तुति करनेवाले (**सुन्वते**) ऐश्वर्य चाहनेवाले के लिए (**दाता**) दानी (**जरित्रे**) स्तुति करनेवाले स्तोता के लिये (**उक्थ्यं**) प्रशंसा करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—प्रशंसनीय ज्ञानस्वरूप परमात्मा को उद्दण्ड पुरुष नहीं जानते, और न धन के मद में चूर मनुष्य ही जान सकते हैं । वह परमेश्वर आदर से मंत्रों के द्वारा स्तुति करनेवाले, तथा ऐश्वर्य के प्रेमी के लिये मनचाहे फल का दाता है ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

६८९—*पुष्कलोऽग्निः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥१॥

पदार्थ—(**स्वादिष्ठया**) अत्यन्त मधुर (**मदिष्ठया**) आनन्ददायक (**पवस्व**) पवित्र कर । हे परमेश्वर (**धारया**) वेदवाणी से (**इन्द्राय**) जीव के (**पातवे**) भोगनिमित्त (**सुतः**) उत्पन्न जगत् [संसार] ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर मधुर और आनन्ददायक वेदवाणी से हमें पवित्र कर। यह संसार जीव के भोग के लिए है ॥१॥

६९०—पुष्कलोऽग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १२३२३१२

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२॥

पदार्थ—(रक्षोहा) बुराइयों का नाशक (विश्वचर्षणिः) विश्वद्रष्टा—संसार का द्रष्टा, भोग करनेवाला (योनिं) परमेश्वर को (अयोहते) ज्ञान से प्राप्त (द्रोणे) मार्ग में [विचरता हुआ] (सधस्थं) हृदय में स्थित (आसवत्) प्राप्त करता है ॥२॥

भावार्थ—बुराइयों को दूर करनेवाला द्रष्टा [भोक्ता] जीव ज्ञान से प्राप्त मार्ग में विचरता हुआ हृदय में स्थित परमात्मा को प्राप्त करता है ॥२॥

६९१—पुष्कलोऽग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ १२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

पदार्थ—(वरिवोधातमः) सम्पत्तियों का दाता (भुवः) हो (मंहिष्ठः) अत्यन्त महान् (वृत्रहन्तमः) अज्ञान का अत्यन्त नाशक अथवा अज्ञान निवारक (पर्षि) पूरा कर (राधः) धन (मघोनां) यज्ञ करनेवालों के लिये ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू सब सम्पदाओं का दाता, महान् तथा अज्ञान निवारक है। यज्ञ करनेवालों को धनादि से पूर्ण करता है ॥३॥

६९२—संहितः । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

महि द्युक्षतमो मदः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र हो जा (मधुमत्तमः) मधु विद्या का उत्तम ज्ञाता (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (सोम) हे आत्मज्ञानी (क्रतुवित्तमः) कर्मकुशल (मदः) स्तुति करनेवाला (महि) महान् (द्युक्षतमः) ज्ञान से अत्यन्त दीप्त (मदः) प्रसन्न ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मज्ञानी पुरुष ! मधुविद्या का जानने वाला, कर्म करने में कुशल, स्तुति करनेवाला महान्, ज्ञान से दीप्त तथा प्रसन्न तू परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पवित्र हो ॥१॥

६९३—संहितः । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) ईश्वर (ते) तुझ (पीत्वा) प्रवर्तक ज्ञान का पान कर (वृषभः) धर्मात्मा जीव (वृषायते) धर्म का आचरण करता है (अस्य) इस (पीत्वा) ज्ञान का पान करके (स्वर्विदः) सुखदाता (सः) वह (सुप्रकेतः) ब्रह्मज्ञानी (अभ्यक्रमीत्) पार कर जाता है (इषः) एषणाओं को (अच्छा) अच्छी तरह से (वाजं) संग्राम को (न) जैसे (एतशः) घोड़े ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! धर्मात्मा जीव तेरे ज्ञान का पान कर धर्म का आचरण करता है और वही ब्रह्मज्ञानी होकर निवृत्ति मार्ग पर चलकर ऐषणाओं को वैसे ही पार कर जाता है, जैसे कि घोड़े संग्राम में विजय पाते हैं ॥२॥

६९४—शफः । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रं) परमेश्वर को (अच्छ) भली भांति (सुता) संसार में उत्पन्न (इमे) ये (वृषणं) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (यन्तु) प्राप्त (हरयः) सारे मनुष्य (श्रुष्टेः) सुख की अवस्था में (जातासः) पैदा हुए [अर्थात् धनी] (इन्दवः) योगीजन (स्वर्विदः) ब्रह्मज्ञानी ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न ये मनुष्य तथा धनीजन परमात्मा को जानें। योगीजन उसका भजन करें तथा ब्रह्मज्ञानी उसे प्राप्त करें ॥१॥

६९५—शफः । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २

अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥२॥

पदार्थ—(अयं) यह जीवात्मा (भराय) पालन-पोषण करने वाले (सानसिः) भक्ति करनेवाला (इन्द्राय) परमेश्वर को (पवते) प्राप्त करता है (सुतः) पुत्ररूप (सोमः) सौम्य स्वभाव वाला (जैत्रस्य) काम-क्रोधादि को जीतने के लिए (चेतति) जानता है (यथा) जैसे (विदे) ज्ञान की प्राप्ति के लिए चेतता है ॥२॥

भावार्थ—भक्ति करनेवाला पुत्ररूप यह जीव परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता है। वह काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जीतने के लिए उसी तरह से चेतता है जिस तरह विद्या-प्राप्ति के लिए चेतता है ॥२॥

६९६—शफः । सोमः । उष्णिक् ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर (इत्) ही (इन्द्रः) जीवात्मा (मदेषु) आनन्द की अवस्थाओं में (आ) भली भाँति (ग्राभं) ग्रहण करने के योग्य को (गृभ्णाति) ग्रहण करता है (सानसिम्) भक्ति के योग्य (वज्रं) निवारण करने वाले (वृषणं) आनन्द की वर्षा करनेवाले (भरत्) धारण करता है (सं) सम्यक् (अप्सुजित्) कर्म को जीतने वाला ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा आनन्द की अवस्थाओं में भजन तथा ग्रहण करने योग्य परमेश्वर को ग्रहण करता है। कर्म पर विजय प्राप्त करने वाला यह बुराइयों को दूर करने वाले तथा आनन्द की वर्षा करने वाले उस को धारण करता है ॥३॥

६९७—श्यावाश्वः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।

२ ३ १ २ १ २ ३ ३क २र

अपश्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—(पुरोजिती) पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए (वः) तुम लोग (अन्धसः) अज्ञान पर (सुताय) विज्ञान बल के लिए (मादयित्नवे) आनन्ददायक (अप) दूर करना (श्वानं) कुत्ते के समान लम्पटता (श्नथिष्टन) नष्ट करो (सखायः) हे मित्रो (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी जिह्वावाली ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग अज्ञान पर पूर्ण विजय तथा विज्ञान की प्राप्ति के लिए लम्बी जिह्वा वाले कुत्ते के समान विषय-भोग का परित्याग करो ॥१॥

६९८—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (धारया) वाणी (पावकया) पवित्र (परिप्रस्यन्दते) सर्वत्र व्यापक हो रहा है (सुतः) ज्ञात [जाना गया] (इन्दुः) परमात्मा (अश्वो न) विद्युत् के समान (कृत्व्यः) व्यवहारों की साधक ॥२॥

भावार्थ—पवित्र वेदवाणी के द्वारा जाना गया परमेश्वर सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली बिजली की भाँति सब जगह व्यापक हो रहा है ॥२॥

अथवा

पवित्र वेदवाणी के द्वारा सारे व्यवहारों का साधक ऐश्वर्यसम्पन्न जो ज्ञान बल पैदा होता है, वह बिजली की भांति सर्वत्र फैलता है ॥२॥

६९९—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥३॥

पदार्थ—(तं) उस (दुरोषम्) दुर्गुणों को भस्म करनेवाले (अभि) उद्देश्य बना कर (नरः) मनुष्य लोग (सोमं) परमात्मा को (विश्वाच्या) सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करनेवाली (धिया) बुद्धि से (यज्ञाय) यज्ञ के लिए (सन्तु) हो (अद्रयः) आदर युक्त ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाली बुद्धि के द्वारा दुर्गुणों को भस्म करने वाले परमात्मा को स्मरण करते हुए यज्ञ के लिए आदरयुक्त हों ॥३॥

७००—आन्धीगवः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब ओर से (प्रियाणि) प्रिय (पवते) पवित्र करता है (चनोहितः) ज्ञान से जाना जाने वाला [ज्ञान के द्वारा जिसका अनुमान होता है] (नामानि) संज्ञामात्र [प्रत्येक योनियों के हर एक नामों को] (यह्वः) महान् (अधि) में (येषु) जिन (वर्धते) उन्नति करता है (आ) भली भांति

(सूर्यस्य) परमेश्वर के (बृहतः) महान् (बृहद्) विशाल (अधि) में (रथं) रमणीय संसार (विश्वञ्चम्) भोग तथा मोक्ष देनेवाला (अरुहत्) प्राप्त करता है (विचक्षणः) द्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—ज्ञान से अनुमान करने के योग्य, महान्, द्रष्टा जीवात्मा अनेक योनियों को प्राप्त करता है। उसमें ही सुख-दुःख का अनुभव करता है। महान परमेश्वर के दिए हुए भोग और मोक्ष के साधन संसार रूप विशाल रथ को प्राप्त करता है ॥१॥

७०१—आन्धीगवः । सोमः । जगती ।

३१२ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः
१२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥२॥

पदार्थ—(ऋतस्य) सत्यज्ञान की (जिह्वा) वाणी (पवते) बहाती है (मधु) ज्ञान (प्रियं) हितकारक (वक्ता) उपदेश देने वाला (पतिः) स्वामी (धियः) बुद्धि का (अस्याः) इस (अदाभ्यः) हिंसा के योग्य नहीं (दधाति) धारण करता है (पुत्रः) परमात्मा (पित्रोः) पृथिवी और अन्तरिक्ष में (अपीच्यं) छिपा हुआ (नाम) को (तृतीयं) तीसरा (अधि) में (रोचनं) प्रकाशमान (दिवः) द्युलोक का ॥२॥

भावार्थ—वेद की वाणी हितकारी ज्ञान का उपदेश करती है। इसका उपदेश करनेवाला समस्त ज्ञान का स्वामी परमात्मा है। उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता। वही पृथिवी और अन्तरिक्ष में छिपे हुए प्रकाशमान तीसरे द्युलोक को भी भली भांति धारण करता है ॥२॥

७०२—आन्धीगवः । सोमः । जगती ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अव द्युतानः कलशां अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ट उषसो वि राजसि ॥३॥

पदार्थ—(अव) रक्षा (द्युतानः) तेजस्वी (कलशान्) अव्यक्त मधुर ध्वनियों को (अचिक्रदत्) करता है (नृभिः) मनुष्यों के द्वारा (येमाणः) स्तुति किया जाता हुआ (कोशे) कोश में (आ) सब प्रकार से (हिरण्यये) आनन्दमय (अभि) सब ओर (ऋतस्य) सत्य के (दोहनाः) दुहने वाले मनुष्य (अनूषत) स्तुति करते हैं (अधि) में (त्रिपृष्ठः) ऋग्यजु और साम रूप स्तोत्र वाले (उषसः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान (विराजसि) प्रकाशित करता है ॥३॥

भावार्थ—समाधि लगानेवाले योगी जन आनन्दमय कोश में प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं। वह अव्यक्त ध्वनि [अनहदनाद] का प्रकाश करता है। सत्य के दोहन करने वाले लोग सब प्रकार से स्तुति करते हैं। ऋग्, यजु, साम रूप स्तोत्रवाला वह तेज का प्रकाश करता है ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

७०३—अग्निः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
१ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
प्र प्रवयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञाः) यज्ञ (यज्ञा) वस्तुतः यज्ञ हों (वः) तुम्हारे (अग्नये) परमात्मा के लिए (गिरा) प्रार्थना (गिरा) यथार्थ में प्रार्थना हो (दक्षसे) पुत्रादि के लिए (प्र) उत्तमोत्तम (वयं) मैं (अमृतं) मुक्त पुरुष को (जातवेदसं) ज्ञानवान् (प्रियं) प्रिय (मित्रं) मित्र (न) समान (शंसिषम्) प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! [मुझ] परमेश्वर के लिये तुम्हारा यज्ञ यथार्थ यज्ञ हो। सन्तान के लिए तुम्हारी प्रार्थना वास्तव में प्रा .ना हो। मैं ब्रह्मज्ञानी मुक्त पुरुष स्नेही मित्र की भांति प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

७०४—अग्निः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥

पदार्थ—(ऊर्जः) बल की (नपातम्) रक्षा करने वाले की [स्तुति करते हैं]। (सः) वह (हिना) निश्चित ही (अयं) यह (अस्मयुः) हमारा हितकारी है (दाशेम) समर्पण करते हैं (हव्यदातये) कर्मफल के दाता के लिए (भुवत्) हो (वाजेषु) [जीवन] संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो (वृधे) उन्नति के लिए (उत) और (त्राता) रक्षक (तनूनां) शरीरधारियों का ॥२॥

भावार्थ—हम बल के रक्षक परमात्मा की स्तुति करते हैं। वह निश्चय ही हमारा हितकारी है। उस फलदाता की सेवा में हम अपने सभी कर्मों का समर्पण करते हैं। वह संग्रामों में तथा उन्नति के लिए हमारा रक्षक हो ॥२॥

७०५—शाकमश्वः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥१॥

पदार्थ—(एहि) आ (उ) वितर्क (सु) अच्छी तरह (ब्रवाणि) उपदेश करता हूँ (ते) तुझे (अग्ने) हे विद्यार्थी [अग्नि के समान प्रकाशमान] (इत्था) इस प्रकार (इतरा) वेद की (गिरः) वाणी का (एभिः) इन (वर्द्धासः) बढ़ता है (इन्दुभिः) ज्ञानों से ॥१॥

भावार्थ—हे अग्नि के समान तेजस्वी विद्यार्थी, तू आ। तुझे इन वेद की वाणियों का उपदेश करता हूँ। इन ज्ञानों से तू उन्नति कर ॥१॥

७०६—शाकमश्वः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३क २र ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ २ ३ १ २
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥२॥

पदार्थ—(यत्र) जहां (क्व च) कहीं (ते) तेरा (मनः) मनन योग्य ज्ञान (दक्षं) बलवान् (दधसे) रखता है (उत्तरं) श्रेष्ठ (तत्र) वहीं (योनिं) स्थान [घर] (कृणवसे) करता है ॥२॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! सबसे श्रेष्ठ और बलवान् अपना मनन करने योग्य ज्ञान तू जिस किसी व्यक्ति को देता है, उसके हृदय में तू ही घर कर जाता है ॥२॥

७०७—शाकमश्वः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २
न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ॥३॥

पदार्थ—(नहि) नहीं (ते) तेरा (पूर्तं) पूर्ण करनेवाला तेज (अक्षिपद्) आँखों का नाश करनेवाला (भुवत्) हो (नेमानांपते) हे शरीरधारियों के स्वामी (अथ) किन्तु (दुवः) सेवा (वनवसे) स्वीकार कर ॥३॥

भावार्थ—हे शरीरधारियों के पालक परमेश्वर! तेरा तेज हमारी आँखों का नाश करने वाला न हो [तेरी ज्योति को हम देख सकें] तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ॥३॥

७०८—सौभरिः । इन्द्रः । ककुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यवमु त्वामपूर्व्यं स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम (उ) ही (त्वाम्) तुझे (अपूर्व्यं) हे अनादि परमेश्वर (स्थूरं) सज्जन पुरुष का (न) समान (कच्चित्) किसी (भरन्तः) आश्रय चाहते हुए (अवस्यवः) रक्षाभिलाषी (वज्रिन्) हे दुःखनिवारक (चित्रं) आश्चर्यमय गुण, कर्म, स्वभाववाले (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे दुःखनिवारक अनादि परमेश्वर! अपनी रक्षा चाहने वाले हम तुझ अद्भुत को ही आश्रय देनेवाले महापुरुष के समान पुकारते हैं ॥१॥

७०९—सौभरिः । इन्द्रः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥

पदार्थ—(उप) उपासना करते हैं (त्वा) तेरी (कर्मन्) शुभ कर्मों के प्रारम्भ में (ऊतये) रक्षा के लिए (स) वह तू (नः) हमें (युवा) सुख का संयोग तथा दुःख का वियोग कराने वाला (उग्रः) तेजस्वी (चक्राम) प्राप्त होता है (यः) जो (धृषत्) दुष्टों का दमन करने वाला (त्वां) तेरा (इत्) ही (हि) निश्चय से (अवितार) रक्षक (ववृमहे) भजन करते हैं। (सखायः) प्रेमी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सानसिम्) भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग अपनी रक्षा के लिए प्रत्येक शुभकर्म के प्रारम्भ में तेरी ही उपासना करते हैं। तू तेजस्वी दुष्टों का दमन करनेवाला तथा सुखों का संयोग और दुःखों का वियोग कराने वाला है। तू हमें प्राप्त हो। तुझ रक्षक और भजन करने के योग्य का ही हम भजन करते हैं ॥२॥

७१०—नृमेधः । इन्द्रः । ककुप् ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥१॥

पदार्थ—(अधा) तत्काल (हि) निश्चित (इन्द्र) हे जीव (गिर्वणः) वेदवाणियों द्वारा भक्ति करनेवाले (उप) समीप (त्वा) तेरे (काम) कामनाओं

को (ईमहे) जानता हूँ (ससृग्महे) पूर्ण करता हूँ (उदा इव) जल चाहनेवाले के समान (ग्मन्तः) प्राप्त करनेवाले (उदभिः) जलों से ॥१॥

भावार्थ—हे वेदवाणी के द्वारा भजन करने वाले जीव ! मैं तेरी कामनाओं को जानता हूँ और उन्हें तत्काल पूरी करता हूँ, जैसे प्यासे को जल देकर तृप्त किया जाता है ॥१॥

७११—नृमेधः । इन्द्रः । ककुप् ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
३ १ २ ३ १ २
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

पदार्थ—(वाः न) जल के समान (त्वा) तुझे (यव्याभिः) नदियों द्वारा (वर्धन्ति) उन्नत करते हैं (शूर) हे वीर (ब्रह्माणि) वेदत्रयी [ऋक् यजुः, साम और अथर्ववेद] (वावृध्वांसम्) उन्नत स्वभाववाले (चित्) ही (अद्रिवः) हे आदरणीय (दिवेदिवे) प्रति दिन ॥२॥

भावार्थ—हे वीर ! आदरणीय जीव, प्रतिदिन उन्नति करनेवाले तुझे चारों वेद नदियों के जल के समान बढ़ाते हैं ॥२॥

७१२—नृमेधः । इन्द्रः । ककुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।
३ १ २ ३ १ २
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥

पदार्थ—(युञ्जन्ति) जोड़े जाते हैं (हरी) ऋक् और साम (इषिरस्य) व्यापक परमेश्वर की (गाथया) वाणी के साथ (उरौ) विस्तृत (रथे) संसार में (उरुयुगे) लम्बे काल तक चलनेवाले (वचोयुजा) गायत्री छन्दों से युक्त (इन्द्रवाहा) परमानन्द की प्राप्ति करानेवाले (स्वर्विदा) सुखदाता ॥३॥

भावार्थ—गायत्री आदि छन्दों से युक्त, मोक्ष तथा स्वर्ग सुख के प्राप्त करने वाले ऋक् और साम व्यापक परमात्मा के लम्बे समय तक चलनेवाले विशाल संसार में भाषा के साथ जुड़कर व्यवहार में आते हैं ॥३॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके प्रथमोऽध्यायः ॥

卐 द्वितीयोऽध्यायः 卐

७१३—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(पान्तम्) रक्षक (आ) सब प्रकार से (वः) तुमलोगों की (अन्धसः) अज्ञान से (इन्द्रं) ज्ञानी पुरुष की (अभि) भली भांति (प्रगायत) प्रशंसा करो (विश्वासाहं) सांसारिक विषयों पर विजय पानेवाला (शतक्रतुं) अनेकों ज्ञानोंवाले (मंहिष्ठं) महान् (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो, तुम लोग अज्ञान से रक्षा करनेवाले सांसारिक विषयों से रहित अनेक ज्ञानोंवाले और मनुष्यों में महान् ज्ञानी पुरुष की प्रशंसा करो ॥१॥

७१४—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ २ ३ १ २
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२॥

पदार्थ—(पुरुहूतं) बहुतों से पुकारे जाने वाले (पुरुष्टुतं) अनेक प्रकार से स्तुति करने के योग्य (गाथान्यं) वेद ज्ञान के दाता (सन श्रुतम्) सनातन परमेश्वर को (इन्द्रः) इन्द्र (इति) ऐसा (ब्रवीतन) कहो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सबके उपास्य, वेद ज्ञान के दाता, सनातन परमेश्वर को इन्द्र समझो ॥२॥

७१५—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (इत्) ही (नः) हमें (महोनां) धनयुक्त (दाता) देनेवाला है (वाजानां) विविध ज्ञानों का (नृतुः) कर्मफल के अनुसार नचानेवाला (महान्) अनन्त (अभिज्ञु) घुटने टेक कर चलनेवालों के रूप में (आयमत्) हमें नियम में रखता है ॥३॥

भावार्थ—धनयुक्त ज्ञानों का देनेवाला, कर्मानुसार नचाने वाला अनन्त परमेश्वर ही हमें घुटने टेककर चलने वालों के रूप में नियम में रखता है ॥३॥

७१६—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम सब (इन्द्राय) ज्ञानीपुरुष का (मादनं) प्रसन्नकारक (हर्यश्वाय) ऋग्वेद और सामवेद के ज्ञानी (गायत) गान करो (सखायः) हे मित्रो (सोमपाव्ने) आत्मबल के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो, तुम लोग ज्ञान और उपासना के धनी आत्मबल के रक्षक ज्ञानी का सन्मान करो ॥१॥

७१७—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

पदार्थ—(शंसेत्) करे (उक्थं) स्तुति (सुदानवे) कल्याणकारक दानी के लिए (उत) और (द्युक्षं) मनोहर (यथा) जैसे (नरः) नेता लोग (चकृमा) हम करें (सत्यराधसे) सत्य के धनी परमात्मा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे नेता जन सत्य के धनी कल्याणकारी परमात्मा की मनोहर स्तुति करते हैं, वैसे ही हम लोग भी किया करें ॥२॥

७१८—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १२
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (वाजयुः) अन्न और ज्ञान का देनेवाला (त्वं) तू (गव्युः) गौ आदि पशुओं का दाता (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) सुवर्ण आदि सम्पदाओं को प्राप्त करानेवाला है (वसो) हे सर्वाधार ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ, सर्वाधार परमेश्वर ! तू हमें अन्न, ज्ञान, गाय आदि पशु तथा सुवर्ण आदि सम्पदायें देनेवाला है ॥३॥

७१९—मेधातिथिः प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१॥

पदार्थ—(वयं) हम (उ) और (त्वा) तू (तदिदर्थाः) परमेश्वर की प्राप्तिरूप एक प्रयोजनवाले हैं (इन्द्र) हे ज्ञानी पुरुष (त्वायन्तः) तेरी समता की कामनावाले (सखायः) परस्पर मित्र (कण्वाः) मेधावी जन (उक्थेभिः) स्तोत्रों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानीपुरुष ! हम और तू भी परमेश्वर को ही प्राप्त करना चाहते हैं। तेरी समता की इच्छा करते हुए परस्पर मित्र मेधावी जन भी उसी के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥१॥

७२०—मेधातिथिः, प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥२॥

पदार्थ—(न घ इम्) नहीं ही (अन्यत्) दूसरे की (आ पपन) स्तुति करता हूँ (वज्रिन्) हे दुःखनिवारक परमेश्वर (अपसः) शुभ कर्म (नविष्टौ) प्रारम्भ में (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमैः) वेद मन्त्रों से (चिकेत) चिन्तन करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे दुःखनिवारक परमेश्वर ! मैं दूसरे की उपासना नहीं करता। अपने प्रत्येक शुभ कर्म के आदि में मन्त्रों से तेरा ही चिन्तन करता हूँ ॥२॥

७२१—मेधातिथिः, प्रियमेधो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥

पदार्थ—(इच्छन्ति) चाहते हैं (देवाः) विद्वान् जन (सुन्वन्तं) संसार के उत्पादक परमेश्वर को (न) नहीं (स्वप्नाय) आलस्य (स्पृहयन्ति) चाहते हैं (यन्ति) प्राप्त करते हैं (प्र) उत्तम (मादं) हर्ष (अतन्द्राः) आलस्य रहित ।३।

भावार्थ—विद्वान् जन सृष्टिकर्ता परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा करते हैं। वे इस विषय में आलस्य नहीं करते। सावधानी से ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ॥३॥

७२२—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रायः) जीव के लिए (मद्वने) सुख गुणवाले (सुतं) उत्पन्न संसार का (परि) सब तरह से (ष्टोभन्तु) वर्णन करती हैं (नः) हमारी (गिरः) वेदवाणी (अर्कं) मन्त्र को (अर्चन्तु) प्राप्त करते हैं (कारवः) कर्मयोगी पुरुष ॥१॥

भावार्थ—हमारी दी हुई वेदवाणी सुख गुणवाले जीव के लिए संसार का ज्ञान कराती हैं। कर्मयोगी पुरुष ही मन्त्रों को प्राप्त करता है ॥१॥

७२३—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसवः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिसमें (विश्वा) सारे (अधिश्रियः) मनुष्य (रणन्ति) रमते हैं (सप्त संसदः) सात ऋत्विज् (इन्द्रं) परमेश्वर को (सुते) स्तुतिरूप यज्ञ में (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस स्तुतिरूप यज्ञ में सात ऋत्विक् पुरुष विचरते हैं, उसमें हम परमेश्वर को पुकारते हैं ॥२॥

७२४—श्रुतकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(**त्रिकद्रुकेषु**) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाले उत्पन्न पदार्थों में [व्यापक] (**चेतनं**) चेतन स्वरूप (**देवासः**) विद्वान् लोग (**यज्ञं**) परमेश्वर को (**अत्नत**) प्राप्त करने को निरन्तर प्रयत्न करते हैं। (**तं इत्**) उसीकी तरफ (**वर्धन्तु**) बढ़ें (**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियां ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय वाले संसारी पदार्थों में व्यापक चेतन स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। हमारी वाणियाँ उसीकी तरफ बढ़ें ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

७२५—इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥१॥

पदार्थ—(**अयं**) यह (**ते**) तेरा (**इन्द्र**) हे परमेश्वर! (**सोमः**) सच्चा न्याय (**निपूतः**) अति पवित्र है [पक्षपात रहित है,] (**अधिबर्हिषि**) संसार में (**ऐहि**) व्यापक है (**ईम्**) इसमें (**अस्य**) इसको (**द्रव**) गति देता है (**पिब**) रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! इस संसार में तेरा न्याय पक्षपात-रहित है। तू इसमें व्यापक है, गति देता और रक्षा भी करता है ॥१॥

७२६—इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥२॥

पदार्थ—(**शाचिगो**) हे शक्तिशालिनी वेदवाणी के स्वामी (**शाचि पूजन**) हे प्रसिद्ध पूजन के योग्य (**अयं**) यह प्रत्यक्ष (**रणाय**) उपदेश के करने के लिए है (**ते**) तेरे (**सुतः**) संसार (**आखण्डल**) हे दुर्गुणों के दमन करनेवाले परमेश्वर (**प्रहूयसे**) उत्तम स्तुतियों से पुकारा जाता है ॥२॥

भावार्थ—हे दुर्गुणों के निवारक! हे शक्तिशालिनी वेदवाणी के स्वामी! हे पूजनीय परमेश्वर! यह संसार तेरे उपदेश के लिए है। उत्तम स्तुतियों से हम तुझे ही स्मरण करते हैं ॥२॥

७२७—इरमिठः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २र ३ १ २र
यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**ते**) तेरा (**शृङ्गवृषो णपात्**) सूर्यादि लोक को धारण करनेवाले (**प्रणपात्**) सर्वरक्षक (**कुण्डपाय्यः**) यज्ञ (**नि**) पूर्णरूप से (**अस्मिन्**) इसमें (**दध्रे**) धारण करते हैं (**आ**) भली भांति (**मनः**) मन को ।३।

भावार्थ—हे सूर्यलोक के धारण करनेवाले परमेश्वर! तू सर्वरक्षक है। तेरे यज्ञ में हम अपना मन लगाते हैं ॥३॥

७२८—कण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥१॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**तु**) शीघ्र (**नः**) हमें (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**क्षुमन्तं**) अन्नयुक्त (**चित्रं**) अनेक प्रकार के (**ग्राभं**) ग्रहण करने योग्य सम्पदाओं का (**संगृभाय**) संग्रह करा (**महाहस्ती**) तू सबका धारण करने वाला है (**दक्षिणेन**) उदार भाव से ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू सब का धारण करनेवाला है। अपने भाव से हमें प्रशंसा और ग्रहण करने के योग्य अनेक प्रकार का धनसंग्रह करा ॥१॥

७२९—कण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥२॥

पदार्थ—(**विद्मा**) जानते हैं (**हि**) निश्चितरूप से (**त्वा**) तुझे (**तुविकूर्मि**) सब कर्मों के निमित्त (**तुविदेष्णं**) महान् दाता (**तुवीमघम्**) अनन्त संपदाओं वाले (**तुविमात्रं**) सर्वव्यापक (**अवोभिः**) रक्षाओं से युक्त ।।२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सारे कर्मों का संपादक, महान् दाता, अनन्त संपदाओं वाला, सर्वव्यापक तथा अनेक प्रकार की रक्षाओं से युक्त है। हम तुझे जानते हैं ॥२॥

७३०—कण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥

पदार्थ—(**न हि**) नहीं (**त्वा**) तुझे (**शूर**) हे शक्तिमान् (**देवा**) विद्वान् लोग या दिव्यशक्तियां (**मर्तासः**) मनुष्य लोग (**दित्सन्तं**) देने की इच्छा करनेवाले (**भीमं**) भयंकर (**न**) समान (**गां**) प्रखर किरण को (**वारयन्ते**) रोक सकते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! देने की इच्छा करते हुए तुझे दिव्य शक्तियां, विद्वान् पुरुष और मनुष्य भी नहीं रोक सकते, जैसे सूर्य की अत्यन्त तेज किरणों को कोई नहीं रोक सकता ॥३॥

७३१—विशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१॥

पदार्थ—(**अभि**) भली भांति (**त्वा**) तेरे (**वृषभा**) हे धर्म का आचरण करनेवाले (**सुते**) संसार में (**सुतं**) भोग्य पदार्थ को (**सृजामि**) पैदा करता हूँ (**पीतये**) भोग या रक्षा के लिए (**तृम्प**) तृप्त हो (**व्यश्नुहि**) उपभोग कर (**मदं**) आनन्द ॥१॥

भावार्थ—हे धर्म का आचरण करने वाले जीव! मैं [परमेश्वर] संसार में तेरे भोग के लिए भोग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता हूँ। तू उनका उपभोग करके तृप्त हो और आनन्द को प्राप्त कर ॥१॥

७३२—विशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥२॥

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**त्वा**) तुझे (**मूराः**) मूढ लोग (**अविष्यवः**) केवल पेट पूजा में ही लगे हुए (**मा**) न तो (**उपहस्वानः**) तेरा उपहास करनेवाले [नास्तिक] (**आ**) सब प्रकार से (**दभन्**) हानि पहुँचा सकते हैं (**मा कीं**) न तो (**ब्रह्मद्विषं**) वेद से द्वेष करनेवाले को (**वनः**) अपना भागी नहीं करते हो ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! पेट पालन में ही तत्पर मूढ लोग तुझे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकते और न तेरा उपहास करने वाले नास्तिक पुरुष ही। तू वेदज्ञान के द्वेषी को अपना भागी नहीं बनाता ॥२॥

७३३—विशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥३॥

पदार्थ—(**इह**) इस संसार में (**त्वा**) तुझे (**गोपरीणसं**) वेदवाणी के विविध ज्ञानवाले (**महे**) बड़ी (**मन्दन्तु**) कामना करते हैं (**राधसे**) धन-प्राप्ति के लिए (**सरः**) वेदवाणी (**गौरः**) विद्वान् (**यथा**) जिस प्रकार (**पिब**) रक्षा कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! इस संसार में हम सब लोग बड़ी सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए तुझ वेद के ज्ञानवाले की ही कामना करते हैं। जिस प्रकार विद्वान् वेदवाणी की रक्षा करता है, वैसे ही तू हमारी रक्षा कर ॥३॥

७३४—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१॥

पदार्थ—(**इदं**) इस (**वसो**) हे शरीर में वास करनेवाले जीव (**सुतं**) अन्तःकरण में प्रकट होने वाले ज्ञान को (**अन्धः**) अन्धकार या अज्ञान से (**पिबा**) पी या रक्षा कर (**सुपूर्णं**) पूर्ण (**उत्**) परे (**अरं**) पर्याप्त रूपसे (**अनाभयिन्**) संसार के भयों से रहित (**ररिमा**) देता हूँ (**ते**) तुझे ॥१॥

भावार्थ—हे संसार के भयों से रहित जीव! तुझे मैं अन्धकार से परे और पूर्ण इस अन्तःकरण में प्रकट होनेवाले योगज ज्ञान को देता हूँ। तू इसका पर्याप्त-रूप से पान कर ॥१॥

७३५—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२॥

पदार्थ—(**नृभिः**) मनुष्यों द्वारा (**धौतः**) प्राप्त किया हुआ (**सुतः**) उत्पन्न संसार (**अश्नैः**) भोक्ता=भोग करनेवाले (**अव्याः**) प्रकृति से (**वारैः**) वरणीय [अर्थात् युक्त] (**परिपूतः**) निवास से पवित्र किया हुआ (**अश्वः**) घोड़े के (**न**) समान (**निक्तः**) धोये हुए (**नदीषु**) नदियों में ॥२॥

भावार्थ—हे जीव! भोक्ता तथा जीवन्मुक्त पुरुषों से युक्त और पवित्र हुआ यह प्रकृति का कार्य संसार, नदी में नहलाये गये घोड़े के समान तुम्हारे भोग के लिए सामने विद्यमान है ॥२॥

७३६—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिंत्सधमादे ॥३॥

पदार्थ—(**तम्**) उस (**ते**) तुम्हारे (**यवं**) यव आदि अन्न का (**यथा**) यथावत् (**गोभिः**) वेदमन्त्रों द्वारा (**स्वादुं**) स्वाद के योग्य (**अकर्म**) बनाते हैं (**श्रीणन्तः**) आश्रय लेते हुए या सेवन करते हुए (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**त्वा**) तुझे (**अस्मिन्**) इस संसार में (**सधमाद**) सुख के स्थान ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश ! सुख के स्थान तेरे इस संसार में हम लोग यव आदि अन्नों को स्वाद योग्य बनाकर उनका सेवन करते हैं और वेदमन्त्रों से तुझे स्मरण करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

७३७—*विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १   २र ३ १ २   २ ३ २ १ २
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥१॥

पदार्थ—(**इदं**) यह (**हि**) निश्चय रूप से (**अनु**) अनुकूलता के साथ (**ओजसा**) पराक्रम से [युक्त] (**सुतं**) ओषधि आदि के रस की (**राधानां पते**) समस्त संपदाओं के स्वामी (**पिबा**) रक्षा कर (**त्वा**) तू (**अस्य**) इसकी (**गिर्वणः**) हे वेदमन्त्रों द्वारा भजन के योग्य ॥१॥

भावार्थ—हे समस्त सम्पदाओं के स्वामी, मन्त्रों द्वारा पूजनीय परमेश्वर ! तू हमें बल देनेवाले इन ओषधि आदि रसों की रक्षा कर ॥१॥

७३८—*विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२ ३ १२ ३ १ २र ३ १   २र ३क २र   १ २
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्य ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**ते**) तेरे (**अनु**) उद्देश्य में रख कर (**स्वधां**) धारण-पोषण (**असत्**) वर्तमान है (**सुते**) सब मूर्तिमान् पदार्थों में (**नियच्छ**) नियम में रखता है (**तन्वं**) [व्याप्ति] व्यापकता को (**स**) वह परमात्मा (**त्वा**) तुझे (**ममत्तु**) आनन्दित करता है (**सोम्य**) हे सौम्य स्वभाववाले ॥२॥

अथवा

(**यः**) जो परमेश्वर (**ते**) तेरे (**अनु**) साथ (**स्वधां**) प्रकृति के (**असत्**) अनादि रूप से विद्यमान है (**सुते**) संसार में (**नियच्छ**) नियम से रखता है (**तन्वं**) व्याप्ति-व्यापकता को (**स**) वह (**त्वा**) तुझे (**ममत्तु**) आनन्दित करता है (**सोम्य**) हे सौम्य स्वभाववाले ॥२॥

भावार्थ—हे सौम्य स्वभाववाले पुरुष ! जो परमेश्वर तेरे धारण-पोषण को करने के लिए सारे मूर्तिमान् पदार्थों में नियमपूर्वक व्यापक हो रहा है वही तुझे आनन्दित भी करता है ॥२॥

अथवा

हे सौम्य जीव ! जो परमेश्वर तेरे और प्रकृति के साथ अनादि रूप से विद्यमान है और संसार को नियम में रखते हुए व्यापक हो रहा है वही तुझे आनन्दित भी करता है ॥२॥

७३९—*विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २   ३ २उ   ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥

पदार्थ—(**प्र**) भली प्रकार (**ते**) तेरे (**अश्नोतु**) व्यापक हो रहा है (**कुक्ष्योः**) दोनों पार्श्व [बगल] में (**प्र**) भली-भांति (**इन्द्र**) हे जीव (**ब्रह्मणा**) ज्ञान के साथ (**शिरः**) मस्तिष्क में (**प्र**) अच्छी प्रकार (**बाहू**) हाथों में (**शूर**) हे शक्तिशाली (**राधसा**) समृद्धि के साथ ॥३॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली जीव ! परमेश्वर तेरे दोनों पार्श्वों में व्यापक हो रहा है। वही ज्ञान के साथ तेरे मस्तिष्क और समृद्धि के साथ बाहुओं में भी व्यापक हो रहा है ॥३॥

७४०—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

२उ   ३ १ २ ३ १ २ ३ १   २र   १ २ ३   १ २
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥१॥

पदार्थ—(**आ तु एता**) अच्छी तरह प्राप्त करो (**निषीदत**) बैठो (**इन्द्र**) अज्ञान के नाशक ज्ञानी पुरुष के (**अभि**) सन्मुख (**प्रगायत**) सन्मान करो (**सखायः**) हे सखा जीवो (**स्तोमवाहसः**) वेदज्ञान के प्राप्त करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाले सखा जीवो ! तुम अज्ञानाशक ज्ञानी को प्राप्त करो, उससे सत्संग करो और उसका सन्मान करो ॥१॥

७४१—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १२ ३ १   २र ३ १ २   २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२॥

पदार्थ—(**पुरूतमं**) सब दुष्टों को दुःख देनेवाले (**पुरूणां**) सब (**ईशानं**) स्वामी (**वार्याणां**) वरन करने योग्य गुणों के (**इन्द्रं**) परमेश्वर को (**सोमे**) गृहस्थ आश्रम में (**सचा**) सम्मिलित हुए (**सुते**) अन्य आश्रमों में प्रसिद्ध ॥२॥

भावार्थ—सब आश्रमों में प्रसिद्ध गृहस्थाश्रम में रहते हुए हम सब दुःखों के दमन करनेवाले, वरण करने योग्य गुणों के स्वामी परमेश्वर का भजन करते हैं ॥२॥

७४२—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १   २र   २ ३ १ २ ३ १   २र
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या । गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥

पदार्थ—(**सः**) परमेश्वर (**घ**) ही (**नः**) हमें (**योगे**) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति से (**आ भुवत्**) हमारे चारों तरफ होता है [सहायक होता है] (**सः**) वह ही (**राये**) धनादि की प्राप्ति के लिए (**सः**) वह (**पुरन्ध्या**) कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के निर्णय कराने वाली बुद्धि की प्राप्ति में (**गमद्**) प्राप्त होता है और जानता है (**वाजेभिः**) ज्ञानद्वारा (**आ**) सब प्रकार (**सः**) वह (**नः**) हमें ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर ही हमें अप्राप्त की प्राप्ति में सहायक होता है। वही धन और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य के निर्णय करानेवाली बुद्धि की प्राप्ति में हमारा सहायक है। वह हमें अपने ज्ञान से अपनाता है ॥३॥

७४३—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २   ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २ ३ १ २
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥

पदार्थ—(**योगेयोगे**) हर एक शुभ कार्यों में (**तवस्तरं**) बलयुक्त (**वाजे वाजे**) हर एक जीवन संग्राम में (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं (**सखायः**) सखा भाव वाले (**इन्द्रं**) ज्ञानी पुरुष को (**ऊतये**) कल्याण के लिए ॥१॥

भावार्थ—सखा भाव को प्राप्त हुए हम लोग कल्याण के लिए अपने हर एक प्राप्ति के कार्य तथा जीवन संग्राम में ज्ञानी पुरुष को स्वीकार करते हैं ॥१॥

७४४—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २र   २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥२॥

पदार्थ—(**अनु**) अनुकूलता से (**प्रत्नस्य**) सनातन (**ओकसः**) प्रकृतिरूप गृह के (**हुवे**) उपासना करते आये हैं। (**तुविप्रतिं**) सर्वरक्षक (**नरं**) नेता (**यं**) जिस (ते) तुझ परमात्मा की (**पूर्वं**) आदि कारण (पिता) पिता आचार्य आदि (**हुवे**) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—सनातन प्रकृति के नेता, सर्वरक्षक, आदि कारण जिस तुझ परमात्मा की उपासना हमारे पिता आचार्य करते आये हैं उस तुझ का मैं भी भजन करता हूँ ॥२॥

७४५—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१   २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**घ**) निश्चय ही (**गमत्**) प्राप्त होता है (**यदि**) अगर [जबकि] (**श्रवत्**) सुन लेता है (**सहस्रिणीभिः**) हजारों प्रकार की (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**वाजेभिः**) विविध ज्ञानों से (**उप**) उपयोगी रूप से (**नः**) हमारी (**हवम्**) प्रार्थना को ॥३॥

भावार्थ—जब कि परमेश्वर हमारी प्रार्थनाओं को सुन लेता है, तब निश्चय ही हमें सहस्रों प्रकार की रक्षाओं तथा विविध ज्ञानों के साथ प्राप्त होता है ॥३॥

७४६—*नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २   ३क २र
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे मुमुक्षु पुरुष (**सुतेषु**) हो जाने पर (**सोमेषु**) शास्त्रबोधों के (**क्रतुं**) ज्ञान वा कर्म को (**पुनीषे**) पवित्र करो (**उक्थ्यं**) प्रशंसनीय (**विदे**) प्राप्ति के लिए (**वृधस्य**) बढ़े हुए (**दक्षस्य**) आत्मबल की (**महान्**) बड़ा (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह [ज्ञान कर्म] ॥१॥

भावार्थ—हे मुमुक्षु पुरुष ! तू शास्त्रबोध हो जाने पर अपने ज्ञान और कर्म को पवित्र कर। क्योंकि वह बढ़े हुए आत्मबल की प्राप्ति के लिए महान् साधन है ॥१॥

७४७—*नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

१ २ ३ १ २   ३ २ ३   १ २   ३ २
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
३   २   ३ १ २   ३   १ २ ३ २
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

पदार्थ—(**सः**) वह परमेश्वर (**प्रथमे**) विस्तृत (**व्योमनि**) आकाश में (**देवानां**) प्रकृति-परमाणु और जीवों के (**सदने**) ठहरने के स्थान (**वृधः**) व्यापक (**सुपारः**) सब को अच्छी तरह पार लगाने वाला (**सुश्रवस्तमः**) अत्यन्त यशवाला (**समप्सुजित्**) सब देवों के स्वामी को ॥२॥

भावार्थ—प्रकृति तथा जीवों के ठहरने के स्थान विस्तृत आकाश में व्यापक वह परमेश्वर अच्छी तरह से सबका पार लगाने वाला और अत्यन्त यशवाला है। उस सब दिव्यगुण वाले पदार्थों के स्वामी की हम उपासना करते हैं ॥२।

७४८—नारदः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१२ ३ १२ ३२३ १२ ३ १२
तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
१२ ३ १ २र ३ १२ ३२
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥

पदार्थ—(**तमु**) उस (**हुवे**) पुकारते हैं (**वाजसातये**) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (**इन्द्रं**) परमेश्वर को (**भराय**) पालनपोषण के लिए (**शुष्मिणं**) शक्तिमान् (**भवा**) होता है (**नः**) हमारे (**सुम्ने**) सुख के लिए (**अन्तमः**) समीपवर्ती (**सखा**) मित्र के समान (**वृधे**) हमारी वृद्धि के लिए ॥३॥

भावार्थ—जो हमारी सुख प्राप्ति और वृद्धि के लिए समीपवर्ती सखा के समान है, उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को हम ज्ञानप्राप्ति और अपनी रक्षा के निमित्त पुकारते हैं ॥३॥

卐 **तृतीयः खण्डः समाप्तः** 卐

७४९—वामदेवः । अग्निः । प्रगाथः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

पदार्थ—(**एना**) इस तरह (**वो**) तुम्हारे (**अग्नि**) आत्मज्ञानी को (**नमसा**) आदर के साथ (**ऊर्जः**) ज्ञानबल के (**नपातं**) रक्षक (**आहुवे**) पास बुलाता हूँ या ग्रहण करता हूँ (**प्रियं**) प्रिय (**चेतिष्ठं**) ज्ञानयुक्त (**अरतिं**) विषयों में न फंसनेवाले (**स्वध्वरं**) यज्ञ के करनेवाले (**विश्वस्य**) संसार के (**दूतम्**) दुःख को नाश करनेवाले (**अमृतं**) जीवनमुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे ज्ञान की रक्षा करने वाले, प्रिय, ज्ञानवान्, विषयों में न फंसनेवाले, यज्ञकर्त्ता, संसार के दुःख को दूर करने वाले तथा जीवनमुक्त आत्मज्ञानी पुरुष को मैं आदर से अपने समीप बुलाता हूँ ॥१॥

७५०—वामदेवः । अग्निः । प्रगाथः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १२
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥

पदार्थ—(**सः**) यह (**योजते**) युक्त है (**अरुषा**) तेज से (**विश्वभोजसा**) विश्व की रक्षा करनेवाले (**सः**) वह (**दुद्रवत्**) सबको गति देता है (**स्वाहुतः**) अच्छी प्रकार से स्तुति किया जानेवाला (**सुब्रह्मा**) वेदज्ञान वाला (**यज्ञः**) उपास्य (**सुशमी**) अच्छे कर्मवाला (**वसूनां**) विद्वानों के (**देवं**) देव (**राधः**) धन (**जनानां**) प्रजा के ॥२॥

भावार्थ—वह परमेश्वर विश्व की पालना करनेवाले तेज से युक्त है । वह ही सब पदार्थों को गति दे रहा है । वह वेदज्ञान का स्वामी, पुकारने योग्य, उपास्य तथा अच्छे गुणकर्म स्वभाव वाला है । विद्वानों तथा समस्त प्रजा के एकमात्र धन उस देव की हम स्तुति करते हैं ॥२॥

७५१—वसिष्ठः । उषाः । बृहती ।

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः । अपो
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
महो वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

पदार्थ—(**प्रति**) प्रत्येक दिन (**उ**) निश्चय से ही (**अदर्शि**) दिखाई पड़ती है (**आयती**) प्राप्त होती हुई (**ऊच्छन्ती**) दूर करती हुई (**दुहिता**) दूर में स्थित (**दिवः**) सूर्य की (**अप**) दूर निश्चित रूप से (**महो**) महान् गुणों वाली (**वृणु**) निवारण करती है (**चक्षुषा**) आंख के (**तमः**) अन्धकार को (**ज्योतिः**) प्रकाश (**कृणोति**) करती है (**सूनरी**) लोगों को मार्ग दिखानेवाली ॥१॥

भावार्थ—प्राप्त होती हुई सूर्य की दूरस्थ किरणें दुर्गन्ध आदि का निवारण करती हुई दिखाई पड़ती हैं । बड़े गुणों वाली तथा लोगों को मार्ग दिखाने वाले वे आंख के तम को दूर करती और प्रकाश करती हैं ॥१॥

७५२—वसिष्ठः । उषाः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥

पदार्थ—(**उत्**) उत्कृष्ट रूप से (**उस्रियाः**) किरणों से युक्त (**सृजते**) बनाता है (**सूर्य**) हे परमात्मा (**सचा**) प्रसंग से (**उद्यन्**) उदित होनेवाले (**नक्षत्रं**) नक्षत्र को (**अर्चिवत्**) प्रकाश युक्त (**तव**) तेरे (**उषः**) हे उषा के समान कामना करने के योग्य (**व्युषि**) प्रकाश में (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**च**) और (**सं**) भली-भांति (**भक्तेन**) अन्न आदि भोगों से (**गमेमहि**) युक्त होवें ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर, तू ही किरणों से युक्त उषा और उदित होनेवाले प्रकाशमय नक्षत्रों को बनाता है । हे उषा के समान कामना के योग्य ! तुम्हारे और सूर्य के प्रकाश में हम अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करें ॥२॥

७५३—वसिष्ठः । अश्विनौ । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

पदार्थ—(**इमाः**) ये (**उ**) निश्चय ही (**वां**) आप दोनों को (**दिविष्टयः**) उत्तमकर्मों को चाहनेवाले (**उस्राः**) तेजयुक्त (**हवन्ते**) स्वीकार करते हैं (**अश्विना**) हे अध्यापक और उपदेशक (**अयं**) यह (**वां**) आप दोनों को (**अह्वे**) पुकारता हूँ (**अवसे**) ज्ञान रक्षा के लिए (**शचीवसू**) ज्ञान के निवास स्थान [ज्ञान के भण्डार] (**विशं विशं**) हर एक स्त्रीपुरुष को (**हि**) इसलिए (**गच्छथः**) ज्ञान दीजिए ॥१॥

भावार्थ—हे तेजयुक्त तथा ज्ञान के भण्डार अध्यापक और उपदेशक ! ये उत्तम कर्मों की इच्छा करने वाले आपको ही स्वीकार करते हैं । मैं भी आप दोनों को ज्ञान की रक्षा के लिए पुकारता हूँ । अतः आप हर एक स्त्रीपुरुष को ज्ञान प्रदान कीजिए ॥१॥

७५४—वसिष्ठः । अश्विनौ । बृहती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥

पदार्थ—(**युवम्**) आप दोनों (**चित्रं**) अद्भुत (**ददथुः**) देते हैं (**भोजनं**) रक्षा के साधन (**नरा**) सब के नेता (**चोदेथां**) प्रेरणा करते हैं (**सूनृतावते**) सत्यवादी होने के लिए (**अर्वाक्**) सन्मुख (**रथम्**) संसार को (**समनसा**) एक समान मनवाले (**नियच्छतम्**) नियम में रखते हैं (**पिबतम्**) रक्षा करते हैं (**सोम्यं**) ऐश्वर्यसम्बन्धी (**मधु**) विज्ञान की ॥२॥

भावार्थ—हे समान विचारवाले सबके नेता, अध्यापक और उपदेशक ! आप लोग अद्भुत रक्षा के साधन देते हैं और सत्यवादी होने के लिए प्रेरणा करते हैं । आप ही संसार को नियम में चलाते हैं तथा ऐश्वर्य देनेवाले विज्ञान की रक्षा करते हैं ॥२॥

卐 **चतुर्थः खण्डः समाप्तः** 卐

७५५—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥१॥

पदार्थ—(**अस्य**) इस परमेश्वर के (**प्रत्नां**) सनातन (**अनु**) अनुकूलता से (**द्युतं**) तेजस्वी (**शुक्रं**) शुद्ध (**दुदुह्रे**) दोहन करते हैं (**अह्रयः**) ज्ञानीजन (**पयः**) ज्ञान को (**सहस्रसाम्**) असंख्य कार्यों के साधक (**ऋषिं**) बोध कराने वाले ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानीजन परमेश्वर के सनातन, शुद्ध, तेजस्वी असंख्य कार्यों के साधक और बोध कराने वाले ज्ञान का दोहन करते हैं ॥१॥

७५६—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२॥

पदार्थ—(**अयं**) यह परमेश्वर (**सूर्य इव**) सूर्य के समान (**उपदृग्**) उपद्रष्टा (**अयं**) यह (**सरांसि**) वाणियों को (**धावति**) पवित्र करता है (**सप्त**) भूः आदि सात लोकों में (**प्रवते**) व्यापक है (**आदिवम्**) द्यौ लोक से अतिरिक्त भी ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य के समान सब का द्रष्टा है । यह हमारी वाणियों को पवित्र करता है । यही भू आदि सात लोकों और द्युलोक आदि से परे भी व्यापक है ॥२॥

७५७—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥

पदार्थ—(**अयं**) यह (**विश्वानि**) सकल (**तिष्ठति**) वर्तमान है (**पुनानः**)

पवित्र करता हुआ (भुवना) लोकों के (उपरि) ऊपर (सोमः) परमेश्वर (देवः) प्रकाशस्वरूप (न) समान (सूर्यः) सूर्य के ॥३॥

भावार्थ—सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप परमेश्वर सारे लोकों को पवित्र करता हुआ उनके ऊपर विराजमान है ॥३॥

७५८—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ १ २ ३ १ २
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह परमेश्वर (प्रत्नेन) पुराने (जन्मना) नाम और कर्म से (देवः) प्रकाशस्वरूप (देवेभ्यः) सब देवों में (सुतः) प्रसिद्ध (हरिः) अज्ञान को नाश करनेवाला (पवित्रे) उत्तम गुण कर्म स्वभाववाले को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थ—अपने सनातन नाम और कर्म के द्वारा सब देवों में प्रसिद्ध, अज्ञान का नाश करनेवाला परमात्म देव पवित्र आत्माओं को प्राप्त होता है ॥१॥

७५९—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह जीव (प्रत्नेन) सनातन (मन्मना) ज्ञानवान् (देवः) देव (देवेभ्यः)समस्त देवों के(परि) परे वर्तमान (कविः) मेधावी (विप्रेण) परमेश्वर के द्वारा (वावृधे) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—यह बुद्धिमान् देवस्वरूप जीव सनातन, ज्ञानमय तथा समस्त देवों से परे विद्यमान परमेश्वर के द्वारा अत्यन्त उन्नति को प्राप्त होता है ॥२॥

७६०—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥३॥

पदार्थ—(दुहानः) परिपूर्ण करता हुआ (प्रत्नं) सनातन (इत्) ही (पयः) ज्ञान को (पवित्रे) पवित्र आत्मा में (परिषिच्यसे) भली भांति सिंचन करता है (क्रन्दं) नामों का उच्चारण करता हुआ (देवान्) देवों को (अजीजनः) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू सनातन वेदज्ञान को भली-भांति पूर्ण करता हुआ पवित्र आत्माओं में उसका उपदेश करता है और उस के द्वारा नामों का उच्चारण करता हुआ समस्त दिव्य पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥३॥

७६१—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥१॥

पदार्थ—(उपशिक्षा) शिक्षा दे (अपतस्थुषः) विपरीत मार्ग पर चलनेवाले मनुष्यों को (भियसम्) भय (आधेहि) दे (शत्रवे) शत्रु को (पवमान) हे पवित्रकर्ता परमेश्वर (विदा) प्राप्त करा (रयिम्) सम्पत्ति को ॥१॥

भावार्थ—हे पतितपावन परमेश्वर ! हम में से कुपथ पर चलने वाले मनुष्यों को शिक्षा दे और शत्रुता करने वाले को भय दे। हमें सम्पदायें प्राप्त करा ॥१॥

७६२—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (सुजातं) जनक (अप्तुरं) शुभ कर्मों का प्रेरक (गोभिः) वेदवाणियों से (भङ्गं) बुराइयों को दूर करने वाले (परिष्कृतं) सुशोभित (इन्दुं) परमेश्वर का (देवा) विद्वान् जन (अयासिषुः) प्राप्त करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानीजन सृष्टिकर्त्ता, शुभकर्मों के प्रेरक, दुर्गुणनिवारक तथा वेदवाणी से युक्त परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥२॥

७६३—*असितोऽमहीयुर्वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥३॥

पदार्थ—(उप) समीप (अस्मै) इस (गायता) गान करो (नरः) हे मनुष्यो (पवमानाय) पवित्रकारक (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान् (अभि) सब प्रकार से (देवान्) देवों को (इयक्षते) यज्ञादि से तृप्त करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! देवों को यज्ञादि से तृप्त करनेवाले, पवित्रकारक, परमैश्वर्यवान् विद्वान् का आदर करो ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

७६४—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) शान्तस्वभाव पुरुष (विपश्चितः) बुद्धिमान् (अपः) परमेश्वर को (नयन्ते) प्राप्त करते हैं (ऊर्मयः) तरंगें (वनानि) जलों को (महिषा) महान् (इव) जैसे ॥१॥

भावार्थ—महान् तरंगें जिस प्रकार जलों को प्राप्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥१॥

७६५—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥२॥

पदार्थ—(अभि) लक्ष्य कर (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों को (बभ्रवः) दीप्त (शुक्राः) शुद्ध पुरुष (ऋतस्य) परमेश्वर की (धारया) वाणी के द्वारा (वाजं) ज्ञान को (गोमन्तं) प्रकाशमय (अक्षरन्) प्राप्त करते हैं ॥ २॥

भावार्थ—तेजस्वी और पवित्र पुरुष अपने गन्तव्य पथ को लक्ष्य कर परमेश्वर की वेदवाणी के द्वारा प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥२॥

७६६—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥

पदार्थ—(सुताः) उत्पन्न (इन्द्राय) विद्युद्विद्या के लिए (वायवे) वायुविज्ञान के लिए (वरुणाय) जलविज्ञान के लिए (मरुद्भ्यः) सुवर्ण खनिज पदार्थों के लिए (सोमाः) शास्त्रीय ज्ञान (अर्षन्तु) अग्रसर हों (विष्णवे) यज्ञ तथा व्यापक परमेश्वर के लिए ॥३॥

भावार्थ—हमारे शास्त्रीय विचार विद्युत्, वायु, जल, सुवर्ण आदि खनिज पदार्थ तथा यज्ञ और व्यापक परमेश्वर के ज्ञान के लिए हों ॥३॥

७६७—*सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोम) हे जीव (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (सिन्धुः) समुद्र के (न) समान (पिप्ये) पूर्ण किया जाता है (अर्णसा) जल से (अंशोः) व्यापक [परमेश्वर] के (पयसा) ज्ञान से (मदिरः) प्रसन्न (न) और (जागृविः) चेतन स्वरूप (अच्छा) प्राप्त कर (कोशं) कोश को (मधुश्चुतम्) आनन्दमय ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! तू दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए, जल से समुद्र की भांति व्यापक परमेश्वर के ज्ञान से परिपूर्ण होता है। प्रसन्न और चेतन स्वरूप होता हुआ आनन्दमय कोश को प्राप्त कर ॥१॥

७६८—*सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (हर्यतः) अज्ञाननाशक (अर्जुनः) प्रकाशमान (अत्के) व्यक्त संसार में (अव्यत) व्यापक होकर विद्यमान है (प्रियः) प्यारे (सूनुः न) सूर्य के समान (मर्ज्यः) शुद्धिकारक (तं) उस परमेश्वर को (ईम्) निश्चय ही (हिन्वन्ति) प्राप्त करते हैं (अपसः) निष्काम कर्म करनेवाले (यथा) जैसे (रथं) नौका आदि को (नदीषु) नदियों में (आ) सब प्रकार से (गभस्त्योः) हाथों के द्वारा॥२॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करनेवाला, भक्तजनों का प्यारा प्रभु प्रकाशमान और शुद्धिकारक सूर्य के समान व्यक्त संसार में व्यापक हो रहा है। पार जाने वाला हाथों के द्वारा नदियों में नौका के समान, निष्काम कर्म करनेवाले [संसार सागर को पार करने के लिए] परमेश्वर का सहारा लेते है ॥२॥

७६९—*श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।*

१२ [२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोमासः) उत्पन्न संसारी पदार्थ (मदच्युतः) आनन्ददायक (श्रवसे) यश के लिए (नः) हमारे (मघोनां) यज्ञ करनेवाले (सुताः) प्रसिद्ध (विदथे) संसार में (अक्रमुः) प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—संसार में प्रसिद्ध आनन्ददायक सांसारिक पदार्थ हम यज्ञ करनेवालों को कीर्ति के लिए प्राप्त होते हैं ॥१॥

७७०—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २र

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥२॥

पदार्थ—(आत्) निरन्तर (ई) यह (हंसः) जीव (यथा) जैसे (गणं) इन्द्रिय समूह को (विश्वस्य) सारे संसार की (अवीवशत्) वश में करता है (मतिं) बुद्धि को (अत्यो न) आकाश के समान (गोभिः) शब्दों के द्वारा (अज्यते) जाना जाता है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर इन्द्रियों को जीव के समान, सारे संसार की बुद्धि को निरन्तर वश में करता है। शब्द द्वारा आकाश के समान वेदवाणी के द्वारा उसी का अनुमान होता है ॥२॥

७७१—श्यावाश्वः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २ ३ १ २ ३ १ २

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥३॥

पदार्थ—(आत्) निरन्तर (ई) इस (त्रितस्य) तीनों कालों में विद्यमान परमेश्वर की (योषणः) संयोजक और विभाजक शक्तियां (हरिं) वायु को (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (अद्रिभिः) मेघों से युक्त (इन्दुं) चन्द्रमा को (इन्द्राय) जीव की (पीतये) रक्षा के लिए ॥३॥

भावार्थ—तीनों कालों में विद्यमान परमेश्वर की संयोजक और विभाजक शक्तियां मेघों से युक्त वायु तथा चन्द्र को भी जीवात्मा की रक्षा के लिए चलाती हैं ॥३॥

७७२—श्यावाश्वः । सोमः । उष्णिक् ।

१ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २

अया पवस्व देवयु रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस वेदवाणी से (पवस्व) हमें पवित्र कर (देवयुः) तू संसार की दिव्य शक्तियों का संयोजक है (रेभन्) ज्ञान का उपदेश करता हुआ (पवित्रं) पवित्रात्मा को (पर्येषि) प्राप्त होता है (विश्वतः) सब प्रकार से (मधोः) आनन्द की (धाराः) धाराएँ (असृक्षत) बहाता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दिव्य शक्तियों का संयोजक है। तू वेदों का उपदेश करता हुआ पवित्र आत्माओं को सब प्रकार से प्राप्त होता है और आनन्द की धाराएँ बहाता है। अतः हमें वेदवाणी के द्वारा पवित्र कर ॥१॥

७७३—प्रजापतिः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥२॥

पदार्थ—(पवते) पवित्र करता है (हर्यतः) मोक्ष की इच्छा करनेवाला (हरिः) ज्ञानी पुरुष (अति) परित्याग कर (ह्वरांसि) कुटिलता को (रंह्या) शीघ्रता से (अभ्यर्षन्) प्राप्त करता हुआ (स्तोतृभ्यः) ईश्वर की उपासना करनेवालों से (वीरवत्) वीरता युक्त (यशः) यश को ॥२॥

भावार्थ—मोक्ष की इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष ईश्वर भक्तों से वीरता-युक्त यश को प्राप्त करता हुआ कुटिलताओं को शीघ्रता से छोड़ देता है ॥२॥

७७४—अम्बरीषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सुन्वानाय) सृष्टिकर्त्ता [परमेश्वर की] (अन्धसः) अज्ञान से (मर्त्तः) मनुष्य (न) नहीं (वष्ट) चाहता (तद्) प्रसिद्ध (वचः) वेदवाणी (अप) अलग (श्वानम्) कुत्ते के समान (अराधसं) भगवान् की भक्ति नहीं करनेवाले को (हत) दूर करो (मखं) सकाम कर्म के (न) समान (भृगवः) ब्रह्मज्ञानी जन ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् जन ! जो मनुष्य अज्ञान से सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की प्रसिद्ध वेदवाणी को नहीं मानता है और भगवान् की भक्ति नहीं करता उस कुत्ते के स्वभाव वाले पेटपोषक मनुष्य का परित्याग कर दो। जैसे ब्रह्मज्ञानी सकाम कर्म का परित्याग कर देता है ॥३॥

द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

卐

तृतीयोऽध्यायः

७७५—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) ज्ञान कराता है (वाचः) ऋग्, यजुः, साम, अथर्वरूप वाणियों का (अग्रियः) सबसे प्रथम विद्यमान (सोम) हे परमेश्वर ! (चित्राभिः) नाना प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षाओं से [युक्त] (अभि) लक्ष्य कर (विश्वानि) सारे (काव्या) काव्यों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू नाना प्रकार की रक्षाओं से युक्त और सबसे प्रथम विद्यमान है। तू ही समस्त काव्यों से परिपूर्ण वेदवाणियों का उपदेश करता है ॥१॥

७७६—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २

त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (समुद्रिया) आकाशीयों (अपः) क्रियाओं को (अग्रियः) आदिकारण (वाचः) वेदवाणियों की (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (पवस्व) पवित्र कर (विश्वचर्षणे) हे विश्व के साथी ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! तू आदिकारण है। आकाशीय क्रियाओं और वेदवाणियों की प्रेरणा करता हुआ हमें पवित्र कर ॥२॥

७७७—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥३॥

पदार्थ—(तुभ्यं) तेरी (इमाः) ये (भुवना) लोकलोकान्तर (कवे) हे सर्वज्ञ (महिम्ने) महिमा से (सोम) हे परमेश्वर (तस्थिरे) स्थित हैं (तुभ्यं) तुझे ही (धावन्ति) प्राप्त होती हैं (धेनवः) वाणियां ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तेरी महिमा [सामर्थ्य] से सारे लोक-लोकान्तर स्थित हैं। हमारी स्तुतियां तुझे ही प्राप्त होती हैं ॥३॥

७७८—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) हमें पवित्र कर (इन्दो) हे परमेश्वर (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (सुतः) संसार का उत्पादक (कृधी) कर (नः) हमें (यशसः) यशस्वी (जने) जनता में (विश्वा) सारे (अप) पृथक् (द्विषः) धर्म से द्वेष करनेवालों को (जहि) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब कामनाओं की वर्षा करनेवाला और सृष्टिकर्त्ता है। तू हमें पवित्र कर। जनता में यशस्वी बना। धर्म से द्वेष करनेवालों को हमसे परे कर ॥१॥

७७९—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरे (सख्ये) मित्रता में (वयं) हम (सासह्याम) दूरभगाते (पृतन्यतः) काम-क्रोधादि शत्रुओं को (तव) तेरे (इन्दो) हे परमेश्वर ! (द्युम्ने) यश में (उत्तमे) सबसे श्रेष्ठ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता और उत्तम यश में रहते हुए हम, काम, क्रोध आदि शत्रुओं को दूर भगाते हैं ॥२॥

७८०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २

या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥३॥

पदार्थ—(या) जो (ते) तेरी (भीमानि) भयानक (आयुधा) विनाशकारी शक्तियां (तिग्मानि) अत्यन्त तीक्ष्ण [असह्य] (सन्ति) हैं (धूर्वणे) हिंसकों के वध के लिए (रक्षा) रक्षा कर (समस्य) सब (नः) हमारी (निदः) निन्दाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त हिंसकों के विनाश के लिए जो तेरी अत्यन्त तीक्ष्ण और भयदायिनी विनाशकारिणी शक्तियाँ हैं उनके द्वारा हिंसा करने की सारी निन्दाओं से हमें बचा ॥३॥

७८१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (सोम) हे ज्ञानी पुरुष (द्युमां) तेजस्वी (असि) है (वृषा) बलिष्ठ (देव) पूज्य (वृषव्रतः) धर्म के व्रती (वृषा) सुखकारी (धर्माणि) धर्मों को (दध्रिषे) धारण करता है ॥१॥

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! ज्ञान की वर्षा करनेवाला तू तेजस्वी है। हे पूज्य ! स्वयं बलवान् तू धर्म का व्रत धारण करनेवाला तथा सुखकारी है। तू ही सत्य आदि धर्मों को धारण करता है ॥१॥

७८२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २र
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थ—(वृष्णः) आनन्द की वर्षा करनेवाले (ते) तेरा (वृष्ण्यं) बल की वर्षा करनेवाला (शवः) बल (वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (वनं) भजन (वृषा) सुख की वर्षा करनेवाला (सुतः) संसार (सः) वह (त्वं) तू (वृषन्) हे सकल कामनाओं की वर्षा करनेवाले (वृषा) धर्म की वर्षा करनेवाला (इत्) ही (असि) है ॥२॥

भावार्थ—हे सकल कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तेरा बल आनन्द की वर्षा करनेवाला है। तेरा भजन ज्ञान का दान करने वाला है। तेरा संसार सुखदायक है। तू स्वयं धर्म की वर्षा करनेवाला ही है ॥२॥

७८३—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र १ २ ३ १ २र
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥

पदार्थ—(अश्वः) महान् विद्वान् के समान (चक्रदः) वेदों का उपदेश करता है (वृषा) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (सम्) सम्यक् (गाः) गौ आदि पशुओं को (इन्दो) हे परमेश्वर (सम्) सम्यक् प्रकार (अर्वतः) घोड़ों को (वि) विशेष रूप से (नः) हमारे (राये) संपदा के लिए (दुरः) द्वारों को (वृधि) बढ़ा ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू महान् विद्वान् के समान वेदों का उपदेश करता है। सकल मनोरथों की वर्षा करनेवाला तू हमें गाय और घोड़े आदि पशुओं को दे तथा हमारे धन-प्राप्ति के द्वारों को भी खोल दे ॥३॥

७८४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (हि) निश्चित (असि) है (भानुना) कान्ति से (द्युमन्तं) चमकने वाले (त्वा) तुझे (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं (पवमान) हे पवित्रात्मा (स्वर्दृशम्) सुखस्वरूप परमात्मा का साक्षात् करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा ज्ञानी पुरुष ! तू निश्चित ही ज्ञान की वर्षा करने वाला है। अपने तेज से प्रकाशमान, और सुखस्वरूप परमेश्वर का साक्षात् करानेवाले तुझको हम आदर से बुलाते हैं ॥१॥

७८५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जबकि (अद्भिः) निष्काम कर्मों से (परिषिच्यसे) संयुक्त होता है (मर्मृज्यमानः) पवित्र किया हुआ (आयुभिः) ज्ञानी मनुष्यों द्वारा (द्रोणे) गन्तव्य मार्ग में (सधस्थं) सर्वदा साथ विद्यमान परमेश्वर को (अश्नुषे) प्राप्त करता है ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! तू ज्ञानी मनुष्यों द्वारा पवित्र किया जाता हुआ जब निष्काम कर्मों को करता है, तब गन्तव्य मार्ग पर आरूढ होकर सर्वदा साथ में विद्यमान परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥२॥

७८६—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (पवस्व) प्राप्त करा (सुवीर्य) उत्तम पराक्रम को (मन्दमानः) आनन्दित करता हुआ (स्वायुध) हे मनुष्यमात्र के रक्षक (इह) इसी जन्म में (उ) निश्चय ही (सु) अच्छी तरह (इन्दो) हे परमेश्वर (आगहि) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यमात्र के रक्षक परमेश्वर ! तू हमें आनन्दित करता हुआ उत्तम पराक्रम प्रदान कर और तू हमें निश्चित रूप से इसी जन्म में प्राप्त हो ॥३॥

७८७—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥१॥

पदार्थ—(पवमानस्य) पवित्र करनेवाले (ते) तेरी (वयं) हम लोग (पवित्रं) पवित्र (अभ्युन्दतः) आनन्द रस से सब को सींचनेवाले (सखित्वं) मित्रता को (आवृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—आनन्दरस से सबको सींचने तथा पवित्र करनेवाले परमेश्वर ! आप की विशुद्ध मित्रता को हम लोग चाहते हैं ॥१॥

७८८—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ १ २
ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (ते) तेरे पवित्र ज्ञान का (ऊर्मयः) अपार ज्ञान की लहरें (अभिक्षरन्ति) टपकाती हैं (धारया) शब्द के द्वारा (तेभिः) उनसे (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (मृडय) सुखी कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे अगाध ज्ञान की जो लहरें शब्द के द्वारा पवित्र ज्ञान को भली प्रकार टपकाती हैं, उनसे हमें सुखी कर ॥२॥

७८९—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह तू (नः) हमें (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आभर) भरपूर कर (रयिं) धनसे (वीरवतीम्) वीर पुत्र आदि से युक्त (इषं) विज्ञान से (ईशानः) स्वामी (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सम्पूर्ण चराचर का ।३।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पवित्रकारक और चराचर का स्वामी है। तू हमें वीर पुत्रादि युक्त धन और विज्ञान से भरपूर कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

७९०—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्निं) आत्मा को (दूतं) बुराइयों को दूर करानेवाले (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (होतारं) ग्रहण करनेवाले (विश्ववेदसं) संसार को प्राप्त होनेवाले (अस्य) इस (यज्ञस्य) उपासनारूप यज्ञ के (सुक्रतुं) अच्छी तरह करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—बुराइयों को दूर करनेवाले, सब पदार्थों के ग्रहण करनेवाले, संसार को प्राप्त होनेवाले तथा इस उपासनारूप यज्ञ के कर्त्ता आत्मा को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

७९१—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निं) प्रकाशस्वरूप (अग्निं) परमेश्वर को (हवीमभिः) उपासनाओं के द्वारा (सदा) सर्वदा (हवन्त) स्मरण करो (विश्पतिम्) समस्त प्रजाओं के पालक (हव्यवाहं) भोग्य वस्तुओं के दाता (पुरुप्रियं) सर्वप्रिय ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम प्रकाशस्वरूप, प्रजाओं के पालक, भोग्य वस्तुओं के दाता तथा सर्वप्रिय परमेश्वर को उपासनाओं द्वारा सदा स्मरण करो ॥२॥

७९२—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (देवान्) दिव्य गुणों को (इह) ज्ञानयज्ञ में (आवह) प्राप्त करो (जज्ञानः) सबका जनक (वृक्तबर्हिषे) उपासक के लिए (असि) है (होता) सब वस्तुओं का दाता (नः) हमारा (ईड्यः) उपास्य देव ।३।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सृष्टिकर्त्ता तथा सब कुछ देनेवाला तू हमारा उपास्य देव है। तू इस उपासना रूप यज्ञ में उपासक को दिव्यगुणों से युक्त कर ॥३॥

७९३—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥१॥

पदार्थ—(मित्रं) प्राण (वयं) हम (हवामहे) ग्रहण करते हैं (वरुणं) अपान को (सोमपीतये) शरीर की रक्षा के लिए (या) जो दोनों (जाता) उत्पन्न हुए (पूतदक्षसा) पवित्र पराक्रम प्रदान करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हम पवित्र पराक्रम प्रदान करनेवाले प्रसिद्ध प्राण और अपान को शरीर की रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं ॥१॥

७९४—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥२॥

पदार्थ—(ऋतेन) सत्य नियम से (यौ) जो दोनों (ऋतावृधौ) जल को बढ़ानेवाले (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमेश्वर के (ज्योतिषः) प्रकाश के (पती) रक्षक (तौ) उन दोनों (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण अर्थात् प्राण और उदानरूप दो वायुओं को (हुवे) प्रयोग में लाता हूँ ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम से जल को बढ़ानेवाले तथा प्रकाश के रक्षक मित्र और वरुण [प्राण और उदान] वायुओं को मैं प्रयोग में लाता हूँ ॥२॥

७९५—मेधातिथिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१२ १२ ३१ २र ३१२ १२ ३१२
वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥३॥

पदार्थ—(वरुणः) वायु (प्र) प्रकृष्टरूप से (अविता) रक्षक (भुवत्) होती है। (मित्रः) सूर्य (विश्वाभिः) सारी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (करताम्) करते हैं (नः) हमें (सुराधसः) संपदाओं से युक्त ॥३॥

भावार्थ—सूर्य और वायु सारी रक्षाओं से हमारे रक्षक होते हैं और हमें संपदाओं से युक्त करते हैं ॥३॥

७९६—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२३२ ३१ २३१ २र३१२३१२ २३ १२
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रं) आत्मा को (इत्) ही (गाथिनः) सामवेदी लोग (बृहत्) सामगानों से (इन्द्रं) आत्मा को ही (अर्केभिः) ऋचाओं से (अर्किणः) ऋग्वेदी लोग (इन्द्रं) आत्मा को (वाणीः) यजु के मंत्रों से (अनूषत) वर्णन करते हैं ॥१॥

भावार्थ—सामवेदी, ऋग्वेदी तथा यजुर्वेदी लोग साम, ऋक् तथा यजुः मन्त्रों द्वारा आत्मा का वर्णन करते हैं ॥१॥

७९७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२३ २उ ३२३१२ ३१ २३१२ १२३१२३१२
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जीवात्मा (इत्) ही (हर्योः) प्राण और जाठराग्नि को (सचा) एकसाथ (सम्मिश्लः) मिलाने वाला है (आ) भली भांति (वचोयुजा) वाणी को जोड़नेवाले (इन्द्रः) जीवात्मा (वज्री) कामादि शत्रुओं को दूर करनेवाला (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ॥२॥

भावार्थ—जीवात्मा ही वाणी को जोड़नेवाले प्राण और जाठराग्नि को एक साथ मिलानेवाला है। वह कामादि शत्रुओं को दूर करनेवाला और प्रकाश स्वरूप है ॥२॥

७९८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

२३१२ ३१२ ३२३१२ ३१२
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे वीर पुरुष (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर (सहस्रप्रधनेषु) लोकयात्रा के संग्रामों में (च) भी (उग्र) हे अत्यन्त बलशाली (उग्राभिः) प्रचण्ड (ऊतिभिः) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—हे अत्यन्त बलशाली वीर पुरुष ! संग्रामों और लोक यात्राओं में प्रचण्ड रक्षा के साधनों से हमारी रक्षा कर ॥३॥

७९९—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१२३२३१२३ १ २र ३ २ २उ ३१२
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (दीर्घाय) दूर दूर तक (चक्षसे) देखने के लिए (आ) अच्छी तरह (सूर्यं) सूर्य को (रोहयत्) उत्पन्न किया (दिवि) द्युलोक में (वि) विशेषरूप से (गोभिः) किरणों से (अद्रिं) मेघ को (ऐरयत्) प्रेरित करता है ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वर ने दूर दूर तक लोगों के देखने के लिए आकाश मण्डल में सूर्य को उत्पन्न किया। सूर्य अपनी किरणों से मेघ को प्रेरित करता है ॥४॥

८००—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१२३ १ २र३१ २३१ २र ३१ २र ३१२
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रे) विद्वान् पुरुष की सेवा में (अग्ना) और परमेश्वर की शरण में (नमः) नमस्कार (बृहत्) पर्याप्त (सुवृक्ति) मनोहर स्तुति का (एरयामहे) प्रयोग करते हैं (धिया) बुद्धि से युक्त (धेना) वाणी की (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहने वाले ॥१॥

भावार्थ—अपनी रक्षा चाहनेवाले हम विद्वान् पुरुष की सेवा में तथा परमेश्वर की शरण में पर्याप्त नमस्कार और स्तुतियों का प्रयोग करते हैं ॥१॥

८०१—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २र३१२३१ २र ३१२ ३२३१२
ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये॥२॥

पदार्थ—(ता) उन दोनों [विद्वान् और परमेश्वर] की (हि) निश्चितरूप से (शश्वन्तः) बहुत से (ईडते) स्तुति करते हैं (इत्था) इस प्रकार से (विप्रासः) मेधावी जन (ऊतये) रक्षा के लिए (सबाधः) बाधा से युक्त (वाजसातये) ज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—बाधाओं के आ पड़ने पर मेधावी जन इस प्रकार से अपनी रक्षा, ज्ञान और अन्न की प्राप्ति के लिए विद्वान् पुरुष और परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥२॥

८०२—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१२३१२३२३ १२ ३१२ ३१२
ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥३॥

पदार्थ—(ता) उन (वां) तुम दोनों की (गीर्भिः) वेदवाणियों के द्वारा (विपन्युवः) ज्ञानी (प्रयस्वन्तः) प्रयत्नशील (हवामहे) स्तुति करते हैं (मेधसाता) यज्ञसिद्धि के विषय में (सनिष्यवः) तुम्हारे भजन की इच्छा करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष और परमेश्वर ! प्रयत्नशील, तुम्हारी भक्ति चाहनेवाले, तथा ज्ञानी हम लोग यज्ञ की सिद्धि के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

८०३—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२ ३२ ३१२३१२
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) कामनाओं की वृष्टि करनेवाला (पवस्व) पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (मरुत्वते) यज्ञ के लिए (च) और (मत्सरः) आनन्ददाता (विश्वा) समस्त लोकों को (दधानः) धारण करता हुआ (ओजसा) अपनी शक्ति से ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपनी शक्ति से सारे संसार को धारण करता हुआ, आनन्ददायक है तथा हमारी कामनाओं को सफल करता है। तू यज्ञ की सिद्धि के लिए वेदवाणी से हमें पवित्र कर ॥१॥

८०४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१२३१२३२ १२ ३१२ ३१ २र ३१२
तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ऽपवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझे (धर्त्तारं) धारण करनेवाले (ओण्योः) द्यु और पृथिवीलोक (पवमान) हे पवित्र करनेवाले [सोम] (स्वर्दृशम्) सब के साक्षी (हिन्वे) प्राप्त करता हूँ (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनं) बलवान् ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक परमेश्वर ! द्यु और पृथिवीलोक के धारण करनेवाले, सबके साक्षी तथा बलवान् तुझे मैं संग्राम में प्राप्त करूँ ॥२॥

८०५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

३२३२३२उ ३१२ ३१२ २३१२
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥३॥

पदार्थ—(अया) ज्ञान से पूर्ण (चित्तः) चेतनस्वरूप (विपा) विशेषरूप से संसार की रक्षा करनेवाली (अनया) इस (हरिः) अज्ञान के हरण करनेवाला (पवस्व) [हमें] पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (युजं) योग की (वाजेषु) जीवन-संग्रामों में (चोदय) प्रेरणा कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू चेतनस्वरूप और अज्ञाननाशक है। तू ज्ञानपूर्ण तथा विशेषरूप से संसार की रक्षा करनेवाली वेदवाणी के द्वारा हमें पवित्र कर और जीवन संग्रामों में युक्त होने की प्रेरणा कर ॥३॥

८०६—उपमन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२३ १२ ३१२ ३२३१२ ३२३२
वृषा शोणो अभि कनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
१२ ३१ २र ३१२३१२ ३२३२
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) ज्ञान की वर्षा करनेवाला (शोणः) विद्वान् जैसे (अभि) लक्ष्यकर (कनिक्रदत्) उपदेश करता है (गाः) वेदवाणियों का [वैसे ही] (नदयन्) अव्यक्त रूप से [ज्ञान का] उपदेश करता हुआ (एषि) व्यापक हो रहा है (पृथिवी) पृथिवीलोक में (उत) और (द्यां) द्युलोक में (इन्द्रस्य) सेनापति के (इव) समान (वग्नुः) वाणी के (आशृण्वे) भलीभांति सुनता हूँ (आजौ) संग्राम में (प्रचोदयन्) प्रेरणा करता हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (वाचं) वाणी का (आ) भली भांति (इमाम्) इस ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! ज्ञान की वर्षा करनेवाला ज्ञानी जिस प्रकार वेदों का उपदेश करता है, उसी प्रकार वेदज्ञान का अव्यक्त रूप से उपदेश करता हुआ तू पृथिवी तथा द्युलोक में व्यापक हो रहा है। तू जिस वेदवाणी का उपदेश करता

हुआ हमें प्राप्त होता है, उसको हम संग्राम में सेनापति की आज्ञा के समान मानते हैं ।।१।।

८०७—उपमन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २

रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २

पवमानः सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ।।२।।

पदार्थ—(रसाय्यः) भक्तिरस से परिपूर्ण (पयसा) ज्ञान से (पिन्वमानः) सिंचन किया जाता हुआ (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (एषि) प्राप्त होता है (मधुमन्तं) विज्ञानमय (अंशुम्) प्रकाश को (पवमानः) पवित्र स्वभाव (सन्तनिम्) विस्तार (एषि) प्राप्त करता है (कृण्वन्) करता हुआ (इन्द्राय) परमात्मा को (सोम) हे ज्ञानी पुरुष (परिषिच्यमानः) भली भांति भरपूर किया हुआ ।।२।।

भावार्थ—हे पवित्रस्वभाव ज्ञानी पुरुष ! तू भक्तिरस से परिपूर्ण तथा ज्ञान से सिंचन किये गये विज्ञानमय प्रकाश को प्रेरणा करता हुआ प्राप्त होता है। तू संपूर्ण गुणों से भरपूर शुभ कर्मों का विस्तार करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त करता है ।।२।।

८०८—उपमन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ।।३।।

पदार्थ— (एवा) इस प्रकार (पवस्व) पवित्र कर (मदिरः) आनन्द दाता (मदाय) आनन्द के लिए (उदग्राभस्य) मेघ को (नमयन्) वर्षा के लिए प्रेरित करता हुआ (वधस्नुं) ताडन से टपकनेवाले (परि) सब प्रकार से (वर्णं) वरण करने योग्य [गुण] को (भरमाणः) धारण करता हुआ (रुशन्तं) प्रकाशमान (गव्युः) हमारे लिए गाय आदि का देनेवाला (नः) हमें (अर्ष) प्राप्त हो (परि) सब प्रकार (सोम) हे परमेश्वर (सिक्तः) आनन्द की वर्षा करनेवाला ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का दाता है। तू सूर्य की किरणों से छिन्न-भिन्न होकर वर्षते हुए मेघ को प्रेरित करता हुआ आनन्द के लिए हमें पवित्र कर। प्रकाशमान वर्णन करने योग्य गुण को धारण करता हुआ, गाय आदि पशुओं का दाता तथा सुख की वर्षा करने वाला तू हमें प्राप्त हो ।।३।।

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

८०९—शंयुः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ।।१।।

पदार्थ—(त्वां) तुझे (इत्) ही (हि) जिस कारण (हवामहे) पुकारते हैं (सातौ) प्राप्ति में (वाजस्य) शास्त्रबोध (कारवः) उद्योगी पुरुष (त्वां) तुझे (वृत्रेषु) दुःखों में (इन्द्र) हे आचार्य देव (सत्पति) सज्जनों के रक्षक (नरः) मनुष्य (त्वां) तुझे (काष्ठासु) प्रत्येक दिशाओं में (अर्वतः) अज्ञान के निवारण के लिए ।।१।।

भावार्थ—हे आचार्य देव ! ज्ञान की चिन्ता करनेवाले हम शास्त्रबोध के लिए तुझे ही पुकारते हैं। मनुष्य दुःखों में भी सबके रक्षक रूप से तुझे ही पुकारते हैं। प्रत्येक दिशा में लोग अज्ञान का निवारण तुझ से ही चाहते हैं ।।१।।

८१०—शंयुः । इन्द्रः । बृहती ।

१ . २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

१ २र ३क २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ।।२।।

पदार्थ—(सः) वह (त्वं) तू (नः) हमें (चित्र) हे अद्भुत (वज्रहस्त) तथा योग्य कर्मफल दाता (धृष्णुया) दुष्टों का दमन करनेवाला (महः) महान् (स्तवानः) स्तुति किये जाते हुए (अद्रिवः) हे आदरणीय (गां) गाय (अश्वं) घोड़ा (रथ्यं) रथवाहक [रथ ढोने वाले] (इन्द्र) हे परमेश्वर (संकिर) दे (सत्रा) सदा (वाजं) अन्न आदि संपत्ति के (न) समान (जिग्युषे)विजयी पुरुष के लिए ।२।

भावार्थ—हे आश्चर्यमय, यथायोग्य कर्मफल दाता, आदरणीय परमेश्वर ! तू महान्, स्तुति के योग्य तथा दुष्टों का दमन करने वाला है। तू विजयी पुरुष के लिए अन्नादि संपत्तियों के समान हमें सदा गौ और घोड़े आदि वाहन साधनों को प्रदान कर ।।२।।

८११—प्रस्कण्वः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसु सहस्रेणेव शिक्षति ।।१।।

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्र) उत्कृष्ट (वः) तुमलोग (सुराधसं) सुन्दर धनवान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अर्च) सत्कार करो (यथाविदे) यथार्थ लाभ के लिए (यः) जो (जरितृभ्यः) धर्मात्माओं के लिए (मघवा) यज्ञ करनेवाला (पुरूवसुः) बहुतों को शरण देनेवाला (सहस्रेण इव) हजारों प्रकार से (शिक्षति) देता है ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यथार्थ लाभ के लिए उस धनी पुरुष का आदर करो जोकि यज्ञ कर्त्ता, बहुतों को शरण देने वाला तथा धर्मात्माओं को सहस्रों प्रकार से धन प्रदान करता है ।।१।।

८१२—प्रस्कण्वः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ।।२।।

पदार्थ—(शतानीका) सेनाओं के (इव) जैसे (प्रजिगाति) वीरता से जीतता है (धृष्णुया) आक्रमण करनेवाला (हन्ति) नाश करता है (वृत्राणि) पापरूप विघ्नों को (दाशुषे) यजमान के लिए (गिरेः) पर्वत से (इव) समान (प्र) उत्तम (रसाः) जल [के] (अस्य) इस परमेश्वर के (पिन्विरे) बहते हैं (दत्राणि)दान (पुरुभोजसः) असंख्य धनवाले ।।२।।

भावार्थ—जैसे वीर पुरुष सैंकड़ों सेनाओं पर विजय प्राप्त करता है, इसी प्रकार परमेश्वर यजमान के पाप रूप विघ्नों को नष्ट करता है। असंख्य धनवाले परमात्मा के दान पर्वत से जल के स्रोत के समान बहते हैं ।।२।।

८१३—नृमेधाः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ १ २

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ।।१।।

पदार्थ—(त्वां) तुझे (इदा) आज (ह्यः) गत दिवस (नरः) मनुष्य (अपीप्यन्) सत्कार से पुष्ट करते हैं (वज्रिन्) हे अविद्यानिवारक (भूर्णयः) भरण-पोषण करनेवाले [गृहस्थ] (सः) वह (इन्द्रः) हे ज्ञानीपुरुष (स्तोमवाहसः) स्तोत्रों को जाननेवाले (इह) इस विषय में (श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुनो (उप) समीप (स्वसरं) गृह पर (आगहि) आओ ।।१।।

भावार्थ—हे अविद्यानिवारक, ज्ञानी पुरुष ! भरण-पोषण करनेवाले सर्वदा तेरा सत्कार करते हैं। तू मुझ स्तोत्रों को जाननेवाले की प्रार्थना सुन और मेरे गृह को आगमन से पवित्र कर ।।१।।

८१४—नृमेधाः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ।।२।।

पदार्थ—(मत्स्वा) प्रसन्न हो (सुशिप्रिन्) हे व्यापक (हरिवः) हे ऋक् और साम वाले (तं) उस तुझे (ईमहे) प्रार्थना करते हैं (त्वया) तुझ से (भूषन्ति) सुशोभित होते हैं (वेधसः) बुद्धिमान् लोग (तव) तेरे (श्रवांसि) यश (उपमानि) उपमा है (उक्थ्य) हे प्रशंसनीय (सुतेषु) पुत्रतुल्य जीवों पर (इन्द्र) हे परमेश्वर (गिर्वणः) हे वेदवाणियों से भजन करने के योग्य ।।२।।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक उपास्य, भजन करने योग्य, तथा ऋक् और वाणियों के देनेवाले परमेश्वर ! तुझ से ही विद्वान् लोग सुशोभित होते हैं। तेरी कीर्ति उपमा रूप है [न कि उपमेय]। हम तेरी प्रार्थना करते हैं। तू हम पर प्रसन्न हो ।।२।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

८१५—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ।।१।।

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (मदः) आनन्ददायक [ज्ञान गुण] (वरेण्यः) श्रेष्ठ (तेन) उससे (पवस्व) पवित्र कर (अन्धसा) अज्ञान अन्धकार से परे (देवावीः) परमेश्वर को प्राप्त करानेवाला (अघशंसहा) पापों का निवारक ।।१।।

भावार्थ—हे ज्ञानी पुरुष ! श्रेष्ठ, परमेश्वर को प्राप्त करानेवाला पापनाशक तथा हर्षकारी जो तेरा ज्ञान गुण है, अज्ञान अन्धकार से दूर रहनेवाले उस ज्ञान के द्वारा हमें पवित्र कर ।।१।।

८१६—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवे दिवे । गोषातिरश्वसा असि ।।२।।

पदार्थ—(जघ्निः) नाश करनेवाला (वृत्रम्) अज्ञान का (अमित्रियम्) दुःखकारी (सस्निः) साधक (वाजं) अन्न आदि का (दिवे दिवे) प्रति दिन (गोषातिः) गौओं के दाता (अश्वसा) अश्व आदि पशुओं का देनेवाला (असि) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दुःखदायी अज्ञान का नाशक तथा प्रति दिन अन्नादि पदार्थों का दाता है। तू ही गाय और घोड़े आदि पशुओं का भी देनेवाला है ॥२॥

८१७—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३१२ ३ २३२ ३१२

सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।

१२ ३२उ ३ २

सीद ञ्छ्येनो न योनिमा ॥३॥

पदार्थ—(सम्मिश्लः) मिलानेवाला (अरुषः) कल्याणकारी (भुवः) हो (सूपस्थाभिः) सुन्दर उपासनावाली (न) समान (धेनुभिः) वाणियों के (सीदन्) स्थित होता हुआ (श्येनः) आत्मा की (न) भाँति (योनिं) प्रकृति में (आ) भली प्रकार ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रकृति में आत्मा के समान स्थित होकर तथा उपासना योग्य वेदवाणियों के समान सब कुछ प्राप्त करानेवाला होता हुआ हमारा कल्याणकारी हो ॥३॥

८१८—नहुषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थ—(अयं) यह (पूषा) पोषक (रयिः) विद्या का दाता (भगः) ऐश्वर्य वाला (सोमः) विद्वान् पुरुष (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) विचरता है (पतिः) पालक (विश्वस्य) सारे (भूमनः) प्राणियों का (व्यख्यत्) व्याख्यान करता है (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक का (उभे) दोनों ॥१॥

भावार्थ—सबका पोषक, विद्या का दाता, तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष संसार को पवित्र करता हुआ विचरता है। प्राणिमात्र की रक्षा चाहनेवाला यह द्यु और पृथिवी लोक के सारे पदार्थों का ज्ञान कराता है ॥१॥

८१९—नहुषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१२३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (उ) निश्चित (प्रियाः) मनोहर (अनूषत) वर्णन करती हैं (गावः) वाणियां (मदाय) हमारे आनन्द के लिए (घृष्वयः) ज्ञान का प्रकाश करनेवाली (सोमासः) विद्वान् जन (कृण्वते) करते हैं (पथः) मोक्षपथ का (पवमानासः) पवित्रात्मा (इन्दवः) विद्यारूप ऐश्वर्यवाले ॥२॥

भावार्थ—मनोहर तथा ज्ञान का प्रकाश करनेवाली वेदवाणियां हमारे आनन्द के लिए परमेश्वर का वर्णन करती हैं। पवित्रात्मा, ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष मोक्ष मार्ग का प्रदर्शन करते हैं ॥२॥

८२०—नहुषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो वेद का प्रकाश (ओजिष्ठः) अत्यन्त बलवर्धक है (तं) उसे (आभर) हमें पूर्ण कर (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (श्रवाय्यं) सुनने के योग्य (यः) जो (पञ्चचर्षणीः) पांच प्रकार [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा पांचवां निषाद] के मनुष्यों को (अभि) लक्ष्य कर वर्तमान है (रयिं) धन को (येन) जिसके द्वारा (वनामहे) भागी होते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! जो तेरा वेद का प्रकाश अत्यन्त बलवर्धक तथा पांच प्रकार के मनुष्यों को सदा प्राप्त होता है और जिससे हम धन के भागी होते हैं, श्रवण करने योग्य उससे हमें प्रकाशित कर ॥३॥

८२१—सिकतानिवावरीः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१॥

पदार्थ—(वृषा) इन्द्रियों में शक्तिदेने वाला (मतीनां) ज्ञान आदि का (पवते) संसार को पवित्र करता है (विचक्षणः) द्रष्टा (सोमः) जीवात्मा (अह्नां) दिनों का (प्रतरीता) विस्तार करनेवाला (उषसां) उषा कालों का (दिवः) द्युलोक का (प्राणा) जीवन देनेवाला (सिन्धूनां) नाड़ियों में (कलशान्) ६४ कलाओं का (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (इन्द्रस्य) परमेश्वर की दी हुई (हार्दि) हृदय में (आविशन्) प्रविष्ट होता हुआ (मनीषिभिः) मन की सारी शक्तियों के साथ ॥१॥

भावार्थ—इन्द्रियों में शक्ति देनेवाला, ज्ञान आदि का विस्तार करनेवाला, दिन, उषाकाल तथा द्यु आदि लोक का द्रष्टा नाड़ियों में जीवन देनेवाला जीवात्मा मन की सारी शक्तियों के साथ हृदय में प्रविष्ट होता हुआ संसार को पवित्र करता है, और परमेश्वर की दी हुई ६४ कलाओं का उपदेश करता है ॥१॥

८२२—सिकतानिवावरीः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां असिष्यदत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥२॥

पदार्थ—(मनीषिभिः) मननशील (पवते) पवित्र करता है (पूर्व्यः) सनातन (कविः) सर्वज्ञ (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (यतः) यम आदि साधनों से प्राप्त (परि) सब ओर से (कोशान्) आनन्दमय कोश आदिकों को (असिष्यदत्) सिंचन करता है (त्रितस्य) तीन [स्थूल, सूक्ष्म और कारण] शरीरों में स्थित (नाम) प्रसिद्धि को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (मधु) आनन्द की (क्षरन्) वर्षा करता है। (इन्द्रस्य) जीव के (वायुं) प्राण शक्ति को (सख्याय) सब की मित्रता के लिए (वर्धयन्) बढ़ाता है ॥२॥

भावार्थ—मननशील मनुष्यों के द्वारा यम, नियम आदि साधनों से प्राप्त, सनातन तथा सर्वज्ञ परमेश्वर आनन्दमय आदि कोशों को सींचता है। तीनों शरीरों में निवास करनेवाले जीवात्मा की प्रसिद्धि को उत्पन्न करता, संसार से मित्रता के लिए जीवन शक्ति को बढ़ाता तथा आनन्द की वर्षा करता हुआ सबको पवित्र करता है ॥२॥

८२३—पृश्नयोऽजाः । सोमः । बृहती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (पुनानः) हमें पवित्र करता हुआ (उषसः) प्रातःकालों को (आरोचयत्) प्रकाशित करता है (अयं) यह (सिन्धुभ्यः) सागरों से (अभवद्) होता है (उ) निश्चय ही (लोककृत्) द्वीपों का कर्त्ता (अयं) यह (त्रिःसप्त) अर्थात् एक मन, दश इन्द्रियां और दश प्राण इनको (दुदुहानः) अत्यन्त पूर्ण करता हुआ (आशिरं) भोग्य पदार्थों से (सोमः) परमेश्वर (हृदे) हृदय को (पवते) पवित्र करता है (चारु) अच्छी तरह से (मत्सरः) आनन्द-दाता ॥३॥

भावार्थ—हमें पवित्र करता हुआ परमेश्वर निरन्तर प्रातः कालों को प्रकाशित करता है। वह सागरों के द्वारा द्वीपों का निर्माण करता है। वह भोग्य पदार्थों से हमारे एक मन दश इन्द्रियां तथा दश प्राणों को तृप्त करता तथा हृदय को पवित्र करता है ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

८२४—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१॥

पदार्थ—(एवा) निश्चय ही (हि) क्योंकि (असि) है (वीरयुः) वीर पुत्रों की कामना करनेवाला (एवा) निश्चय ही (शूरः) बलवान् (उत) और (स्थिरः) नित्य (एवा) निश्चय ही (ते) तेरा (राध्यं) प्रशंसनीय (मनः) मन शक्ति ॥१॥

भावार्थ—हे जीवात्मन् ! तू वीरपुत्रों की कामना करनेवाला, बलवान् और नित्य है। तेरा मन भी प्रशंसनीय ही है ॥१॥

८२५—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥२॥

पदार्थ—(एवा) निश्चय ही (रातिः) दान (तुवीमघ) हे सम्पूर्ण संपदाओं के स्वामी (विश्वेभिः) समस्त (धायि) ग्रहण किया जाता है। (धातृभिः) प्राणिमात्र के द्वारा (अध) और (चिद्) निश्चय ही (इन्द्र) हे परमेश्वर (नः) हमारा (सचा) सहायक हो ॥२॥

भावार्थ—हे सारी सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तेरा दान प्राणिमात्र के ग्रहण करने योग्य है । तू हमारा सहायक हो ॥२॥

८२६—श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**उ**) निश्चय ही (**सु**) अच्छी तरह से (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदज्ञाता विद्वान् (**इव**) समान (**तन्द्रयुः**) कुटुम्ब का धारक करनेवाला (**भुवः**) होता है (**वाजानां पते**) हे धनों के स्वामी (**मत्स्व**) सुखी करता है (**सुतस्य**) उत्पन्न संसार को (**गोमतः**) गाय आदि पशुओं से युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे समस्त संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू कुटुम्बधारी नहीं है। तू चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान् की भांति गाय आदि पशुओं से युक्त संसार को सुखी करता है ॥३॥

८२७—जेता । इन्द्रः अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्रं**) ज्ञानी पुरुष को (**विश्वा**) सकल (**अवीवृधन्**) बढ़ाती हैं (**समुद्रव्यचसं**) ब्रह्मवित् भक्त (**गिरः**) वेदवाणियां (**रथीतमम्**) महारथी (**रथीनां**) रथी लोगों में (**वाजानां**) ज्ञानरूप धनों के (**सत्पतिं**) सज्जनों का रक्षक (**पतिम्**) स्वामी ॥१॥

भावार्थ—समस्त वेदवाणियाँ ब्रह्मवित्, रथियों में महारथी, ज्ञानघनों के स्वामी तथा सज्जनों के पालक ज्ञानी पुरुष को बढ़ाती हैं ॥१॥

८२८—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥

पदार्थ—(**सख्ये**) मित्रता में (**ते**) तेरी (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**वाजिनः**) धन धान्य से युक्त (**मा**) नहीं (**भेम**) भय करते हैं (**शवसस्पते**) हे सब बलों के स्वामी (**त्वां**) तुझे (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**प्र**) उत्तम रूप से (**नोनुमः**) बार बार नमस्कार करते हैं (**जेतारम्**) विश्वविजयी (**अपराजितं**) कभी पराजय को नहीं प्राप्त होनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे समस्त बलों के स्वामी परमेश्वर ! तेरी मित्रता में विचरते हुए तथा धन-धान्य से पूर्ण हम लोग किसी से भी भयभीत नहीं होते । कभी न हारनेवाले तुझ विजयी को हम बार बार नमस्कार करते हैं ॥२॥

८२९—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूतयः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३॥

पदार्थ—(**पूर्वीः**) सनातन (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर के (**रातयः**) दान (**न**) नहीं (**विदस्यन्ति**) कम होते हैं (**ऊतयः**) रक्षायें (**यदा**) जब (**वाजस्य**) अन्न आदि के (**गोमतः**) गाय आदि पशुओं के देनेवाले (**स्तोतृभ्यः**) उपासकों के लिए (**मंहते**) देता है (**मघम्**) धन को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर जब उपासकों को गाय आदि पशुओं से युक्त अन्न आदि धनों को प्रदान करता है, तो उसके सनातन दान और रक्षाओं में किसी प्रकार की कमी नहीं आती ॥३॥

卐 **तृतीयोऽध्यायः समाप्तः** 卐

卐

चतुर्थोऽध्यायः

८३०—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥१॥

पदार्थ—(**एते**) ये (**असृग्रम्**) विहित हैं (**इन्दवः**) यज्ञ (**तिरः**) दुःख से पार लगानेवाले (**पवित्रं**) पवित्र कर्म को (**आशवः**) शुभ गुणों से युक्त (**विश्वानि**) संपूर्ण (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**सौभगा**) सुवर्ण आदि संपदाओं को ।१।

भावार्थ—सब शुभ गुणों से युक्त यज्ञ, दुःखों से पार लगानेवाले पवित्र निष्काम कर्म और समस्त संपदाओं की प्राप्ति के उद्देश्य से किये जाते हैं ॥१॥

८३१—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥२॥

पदार्थ—(**विघ्नन्तः**) नाश करते हुए (**दुरिता**) बुराइयों को (**पुरु**) बहुत (**सुगा**) सुगम (**तोकाय**) पुत्र-पौत्रादि के लिए (**वाजिनः**) अन्न और बल से युक्त (**त्मना**) स्वयं (**कृण्वन्तः**) प्रदान करते हुए (**अर्वतः**) अश्व आदि पशुओं को ।२।

भावार्थ—अन्न और बल के देनेवाले यज्ञ सुगम होते हैं। ये पुत्र, पौत्र आदिकों के विघ्न को दूर करते हैं तथा घोड़े आदि पशुओं को प्रदान करते हैं ॥२॥

८३२—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥

पदार्थ—(**कृण्वन्तः**) करते हुए (**वरिवः**) अत्यन्त रक्षा (**गवे**) वेदवाणी की (**अभ्यर्षन्ति**) प्राप्त होते हैं (**सुष्टुतिम्**) प्रशंसा को (**इडाम्**) भाषा ज्ञान (**अस्मभ्यं**) हमें (**संयतम्**) दृढ़ ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग वेदवाणी की दृढ़ रक्षा करते हुए तथा हम लोगों को भाषा का ज्ञान कराते हुए प्रशंसा के पात्र होते हैं ॥३॥

८३३—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥१॥

पदार्थ—(**राजा**) तेजस्वरूप (**मेधाभिः**) धारणावाली बुद्धियों द्वारा (**ईयते**) आगे बढ़ता है (**पवमानः**) शुद्धस्वरूप (**मनौ अधि**) परमेश्वर की शरण में (**अन्तरिक्षेण**) अक्षय ब्रह्म ज्ञान के द्वारा (**यातवे**) जाने के लिए ॥१॥

भावार्थ—शुद्ध, तेजस्वी जीवात्मा अक्षय ब्रह्म ज्ञान के द्वारा परमात्मा की शरण में जाने के लिए स्थिर बुद्धि के सहारे आगे बढ़ता है ॥१॥

८३४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥२॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**नः**) हमें (**सोम**) हे परमेश्वर (**सहः**) सहनशक्ति (**जुवः**) कर्मण्यता [क्रियाशीलता] (**रूपं**) रूप (**न**) और (**वर्चसे**) तेज के लिए (**भर**) दे (**सुष्वाणः**) सृष्टिकर्त्ता (**देववीतये**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टिकर्ता है । हमें दिव्य गुणों की प्राप्ति और तेज के लिए सहनशक्ति, कर्मण्यता और रूप प्रदान कर ॥२॥

८३५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥३॥

पदार्थ—(**आ**) सब प्रकार से (**नः**) हमें (**इन्दो**) हे परमेश्वर (**शातग्विनं**) सैंकड़ों शक्तियोंवाली (**गवां**) इन्द्रियों की (**पोषं**) पुष्टि को (**स्वश्व्यं**) राष्ट्र का सुन्दर संघटन (**वहा**) प्राप्त करा (**भगत्ति**) मान-प्रतिष्ठा को (**ऊतये**) रक्षा के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें रक्षा के लिए इन्द्रियों में सैंकड़ों प्रकार के बल से युक्त पुष्टि, राष्ट्र का संघटन तथा मान-प्रतिष्ठा प्रदान कर ॥३॥

८३६—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥१॥

पदार्थ—(**तं**) उस (**त्वा**) तुझे (**नृम्णानि**) धनों और बलों को

(बिभ्रतं) धारण करनेवाले (सघस्थेषु) सब जगह [व्यापक] (महो दिवः) महान् आकाश के (चारु) आनन्दस्वरूप (सुकृत्यया) सुकर्म से (ईमहे) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त धन और बल के धारण करनेवाले अनन्त आकाश में स्थित सारे लोक-लोकान्तरों में व्यापक तथा आनन्दस्वरूप तुझे सुकर्म के द्वारा हम प्राप्त करते हैं ॥१॥

८३७—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥२॥

पदार्थ—(संवृक्तधृष्णुं) बुराइयों का दूर करनेवाला, दुष्टों का दलन करनेवाला (उक्थ्यं) स्तुति के योग्य (महामहिव्रतं) महान् नियमों का नियन्ता (मदं) आनन्ददाता (शतं पुरः) सैंकड़ों लोक-लोकान्तरों का (रुरुक्षणिम्) नाश [प्रलय] करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दुष्टों का दलन करनेवाले, स्तुति के योग्य, महान् नियमों के संचालक, आनन्ददाता तथा सैकड़ों लोक-लोकान्तरों का प्रलय करनेवाले तुझे हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

८३८—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥३॥

पदार्थ—(अतः) इस कारण से (त्वा) तुझे (रयिः) धन और धन के चाहने वाले (अभि) सब ओर से (अयत्) प्राप्त करता है (राजानं) प्रकाशस्वरूप (सुक्रतो) हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता (दिवः) आकाश में स्थित सब लोक-लोकान्तरों का (सुपर्णः) भली भांति रक्षा करनेवाला (अव्यथी) त्रिविध ताप [अध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक] से रहित (भरत्) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तमकर्मों के अधिष्ठाता परमेश्वर ! तू तीन तापों से रहित, सबका भली प्रकार से रक्षक तथा आकाश में स्थित सब लोक-लोकान्तरों को धारण करता है, अतः धन तथा धन की कामना करनेवाला पुरुष तुझ प्रकाशस्वरूप को प्राप्त करता है ॥३॥

८३९—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ।४।

पदार्थ—(अधा) अनन्तर (हिन्वानः) इन्द्रियों की शक्ति से बढ़ाता हुआ (इन्द्रियं) इन्द्रियों को (ज्यायः) सब से श्रेष्ठ (महित्वं) महिमा को (आनशे) प्राप्त होता है (अभिष्टिकृत्) अभीष्ट फल का दाता (विचर्षणिः) विश्व का साक्षी ।४।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अभीष्ट फल का दाता और विश्व का साक्षी है । तू हमारी इन्द्रियों में शक्ति का संचार करता हुआ महान् महिमा से युक्त है ॥४॥

८४०—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥५॥

पदार्थ—(विश्वस्मा) सारे (इत्) ही (स्वर्दृशे) आनन्द प्राप्त करने के लिए (साधारणं) एकसमान (रजस्तुरं) लोक-लोकान्तरों की प्रेरणा करने वाले (गोपाम्) रक्षक (ऋतस्य) सत्य नियम के (विः) एक देह से दूसरे में जानेवाला जीव (भरत्) धारण करता है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जीव सारे सुखों की प्राप्ति में एक मात्र कारण, लोक-लोकान्तरों की प्रेरणा करनेवाले तथा सत्य नियम के रक्षक तुझे ही धारण करता है ॥५॥

८४१—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ।१।

पदार्थ—(इषे) विज्ञान के लिए (पवस्व) अपने को पवित्र कर (धारया) वेदवाणी से (मृज्यमानः) शुद्ध किया हुआ (मनीषिभिः) मेधावी पुरुषों के द्वारा (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (रुचा) प्रकाश के साथ (अभि) सब ओर से (गाः) इन्द्रियों को (इहि) व्याप्त कर ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली पुरुष ! तू विज्ञान की प्राप्ति के लिए मेधावी पुरुषों के द्वारा शुद्ध किया जाता हुआ वेदवाणी से अपने को पवित्र कर तथा अपने प्रकाश से इन्द्रियों को व्याप्त कर ॥१॥

८४२—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥२॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (वरिवः) सम्पदाएँ (कृधि) कर (ऊर्जं) बल (जनाय) सब के लिए (गिर्वणः) हे स्तुति के योग्य (हरे) हे अज्ञाननाशक (सृजानः) उत्पन्न करता हुआ (आशिरं) भोग्य पदार्थों को ॥२॥

भावार्थ—हे स्तुति के योग्य, तथा अज्ञाननाशक परमेश्वर ! तू भोग्य पदार्थों को उत्पन्न तथा हमें पवित्र करता हुआ सब के लिए धन और बल दे ॥२॥

८४३—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ।३।

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (देववीतये) विद्वानों के ज्ञान के लिए (इन्द्रस्य) जीव के (याहि) प्राप्त हो (निष्कृतम्) निस्तार (द्युतानः) प्रकाशित करता हुआ (वाजिभिः) अग्नि, वायु और सूर्य के द्वारा (हितः) हितकारी ।३।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वानों के ज्ञान के लिए, पवित्र करता हुआ, अग्नि वायु और सूर्य के द्वारा प्रकाश का करनेवाला तथा सबका हितकारी तू जीव का निस्तार कर ॥३॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

८४४—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निना) परमेश्वर के द्वारा (अग्निः) भौतिक अग्नि [आग] (समिध्यते) सम्यक् प्रकार से प्रकाशित होती है (कविः) तीक्ष्ण तेजवाला (गृहपतिः) घर का अधिष्ठाता (युवा) सब पदार्थों का संयोग और विभाग करनेवाला (हव्यवाड्) होम की हवि का सब जगह विस्तार करनेवाला (जुह्वास्यः) ज्वालारूप मुखवाला ॥१॥

भावार्थ—तीक्ष्ण तेजवाला, घर का अधिष्ठाता, सब पदार्थों का संयोग तथा विभाग करनेवाला, होम का सब जगह विस्तार करनेवाला तथा ज्वालारूप मुखवाला अग्नि (आग) परमेश्वर के द्वारा प्रकाशित होता है ॥१॥

८४५—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (त्वां) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर (हविष्पतिः) यजमान (दूतं) ज्ञान के दाता (देव) हे देव (सपर्यति) उपासना करता है (तस्य स्म) उसका (प्र) उत्तम (अविता) रक्षक (भव) हो ॥२॥

भावार्थ—हे सब के प्रकाशक परमेश्वर ! जो उपासक ज्ञानदाता तेरी उपासना करता है, तू उसका रक्षक हो ॥२॥

८४६—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्नि) यज्ञ की अग्नि को (देववीतये) दिव्य सुख की प्राप्ति के लिए (हविष्मान्) यजमान (आविवासति) प्रज्वलित करता है (तस्मै) उसको (पावक) हे पवित्रकारक परमेश्वर (मृडय) सुखी कर ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक परमेश्वर ! जो यजमान दिव्य सुखों की प्राप्ति के लिए यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित कर यज्ञ करता है, तू उसे सुखी कर ॥३॥

८४७—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥१॥

पदार्थ—(मित्रं) प्राण को (हुवे) व्यवहार में लाता हूँ (पूतदक्षं) पवित्र करने में समर्थ (वरुणं) उदान वायु को (च) और (रिशादसं) जंग लगाने वाले [धातुओं में] (धियं) कर्म (घृताचीं) जल के निर्माण करनेवाले (साधन्ता) सिद्ध करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—मैं जल के उत्पन्न करने वाले, कर्म के साधक तथा पवित्र करने वाले प्राण वायु और धातुओं में जंग लगाने वाले उदान वायु को व्यवहार में लाता हूँ ॥१॥

८४८—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ १ २ ३ १ २

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥२॥

पदार्थ—(ऋतेन) परमेश्वर के द्वारा (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु (ऋतावृधौ) जल को बढ़ानेवाले (ऋतस्पृशा) सत्य नियम में बंधे हुए (क्रतुं) संसार में (बृहन्तं) विशाल (आशाथे) व्यापक हो रहे हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर की शक्ति द्वारा, जल के बढ़ानेवाले, तथा सत्यनियम में बंधे हुए प्राण और उदान वायुएं विशाल संसार में व्यापक हो रही हैं ॥२॥

८४९—मधुच्छन्दा । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ।।३।।

पदार्थ—(**कवी**) सारे व्यवहारों के साधक (**नः**) हमारे (**मित्रावरुणा**) प्राण और उदान वायु (**तुविजाता**) अनेक कारणों से उत्पन्न होनेवाले (**उरुक्षया**) बहुतों में निवास करनेवाले (**दक्षं**) बल (**दधाते**) धारण करते हैं (**अपसं**) कर्म को ।।३।।

भावार्थ—सारे व्यवहारों के साधक, अनेक कारणों से उत्पन्न, तथा बहुतों में निवास करने वाले प्राण और उदान वायु हमारे बल और कर्म को धारण करते हैं ।।३।।

८५०—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ।।१।।

पदार्थ—(**इन्द्रेण**) परमेश्वर के साथ (**सं**) सम्यक् प्रकार से (**हि**) क्योंकि (**दृक्षसे**) देखाजाता है (**संजग्मानः**) संयुक्त [मोक्षावस्था में] (**अबिभ्युषा**) नित्यनिर्भय (**मन्दू**) आनन्दित (**समानवर्चसा**) समान तेजवाले [मुक्ति अवस्था में जीव का परमात्मा से सादृश्य होता है] ।।१।।

भावार्थ—हे जीव ! तू मोक्षावस्था में नित्य निर्भय परमेश्वर के साथ मेल करने से आनन्दित और उसके समान तेजवाला बन जाता है ।।१।।

८५१—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

३ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ।।२।।

पदार्थ—(**आत् अह**) अनन्तर (**स्वधां अनु**) प्रकृति के अनुसरण करनेवाले (**पुनः**) फिर (**गर्भत्वं**) जन्म (**एरिरे**) प्राप्त करते हैं (**दधाना**) धारण करते हुए (**नाम**) को (**यज्ञियम्**) यज्ञ करने के योग्य ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! यज्ञ करने के योग्य नाम को धारण करते हुए मनुष्य मोक्ष के बाद प्रकृति का अनुसरण करते हुए बार बार फिर जन्म ग्रहण करते हैं ।।२।।

८५२—मधुच्छन्दा । मरुत इन्द्रश्च । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ।।३।।

पदार्थ—(**वीळुचिद्**) दृढ़ भी (**आरुजत्नुभिः**) शरीर के मलों को छिन्न-भिन्न करनेवाले (**गुहाचिद्**) हृदय देश में स्थित (**इन्द्र**) हे जीवात्मन् (**वह्निभिः**) वहन करनेवाले प्राण वायुओं के द्वारा (**अविन्दः**) प्राप्त करता है (**उस्रियाः**) प्रकाश की रेखाओं को (**अनु**) अनुसरण करना ।।३।।

भावार्थ—हे जीव! दृढ़ अन्तःकरण में विराजमान रहकर तू मलों को छिन्न-भिन्न करनेवाले वायुओं के द्वारा [प्राणायाम की साधना कर] प्रकाश की रेखाओं को प्राप्त करता है ।।३।।

८५३—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ २र

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ।।१।।

पदार्थ—(**ता**) उन दोनों की (**हुवे**) स्तुति करता हूँ (**ययोः**) जिनके अधिष्ठातृत्व में (**इदं**) [प्रत्यक्ष] (**पप्ने**) हरा-भरा होता है (**विश्वं**) सारा संसार (**पुराकृतं**) सृष्टि के प्रारंभ में उत्पन्न किया हुआ (**इन्द्राग्नी**) जीव और परमेश्वर (**न**) नहीं (**मर्धतः**) विनष्ट होने देते ।।१।।

भावार्थ—जिनके अधिष्ठातृत्व में सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न किया हुआ यह संसार हरा-भरा हो रहा है और जो इसको विनष्ट नहीं होने देते (अर्थात् प्रवाह रूप से स्थित रखते हैं) उन जीव और ईश्वर की मैं स्तुति करता हूँ ।।१।।

८५४—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ।।२।।

पदार्थ—(**उग्राः**) अत्यन्त बलवान् (**विघनिना**) विनाश करने वाले (**मृधः**) सारे दुर्गुणों का (**इन्द्राग्नी**) जीव तथा ईश्वर को (**हवामहे**) प्राप्त करना चाहते हैं (**ता**) वे दोनों (**नः**) हमें (**मृडात**) सुखी करते हैं (**ईदृशे**) ऐसे संसार में ।।२।।

भावार्थ—अत्यन्त बलवान् सारे दुर्गुणों को दूर करनेवाले जीव और ईश्वर को हम प्राप्त करना चाहते हैं । ऐसे वे दोनों हमें सुखी करते हैं ।।२।।

८५५—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ।।३।।

पदार्थ—(**हथः**) नाश करते हैं (**वृत्राणि**) सारे उपद्रवों को (**आर्या**) उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाले (**हथः**) नाश करते हैं (**दासानि**) पराधीनता को (**सत्पती**) पदार्थ मात्र के स्वामी (**हथः**) नाश करते हैं (**विश्वा**) सब (**अप**) दूर करना (**द्विषः**) काम-क्रोधादि शत्रुओं को ।।३।।

भावार्थ—पदार्थ मात्र के स्वामी, उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाले जीव और परमेश्वर सारे उपद्रवों पराधीनताओं तथा काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करते हैं ।।३।।

卐 द्वितीयःखण्डः समाप्तः 卐

८५६—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ।।१।।

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार से (**सोमासः**) शान्त स्वभाव वाले योगी जन (**आयवः**) ज्ञानवान् (**पवन्ते**) प्राप्त करते हैं (**मद्यं**) तृप्त करनेवाले (**मदं**) आनन्द को (**समुद्रस्य**) परमेश्वर के (**अधि विष्टपे**) मोक्षधाम रूप परम पद में (**मनीषिणः**) मननशील (**मत्सरासः**) प्रसन्नतायुक्त (**मदच्युतः**) आनन्द की वर्षा करनेवाले ।।१।।

भावार्थ—ज्ञानवान्, प्रसन्न स्वभाव, आनन्द की वर्षा करनेवाले तथा मननशील योगीजन परमेश्वर के मोक्षधाम रूप परम पद में तृप्त करने वाले आनन्द को प्राप्त करते हैं ।।१।।

८५७—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ।।२।।

पदार्थ—(**तरत्**) पार करता है (**समुद्रं**) संसार सागर को (**पवमानः**) पवित्रात्मा (**ऊर्मिणा**) तत्व ज्ञान से (**राजा**) तेजस्वी (**देव**) दिव्य शक्तिवाला (**ऋतं**) गतिमान् (**बृहत्**) विशाल (**अर्षा**) प्राप्त करता है (**मित्रस्य**) प्राण के (**वरुणस्य**) अपान के (**धर्मणा**) धर्म [प्राणायाम] से (**प्र**) उत्तम (**हिन्वानः**) प्रेरित हुआ (**ऋतं**) परमेश्वर को (**बृहत्**) सब से महान् ।।२।।

भावार्थ—पवित्रात्मा, तेजस्वी, दिव्य शक्तियों से युक्त ज्ञानी पुरुष तत्वज्ञान के द्वारा विशाल संसार सागर को तर जाता है । वही प्राण और अपान की गति (प्राणायाम के) द्वारा प्रेरित होकर सब से महान् परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।।२।।

८५८—सप्तर्षयः । सोमः । विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र

नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो । राजा देवः समुद्रयः ।।४।।

पदार्थ—(**नृभिः**) नेता योगियों के द्वारा (**येमाणः**) नियम में स्थित (**हर्यतः**) प्रेम का पात्र (**विचक्षणः**) बुद्धिमान् (**राजा**) तेजस्वी (**देव**) देवस्वरूप (**समुद्रयः**) परमेश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी ।।३।।

भावार्थ—योगियों के बतलाये हुए यमनियम आदि का पालन करने वाला प्रेम का पात्र, बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा देवस्वरूप भक्त पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी होता है ।।३।।

८५९—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर् ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ।।१।।

पदार्थ—(**तिस्रः**) तीन (**वाचः**) ऋग्यजु, सामरूप वाणियों की (**ईरयति**) प्रेरणा करता है (**प्र**) उत्तम (**वह्निः**) परमेश्वर (**ऋतस्य**) सत्य नियम का (**धीतिं**) धारण करनेवाली को (**ब्रह्मणा**) ब्रह्माण्ड के (**मनीषां**) ज्ञान को (**गावः**) वेदवाणियां (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं (**गोपति**) वेद के रक्षक (**पृच्छमानाः**) पूछती हुई-सी (**सोमं**) विद्वान् को (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं (**मतयः**) अनेक प्रकार के ज्ञान (**वावशानाः**) कामना करते हुए से ।।१।।

भावार्थ—परमेश्वर ऋग्, यजु तथा साम रूप तीन प्रकार की वाणियों की प्रेरणा करता है । वे वाणियां सत्य-नियम को धारण करनेवाली तथा ब्रह्माण्ड का ज्ञान करानेवाली होती हैं । ये पूछती हुई-सी तथा इनमें रहने वाला अनेक प्रकार का ज्ञान कामना करता हुआ-सा वेद-रक्षक विद्वान् को प्राप्त होता है ।।१।।

८६०—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ।।२।।

पदार्थ—(सोमं) परमेश्वर को (गावः) वेदवाणियां (धेनवः) प्रसन्न करनेवाली (वावशानाः) कामना करती हुई-सी (सोमं) परमेश्वर को (विप्राः) ज्ञानीजन (मतिभिः) बुद्धियों द्वारा (पृच्छमानाः) प्रश्न तथा उत्तर रूप से पूछते हुए [या विचार-विनिमय-करते हुए] (सोमः) परमेश्वर (सुतः) सम्यक् ध्यान किया गया (ऋच्यते) प्राप्त किया जाता है (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (सोमे) परमेश्वर के विषय में (अर्काः) मंत्र (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् आदि छन्दोंवाले (संनवन्ते) सम्यक् प्रकार से वर्णन करने में असमर्थ हो जाते हैं ।।२।।

भावार्थ—कामना करती हुई-सी प्रश्न करने वाली वेदवाणियां परमेश्वर का वर्णन करती हैं । बुद्धियों द्वारा विचार-विनिमय करते हुए ज्ञानी जन परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं । पवित्रकारक तथा ध्यान किया हुआ परमेश्वर योगीजनों द्वारा प्राप्त किया जाता है । केवल वाणीमय मंत्र उसका पूरा वर्णन नहीं कर सकते हैं ।२।

८६१—*पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ।।३।।

पदार्थ—(एवा) निश्चय ही (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (परिषिच्यमानः) सब प्रकार से आनन्द का सेचन करता हुआ (आपवस्व) प्रदान कर (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (स्वस्ति) कल्याण (इन्द्रं) जीवात्मा में (आविश) प्रविष्ट हो (बृहता) महान् (मदेन) आनन्द के साथ (वर्धय) बढ़ा (वाचम्) वाक् शक्ति को (जनया) उत्पन्न कर (पुरन्धिम्) शारीरिक बल को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सब प्रकार से सुख की वर्षा तथा पवित्र करता हुआ तू हमें कल्याण प्रदान कर । महान् आनन्द के साथ आत्मा में प्रविष्ट हो, तू वाक् शक्ति को बढ़ा और शरीर में बल दे ।।३।।

卐 **तृतीयः खण्डः समाप्तः** 卐

८६२—*पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ २
यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।१।।

पदार्थ—(यत्) जो (द्यावः) द्युलोक (इन्द्र) हे जीवात्मन् (ते) तेरे उपयोग के लिए (शतं) सैकड़ों (शत) सैकड़ों (भूमीः) भूमियां (उत) और (स्युः) हैं (न) नहीं (त्वा) तेरे लिए (वज्रिन्) हे अज्ञान के निवारण करनेवाले (सहस्रं) सहस्रों (सूर्याः) सूर्य लोक (अनु) अनुसरण (न) नहीं (जातं) संसार के उत्पादक का (अष्ट) लीन हो (रोदसी) रुलाने वाले [छोड़ते समय दुःख देते हैं और रुलाते हैं] ।।१।।

भावार्थ—हे अज्ञान-निवारक जीवात्मन् ! जिस कारण कि रुलानेवाले सैकड़ों द्युलोक, भूमियां तथा सहस्रों सूर्य भी (उनमें जन्म धारण कर) तेरे उपयोग के लिए नहीं हैं, इस कारण तू सृष्टिकर्ता परमेश्वर का अनुसरण कर ।।१।।

८६३—*पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः ।।२।।

पदार्थ—(आपप्राथ) व्यापक हो रहा है (महिना) महत्व से (वृष्ण्या) पुरुषार्थयुक्त कर्मों में (वृषन्) हे अभिमत फलों की वर्षा करनेवाले (विश्वा) सारे (शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (शवसा) बल से (अस्मान) हम लोगों की (अव) रक्षा कर (मघवन्) हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी (गोमति) गर्जन और विद्युत्-पात से युक्त (व्रजे) मेघ के उपस्थित होने पर (वज्रिन्) हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले (चित्राभिः) आश्चर्यमयी (ऊतिभिः) रक्षाओं से ।।२।।

भावार्थ—हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले, सकल कामनाओं को सफल करने वाले, सर्वशक्तिमान् तथा समस्त संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू अपनी महान् शक्ति से सारे पुरुषार्थ-युक्त कर्मों में व्यापक हो रहा है । तू विद्युत्-पतन आदि दैवी आपत्तियों से हमें बचा ।।२।।

८६४—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।।१।।

पदार्थ—(वयं) हम (घ) प्रसिद्ध (त्वा)तुझे (सुतावन्तः) पुत्र आदि कुटुम्बों वाले (आपो न) जल की भांति (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ करने वाले (पवित्रस्य) यज्ञ आदि पवित्र कर्म के (प्रस्रवणेषु) जलवाले प्रदेशों में (वृत्रहन्) हे बुराइयों को दूर करनेवाले (परि) सर्व प्रकार (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (आसते) शरण में उपस्थित होते हैं ।।१।।

भावार्थ—हे बुराइयों को दूर करनेवाले विद्वान् ! पुत्रादि कुटुम्बों से युक्त स्तुति तथा यज्ञ करनेवाले हमलोग यज्ञ आदि पवित्र कर्मों की सिद्धि के लिए तेरी शरण में उपस्थित होते हैं, जैसे पानी जलवाले प्रदेशों में पहुँच जाते हैं ।।१।।

८६५—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।।२।।

पदार्थ—(स्वरन्ति) स्तुति करते हैं (त्वा) तेरी (सुते) उत्पन्न संसार में (नरः) मनुष्य (वसो) हे सबको बसानेवाले (निरेके) शंकारहित व्यवहार से युक्त (उक्थिनः) स्तुति करनेवाले (कदा) कब (सुतं) पुत्र स्वरूप को (तृषाणः) प्यासा (ओकः) घर को (आगमः) प्राप्त होवे (इन्द्र) हे परमेश्वर (स्वब्दी) अच्छे कर्मों के देनेवाले (इव) समान (वंसगः) धर्मात्मा को प्राप्त होनेवाले ।२।

भावार्थ—हे सब को शरण देनेवाले परमेश्वर, निर्भय व्यवहार वाले इस संसार में स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करनेवाले तेरी स्तुति करते हैं कि हे नाथ ! प्यासा मनुष्य घर के समान उत्तम कर्म का ज्ञान कराने वाला तथा धर्मात्माओं को प्राप्त होने वाला तू पुत्ररूप हमें कब दर्शन देगा ।।२।।

८६६—*मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
३ १ २ ३ १ २र
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ।।३।।

पदार्थ—(कण्वेभिः) मेधावियों के लिए (धृष्णो) सबसे महान् (आधृषद्) अभय (वाजं) सम्पत्ति (दर्षि) देता है (सहस्रिणं) पुष्कल (पिशङ्गरूपं) सुवर्णरूप (मघवन्) सकल संपदाओं के स्वामी (विचर्षणे) सबके साक्षी (मक्षू) शीघ्र (गोमन्तं) गाय आदि पशुओंवाले (ईमहे) प्राप्त करना चाहते हैं ।।३।।

भावार्थ—हे सबसे महान्, सबके साक्षी तथा सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू अभय है । मेधावी पुरुषों के लिए पुष्कल सुवर्णरूप तथा गाय आदि पशुओं को देनेवाली संपदाएँ है ।।३।।

८६७—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ।।१।।

पदार्थ—(तरणिः) शीघ्र कार्य करनेवाला (इत्) ही (सिषासति) विभाजन करता है (वाज) खाद्य पदार्थ को (पुरन्ध्या) बुद्धि के द्वारा (युजा) सहायक (आ) सब प्रकार से (वः) तुम लोग (इन्द्रं) सेनापति को (पुरुहूतं) बहुतों से चाहने योग्य (नमे) आदर करता हूँ (गिरा) वाणी से (नेमिं) चक्के की पुट्ठी को (तष्टेव) बढ़ई के समान (सुद्रुवम्) सुगमता से चलने योग्य ।।१।।

भावार्थ—चतुर सेनापति बुद्धिमत्ता के साथ खाद्य पदार्थ का विभाजन करता है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को सर्वप्रिय सेनापति का आदर करने के लिए सुगमता के साथ चलने के लिए चक्के की पुट्ठी को बढ़ई के समान नम्र होने की प्रेरणा करता हूँ ।।१।।

८६८—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ।।२।।

पदार्थ—(न) नहीं (दुष्टुतिः) निन्दा (द्रविणोदेषु) धनदाताओं के विषय में (शस्यते) अच्छी (न) नहीं (स्रेधन्तं) हिंसक को (रयिः) संपत्ति (नशत्) प्राप्त होती है (सुशक्तिः) उत्तम सामर्थ्य (इत्) भी (मघवन्) हे संपूर्ण संपदाओं के स्वामी (तुभ्यं) तेरी (मावते) मेरे जैसे के लिए (देष्णं) दान (यत्) जो (पार्ये) अनन्त (दिवि) आकाश में ।।२।।

भावार्थ—धनदाताओं की निन्दा ठीक नहीं । दूसरों को हानि पहुँचाने वाले मनुष्य को धन प्राप्त नहीं होता । हे परमेश्वर ! अनन्त आकाश में स्थित हमारे जैसों को देने योग्य जो तेरे वायु, जल तथा आकाश आदि पदार्थ विद्यमान हैं, उनमें तेरी ही शक्ति है ।।२।।

卐 **चतुर्थः खण्डः समाप्तः** 卐

८६९—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीन (वाचः) वाणियों को (उदीरते) उच्चारण करते हैं (गावः) ये वाणियां (मिमन्ति) उपदेश करती हैं (धेनवः) आनन्द रस का पान करानेवाली (हरिः) दुःखहर्ता (एति) प्राप्त होता है (कनिक्रदत्) अनाहत नाद करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—लोग चारों वेदों की तीन प्रकार की वाणियों का उच्चारण करते हैं । आनन्द रस का पान करानेवाली वे वाणियां हमें उपदेश देती हैं । जिस के द्वारा दुःखहर्त्ता परमेश्वर अनाहत नाद करता हुआ प्राप्त होता है ॥१॥

८७०—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार (ब्रह्मीः) वेद की स्तुतियां (अनूषत) प्रशंसा करती हैं (यह्वीः) महान् (ऋतस्य) परमेश्वर की (मातरः) मातायें (मर्जयन्तीः) पवित्र करती हुई (दिवः) प्रकाशस्वरूप (शिशुं) बालक को ॥२॥

भावार्थ—बालक को पवित्र करती हुई, माताओं के समान महान् वेदवाणियां प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की प्रशंसा करती हैं ॥२॥

८७१—त्रितः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥३॥

पदार्थ—(रायः) धन के (समुद्रान्) समुद्रों को (चतुरः) चार (अस्मभ्यं) हमें (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सब प्रकार से (आ) भली भांति (पवस्व) प्रदान कर (सहस्रिणः) हजारों प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मणिमुक्ता आदि रत्नों से पूर्ण समुद्र पर्यन्त पृथिवी का राज हमें प्रदान कर ॥३॥

८७२—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥१॥

पदार्थ—(सुतासः) संसार में उत्पन्न हुए (मधुमत्तमाः) ब्रह्मज्ञानी (सोमाः) पुरुष (इन्द्राय) परमेश्वर को (मन्दिनः) हर्ष से युक्त (पवित्रवन्तः) पवित्रात्मा (अक्षरन्) वर्षा करते हैं (देवान्) दिव्यगुणों की (गच्छन्तु) प्राप्त हों (वः) तुम लोगों को (मदाः) आनन्द ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मज्ञानी, प्रसन्न, संसार में उत्पन्न हुए पवित्रात्मा पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करें और उनका आनन्द तुम्हारे लिए दिव्य गुणों की वर्षा करे ॥१॥

८७३—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥२॥

पदार्थ— (इन्दुः) जीव (इंद्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (पवते) अपने को पवित्र करता है (इति) इस प्रकार (देवासः) ज्ञानीजन (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं । (वाचस्पतिः) समस्त वेद-वाणियों का स्वामी परमेश्वर (मखस्यते) अपना सारा कार्य यज्ञरूप से करता है (विश्वस्य) सारी (ईशानः) स्वामी (ओजसः) शक्तियों का ॥२॥

भावार्थ—जीव परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्वयं पवित्र होता है, ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं । सारी शक्तियों का स्वामी तथा वेदवाणियों का दाता परमेश्वर अपना सारा सृष्टि-रचना आदि कार्य यज्ञरूप में करता है ॥२॥

८७४—ययातिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवे दिवे ॥३॥

पदार्थ— (सहस्रधारः) बहुत प्रकार की वेदरूपवाणियों वाला (पवते) संसारी पदार्थों को गति दे रहा है (समुद्रः) आकाश के समान व्यापक (वाचमीङ्खयः) स्तुतियों का प्रेरक (सोमः) परमेश्वर (पतिः) स्वामी (रयीणां) सारी संपदाओं का (सखा) मित्र (इन्द्रस्य) जीव का (दिवे दिवे) प्रतिदिन ॥३॥

भावार्थ—वेद-वाणियों का स्वामी, आकाश के समान व्यापक, स्तुतियों का प्रेरक, समस्त संपदाओं की रक्षा करनेवाला तथा जीवात्मा का मित्र परमेश्वर प्रतिदिन सबको गति देता है ॥३॥

८७५—पवित्रः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१॥

पदार्थ—(पवित्रं) पवित्र शक्ति (ते) तेरी (विततं) महान् है (ब्रह्मणस्पते) वेदज्ञान के रक्षक (प्रभुः) समर्थ (गात्राणि) तीन [स्थूल, सूक्ष्म और कारण] शरीरों को (पर्येति) प्राप्त करता है (विश्वतः) सब प्रकार से (अतप्ततनूः) तपस्या न करनेवाला (न) नहीं (तत्) उस मेरे पवित्र स्वरूप को (आमः) कच्ची बुद्धिवाला (अश्नुते) प्राप्त कर सकता है (शृतासः) पक्की बुद्धिवाले (इत्) ही (वहन्तः) तपस्या करते हुए (सं) सम्यक् (तद्) उसे [तेरे स्वरूप को] (आसत) प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञान के रक्षक जीव ! तेरी पवित्र शक्ति महान् है । स्वयं शक्तिशाली तू स्थूल, तथा कारण शरीरों को प्राप्त करता है । तपस्या को न करनेवाला कच्ची बुद्धि से युक्त तेरी उस पवित्र शक्ति को नहीं पा सकता, किन्तु पक्की बुद्धिवाले तपस्वी ही उसे पा सकते हैं ॥१॥

८७६—पवित्रः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधिरोहन्ति तेजसा ॥२॥

पदार्थ—(तपोः) तपःस्वरूप (पवित्रं) पवित्र शक्ति (विततं) विस्तृत है (दिवस्पदे) मोक्षरूप परमधाम अथवा द्यु आदि लोकों में (अर्चन्तः) उपासना करती हुई (अस्य) इस की (तन्तवः) प्रजायें (व्यस्थिरन्) व्यवस्था करती हैं (अवन्ति) रक्षा करती हैं (अस्य) इस की (पवितारं) उपासक की (आशवः) व्यापक शक्तियां (दिवः) सूर्य के (पृष्ठं) पृष्ठ या पीठ भाग पर (अधिरोहन्ति) चढ़ती हैं (तेजसा) तेज से ॥२॥

भावार्थ—उपासना करनेवाली प्रजायें तपःस्वरूप परमेश्वर की महान् पवित्र शक्ति का मोक्षरूप परमधाम में निश्चय करती हैं । परमेश्वर की व्यापक शक्तियां भक्त की रक्षा करती हैं तथा अपने तेज से सूर्यलोक का भी नियन्त्रण करती हैं ॥२॥

८७७—पवित्रः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥३॥

पदार्थ—(अरूरुचत्) प्रकाशित करता है (उषसः) किरणों को (पृश्निः) सूर्य (अग्रियः) ग्रहों में श्रेष्ठ (उक्षा) महान् (मिमेति) फेंकते हैं (भुवनेषु) लोकों में (वाजयुः) अन्न आदि का देनेवाला (मायाविनो) सकल ज्ञान के आधार (ममिरे) रचे हुए हैं (अस्य) इस परमेश्वर के (मायया) ज्ञान से (नृचक्षसः) सबके प्रकाशक (पितरः) सूर्य की किरणें (गर्भं) गर्भ के समान (आदधुः) जल को धारण करती हैं ॥३॥

भावार्थ—सबसे महान्, अन्न का देनेवाला तथा सब ग्रहों में श्रेष्ठ सूर्य प्रकाशित होता है और सारे लोकों में अपनी किरणों को फेंकता है । सब का प्रकाश करनेवाली किरणें गर्भ की भाँति जल को धारण करती हैं । ये सब सर्वज्ञ परमेश्वर के ज्ञान से ही रचे गए हैं ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

८७८—सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (मंहिष्ठाय) अत्यन्त महान् (गायत) गुणगान करो (ऋताव्ने) यज्ञकर्त्ता (बृहते) बड़े (शुक्रशोचिषे) ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी (उपस्तुतासः) उपस्थित शिष्य गण (अग्नये) आचार्य का ॥१॥

भावार्थ—हे उपस्थित हुए शिष्य गण ! तुम लोग सबसे महान्, यज्ञकर्त्ता तथा ब्रह्मचर्य व्रत के धनी आचार्य का गुणगान करो ॥१॥

८७९—सौभरिः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२॥

पदार्थ—(आवंसते) सर्व प्रकार से देता है (मघवा) समस्त संपदाओं का स्वामी (वीरवद्) पुत्र आदि से युक्त (यशः) यश को (समिद्धः) तेजस्वरूप (द्युम्नी) यशस्वी (आहुतः) सब प्रकार से ध्यान किया हुआ (कुवित्) बहुत (नः) हमें (अस्य) इसका (सुमतिः) उत्तम ज्ञान (भवीयसी) हमें प्राप्त होने वाला (अच्छा) भली भाँति (वाजेभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (आगमत्) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थ—समस्त संपदाओं का स्वामी, तेजस्वरूप, यशस्वी तथा अच्छी प्रकार से ध्यान किया हुआ परमेश्वर हमें पुत्र आदि से युक्त यश प्रदान करता है। इसका उत्तम ज्ञान अन्न आदि के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

८८०—*गोसूक्तघश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
३ १ २ . ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१॥

पदार्थ—(तं) उस (ते) तेरे (मदं) हर्ष की (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं (वृषणं) कामनाओं को सिद्ध करनेवाले (पृक्षु) संग्रामों में (सासहिं) पशुओं का पराजय करने (उ लोककृत्नुं) विजय से नवीन लोकों पर अधिकार करनेवाला (अद्रिवः) हे शस्त्रधारी (हरिश्रियम्) अश्व आदि की शक्तियों से सुशोभित ॥१॥

भावार्थ—हे सकल शस्त्रों से सुसज्जित सेनापते ! सारी कामनाओं को सिद्ध करने वाली, संग्रामों में साहस दिलाने वाली, विजय द्वारा नवीन स्थानों पर अधिकार करने वाली तथा घोड़े आदि शक्तियों से सुशोभित तेरी विजय से उत्पन्न हुई प्रसन्नता की हम प्रशंसा करते हैं ॥१॥

८८१—*गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२॥

पदार्थ—(येन) जिस कारण (ज्योतींषि) प्रकाशों को (आयवे) मनुष्य के लिए (मनवे) मननशील (च) और (विवेदिथ) प्राप्त कराता है (मन्दानः) आनन्दस्वरूप (अस्य) इस उपासक के (बर्हिषः) मानस ज्ञान यज्ञ में (विराजसि) विराजमान है ॥२॥

भावार्थ—हे आनन्दस्वरूप परमेश्वर ! जिससे तू मननशील मनुष्य को प्रकाश देता है और उसके मानस-ज्ञान-यज्ञ में विराजमान रहता है उस शक्ति से हमें सुख प्रदान कर ॥२॥

८८२—*गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवे दिवे ॥३॥

पदार्थ—(तत्) उस शक्ति की (अद्याचित्) आज भी (ते) तेरी (उक्थिनः) स्तुति करने वाले (अनुष्टुवन्ति) स्तुति करते हैं (पूर्वथा) पहले कल्प के समान (वृषपत्नीः) धर्म जिसका रक्षक है ऐसे (अपः) कर्मों को (जय) उन्नत कर (दिवे दिवे) प्रति दिन ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पूर्व कल्प के समान आज भी उपासक लोग तेरी शक्ति की स्तुति करते हैं। तू हमारे धार्मिक कर्मों को प्रतिदिन उन्नत कर ॥३॥

८८३—*तिरश्ची । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।*

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महां असि ॥१॥

पदार्थ—(श्रुधी) सुन (हवं) प्रार्थना (तिरश्च्याः) छोटे से छोटे व्यक्ति की (इन्द्र) हे राजन् (यः) जो (त्वा) तेरी (सपर्यति) सेवा करता है (सुवीर्यस्य) सुन्दर शक्ति वाले (गोमतः) गाय आदि पशुओं वाले (रायः) धन से (पूर्धिः) भरपूर करता है (महां असि) बड़ा है ॥१॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू महान् है। जो तेरी सेवा करता है, उस छोटे से छोटे व्यक्ति की पुकार को सुन तथा शक्तिदायक गौ आदि पशुओं से युक्त धन से उसे भरपूर कर ॥१॥

८८४—*तिरश्ची । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो उपासक (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (नवीयसीं) मनोहर (गिरं) स्तुति (मन्द्रां) आनन्द देने वाली (अजीजनत्) करता है (चिकित्विन्मनसं) इन्द्रियातीत विषय को दिखाने वाली (धियं) बुद्धि को (प्रत्नां) सनातन (ऋतस्य) सत्य को (पिप्युषीम्) पुष्ट करने वाली ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो उपासक तेरी आनन्द देने वाली मनोहर स्तुति करता है, तू उसे इन्द्रियातीत विषय को दिखाने वाली, सनातन तथा सत्य को पुष्ट करने वाली बुद्धि प्रदान करता है ॥२॥

८८५—*तिरश्ची । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (उ) हि (स्तवाम) स्तुति करते हैं (यं) जिसके उद्देश्य से (गिरः) वेदवाणियां (इन्द्रं) परमेश्वर को (उक्थ्यानि) स्तुतियों को (वावृधे) बढ़ाती हैं (पुरूणि) बहुत (अस्य) इसके (पौंस्या) पराक्रमों को (सिषासन्तः) आराधना करने की इच्छा करते हुए (वनामहे) भजन करते हैं ॥३॥

भावार्थ—जिसके उद्देश्य से वेदवाणियां स्तुतियों का विस्तार करती हैं, हम उस परमेश्वर की स्तुति करते हैं। इसके अनेक प्रकार के पराक्रमों की इच्छा से भजन करते हैं ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

चतुर्थः अध्यायः समाप्तः

पञ्चमोऽध्यायः

८८६—*अकृष्टा माषाः । सोमः । जगती ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २ ३ १ २
प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (ते) तेरी (आश्विनीः) व्यापक (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (धेनवः) वाणियां (दिव्या) दिव्य गुणों से युक्त (असृग्रन्) उत्पन्न होती हैं (पयसा) ज्ञान के साथ (धरीमणि) धारण करने वाली आत्मा में (प्र) उत्तम (अन्तरिक्षात्) अन्तःकरण में होने वाले ज्ञान से (स्थाविरीः) स्थूलरूप (ते) वे (असृक्षत) रचना करते हैं (ये) जो (त्वा) तेरे लिए (मृजन्ति) अपने को पवित्र करते हैं (ऋषिषाण) हे ऋषियों द्वारा भजन करने के योग्य (वेधसः) मन्त्रद्रष्टा ॥१॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप, ऋषियों द्वारा भजन किये जाने योग्य परमेश्वर ! व्यापक तथा दिव्य गुण वाली तेरी वेदरूपी वाणियां ज्ञान के साथ धारण करने वाले अन्तःकरण में प्रकट होती हैं। तदनन्तर तेरी प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करने वाले मन्त्रद्रष्टा लोग अपने अन्तःकरण के द्वारा उन्हें स्थूल रूप में प्रकट करते हैं ॥१॥

८८७—अकृष्टा माषाः । सोमः । जगती ।

३१२३१२ ३१२३१२३१२र ३१२
उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परियन्ति केतवः ।
१२३२३ १२३२३२३२३ १ २र३१२
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥२॥

पदार्थ—(उभयतः) व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार से (पवमानस्य) शुद्धस्वरूप परमेश्वर की (रश्मयः) किरणें (ध्रुवस्य) नित्य (सतः) सत्स्वरूप (परियन्ति) व्यापक हो रही हैं (केतवः) ज्ञानमय (यदी) जो (पवित्रे) पवित्र कर्म से स्थित हो (अधिमृज्यते) शुद्ध होता है (हरिः) मनुष्य (सत्ता) विराजमान (नियोनौ) एकमात्र निमित्त कारण परमेश्वर की शरण में (कलशेषु) शरीरों में (सीदति) स्थित हो जाता है ॥२॥

भावार्थ—शुद्ध, नित्य और सत्स्वरूप परमेश्वर की ज्ञानरूप किरणें व्यवहार और परमार्थ रूप से व्यापक हो रही हैं। यदि मनुष्य पवित्र कर्मों में वर्तमान रह कर शुद्ध होता है तो वह शरीर धारण करता हुआ भी परमेश्वर में स्थित हो जाता है ॥२॥

८८८—अकृष्टा माषाः । सोमः । जगती ।

२ ३ १२ ३१२ ३१२३१ २र ३१२
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।
३ १२ ३१२३२३१२ ३ १२
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३॥

पदार्थ—(विश्वा) सारे (धामानि) नाम, स्थान और जन्मों को (विश्वचक्ष) हे सब के साक्षी (ऋभ्वसः) महान् (प्रभो) समर्थ (ते) तेरी (सतः) सत्स्वरूप (परियन्ति) व्यापक हो रही हैं (केतवः) किरणें (व्यानशी) सर्वव्यापक तू (पवसे) पवित्र करता है (सोम) हे प्रभो (धर्मणा) अपनी स्वाभाविक शक्ति से (पतिः) रक्षक (विश्वस्य) सारे (भुवनस्य) संसार का (राजसि) राजा है ॥३॥

भावार्थ—हे सब के साक्षी परमेश्वर, सत्स्वरूप तथा सर्व शक्तिमान् ! तेरी महान् महिमा सारे नाम, जन्म और स्थानों में व्यापक हो रही है। हे प्रभो, सारे संसार का स्वामी तथा सर्वव्यापक तू अपनी शक्ति से सब को पवित्र करता हुआ शासन कर रहा है ॥३॥

८८९—अमहीयुः : सोमः । गायत्री ।

१२ ३२३१ २र३२ १२ ३२३२
पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१॥

पदार्थ—(पवमानः) पदार्थों को पवित्र करने वाला (अजीजनत्) उत्पन्न करता है (दिवः) द्युलोक-सम्बन्धी (चित्रं) विचित्र (न) समान (तन्यतुं) विद्युत् के (ज्योतिः) तेज को (वैश्वानर) अग्निमय (बृहत्) महान् ॥१॥

भावार्थ—सब पदार्थों को पवित्र करने वाला सूर्य द्युलोक सम्बन्धी विचित्र विद्युत् के समान महान् अग्निमय तेज को उत्पन्न करता है ॥१॥

८९०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२३२३१२ ३२ २उ ३१२
पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥२॥

पदार्थ—(पवमान) हे शुद्धस्वरूप (रसः) रस (तव) तेरा (मदः) आनन्ददायक (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप (अदुच्छुनः) निर्दोष (वि) विशेष (वारं) अनेक वार प्राप्त होने वाले जगत् की (अव्यम्) प्रकृति से उत्पन्न (अर्षति) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा तेजस्वी परमेश्वर ! तेरा निर्दोष आनन्द रस अनेक वार प्राप्त होने वाले प्राकृत जगत् को प्राप्त होता है ॥२॥

८९१—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२३२३१२ ३२ २३२३क२र३२
पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥३॥

पदार्थ—(पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (ते) तेरा (रसः) आनन्द रस (दक्षः) बलवान् (विराजति) विराज रहा है (द्युमान्) तेजोयुक्त (ज्योतिः) प्रकाश की (विश्वं) सारे (स्वः) सुख को (दृशे) दिखाने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेजोयुक्त बलवान् तेरा आनन्द रस प्रकाश तथा सारे सुखों को दिखाने के लिए विराजमान हो रहा है ॥३॥

८९२—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ १ २र ३२३२३१२ १२३ २उ ३ १२
प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (यत्) जो (गावः) जल की (न) तरह (भूर्णयः) शीघ्र लाभकारी (त्वेषा) सूर्य की किरणें (अयासः) गतिशील (अक्रमुः) पृथिवी पर आती हैं (घ्नन्तः) नाश करती हुई (कृष्णां) काली (अप) दूर करना (त्वचम्) चर्मरोग को ॥१॥

भावार्थ—शीघ्र लाभकारी तेज गतिवाली सूर्य की किरणें चर्मरोग का नाश करती हुई जल के समान पृथिवी पर फैलती हैं ॥१॥

८९३—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ १२ ३२ ३१२ ३क २र ३ २३१२ ३२
सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२॥

पदार्थ—(सुवितस्य) सृष्टिकर्त्ता का (वनामहे) भजन करते हैं (अतिसेतुं) मर्यादा तोड़ने वाले (दुराय्यं) कठिनाई से परास्त होने वाले (साह्याम) तिरस्कार करते हैं (दस्युं) नीच कार्य करने वाले (अव्रतम्) अकर्मी ॥२॥

भावार्थ—हम सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का भजन करते हैं। मर्यादा तोड़ने, कठिनाई से परास्त होने वाले तथा अकर्मी नीच कर्मचारी का तिरस्कार करते हैं ॥२॥

८९४—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३१ २र ३१२ १२ ३१२३२
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३॥

पदार्थ—(शृण्वे) सुनता हूँ (वृष्टेः) वर्षा के (इव) समान (स्वनः) शब्द के (पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (शुष्मिणः) शक्तिशाली की (चरन्ति) विचरती हैं (विद्युतः) विजलियां (दिवि) अन्तरिक्ष में ॥३॥

भावार्थ—मैं वर्षा की ध्वनि के समान शुद्धस्वरूप तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की स्तुति को सुनता हूँ। उसी की व्यवस्था से अन्तरिक्ष में बिजलियां चमकती हैं ॥ ३ ॥

८९५—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३२उ ३ १२ ३१२ [illegible] १२ ३१२
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत्सोम वीरवत् ॥४॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (पवस्व) प्रदान कर (महीं) महान् (इषं) अन्न आदि भोग्य पदार्थ को (गोमत्) गाय आदि पशुओं से युक्त (इन्दो) हे सर्वेश्वर (हिरण्यवत्) सुवर्ण से युक्त (अश्ववत्) घोड़े से युक्त (सोम) हे परमेश्वर (वीरवत्) पुत्र आदि से युक्त ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वेश्वर सर्वाधार परमेश्वर ! तू हमें गाय, घोड़े, सुवर्ण तथा वीर पुत्र आदि से युक्त पर्याप्त अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान कर ॥४॥

८९६—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ २३१ २र ३२उ ३२३१२
पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५॥

पदार्थ—(पवस्व) व्यापक हो रहा है (विश्वचर्षणे) हे सब के साक्षी (आ) सब प्रकार से (मही) महान् (रोदसी) द्यु और पृथिवीलोक को (पृण) सुखी करता है (उषाः) प्रभात कालों को (सूर्यं) सूर्य (न) समान (रश्मिभिः) किरणों से ॥५॥

भावार्थ—हे सबके साक्षी परमेश्वर ! तू उषा को अपनी किरणों से सूर्य के समान महान् द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक होकर सुखी करता है ॥५॥

८९७—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२ ३१२ ३१२ १२३१२३१२
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (नः) हमारा (शर्मयन्त्या) कल्याणकारी (धारया) वेदवाणी से (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) भली भांति (सरा) सुखी कर (रसा) पृथिवी के (इव) समान (विष्टपम्) लोक को ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पृथ्वी के समान हमारा कल्याण करनेवाली वेदवाणी से लोक को भली भांति सुखी कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

८९८—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३१२३२३ १२ १२३२उ ३१२
आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥१॥

पदार्थ—(आशुः) शीघ्रकारी (अर्ष) ज्ञान देता है (बृहन्मते) हे महान् ज्ञानी (परि) सब प्रकार से (प्रियेण) प्रेममय (धाम्ना) स्वरूप से (यत्र) जिस तेरे विषय में (देवाः) विद्वान् लोग (इति) इस प्रकार (ब्रुवन्) कहते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! शीघ्रकारी तू अपने प्रेममय स्वरूप से ज्ञान देता है। तेरे विषय में ऐसा ही विद्वान् लोग कहते हैं ॥१॥

८९९—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३१२ ३२३१२ ३२ ३१ २र
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(परिष्कृण्वन्) पवित्र करता हुआ (अनिष्कृतं) अपवित्र को (जनाय) जनता के लिए (यातयन्) प्राप्त कराता हुआ (इषः) अन्न आदि

सम्पदाओं को (वृष्टिं) वर्षा को (दिवः) द्युलोक से (परिस्रव) बरसा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू अपवित्र को पवित्र करता हुआ तथा जनता के लिए अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्रदान करता हुआ द्युलोक से वर्षा को प्रेरित कर ॥२॥

९००—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३२३ २ १ २ ३ १ २र
अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (सः) वह (यः) जो (दिवस्परि) द्युलोक में (रघुयामा) सूक्ष्म गतिवाला (पवित्र) पवित्र ब्रह्माण्ड में (आ) भली भांति (सिन्धोः) सागर की (उर्मा) तरंग में (व्यक्षरत्) अनेक प्रकार से संचालन करता है ॥३॥

भावार्थ—सूक्ष्म गतिवाला जो परमेश्वर द्युलोक से सिन्धु की गहरी धार पर्यन्त सारे संसार में भली प्रकार व्यापक हो रहा है, वही सबका संचालन करता है ॥३॥

९०१—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥४॥

पदार्थ—(सुतः) सब का उत्पादक (एति) व्यापक हो रहा है (पवित्रे) अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, तथा चन्द्र आदि में (त्विषिं) प्रकाश को (दधानः) पुष्ट करता हुआ (ओजसा) ओजःशक्ति से (विचक्षाणः) सब को देखता हुआ (विरोचयन्) तथा सबको प्रकाशित करता हुआ ॥४॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता अपने पराक्रम से प्रकाश को पुष्ट करता हुआ, सब का साक्षी तथा प्रकाशक परमेश्वर समस्त पदार्थों में व्यापक हो रहा है ॥४॥

९०२—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आ विवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥५॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (विवासन्) विशेष रूप से निवास देता हुआ (परावतः) पुराने (अथो) अथवा (अर्वावतः) नये [सब पदार्थों को] (सुतः) उत्पन्न करनेवाला (इन्द्राय) जीवात्मा के लिए (सिच्यते) सींचा जाता है (मधु) आनन्दरस ॥५॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर पुराने अथवा नये सभी पदार्थों को स्थान देता हुआ जीवात्मा के लिए आनन्दरस को सींचता है ॥५॥

९०३—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥

पदार्थ—(समीचीनाः) उपासक लोग (अनूषत) स्तुति करते हैं (हरिं) अज्ञान नाशक (हिन्वन्ति) प्रेम दर्शाते है (अद्रिभिः) आदरणीय [स्तुतियों] से (इन्दुं) ऐश्वर्यशाली के लिए (इन्द्राय) जीव को (पीतये) रक्षा के लिए ॥६॥

भावार्थ—उपासक लोग स्तुति करते हैं तथा जीवात्मा की रक्षा के निमित्त अज्ञाननाशक तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर के प्रति आदरणीय स्तुतियों से प्रेम दर्शाते हैं ॥६॥

९०४—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥१॥

पदार्थ—(हिन्वन्ति) प्राप्त होते हैं (सूरम्) सूर्य को (उस्रयः) गमनशील (स्वसारः) स्वयं फैलनेवाले (जामयः) जल (पतिं) पालक (महां) महान् (इन्दुं) परमेश्वर को (महीयुवः) महत्त्व चाहनेवाले ॥१॥

भावार्थ—गमनशील, अपने आप फैलनेवाले जल सूर्य को प्राप्त होते हैं और महत्त्व चाहनेवाले भक्त जन महान् परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ॥१॥

९०५—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विश ॥२॥

पदार्थ—(पवमान) हे शुद्धस्वरूप (रुचारुचा) सारी शक्ति से (देव) हे देव (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (विश्वा) समस्त (वसूनि) संपदाएँ (आविश) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमात्मदेव ! सृष्टिकर्त्ता तू विद्वानों के लिए अपनी शक्ति से सारी संपदाएँ प्रदान कर ॥२॥

९०६—भृगुर्जमदग्निर्वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (सुष्टुतिं) प्रशंसनीय (वृष्टिं) वर्षा (देवेभ्यः) सारे दिव्य पदार्थों के (दुवः) लाभ के लिये (इषे) अन्न के निमित्त (पवस्व) कर (संयतं) नियमित ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू सारे दिव्य पदार्थों के लाभ तथा अन्न के निमित्त प्रशंसनीय और नियमित वर्षा कर ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

९०७—सुतंभरः । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २. ३ १ २र ३ २ ३ १ २
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—(जनस्य) प्रजा का (गोपाः) रक्षक (अजनिष्ट) उत्पन्न करता है (जागृविः) सदा सावधान (अग्निः) परमेश्वर (सुदक्षः) शोभन पराक्रमवाला (सुविताय) कल्याण के लिए (नव्यसे) नवीन (घृतप्रतीकः) जल आदि पदार्थ जिसका अनुमान कराते हैं वह (बृहता) महान् (दिविस्पृशा) दिव्य गुणों से युक्त शक्ति से (द्युमत्) प्रकाशस्वरूप (वि) विशेष रूप से (भाति) प्रकाश कर रहा है (भरतेभ्यः) मनुष्यों के लिए (शुचिः) शुद्धस्वरूप ॥१॥

भावार्थ—प्रजा की रक्षा करनेवाला, सदा सावधान, तथा शोभन पराक्रमवाला परमेश्वर नित्य नये कल्याण के लिए संसार को पैदा करता है। जल आदि (जगत् गत) पदार्थों से उसका अनुमान होता है। वह शुद्ध एवं प्रकाशस्वरूप है। वह अपनी महान् दिव्य शक्तियों से मनुष्य मात्र को प्रकाश देता है ॥१॥

९०८—सुतंभरः । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दं च्छिश्रियाणं वने वने ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमंगिरः ॥२॥

पदार्थ—(त्वां) तुझे (अग्ने) हे परमेश्वर (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (गुहाहितं) अन्तःकरण में निहित [स्थित] (अन्वविदन्) प्राप्त करते हैं (शिश्रियाणं) व्यापक रूप से विद्यमान (वने वने) प्रत्येक कारण द्रव्य में (सः) वह तू (जायसे) उत्पन्न करता है (मथ्यमानः) ध्यान से अन्वेषण किया हुआ (सहः) बल (महत्) महान् (त्वां) तुझे (आहुः) कहते हैं [ज्ञानी लोग] (सहसः) बल का (पुत्रं) सबका रक्षक (अङ्गिरः) हे सर्वान्तर्यामी [सब सृष्टि के अंगी पदार्थों में रमण करने वाला] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग सबके हृदय-देश में स्थित तथा प्रत्येक कारण द्रव्य में व्यापक तुझे प्राप्त करते हैं। हे सर्वान्तर्यामिन्, ध्यान के द्वारा अन्वेषण किया गया तू सब बलों से बड़े बल, आत्मबल को उत्पन्न करता है। ज्ञानी लोग तुझे सबका रक्षक कहते हैं ॥२॥

९०९—सुतंभरः । अग्निः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—(यज्ञस्य) ज्ञानयज्ञ के (केतुं) जतानेवाले (प्रथमं) आदि कारण (पुरोहितं) सबके हितकारी (अग्निं) परमेश्वर को (नरः) उपासक मनुष्य (त्रिषधस्थे) तीन शरीरों [स्थूल,सूक्ष्म, और कारण] में स्थित आत्मा में (समिन्धते) साक्षात् करते हैं (इन्द्रेण) जीवात्मा के साथ (देवैः) देवों [पृथिव्यादि ३३ देव] के साथ (सरथं) प्रकृति अथवा संसाररूप रथ पर विद्यमान (स) वह परमेश्वर (बर्हिषि) हृदयरूप आकाश में (सीदन्) विराजमान होता हुआ (नि) निश्चय (होता) कर्मफलों का दाता (यजथाय) साक्षात्कार किए जाने के लिए (सुक्रतुः) महान् ज्ञानी ॥३॥

भावार्थ—उपासक मनुष्य ज्ञान-यज्ञ के जताने वाले, आदि-कारण, सबके हितकारी तथा जीवात्मा और सब (तेंतीस) देव के साथ प्रकृति रूप रथ पर विद्यमान परमेश्वर का जीवात्मा में साक्षात्कार करते हैं। कर्मफलदाता, महान् ज्ञानी वह हृदयाकाश में स्थित होता हुआ साक्षात् किए जाने के योग्य होता है ॥३॥

९१०—गृत्समदः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र २उ ३ १ २ ३ १ २
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—(अयं) यह (वां) इन दोनों (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के द्वारा (सुतः) उत्पन्न होता है (सोमः) सोमलता आदि वनस्पति (ऋतावृधा) जल को बढ़ानेवाले (मम) मेरे (इत) ही (इह) इस संसार में (श्रुतं) सुनाते हैं (सुनने के योग्य करते हैं) (हवम्) शब्द को ॥१॥

भावार्थ—जल को बढ़ानेवाले प्राण और उदान के द्वारा ये सोमलता आदि

वनस्पति उत्पन्न होते हैं । इस संसार में वे दोनों हमारे शब्द को सबके सुनने योग्य बनाते हैं ।।१।

९११—गृत्समदः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ।।२।।

पदार्थ—(**राजानौ**) प्रकाशमान (**अनभिद्रुहा**) परस्पर एक दूसरे को हानि न पहुँचानेवाले (**ध्रुवे**) निश्चित (**सदसि**) स्थान (**उत्तमे**) श्रेष्ठ (**सहस्रस्थूणे**) अनेक स्तम्भों वाले [संसार में] (**आशाते**) व्यापक होते हैं ।।२।।

भावार्थ—परस्पर हानि न पहुँचाने वाले प्रकाशमान प्राण और उदान वायुएँ सनातन असंख्य स्तम्भों वाले तथा उत्तम संसार रूप स्थान में व्यापक होते हैं ।।२।।

९१२—गृत्समदः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ।।३।।

पदार्थ—(**तौ**) वे दोनों (**सम्राजौ**) भूगोलादि में विराजमान (**घृतासुती**) जल के उत्पन्न करने वाले (**आदित्या**) प्रकृति से पैदा होनेवाले (**दानुनस्पती**) सारे व्यवहारों के रक्षक (**सचेते**) साथ रहते हैं (**अनवह्वरम्**) सरलता से ।।३।।

भावार्थ—भूगोल आदि में विराजमान, जल को उत्पन्न करनेवाले, प्रकृति से उत्पन्न तथा सारे व्यवहारों के रक्षक प्राण और उदान सरलता से साथ मिल जाते हैं ।।३।।

९१३—गोतमः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ।।१।।

पदार्थ—(**इन्द्रः**) परमेश्वर (**दधीचः**) वाणी की (**अस्थभिः**) समिधाओं [शब्द, अर्थ और ज्ञानरूप] (**वृत्राणि**) अज्ञानों को (**अप्रतिष्कुतः**) एकरस (**जघान**) नाश करता है (**नवतेः**) नव के पहाड़े पर्यन्त नब्बे [९०] को (**नव**) नव के समान ।।१।।

भावार्थ—सदा एकरस परमेश्वर वेदवाणी की समिधाओं से नब्बे पर्यन्त नव के पहाड़े की संख्याओं के नव के समान अज्ञान का नाश करता है ।।१।।

९१४—गोतमः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ।।२।।

पदार्थ—(**इच्छन्**) चाहता हुआ (**अश्वस्य**) अग्नि के (**यत्**) जो (**शिरः**) श्रेष्ठभाग विद्युत् (**पर्वतेषु**) मेघों में (**अपश्रितम्**) छिपी हुई (**तत्**) उसको (**विदत्**) प्राप्त करता है (**शर्यणावति**) अन्तरिक्ष में ।।२।।

भावार्थ—वैज्ञानिक पुरुष मेघों में छिपी हुई अग्नि के श्रेष्ठभाग बिजली को जानने की इच्छा करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त करता है ।।२।।

९१५—गोतमः । इन्द्रः । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २ ३ २

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।।३।।

पदार्थ—(**अत्र**) इस जगत् में (**अह**) प्रसिद्ध (**गोः**) पृथिवी के (**अमन्वत**) मानते हैं (**नाम**) नाम को (**त्वष्टुः**) सूर्य के (**अपीच्यं**) छिपे हुए (**इत्था**) इस प्रकार (**चन्द्रमसः**) चन्द्रमा के (**गृहे**) मण्डल में ।।३।।

भावार्थ—विद्वान् लोग पृथिवी, सूर्य और चन्द्रमा के मण्डल में ईश्वर का ही नाम अन्तर्निहित है, ऐसा मानते हैं ।।३।।

९१६—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ।।१।।

पदार्थ—(**इयं**) यह (**वाम्**) तुम दोनों के लिए (**अस्य**) इस (**मन्मनः**) मेरे मन की (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**पूर्व्यस्तुतिः**) मुख्यस्तुति (**अभ्राद्**) मेघ से (**वृष्टिः**) वृष्टि के (**इव**) समान (**अजनि**) उत्पन्न होती है ।।१।।

भावार्थ—हे मुक्त जीव और परमेश्वर! मेरे मन से ये आप लोगों की स्तुतियां मेघ से वृष्टि के समान स्वभावतः उत्पन्न होती हैं ।।१।।

९१७—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ।।२।।

पदार्थ—(**शृणुतं**) सुनते हैं (**जरितुः**) स्तुति करनेवाले की (**हवं**) पुकार को (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**वनतं**) स्वीकार करते हैं (**गिरः**) स्तुतियां (**ईशाना**) स्वामी (**पिप्यतं**) पूर्ण करते हैं (**धियः**) कर्मों को ।।२।।

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! तुम दोनों स्तुति करनेवाले की पुकार को सुनते हो, स्तुतियां स्वीकार करते हो तथा कर्मों को पूर्ण करते हो ।।२।।

९१८—वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ।।३।।

पदार्थ—(**मा**) नहीं (**पापत्वाय**) पापाचरण की (**नः**) हमारे द्वारा (**नरा**) हे नेता (**इन्द्राग्नी**) हे जीव और परमेश्वर (**मा**) नहीं (**अभिशस्तये**) हिंसा की (**मा**) नहीं (**नः**) हमारे द्वारा (**अरीरधत**) सिद्ध होने दें (**निदे**) निन्दा की ।।३।।

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर! आप दोनों हमारे द्वारा पापाचरण, हिंसा और निन्दा की सिद्धि न होने दें ।।३।।

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

९१९—दृढच्युतः । सोमः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ।।१।।

पदार्थ—(**पवस्व**) व्यापक होता है (**दक्षसाधनः**) बलदाता (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**पीतये**) रक्षा के लिए (**हरे**) हे दुःख के हर्त्ता (**मरुद्भ्यः**) ऋत्विजों के लिए (**वायवे**) वायु के लिये (**मदः**) आनन्दकारी ।।१।।

भावार्थ—हे दुःखहर्त्ता परमेश्वर ! बलदाता तथा आनन्दकारी तू विद्वान्, ऋत्विज् तथा वायु आदि की रक्षा के लिए सर्वत्र व्यापक हो रहा है ।।१।।

९२०—दृढच्युतः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । पवमानो अदाभ्यः ।।२।।

पदार्थ—(**सं**) सम्यक् (**देवैः**) जीवों के (**शोभते**) सुशोभित होता है (**वृषा**) सुखों की वर्षा करनेवाला (**कविः**) वेदज्ञान का दाता (**योनौ**) जगत्-कारण प्रकृति पर (**अधि**) अधिष्ठाता रूप से (**प्रियः**) प्रिय (**पवमानः**) पवित्रकर्त्ता (**अदाभ्यः**) नित्य ।।२।।

भावार्थ—सुखों की वर्षा करनेवाला, वेदज्ञान का दाता, प्रिय, पवित्रकर्त्ता तथा नित्य परमेश्वर जीवों के साथ जगत् के कारण प्रकृति पर अधिष्ठाता होता हुआ विराजमान है ।।२।।

९२१—दृढच्युतः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २ १ २ ३ २ २र

पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमारुहः ।।३।।

पदार्थ—(**पवमान**) हे पवित्रात्मा (**धिया**) कर्म के द्वारा (**हितः**) हितकारी (**अभि**) उद्देश्य से (**योनिं**) आदिकारण परमेश्वर के (**कनिक्रदत्**) उपदेश करता हुआ (**धर्मणा**) धर्म से (**वायुं**) वायु पर (**आरुहः**) चढ़ता है ।।३।।

भावार्थ—हे पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष ! कर्म के द्वारा सब का हितकारी तु परमात्मा को लक्ष्य में रखकर उपदेश करता हुआ धर्म से वायु पर चढ़ता है, अर्थात् उन्नत होता है ।।३।।

९२२—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २

पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति तां इहि ।।१।।

पदार्थ—(**तव**) तेरी (**अहं**) मैं (**सोम**) हे विद्वान् पुरुष (**रारण**) आनन्द करता हूँ (**सख्ये**) मित्रता में (**इन्दो**) विद्या के धनी (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**पुरूणि**) बहुत [विघ्ने] (**बभ्रो**) हे पोषण करनेवाले (**नि चरन्ति**) बाधा रूप से उपस्थित होते हैं (**मां**) मुझे (**अव**) उलटे (**परिधीन्**) आवरणों को (**अति**) अतिक्रमण (**तां**) उनका (**इहि**) कर ।।१।।

भावार्थ—हे पोषण करनेवाले विद्या के धनी विद्वान् पुरुष ! मैं प्रतिदिन तेरी मित्रता में सुखी रहता हूँ । कई बाधाएं मेरे सामने उपस्थित होती हैं । तू उन आवरणों को दूर कर ।।१।।

९२३—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ।।२।।

पदार्थ—(**तव**) तेरे (**अहं**) मैं (**नक्तम्**) रात्रि में (**उत**) और (**सोम**) हे परमेश्वर (**ते**) तेरे [ज्ञान] का (**दिवा**) दिन में (**दुहानः**) दोहन करता हुआ (**बभ्रो**) हे विश्वम्भर (**ऊधनि**) समीप (**घृणा**) तेज से (**तपन्तं**) तपते हुए (**अति**) अत्यन्त (**सूर्यं**) सूर्य को (**परः**) सबसे परे स्थित (**शकुना**) पक्षियों के (**इव**) समान (**पप्तिम**) प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थ—हे विश्वम्भर परमेश्वर ! तू सबसे परे है। रात और दिन तेरे ज्ञान का दोहन करता हुआ मैं तेरे समीप तेज से अत्यन्त तपते हुए सूर्य को पक्षी विशेष की भांति पहुँचता हूँ ॥२॥

९२४—बृहन्मतिः । सोमः । बृहती ।

१ १२ ३२उ ३२३१२ ३२३१२३१२

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ।१।

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करनेवाला (अक्रमीत्) पार करता है (अभि) सब प्रकार से (विश्वा) सारे (मृधः) सांसारिक संग्रामों को (विचर्षणिः) विशेष ज्ञानी को (धीतिभिः) प्रशंसाओं से ॥१॥

भावार्थ—इस संसार को पवित्र करनेवाला जो विशेष ज्ञानी पुरुष सारे संसारी संग्रामों को पार करता है, उस मेधावी को सब लोग प्रशंसाओं से सुशोभित करते हैं ॥१॥

९२५—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३१२३२३२३१२३२ ३१ २र

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (योनिम्) निमित्त कारण परमेश्वर को (अरुणः) तेजस्वी (रुहत) प्राप्त करने के लिए ऊपर उठता है (गमत्) प्राप्त होता है (इन्द्रः) परमेश्वर (वृषा) कामनाओं को सफल करने वाला (सुतम्) पुत्र रूप (ध्रुवे) निश्चित या दृढ़ (सदसि) मोक्ष धाम में (सीदतु) स्थित होता है ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी विद्वान् पुरुष निमित्त कारण परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए ऊपर उठता है। कामनाओं को सफल करनेवाला परमेश्वर पुत्र रूप में उसे प्राप्त होता है। तदनन्तर वह विद्वान् पुरुष मोक्ष धाम में विराजमान होता है ॥२॥

९२६—बृहन्मतिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३२३१२ ३ १२ ३१२ १२ ३१२

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थ—(नू) शीघ्र (नः) हमारी (रयिं) संपदाएं (महां) महान् (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (अस्मभ्यम्) हमें (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सर्व प्रकार से (आपवस्व) प्राप्त करा (सहस्रिणं) असंख्य ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू हमें हमारी असंख्य और महान् संपदाएं सब ओर से प्राप्त करा ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डःसमाप्तः 卐

९२७—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

२ ३ १२ ३१२ ३१२३१२ ३१२

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्य्यश्वाद्रिः ।

१२३२ ३ १२३१२

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

पदार्थ—(पिबा) रक्षा करता है (सोमं) विद्वान् की (इन्द्र) हे परमेश्वर (मन्दतु) स्तुति करें (त्वा) तेरी (यं) जिस (ते) तेरे लिए (सुषाव) यज्ञादि करता है (हर्यश्व) हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक (अद्रिः) आदरणीय (सोतुः) हांकनेवाले के (बाहुभ्याम्) हाथों से (सुयतः) नियन्त्रित (न) समान (अर्वा) घोड़े के ॥१॥

भावार्थ— हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक परमेश्वर ! तू जिस विद्वान् पुरुष की रक्षा करता है वह तेरी स्तुति करता है और हांकनेवाले के हाथों से नियन्त्रित अश्व के समान तेरी प्राप्ति के लिए यज्ञादि शुभकर्मों को करता है ॥१॥

९२८—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

१३२३२३२३२३१२३१२ ३१२

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।

३ २र

स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (ते) तेरा (मदः) स्तुति करनेवाला (युज्यः) योग्य (चारुः) सुन्दर (अस्ति) है (येन) जिसके द्वारा (वृत्राणि) अज्ञानों को (हर्यश्व) हे अज्ञाननाशक तथा व्यापक (हंसि) नष्ट करता है (स) वह (त्वां) तुझे (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्रभूवसो) सबको वास देनेवाले (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥२॥

भावार्थ—हे अज्ञाननाशक, सर्वव्यापक तथा सबको वसानेवाले परमेश्वर ! योग्य तथा सुन्दर जो व्यक्ति तेरी स्तुति करनेवाला है, जिसके द्वारा तू सब जनता के अज्ञानों का नाश करता है, वह तुझे स्तुतियों से प्रसन्न करे ॥२॥

९२९—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

२३१२ ३२३२उ ३१२३१२३१२

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

२१ २र ३१२

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

पदार्थ—(बोधा) जानता है (सु) अच्छी तरह (मे) मेरी (मघवन्) हे सम्पूर्ण यज्ञों के स्वामी (वाचं) वाणी को (आ) सब प्रकार से (इमां) इस (यां) जिसको (ते) तेरे विषय की (वसिष्ठः) महान् विद्वान् (अर्चति) करता है (प्रशस्ति) स्तुति को (इमा) इन (ब्रह्म) वेद द्वारा की जानेवाली स्तुतियों को (सधमादे) उपासना (जुषस्व) स्वीकार करते हो ॥३॥

भावार्थ—हे सकल यज्ञों के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् पुरुष तेरे विषय की जो स्तुति करता है उसको और इस मेरी प्रार्थना को भी तू भली भांति जानता है। तू उपासनागृह में की हुई वैदिक स्तुतियों को स्वीकार करता है ॥३॥

९३०—रेभः । इन्द्रः । अतिजगती ।

२ ३ १२ ३१२३१२३१२ ३१२ ३१२३१२

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

२३१२ ३२३१२३१ २र ३१२ ३ १२

क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

पदार्थ—(विश्वाः) सारे (पृतनाः) संग्रामों को (अभिभूतरं) अभिभव करने वाली (नरः) मनुष्य लोग (सजूः) एक साथ (ततक्षुः) तीक्ष्ण करते हैं (इन्द्रं) विद्युत् को (जजनुः) उत्पन्न करते हैं (च) और (राजसे) प्रकाश के लिए (क्रत्वे) क्रियाओं के साधन के लिये (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थिर स्थान में (आमुरीम्) सामने मारने वाली (उत) तथा (उग्रं) स्वभाव से तेज (ओजिष्ठं) अत्यन्त बलवान् (तरसं) चंचल (तरस्विनम्) वेग युक्त ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य लोग एकत्र होकर श्रेष्ठ क्रियाओं की सिद्धि के लिए स्थिर स्थान में सारे संग्रामों को नीचा दिखाने वाली, सब तरफ से मारने वाली, स्वभाव से तेज, बलवान्, चंचल तथा वेगवाली विद्युत् को तीव्र करते हैं और प्रकाश के लिए उत्पन्न करते हैं ॥१॥

९३१—रेभः । इन्द्रः । उपरिष्टात् बृहती ।

३१२ ३१२ ३१ २र १२

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।

३१ २ ३२उ ३१२ ३२३१ २र

सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥२॥

पदार्थ—(नेमिं) दुष्टों के लिए वज्ररूप (नमन्ति)नमस्कार करते हैं (चक्षसा) स्तुति से (मेषं) वेदों का उपदेश करनेवाले (विप्राः) ज्ञानीजन (अभिस्वरे) स्तुतिमय यज्ञ में (सुदीतयः) तेजस्वी (वः) तुम लोग (अद्रुहः) द्रोहरहित (अपि) भी (कर्णे) कान में (तरस्विनः) कर्त्तव्यपालन में तत्पर (सं) सम्यक् (ऋक्वभिः) मन्त्रों से ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! मेधावी जन स्तुति के द्वारा उपासनारूप यज्ञ में दुष्टों के लिए वज्ररूप तथा वेदों का उपदेश करनेवाले परमेश्वर को नमस्कार करते हैं। तेजस्वी किसी से द्रोह न करनेवाले और कर्त्तव्यपालन में तत्पर तुम लोग भी मन्त्रों से उसकी स्तुति कर्णगोचर करो ॥२॥

९३२—रेभः । इन्द्रः । उपरिष्टाद् बृहती ।

१२ ३१२ ३ २३१२ ३१२

समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।

२र ३ १२३२३१२३१२३२३१२

स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥

पदार्थ—(सम) सम्यक् (उ) निश्चित (रेभासः) उपासक (अस्वरन्) स्तुति करते हैं (इन्द्रं) परमेश्वर की (सोमस्य) शरीर और आत्मबल का (पीतये) रक्षा के लिए (स्वःपति) सब सुखों का स्वामी (यत् ई) जिस कारण से (वृधे) हमारी उन्नति के लिए (धृतव्रतः) नियमों का धारण करनेवाला (हि) निश्चय ही (ओजसा) शक्ति से (सम्) सम्यक् प्रकार से (ऊतिभिः) रक्षाओं से ॥३॥

भावार्थ—क्योंकि वह सारे सुखों का स्वामी, हमारी उन्नति के लिए सब नियमों का धारण करने वाला तथा सारी शक्ति और रक्षाओं से युक्त है, इसलिए उपासक लोग शरीर और आत्मबल की रक्षा के लिये उस परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं ॥३॥

९३३—पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।

१ २र ३ २उ ३१२३१२

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।

१ २ ३१२र ३२ ३१२३२ ३२

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (राजा) राजा है (चर्षणीनां) मनुष्यों का (याता) चढ़ाई करने वाला (रथेभिः) रथों से (अध्रिगुः) स्वतन्त्र (विश्वासां) सारे (तरुता) पार करने वाला (पृतनानां) संग्रामों को (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ को (यः) जो (वृत्रहा) विघ्नों का हनन करने वाला (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—स्वतंत्र जो शासक मनुष्यों का राजा, रथ आदि यानों से शत्रु पर चढ़ाई करने वाला, सारे संग्रामों को पार करने वाला तथा विघ्नों का संहारकर्त्ता है उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

९३४—पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः ।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ र

हस्तेन वज्रः प्रतिधायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्द्रम्**) शासन करने वाले (**तं**) उसको (**शुम्भ**) सुशोभित कर (**पुरुहन्मन्**) हे बहुतों के संहार करने वाले सेनापति (**अवसे**) रक्षा के लिए (**यस्य**) जिसका (**द्विता**) दो प्रकार से (**विधर्तरि**) अनेक प्रकार से धारण करने वाले ब्रह्माण्ड में (**हस्तेन**) हाथ से (**वज्रः**) शस्त्र को (**प्रतिधायि**) धारण किया है (**दर्शतः**) दर्शन के योग्य (**महान्**) बड़ा (**देवः**) उत्तम गुण वाला (**न**) समान (**सूर्यः**) सूर्य के ॥२॥

भावार्थ—हे बहुतों का संहार करने वाले सेनापते ! तू उस इन्द्र को सुशोभित कर जिसने प्रजा की रक्षा के लिए हस्त से शस्त्र धारण किया है तथा संसार में दर्शनीय, महान् देव सूर्य के समान रक्षा और तेज को धारण कर वर्तमान है ॥२॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

९३५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१॥

पदार्थ—(**परि**) सब प्रकार से (**प्रिया**) प्रिय (**दिवः**) विज्ञानवान् के लिए (**कविः**) वेदरूपी काव्य का करने वाला (**वयांसि**) आयुओं को (**नप्त्योः**) द्युलोक और पृथिवी लोक की (**हितः**) हितकारी (**स्वानैः**) वेद के शब्दों द्वारा (**याति**) ज्ञान कराता है (**कविक्रतुः**) महान् ज्ञानी ॥१॥

भावार्थ—संसार का कल्याण करने वाला, महान् ज्ञानी तथा वेदरूपी काव्य का कर्त्ता परमेश्वर विज्ञानी पुरुष को द्यु और पृथिवी लोक मे स्थित सभी पदार्थों की आयुओं का वेदों के द्वारा ज्ञान कराता है ॥१॥

९३६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥२॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**सूनुः**) सृष्टिकर्त्ता (**मातरा**) रक्षा करने वाले (**शुचिः**) शुद्धस्वरूप (**जातः**) उत्पन्न मात्र की (**जाते**) उत्पन्न हुए (**अरोचयत्**) प्रकाशित करता है (**महान्**) सबसे बड़ा (**मही**) द्यु और पृथिवी लोकों को (**ऋतावृधा**) सत्य नियम से बढ़ने वाले ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता शुद्धस्वरूप महान् परमेश्वर उत्पन्नमात्र की माता तथा स्वयं उत्पन्न और सत्य नियम पर बढ़ने वाले और द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता है ॥२॥

९३७—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**प्र**) उत्तम (**क्षयाय**) आश्रय चाहने वाले (**पन्यसे**) व्यवहार करने वाले (**जनाय**) जन के लिए (**जुष्टः**) भक्ति द्वारा सेवित (**अद्रुहः**) द्रोह न करने वाला (**वीति**) ज्ञानप्राप्ति के लिए (**अर्ष**) प्राप्त होता है (**पनिष्टये**) स्तुति की सिद्धि के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रीतिपूर्वक सेवित तू निवास और सम्पूर्ण व्यवहार की सिद्धि चाहने वाले तथा द्रोहरहित मनुष्य को स्तुति और ज्ञान की सिद्धि के लिए प्राप्त होता है ॥१॥

९३८—शक्तिः । सोमः । ककुप् ।

२ ३क १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥१॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**हि**) निश्चय (**अङ्ग**) शीघ्र (**दैव्य**) हे दिव्य गुणसम्पन्न (**पवमान**) हे पवित्रात्मा (**जनिमानि**) अनेक जन्मों को (**द्युमत्तमः**) तेजस्वी (**अमृतत्वाय**) मोक्ष की प्राप्ति के लिए (**घोषयन्**) बतलाता हुआ ॥१॥

भावार्थ—हे दिव्य गुणसम्पन्न पवित्रात्मा योगिन् ! तेजस्वी तू अपने पूर्व जन्मों को योग द्वारा प्रकट करता हुआ शीघ्र ही मोक्षप्राप्ति के लिए समर्थ होता है ॥१॥

९३९—ऊरुः । सोमः । सतोबृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥

पदार्थ—(**येन**) जिस [परमेश्वर] से (**नवग्वा**) नवीन किरणों वाला (**दध्यङ्**) सूर्य (**अपोर्णुते**) अपने प्रकाश का विस्तार करता है (**येन**) जिससे (**विप्रासः**) मेधावी जन (**आपिरे**) बल प्राप्त करते हैं (**देवानां**) ज्ञानियों के (**सुम्ने**) सुख में स्थित (**अमृतस्य**) मोक्ष का (**चारुणः**) उत्तम (**येन**) जिससे (**श्रवांसि**) यश (**आशत**) प्राप्त करते हैं । वह हमारी रक्षा करे ॥२॥

भावार्थ—जिस परमेश्वर की शक्ति से नवीन किरणों वाला सूर्य अपने प्रकाश का विस्तार करता है तथा जिसकी कृपा से दिव्य सुख में विद्यमान ज्ञानी लोग शक्ति का संचय करते हैं तथा जिसकी दया से उत्तम मोक्ष का यश प्राप्त करते हैं, वह परमेश्वर हमारी रक्षा करे ॥२॥

९४०—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१॥

पदार्थ—(**सोमः**) परमेश्वर (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**ऊर्मिणा**) प्रकाश से (**अव्यं**) प्रकृति से उत्पन्न (**वारं**) आवरण [अज्ञानान्धकार] को (**वि धावति**) शुद्ध कर देता है (**अग्रे**) सृष्टि के आदि में (**वाचः**) वेदवाणी का (**पवमानः**) शुद्धस्वरूप (**कनिक्रदत्**) उपदेश करता हुआ है ॥१॥

भावार्थ—सबको पवित्र करने वाला शुद्धस्वरूप परमेश्वर सृष्टि के आदि में वेदवाणी का उपदेश करता हुआ ज्ञान के प्रकाश से प्रकृति से उत्पन्न हुए आवरण—अज्ञान को धो देता है ॥१॥

९४१—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—(**धीभिः**) ज्ञान तथा कर्म के द्वारा (**मृजन्ति**) अपने को पवित्र करते हैं (**वाजिन**) ज्ञानवान् (**वने**) कारणरूप [परमाणुओं के] वन में (**क्रीडन्तं**) क्रीडा करने वाले (**अत्यविम्**) प्रकृति से परे (**अभि**) उद्देश्य में रखकर (**त्रिपृष्ठं**) तीन प्रकारों [उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय] वाले नाना लोकों वाले (**मतयः**) मेधावी जन (**समस्वरन्**) सम्यक् प्रकार से स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—मेधावीजन ज्ञानवान् कारण वन में क्रीडा करने वाले प्रकृति से परे तथा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय से युक्त नाना लोकों के स्वामी परमेश्वर की स्तुति करते हुए अपने को पवित्र करते हैं ॥२॥

९४२—अग्निः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

असर्जि कलशां अभि मीढ्वान् सप्तिर्न वाजयुः ।

३ १ २र ३ १ २

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥३॥

पदार्थ—(**असर्जि**) उत्पन्न करता है [रचता है] (**कलशान्**) विभूति वालों का (**अभि**) सब प्रकार से (**मीढ्वान्**) बलवान् (**सप्तिः**) वायु के (**न**) समान (**वाजयुः**) अन्न आदि का दाता (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**वाचं**) वाणी को (**जनयन्**) उत्पन्न कराता हुआ (**असिष्यदत्**) आनन्द का स्रोत बहाता है ॥३॥

भावार्थ—वायु के समान बलवान्, अन्न आदि का दाता तथा सबको पवित्र करने वाला परमेश्वर वेदवाणी को उत्पन्न करता हुआ विभूति वाले पदार्थों को रचता और आनन्द की धारा बहाता है ॥३॥

९४३—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥१॥

पदार्थ—(**सोमः**) आत्मा (**पवते**) गति करता है (**जनिता**) प्रकाशक (**मतीनां**) अनेक बुद्धियों का अथवा प्रकाश करनेवाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**दिवो**) दिव्य गुणयुक्त या विषयों का प्रकाश करने वाली इन्द्रियों का (**पृथिव्याः**) बाह्य ज्ञान का विस्तार करनेवाली या विस्तृत विषयोंवाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**अग्नेः**) गतिकर्मवाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**सूर्यस्य**) विषयों में प्रेरणा करनेवाली या प्रेरित होनेवाली (**जनिता**) प्रकाशक (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यशाली इन्द्रियों का (**जनिता**) प्रकाशक (**विष्णोः**) विषयों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों का ॥१॥

भावार्थ—विषय ज्ञान का प्रकाश करनेवाली, पदार्थों की पोषक, बाह्यज्ञान का विस्तार करनेवाली, गतिशील, विषयों में प्रेरित होनेवाली, ऐश्वर्यशाली तथा विषयों में व्याप्त होनेवाली इन्द्रियों का प्रकाशक जीवात्मा गति प्रदान करता है ॥१॥

९४४—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२॥

पदार्थ—(ब्रह्मा) महान् ज्ञानी या बड़ा है (देवानां) समस्त दिव्य पदार्थों में (पदवीः) पथ-प्रदर्शक (कवीनां) मेधावियों का (ऋषिः) वेद के अर्थ का ज्ञाता (विप्राणां) वेद-ज्ञाताओं में (महिषः) महान् (मृगाणां) अन्वेषण कर्त्ताओं में (श्येनः) महान् ज्ञाता (गृध्राणां) ज्ञान गुणवालों में (स्वधितिः) पोषण करनेवाला (वनानां) भक्ति करनेवालों का (सोमः) परमेश्वर (पवित्रम्) समस्त सूर्य, अग्नि आदि पदार्थों से (अत्येति) परे है (रेभन्) स्तुति किया जाता हुआ ।।२।।

भावार्थ—सकल दिव्य पदार्थों का महान् ज्ञानी, बुद्धिमानों का पथप्रदर्शक वेदज्ञाताओं का ऋषि, खोज करनेवालों में सबसे महान्, ज्ञान गुण वालों में महान् ज्ञाता तथा भक्तों का पालक स्तुति योग्य परमेश्वर सूर्य आदि समस्त पदार्थों से परे है ।।२।।

९४५—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिरः स्तोमान् पवमानो मनीषाः ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ।।३।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (अवीविपत्) प्रेरित करता है (वाचः) वाणियों को (ऊर्मि) लहर के (न) समान (सिन्धुः) समुद्र (गिरःस्तोमान्) स्तुति-समूहों को (पवमानः) शुद्धस्वरूप (मनीषाः) बुद्धियों को (अन्तः) अन्तर्यामी रूप से (पश्यन्) साक्षी (वृजना) चलने फिरने के व्यवहार के योग्य (इमा) इन (अवराणि) पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों का (आतिष्ठति) अधिष्ठाता हो रहा है (वृषभः) कामनाओं को पूर्ण करनेवाला (गोषु) सूर्य आदि सकल पदार्थों को (जानन्) जानता हुआ ।।३।।

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, सारी कामनाओं को सफल करनेवाला परमेश्वर लहर को समुद्र के समान वाणियां, स्तुति-समूह तथा ज्ञानों को प्रेरित करता है तथा अन्तर्यामी रूप से सूर्य आदि लोकों का साक्षी वह इन व्यवहार के साधक पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों का अधिष्ठाता हो रहा है ।।३।।

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

९४६—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
अग्नि वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।।१।।

पदार्थ—(अग्नि) आचार्य के समीप (वः) तुम लोग (वृहन्तम्) बढ़ानेवाले (अध्वराणां) अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञों के (पुरूतमम्) महान् विद्वान् (अच्छा) अच्छी तरह से (नप्त्रे) पुत्र-पौत्र आदि का (सहस्वते) वीर और विद्वान् बनाने के लिए ।।१।।

भावार्थ– हे मनुष्यो ! तुम लोग अपने पुत्र, पौत्र आदि को बलवान् विद्वान् बनाने के लिए शिक्षा यज्ञ की वृद्धि करनेवाले महान् विद्वान् आचार्य की सेवा में उपस्थित होओ ।।१।।

९४७—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ।।२।।

पदार्थ—(अयं) यह (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (आ भुवत्) कर्त्ता होता है (त्वष्टा) बढ़ई के (रूपा) रूपों का (इव) समान (तक्ष्या) काष्ठों के (अस्य) इसके (क्रत्वा) ज्ञान से (यशस्वतः) यशस्वी होते हैं ।।२।।

भावार्थ—जिस प्रकार काष्ठों के विविध रूपों को बढ़ई बनाता है उसी प्रकार परमेश्वर हमारे नाना रूपों को बनाता है। उसी के ज्ञान से हम यशस्वी होते हैं ।।२।।

९४८—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ।।३।।

पदार्थ—(अयं) यह (विश्वाः) सारी (अभि) सब प्रकार से (श्रियः) संपदाओं का (अग्निः) परमेश्वर (देवेषु) उत्तम गुणवाले मनुष्यों में (पत्यते) सम्पादन करता है (आ) सब प्रकार से (वाजैः) भोग्य पदार्थों के साथ (उप) समीप (नः) हमें (गमत्) प्राप्त हो ।।३।।

भावार्थ—परमेश्वर उत्तम गुणवालों को सारी संपदाएँ प्रदान करता है । वह हमें सकल भोग्य पदार्थों के साथ प्राप्त हो ।।३।।

९४९—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ।।१।।

पदार्थ—(इमम्) इस (इन्द्र) हे परमेश्वर (सुतं) पुत्ररूप जीव को (पिब) रक्षा कर (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ (अमर्त्यं) अमर (मदम्) आनन्द के भोक्ता (शुक्रस्य) शुद्ध (त्वा) तुझे (अभि) लक्ष्य कर (अक्षरन्) प्राप्त होती हैं (धाराः) वाणियाँ (ऋतस्य) यज्ञ के (सादने) स्थान में ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू श्रेष्ठ, अमर तथा सुख का उपभोग करनेवाले इस पुत्ररूप जीव की रक्षा कर। पवित्र यज्ञ के स्थान में वेदवाणियां तेरे ही उद्देश्य से की जाती हैं ।।१।।

९५०—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नकिष्टवद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नकिष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ।।२।।

पदार्थ—(नकिः) न कोई (त्वत्) तुझ से बढ़कर (रथीतरः) महारथी (हरी) वायु और अग्नि को (यत्) जिस कारण (इन्द्र) हे परमेश्वर (यच्छसे) नियम में रखता है (नकिः) कोई नहीं (त्वा अनु) तेरे समान (मज्मना) बल में (नकिः) कोई नहीं (स्वश्व) हे व्यापक (आनशे) प्राप्त कर सकता है ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि तू वायु और अग्नि को नियम में रखता है, इस कारण तुझ से बढ़कर कोई महारथी नहीं । तेरे समान भी कोई नहीं । हे व्यापक प्रभो ! तुझे शक्ति में भी कोई नहीं पा सकता ।।२।।

९५१—प्रयोगोऽग्निरादयश्च । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ १ २
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ।।३।।

पदार्थ—(इन्द्राय) परमेश्वर की (नूनम्) निश्चित ही (अर्चत) पूजा करो (उक्थानि) स्तोत्रों का (च) और (ब्रवीतन) उच्चारण करो (सुताः) पुत्र स्वरूप (अमत्सुः) आनन्द लाभ करते हैं (इन्दवः) विद्वान् जन (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ को (नमस्यता) नमस्कार करो (सहः) सबसे अधिक बलवान् ।।३।।

भावार्थ—हे मनुष्यो । तुम लोग निश्चित ही परमेश्वर की पूजा करो और उसके लिए स्तोत्रों का उच्चारण करो । पुत्रस्वरूप विद्वान् जन जिसमें आनन्द लाभ करते हैं । सबसे श्रेष्ठ तथा उस प्रभु को नमस्कार करो ।।३।।

९५२—ऋषिर्देवता छन्दश्च विचारणीयानि ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ।।१।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (जुषस्व) स्वीकार कर (प्र) उत्तम (वहा) प्राप्त करा (याहि) प्राप्त हो (शूर) हे सबसे अधिक बलवान् (हरिह) हे अज्ञाननाशक (पिबा) रक्षा कर (सुतस्य) उत्पन्न (मतिः) मेधावी के (न) समान (मधोः) विज्ञान का (चकानः) तृप्त करनेवाला होता है (चारुः) शोभन (मदाय) आनन्द के लिए ।।१।।

भावार्थ—हे सबसे बढ़कर बलवान्, तथा अज्ञाननाशक, परमेश्वर ! आनन्द से तृप्ति करनेवाला तथा शोभन तू हमारी प्रार्थना स्वीकार कर हमें ज्ञान दे और प्राप्त हो । मेधावी पुरुष के समान आनन्द की प्राप्ति के लिए हमारे उत्पन्न हुए ज्ञान की रक्षा कर ।।१।।

९५३—ऋषिदेवतादयो विचारणीयाः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
३ २ ३ २ ३ २क १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य सुतस्य स्वाऽ३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ।।२।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (जठरं) उत्पन्न जगत् को (नव्यं न) नये के समान (पृणस्व) व्यापकता से पूर्ण करता है (मधोः) उपासना की (दिवः न) विद्युत् के समान (अस्य) इस (सुतस्य) पुत्ररूप भक्त (स्वः न) सूर्य के समान (उप) समीप (त्वा) तेरे (मदाः) हर्षदायक (सुवाचः) मनोहर स्तुतियां (अस्थुः) उपस्थित हों ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान तू अपनी व्यापकता से उत्पन्न जगत् को नये की भांति पूर्ण करता है । इस पुत्ररूप भक्त की उपासना सम्बन्धी हर्षकारी स्तुतियाँ विद्युत् के समान तेरी सेवा में उपस्थित हों ।।२।।

९५४—ऋषिछन्दो देवतादयो विचारणीयाः ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
बिभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ।।३।।

पदार्थ—(**इन्द्रः**) शासन करनेवाला (**तुराषाट्**) हिंसकों का नाश करनेवाला (**मित्रो न**) सूर्य के समान (**जघान**) नाश करता है (**वृत्रं**) मेघ को (**यतिः न**) संन्यासी के समान (**बिभेद**) छिन्नभिन्न करता है (**बलं**) इन्द्रियों के बल को (**भृगुः न**) वीतराग के समान (**शत्रून्**) काम-क्रोध आदि शत्रुओं को (**ससाहे**) तिरस्कार करता है (**मदे**) आनन्द में (**सोमस्य**) परमेश्वर के ।।३।।

भावार्थ—हिंसकों का नाश करनेवाला राजा परमेश्वर के आनन्द में विद्यमान होकर मेघ को सूर्य के समान, इन्द्रिय-बल को संन्यासी के समान तथा काम-क्रोधादि शत्रुओं को वीतराग के समान अपने शत्रुओं का तिरस्कार करता है ।।३।।

सप्तमः खण्डः समाप्तः

卐 पंचमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

षष्ठोऽध्यायः

९५५—त्रय ऋषिगणाः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उपगिरेम आसते ।।

पदार्थ—(**गोवित्**) गाय आदि पशुओं का प्राप्त करानेवाला (**पवस्व**) पवित्र कर (**वसुवित्**) धन का दाता (**हिरण्यवित्**) सुवर्ण या प्रकाश का दाता (**रेतोधाः**) जल आदि का धारण करनेवाला (**इन्दो**) हे परम ऐश्वर्यवाले (**भुवनेषु**) लोकों में (**अर्पितः**) व्यापक (**त्वं**) तू (**सुवीरः**) अत्यन्त बलवान् (**असि**) है (**सोम**) हे परमेश्वर (**विश्वविद्**) सबका साक्षी (**तं**) उस (**त्वा**) तेरी (**नरः**) मनुष्य (**उप**) समीप (**गिरा**) स्तुति से (**इमे**) ये (**आसते**) उपस्थित होते हैं ।।१।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् ! परमेश्वर तू गौ आदि पशुओं, धन तथा सुवर्ण आदि का दाता है । जल आदि द्रव्यों का धारण करनेवाला तू लोकों में व्यापक है । तू ही सब से बढ़कर बलवान् और विश्व का साक्षी है । ये मनुष्य स्तुति के द्वारा तेरी शरण में उपस्थित होते हैं । तू उन तथा हम सबको पवित्र कर ।।१।।

९५६—त्रय ऋषिगणाः । सोमः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भवनेषु जीवसे ।।२।।

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**नृचक्षाः**) मनुष्यमात्र का साक्षी (**असि**) है (**सोम**) हे परमेश्वर (**विश्वतः**) सब प्रकार से (**पवमान**) हे शुद्धस्वरूप (**वृषभ**) हे कामनाओं की वर्षा करनेवाले (**ता**) उन [प्रजाओं] में (**विधावसि**) व्यापक हो रहा है (**सः**) वह (**नः**) हमें (**पवस्व**) पवित्र कर (**वसुमत्**) वास करने वाला (**हिरण्यवंत्**) सुवर्ण आदि संपदाओं का स्वामी (**वयं**) हम (**स्याम**) होवें (**भुवनेषु**) लोकों में (**जीवसे**) जीने के योग्य ।।२।।

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा सकल कामनाओं की वर्षा करने वाले परमेश्वर ! तू मनुष्यमात्र का साक्षी है । तू सारी प्रजाओं में व्यापक हो रहा है । तू ही सबको शरण देनेवाला तथा सारी संपदाओं का स्वामी है । हमें पवित्र कर । तेरी कृपा से हम संसार में जीने योग्य हों ।।२।।

९५७—त्रय ऋषिगणाः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ।।

पदार्थ—(**ईशानः**) सबका स्वामी (**इमा**) इन (**भुवनानि**) लोकों में (**ईयसे**) व्यापक हो रहा है (**युजानः**) युक्त करता हुआ (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यवान् (**हरितः**) विविध रंगों वाले (**सुपर्ण्यः**) सूर्य आदि के किरणों को (**ताः**) वे (**ते**) तेरी (**क्षरन्तु**) वर्षा करें (**मधुमत्**) मधुर गुणवाले (**घृतं**) घृत के समान पुष्टिकारक (**पयः**) जल (**तव**) तेरे (**व्रते**) नियम में (**सोम**) हे परमेश्वर (**तिष्ठन्तु**) स्थिर रहें (**कृष्टयः**) मनुष्य ।।३।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू सबका स्वामी है । तू ही भांति भांति के रंगवाली सूर्य और चन्द्र आदि की किरणों को जोड़ता हुआ इन लोकों में व्यापक हो रहा है । तेरी शक्ति से वे [किरणें] मधुर गुणवाले और घी के समान पुष्टिकारक जल की वर्षा करती हैं । सारे मनुष्य सदा तेरे नियम में स्थिर रहें ।।३।।

९५८—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ।।१।।

पदार्थ—(**पवमानस्य**) शुद्धस्वरूप (**विश्ववित्**) हे सर्वज्ञ (**प्र**) उत्तम (**ते**) तेरी (**सर्गाः**) सृष्टियें (**असृक्षत**) उत्पन्न की जाती हैं (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**इव**) समान (**न**) इस समय भी (**रश्मयः**) किरणों के ।।१।।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तुझ शुद्धस्वरूप की सृष्टियां सूर्य की किरणों के समान अब भी रची जाती हैं ।।१।।

९५९—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ।।२।।

पदार्थ—(**केतुं**) सृष्टि-रचनारूप कर्म को (**कृण्वन्**) करता हुआ (**दिवः परि**) द्युलोक से परे (**विश्वा**) अन्य सारे (**रूपा**) रूपों में (**अभ्यर्षसि**) व्यापक हो रहा है (**समुद्रः**) सब प्राणियों को सुख देनेवाला (**सोम**) हे परमेश्वर (**पिन्वसे**) सब का पोषण करता है ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्राणिमात्र को आनन्द देनेवाला तू सृष्टि-रचना रूप कर्म को करता हुआ द्युलोक से भी परे तथा अन्य सब रूपों में व्यापक होता हुआ पोषण कर रहा है ।।२।।

९६०—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । क्रन्दं देवो न सूर्यः ।।३।।

पदार्थ—(**जज्ञानः**) प्रकट होते हुए (**वाचं**) वेदवाणी को (**इष्यसि**) प्रेरित करता है (**पवमान**) हे शुद्धस्वरूप (**विधर्मणि**) विशेष धर्मयुक्त अन्तःकरण में (**क्रन्दं**) अव्यक्त शब्द करता हुआ (**देवः**) देव (**न**) समान (**सूर्यः**) सूर्य ।।३।।

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! उदय को प्राप्त सूर्य देव के समान तेजस्वी तू विशेष धर्मयुक्त अन्तःकरण में अव्यक्त रूप से वेदवाणी की प्रेरणा करता है ।।३।।

९६१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ।।१।।

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**सोमासः**) विद्वान् जन (**अधन्विषुः**) ज्ञान प्राप्त करते हैं (**पवमानासः**) पवित्रात्मा (**इन्दवः**) योग के ऐश्वर्यवाले (**श्रीणाना**) आश्रय लेते हुए (**अप्सु**) परमेश्वर में (**वृञ्जते**) मुक्त हो जाते हैं ।।१।।

भावार्थ—पवित्रात्मा योगरूप ऐश्वर्यवाले विद्वान् जन ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा परमेश्वर में आश्रय लेते हुए मुक्त हो जाते हैं ।।१।।

९६२—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २र

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ।।२।।

पदार्थ—(**अभि**) भली भाँति (**गावः**) गमनशील (**अधन्विषुः**) ज्ञान प्राप्त करते हैं (**आपो न**) जल के समान (**प्रवता**) नीचे की तरफ (**यतीः**) जानेवाले (**पुनाना**) पवित्रात्मा (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**आशत**) प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थ—गमनशील ज्ञानी पुरुष नीचे की तरफ जानेवाले जल के समान ज्ञान की प्राप्ति के लिए वेग से अभिमुख होते हैं और पवित्र हुए परमेश्वर को प्राप्त करते हैं ।।२।।

९६३—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥३॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**पवमान**) हे पवित्रात्मन् (**धन्वसि**) प्राप्त करता है (**सोम**) हे विद्वान् पुरुष (**इन्द्राय**) परमेश्वर को (**मादनः**) स्तुति करनेवाला (**नृभिः**) मनुष्यों के द्वारा (**यतः**) संयमी (**विनीयसे**) विनयपूर्वक प्राप्त किया जाता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष ! तुझ स्तुति करनेवाले और संयमी को मनुष्य विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं । तू परमेश्वर को प्राप्त करता है ॥३॥

९६४—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥

पदार्थ—(**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशाली (**यत्**) जब (**अद्रिभिः**) आदरणीय पुरुषों के द्वारा (**सुतः**) संसार में उत्पन्न हुआ (**पवित्रं**) पवित्र आत्मा [विद्वान्] को (**परिदीयसे**) दिया जाता है (**अरं**) पर्याप्त होता है (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर के (**धाम्ने**) मोक्ष धाम के लिए ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् पुरुष ! संसार में उत्पन्न हुआ तू जब आदरणीय पुरुषों के द्वारा पवित्रात्मा विद्वान् की शरण में दिया जाता है तो परमेश्वर के मोक्षधाम में जाने के लिए समर्थ होता है ॥४॥

९६५—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥५॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**सोम**) हे परमेश्वर (**नृमादनः**) मनुष्यमात्र को आनन्दित करनेवाला (**पवस्व**) पवित्र कर (**चर्षणीधृतिः**) मनुष्यमात्र का धारण करनेवाला (**सस्निः**) शुद्धस्वरूप (**यः**) जो (**अनुमाद्यः**) स्तुति के योग्य है ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू मनुष्य मात्र को आनन्दित तथा धारण करने वाला शुद्धस्वरूप तथा स्तुति के योग्य है । तू हमें पवित्र कर ॥५॥

९६६—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥६॥

पदार्थ—(**पवस्व**) पवित्र कर (**वृत्रहन्तम**) हे अज्ञानों का अत्यन्त नाश करनेवाला (**उक्थेभिः**) स्तुतियों से (**अनुमाद्यः**) स्तुति के योग्य (**शुचिः**) शुद्धस्वरूप (**पावकः**) पवित्र करने वाला (**अद्भुतः**) अद्वितीय ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अज्ञानों का अत्यन्त नाश करने वाला, स्तोत्रों से स्तुति के योग्य शुद्धस्वरूप, पवित्र करने वाला तथा अद्वितीय तू हमें पवित्र कर ॥६॥

९६७—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥७॥

पदार्थ—(**शुचिः**) शुद्धस्वरूप (**पावकः**) सबका पवित्र करने वाला (**उच्यते**) कहा जाता है (**सोमः**) परमेश्वर (**सुतः**) सृष्टिकर्त्ता (**सः**) वह (**मधुमान्**) ज्ञानवान् (**देवावीः**) सारे दिव्य पदार्थों की रक्षा करने वाला (**अघशंसहा**) पाप प्रवृत्ति वालों का नाशक ॥७॥

भावार्थ—वह परमेश्वर शुद्धस्वरूप, सबको पवित्र करने वाला सृष्टिकर्त्ता, विज्ञानवान्, सकल दिव्य शक्तियों का रक्षक तथा पापियों का संहारक कहा जाता है ॥७॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

९६८—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**कविः**) मेधावी पुरुष (**देववीतये**) उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिए (**अव्याः**) प्रकृति के (**वारेभिः**) आवरणों से (**अव्यत**) युक्त होता है (**साह्वान्**) दबाने वाला (**विश्वाः**) सारे (**अभि**) अभिभवपूर्वक (**स्पृधः**) हिंसकों को ॥१॥

भावार्थ—शत्रुओं को दबाने वाला तथा बुद्धिमान् पुरुष उत्तम सुखों की प्राप्ति के लिए प्रकृति के आवरणों से युक्त होता है । वह हिंसकों तथा स्पर्धाकारियों को दबाता है ॥१॥

९६९—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥२॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**हिष्मा**) ही (**जरितृभ्यः**) स्तोताओं को (**वाजम्**) अन्न (**गोमन्तम्**) पृथिवी आदि से युक्त (**इन्वति**) देता है (**पवमानः**) शुद्धस्वरूप (**सहस्रिणम्**) सहस्रों प्रकार के ॥२॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर स्तुति करने वालों को सहस्रों प्रकार के पृथिवी आदि से युक्त अन्न आदि पदार्थों को देता है ॥२॥

९७०—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥३॥

पदार्थ—(**परि**) सब तरह से (**विश्वानि**) सारे ज्ञानों को (**चेतसा**) चेतना शक्ति से (**मृज्यसे**) पवित्र करता है (**पवसे**) जानता है (**मती**) ज्ञान के द्वारा (**सः**) वह (**नः**) हमें (**सोम**) हे परमेश्वर (**स्रवः**) कीर्ति तथा धन (**विदः**) प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तू समस्त लोकों को अपनी चेतना शक्ति से पवित्र करता है अपने ज्ञान के द्वारा सबको जानता है । तू ही हमें धन और यश देता है ॥३॥

९७१—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

३क २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २
अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थ—(**अभि अर्ष**) प्राप्त करा (**बृहत्**) महान् (**यशः**) यश (**मघवद्भ्यः**) यज्ञ करने वालों का (**ध्रुवम्**) स्थायी (**रयिम्**) धन (**इषम्**) ज्ञान (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करने वालों का (**आभर**) पूर्ण कर ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू यज्ञकर्त्ताओं और भक्तों को महान् यश प्रदान कर तथा स्थायी धन और ज्ञान को दे ॥४॥

९७२—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**राजेव**) राजा के समान (**सुव्रतः**) शोभन नियमों वाला (**गिरः**) वेदवाणियों में (**सोम**) हे परमेश्वर (**विवेशिथ**) ओत प्रोत है (**पुनानः**) पवित्र कारक (**वह्ने**) हे संसार को वहन करने वाले (**अद्भुत**) हे अद्वितीय ॥५॥

भावार्थ—हे संसार के वहन करनेवाले अद्वितीय परमेश्वर ! तू सबको पवित्र करने वाला राजा के समान व्रतधारी है । तू वेदवाणियों में ओत-प्रोत है ॥५॥

९७३—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥

पदार्थ—(**स**) वह (**वह्निः**) नेता (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**दुष्टरः**) अजेय (**मृज्यमानः**) शुद्ध करता हुआ (**गभस्त्योः**) दो प्रकार की किरणों में (**सोमः**) परमेश्वर (**चमूषु**) द्यौ, पृथिवी तथा अन्य लोकों में (**सीदति**) स्थित है ॥६॥

भावार्थ—नेता, अजेय, शुद्धकारक परमेश्वर अन्तरिक्ष, किरण, द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों में स्थित है ॥६॥

९७४—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥७॥

पदार्थ—(**क्रीडुः**) मनुष्यादि प्राणियों को क्रीड़ा कराने वाला (**मखो न**) यज्ञ के समान (**मंहयुः**) पूजनीय (**पवित्रम्**) पवित्र आत्मा को (**सोम**) हे परमेश्वर (**गच्छसि**) प्राप्त होता है (**दधत्**) धारण करता हुआ (**स्तोत्रे**) भक्त के लिए (**सुवीर्यम्**) आत्मिक बल को ॥७॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब प्राणियों को क्रमानुसार नचाने वाला तथा यज्ञ के समान पूजनीय है । तू स्तोता को आत्मिक शक्ति देता हुआ पवित्र आत्मा को प्राप्त होता है ॥७॥

९७५—*अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परिस्रव । विश्वा च सोम सौभगा ॥१॥

पदार्थ—(**यवं यवं**) प्रभूत यव (**नः**) हमें (**अन्धसा**) अन्य अन्नों से (**पुष्टं पुष्टं**) अत्यन्त पुष्टिकारक (**परिस्रव**) प्रदान कर (**विश्वा**) सारे (**च**) और (**सोम**) हे परमेश्वर (**सौभगा**) धन धान्य को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें अन्य उत्तम अन्नों के साथ पुष्टिकारक यव आदि सारी सम्पत्तियां प्रदान कर ॥१॥

९७६—*अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२॥

पदार्थ—(**इन्वो**) हे ऐश्वर्यशाली (**यथा**) जिस प्रकार (**तव**) तेरी (**स्तवः**) स्तुति है (**यथा**) जिस प्रकार (**ते**) तेरा (**जातम्**) उत्पन्न संसार रूप कार्य है (**अन्धसः**) अन्न के सम्बन्ध से (**नि**) निश्चित (**बर्हिषि**) आकाश में (**प्रिये**) आनन्ददायक (**सदः**) स्थित है ॥२॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! जिस प्रकार अन्नादि के उत्पादक होने के कारण तेरी स्तुति की जाती है और जिस प्रकार तेरा उत्पन्न किया हुआ यह सारा संसार है उसी प्रकार तू [अपने उसी स्वरूप से] आनन्द के स्थान आकाश में सदा वर्तमान है ॥२॥

९७७—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥३॥

पदार्थ—(**उत**) और (**नः**) हमें (**गोवित्**) इन्द्रियाँ प्रदान करने वाला (**अश्ववित्**) प्राणों का दाता (**पवस्व**) पवित्र करता है (**सोम**) हे परमेश्वर (**अन्धसा**) अन्न से (**मक्षूतमेभिः**) निरन्तर होने वाले (**अहभिः**) दिनों से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इन्द्रिय और प्राणों का दाता तू अन्न तथा निरन्तर होने वाले दिनों से हमें पवित्र करता है ॥३॥

९७८—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥४॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**जिनाति**) सब पर विजय प्राप्त करता है (**न**) नहीं (**जीयते**) पराजित होता है (**हन्ति**) नाश करता है (**शत्रुम्**) न्याय-विरोधियों का (**अभीत्य**) सब प्रकार से प्राप्त होकर (**सः**) वह (**पवस्व**) पवित्र कर (**सहस्रजित्**) हे असंख्यों पर विजय प्राप्त करने वाले ॥४॥

भावार्थ—हे असंख्यों पर विजय प्राप्त करने वाले परमेश्वर ! जो तू सब का विजयी, किन्तु स्वयं न पराजित होने वाला तथा अन्यायियों का सब प्रकार से विनाशकर्त्ता है, वह तू हमें पवित्र कर ॥४॥

९७९—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥१॥

पदार्थ—(**याः**) जो (**ते**) तेरी (**धाराः**) वेदवाणियां (**मधुश्चुतः**) ब्रह्मज्ञान का प्रवाह बहाने वाली (**असृग्रम्**) प्रकट होती हैं (**इन्वो**) हे परम ऐश्वर्य वाले (**ऊतय**) रक्षा के लिए (**ताभिः**) उनके साथ (**पवित्रं**) पवित्र आत्मा में (**आसदः**) विराजमान है ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! ब्रह्मज्ञान का प्रवाह बहाने वाली जो तेरी वेदवाणियां प्रकट होती हैं, उनके साथ रक्षा करने के लिए तू पवित्र आत्मा में विराजमान है ॥१॥

९८०—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पदार्थ—(**सः** (वह (**अर्ष**) प्राप्त हो (**इन्द्राय**) जीव की (**पीतये**) रक्षा के लिए (**तिरः**) तिरस्कार करता हुआ (**वाराणि**) आवरणों को (**अव्यया**) प्रकृति सम्बन्धी (**सीदन्**) स्थित होता हुआ (**ऋतस्य**) सत्य के (**योनिम्**) स्थान में (**आ**) सब प्रकार से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सत्य के स्थान में विराजमान तू प्रकृति के आवरणों को दूर करता हुआ जीव की रक्षा के लिए प्राप्त हो ॥२॥

९८१—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ॥३॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**सोम**) हे परमेश्वर (**परिस्रव**) प्रदान कर (**स्वादिष्ठः**) अत्यन्त मनोहर (**अंगिरोभ्यः**) विद्वानों के लिए (**वरिवोवित्**) धनदाता (**घृतं**) प्रकाश (**पयः**) ज्ञान को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अत्यन्त मनोहर तथा धनदाता तू ज्ञानियों को प्रकाश और ज्ञान प्रदान कर ॥३॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

९८२—अरुणः । अग्निः । जगती ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥

पदार्थ—(**तव**) तेरी (**श्रियः**) विभूतियां (**वर्ष्यस्या**) वर्षाकाल में होने वाली (**इव**) समान (**विद्युतः**) बिजली के (**अग्नेः**) अग्रणी (**चिकित्रे**) जानी जाती हैं (**उषसा**) प्रातःकालों के (**इव**) समान (**एतयः**) प्रकाशों का (**यत्**) जिस कारण से (**ओषधीः**) यव आदि को (**अभिसृष्टः**) प्रेरित होकर (**वनानि**) वनों को (**च**) और (**परि**) सब प्रकार से (**स्वयं**) अपने आप (**चिनुषे**) समेटता है (**अन्नम्**) पृथिवी आदि को (**आसनि**) अपने मुख में ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि हमारे कर्म से प्रेरित हुआ तू यव आदि अन्न, औषधि, वन तथा पृथिवी आदि को अपने कारण रूप मुख में अपने आप समेटता है इसलिए तेरी विभूतियाँ वर्षाकाल की विद्युत् और उषा काल के प्रकाश के समान जान पड़ती हैं ॥१॥

९८३—अरुणः । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
१ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते यतन्ते रथ्योऽ३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥२॥

पदार्थ—(**वातोपजूतः**) वायु के समान गति वाला (**इषितः**) नित्य इच्छा गुण से युक्त (**वशां**) कान्तिमान् पदार्थों (**अनु**) में (**तृषु**) शीघ्र (**यत्**) जिस कारण (**अन्ना**) अन्न [प्रकृति का कार्य जगत् आदि] में (**वेविषद्**) व्यापक होता हुआ (**वितिष्ठसे**) स्थित है (**आ**) भलीभांति (**ते**) तेरी (**यतन्ते**) प्रयत्नशील हो रही हैं (**रथ्यः**) रथी के (**यथा**) समान (**पृथक्**) अलग-अलग (**शर्धांसि**) शक्तियाँ (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**अजरस्य**) अजर (**धक्षतः**) दुर्गुणों को भस्म करने वाले ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! क्योंकि वायु के समान वेगवाला तथा नित्य इच्छा गुणवाला तू कान्तिमान् प्रकृति के सभी कार्य द्रव्यों में व्यापक होकर स्थित है इस लिए सब दुर्गुणों को भस्म करनेवाले तुझ अजर की शक्तियाँ रथी के समान पृथक्-पृथक् प्रयत्नशील हो रही हैं ॥२॥

९८४—अरुणः । अग्निः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।
१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३॥

पदार्थ—(**मेधाकारं**) बुद्धि को उत्पन्न करनेवाले (**विदथस्य**) यज्ञ आदि व्यवहार के (**प्रसाधनम्**) सिद्ध करनेवाले (**अग्निम्**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**होतारं**) विज्ञान के दाता (**परिभूतरं**) सर्वव्यापक (**मतिम्**) ज्ञानी [**मेधावी**] (**त्वां**) तुझे (**अर्भस्य**) थोड़ी (**हविषः**) उपादेय भक्ति के (**समानमित्**) समान ही (**त्वां**) तुझे (**महो**) महान् (**वृणते**) भक्ति करते हैं (**न**) नहीं (**अन्यं**) दूसरे की (**त्वत्**) तुझसे भिन्न ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भक्त लोग बुद्धि के उत्पन्न करनेवाले, यज्ञ के साधक विज्ञानदाता, सर्वव्यापक, ज्ञानी तथा छोटी और बड़ी भक्ति के समान रूप से स्वीकार करने वाले तुझ प्रकाशस्वरूप की प्रार्थनोपासना करते हैं, तुझ से अन्य की नहीं ॥६॥

९८५—उरुचक्री । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
पूरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१॥

पदार्थ—(**पुरूरुणा**) बहुत (**चित्**) ही (**हि**) क्योंकि (**अस्ति**) है (**अवः**) रक्षा (**नूनम्**) निश्चित रूप से (**वां**) तुम दोनों की (**वरुण**) हे उपदेशक (**मित्र**) हे अध्यापक (**वंसि**) स्वीकार करते हैं (**वां**) तुम दोनों की (**सुमतिं**) उत्तम बुद्धि को ॥१॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों का संरक्षण निश्चित ही है । तुम्हारी उत्तम बुद्धि को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

९८६—उरुचक्रिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥२॥

पदार्थ—(**ता**) उन (**वां**) तुम दोनों की (**सम्यक्**) सब प्रकार से (**अद्रुह्वाणा**) द्रोह न करनेवाले (**इषम्**) ज्ञान (**अश्याम**) प्राप्त करते हैं (**धाम**) नाम (**न**) और (**वयं**) हम (**वां**) तुम दोनों के (**मित्रा**) मित्र (**स्याम**) हों ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! द्रोह न करने वाले आप दोनों की हम भली भाँति प्रशंसा करते हैं । तुम्हारी कृपा से हम ज्ञान और नाम को प्राप्त करते हैं । हम तुम लोगों के मित्र हों ॥ २॥

९८७—उरुचक्रिः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साह्याम दस्यूं तनूभिः ॥३॥

पदार्थ—(पातं) रक्षा करो (नो) हमारी (मित्रा) हे अध्यापक और उपदेशक (पायुभिः) रक्षा के उपायों से (उत) और (त्रायेथाम्) रक्षा करें (सुत्रात्रा) सुन्दर रक्षण से (साह्याम) तिरस्कार करते हैं (दस्यून्) शत्रुओं का (तनूभिः) नीतियों के द्वारा ॥३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप रक्षा के साधनों से हमारी रक्षा करें और उत्तम रक्षणों से हमारा त्राण करें। तुम्हारी उपदिष्ट नीति से हम शत्रुओं का तिरस्कार करते हैं ॥३॥

९८८—कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ २

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥१॥

पदार्थ—(उत्तिष्ठन्) उठाता या धारण करता हुआ (ओजसा) बल के साथ (पीत्वा) रक्षा करके (शिप्रे) सुख देनेवाले द्यु और पृथिवी लोक को (अवेपयः) हिला देता है (सोमम्) जीव को (इन्द्र) हे परमेश्वर (चमूसुतम्) द्यु और पृथिवी का उत्पादक ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बल के साथ धारण करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक में पैदा हुए जीव की रक्षा करके द्यु और पृथिवी लोक को कम्पन अर्थात् गति देकर चलाता है ॥१॥

९८९—कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।

१२ ३ १२ ३१ २र २ ३ १२३१२

अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥२॥

पदार्थ—(अनु) उद्देश्य से (त्वा) तेरे (रोदसी) द्यु और पृथिवीलोक (उभे) दोनों (स्पर्धमान) हे सब से बढ़-चढ़ कर होने की इच्छावाले (मददेताम्) हरे भरे होते हैं (इन्द्र) हे जीव ! (यद्) जब (दस्युहा) दुष्टों का दलन करने वाला (भवः) हो ॥२॥

भावार्थ—हे उन्नति चाहने वाले जीव ! क्योंकि तेरे ही उद्देश्य से द्युलोक और पृथिवी हरे-भरे हो रहे हैं, इसलिए तू काम-क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर ॥२॥

९९०—कुरुसुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।

१२३ १२ ३१ २र ३१२ २३१२३क २र

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥३॥

पदार्थ—(वाचम्) वेदवाणी को (अष्टापदीम्) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात रूप चार प्रकार के पद तथा विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान आदि मिलाकर आठ प्रकारवाली (नवस्रक्ति) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्दः छः प्रकार की विद्या और ऋग्, यजु, सामरूप मंत्र व्यवस्था से सब प्रकार की रचनाओं वाली (ऋतावृधम्) सत्य को बढ़ानेवाली (इन्द्रात्) परमेश्वर से (परि) सब प्रकार से (तन्वं) विस्तारवाली (ममे) प्राप्त कर उच्चारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—मैं आठ पदों और नव प्रकार की रचनाओं वाली तथा सत्य को बढ़ानेवाली विस्तारमयी वेदवाणी को परमेश्वर से प्राप्त कर उच्चारण करता हूँ ॥३॥

९९१—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ २ ३ २३ २ १ २र १२ ३२

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (युवां) तुम दोनों की (इमे) ये (अभि) सब प्रकार से (स्तोमाः) स्तोत्र (अनूषत) प्रशंसा करते हैं (पिबतम्) रक्षा करते हो (शम्भुवा) हे सुख के देनेवाले (सुतम्) उत्पन्न संसार की ॥१॥

भावार्थ—हे सुख देनेवाले जीव और परमेश्वर ! ये स्तोत्र तुम दोनों की प्रशंसा करते हैं। तुम लोग इस उत्पन्न संसार की रक्षा करते हो ॥१॥

९९२—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १२३१२ ३१२ १२३ २३१२

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥२॥

पदार्थ—(याः) जो (वां) तुम दोनों की (सन्ति) हैं (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाहने योग्य (नियुतः) निश्चित शक्तियें (दाशुषे) त्यागी के लिए (नरा) नेता (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (ताभिः) उनके साथ (आगतम्) प्राप्त होते हो ॥२॥

भावार्थ—हे सब के नेता जीव और परमेश्वर ! त्यागी पुरुष के लिए बहुतों से चाहने योग्य तुम दोनों की शक्तियाँ हैं उनके साथ तुम हमें प्राप्त होते हो ॥२॥

९९३—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३२३१ २र ३२ १२ ३ १२

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(ताभिः) उन शक्तियों के साथ (आगच्छतम्) प्राप्त होओ (नरा) हे नेता (उप) समीप (इदं) इस (सवनं) यज्ञ में (सुतम्) किये जानेवाले (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (सोमपीतये) सोम का पान तथा रक्षा के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे नेता जीव ! तू सोम के पान के लिए और नेता परमेश्वर तू सोम की रक्षा के लिए किये जाने वाले इस यज्ञ में अपनी शक्तियों के साथ प्राप्त हो ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

९९४—भृगुर्जमदग्निश्च । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३१२३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३२३ २

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥१॥

पदार्थ—(अर्ष) प्राप्त कर (सोम) हे विद्वान् पुरुष (द्युमत्तमः) अत्यन्त तेजस्वी (अभि) सब प्रकार से (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों को (रोरुवत्) उपदेश करता हुआ (सीदन्) स्थित (योनौ) संसार के निमित्त कारण परमात्मा में (वनेषु) भक्ति आदि के विषय में (आ) भलीभांति ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! अत्यन्त तेजस्वी तू भक्ति के विषय में उपदेश करता हुआ संसार के निमित्त कारण परमेश्वर में स्थित होकर अपने गन्तव्य मार्ग पर चलता जा ॥१॥

९९५—भृगुर्जमदग्निश्च । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३२३१२ ३१२ १ २ ३ १ २

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥२॥

पदार्थ—(अप्सा) कर्मयोगी (इन्द्राय) जीव के ज्ञान के लिए (वायवे) वायु के ज्ञान के लिए (वरुणाय) जल के ज्ञान के लिए (मरुद्भ्यः) सुवर्ण आदि संपदाओं के लिए (सोमाः) विद्वान् पुरुष (अर्षन्तु) उद्योग करें (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के लिये ॥२॥

भावार्थ—कर्मयोगी विद्वान् जन जीव, वायु, जल, स्वर्ण आदि संपदायें तथा परमेश्वर के ज्ञान और प्राप्ति के लिए उद्योगशील होवें ॥२॥

९९६—भृगुर्जमदग्निश्च । सोमः । गायत्री ।

१२३१२ ३१२३१२ ३१२ १२ ३१२

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥

पदार्थ—(इषम्) अन्न को (तोकाय) सन्तान के लिए (नः) हमारे (दधद्) धारण करता हुआ (अस्मभ्यं) हमारे लिए (सोम) हे परमेश्वर (विश्वतः) सब प्रकार (आपवस्व) प्रदान कर (सहस्रिणम्) सहस्रों प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी सन्तान और हमारे लिए हजारों प्रकार की अन्न आदि संपदायें धारण करता हुआ प्रदान कर ॥६॥

९९७—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

१२ ३२ ३२३२३ २३१२

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१२

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥

पदार्थ—(सोमः) परमेश्वर (उ) प्रसिद्ध है (स्वानः) चुआया हुआ (सोतृभिः) चुआने वालों के द्वारा (अधि) पर (स्नुभिः) बालों के द्वारा (अवीनां) भेड़ों के(अश्वया) व्यापक के (इव) समान (हरिता) हरे रंगवाली (याति) निकलता है (धारया) प्रवाह से (मन्द्रया) आनन्ददायक(याति) प्राप्त होता है (धारया) वेदवाणी के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर, यजमानों के द्वारा भेड़ के बालों पर छाने गये सोमरस की हरी धारा के समान, आनन्ददायक वेदवाणी के द्वारा प्राप्त होता है ॥१॥

९९८—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।

३ २उ ३१२ ३ १ २र

समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥

पदार्थ—(अनूपे) वायु में (गोमान्) वेदवाणियों का स्वामी (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (अक्षाः) आनन्द की वर्षा करता है (सोमः) परमेश्वर (दुग्धाभिः) अनेक सृष्टियों में यूं ही जानेवाली (अक्षाः) गति देता है (समुद्रं) समुद्र को (न) समान (संवरणानि) जल (अग्मन्) प्राप्त होते हैं (मन्दी) आनन्द चाहनेवाला (मदाय) आनन्द के लिए (तोशते) संतुष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—वेदवाणियों का स्वामी परमेश्वर प्रत्येक सृष्टि में दुही जाने वाली वेदवाणियों द्वारा आनन्द की वर्षा करता है और वही वायु में गति भी देता है। जिस प्रकार जल समुद्र को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार विद्वान् जीव परमेश्वर को प्राप्त करते हैं। आनन्द की इच्छा करने वाला सुख की प्राप्ति के लिए परमेश्वर को संतुष्ट करता है ॥२॥

९९९—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र
यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥१॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**सोम**) हे परमेश्वर (**चित्रम्**) अनेक प्रकार का (**उक्थ्यं**) प्रशंसनीय (**दिव्यं**) दिव्य गुण वाला (**पार्थिवं**) पृथिवी से उत्पन्न सुवर्ण आदि (**वसु**) धन है उसे (**नः**) हमें (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**आभर**) प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ – हे परमेश्वर ! अनेक प्रकार का, प्रशंसनीय तथा उत्तम गुण वाला पृथिवी से उत्पन्न सुवर्ण आदि जो धन है उसे हमें पवित्र करता हुआ तू प्रदान कर ॥१॥

१०००—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २उ ३ १ २
वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन् योनिमासदः ॥२॥

पदार्थ—(**वृषा**) सुखों की वर्षा करने वाला (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**आयूंषि**) जीवनों को (**स्तनयन्**) उपदेश करता हुआ (**अधिबर्हिषि**) हृदय रूप आकाश में (**हरिः**) अज्ञान का हरण करने वाला (**सन्**) होता हुआ (**योनिम्**) प्रकृतिरूप कारण में (**आ सदः**) वर्तमान है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुखों की वर्षा करने वाला तथा अज्ञान का निवारक होता हुआ तू हमारे जीवनों को पवित्र कर हृदय में उपदेश करता हुआ कारण प्रकृति में स्थित है ॥२॥

१००१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥३॥

पदार्थ—(**युवम्**) तुम दोनों (**हि**) निश्चित (**स्थः**) हो (**स्वःपती**) सुखों के स्वामी (**इन्द्रः**) विद्वान् (**च**) और (**सोम**) हे परमेश्वर (**गोपती**) वेदवाणियों के रक्षक (**ईशाना**) शक्तिमान् (**पिप्यतं**) पूर्ण करो (**धियः**) बुद्धियों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और विद्वान् पुरुष दोनों सुखों के स्वामी, शक्तिमान् तथा वेदवाणियों के रक्षक हो । अतः हमारी बुद्धियों को पूर्ण करो ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१००२—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) परमेश्वर (**मदाय**) आनन्द के लिए (**वावृधे**) बढ़ा-चढ़ा हुआ है [सब से अधिक बढ़-चढ़ कर है] (**शवसे**) बल के लिए (**वृत्रहा**) अज्ञाननाशक (**नृभिः**) मनुष्यों से (**तम्**) उसको (**इत्**) ही (**महत्सु**) बड़े (**आजिषु**) संग्रामों में (**ऊतिम्**) रक्षा के लिए (**अर्भे**) छोटे (**हवामहे**) पुकारते हैं (**स**) वह (**वाजेषु**) संग्रामों में (**प्र**) भली भांति (**नः**) हमारी (**अविषत्**) रक्षा करे ॥१॥

भावार्थ—अज्ञाननाशक परमेश्वर सब से बढ़-चढ़ कर है । आनन्द और शक्ति की प्राप्ति के लिए लोग उसकी स्तुति करते हैं । हम बड़े और छोटे संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए उसे ही पुकारते हैं । वह संग्रामों में हमारी रक्षा करे ॥१॥

१००३—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ ३
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—(**असि**) है (**हि**) निश्चित ही (**वीर**) हे सब से बलवान् (**सेन्यः**) सेनाओं का हितकारी (**असि**) है (**भूरि**) बहुत (**पराददिः**) महान् दानी (**असि**) है (**दभ्रस्य**) छोटे का (**चिद्**) भी (**वृधः**) बढ़ाने वाला (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**शिक्षसि**) देता है (**सुन्वते**) यज्ञ करने वाले (**भूरि**) बहुत (**ते**) तेरा (**वसु**) धन ॥२॥

भावार्थ—हे सब से बढ़कर शक्तिशाली परमेश्वर ! तू सेनाओं का हितकारी तथा बहुत बड़ा दानी है । तू छोटों को भी बढ़ाने वाला है । तेरा धन अपार है । तू यज्ञ करने वाले यजमान को धन आदि पदार्थ देता है ॥२॥

१००४—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

पदार्थ—(**यद्**) जब (**उदीरते**) उत्पन्न होते हैं (**आजयः**) संग्राम (**धृष्णवे**) विजयी पुरुष के लिए (**धीयते**) धारण किया जाता है (**धनम्**) धन (**युङ्क्ष्वा**) जोड़ता है (**मदच्युतौ**) आनन्द बहाने वाले (**हरी**) ऋक् और साम को (**कं**) सुख को (**हनः**) प्राप्त करा (**कं**) सुखी को (**वसौ**) धन में (**दधः**) रख (**अस्मान्**) हमें (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**वसौ**) धन में (**दधः**) रख ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जब संग्राम होते हैं तब तो केवल विजयी को ही धन मिलता है । तू आनन्द की वर्षा करने वाले ऋक् और साम को जोड़ता है । तू सुख प्राप्त करा । सुखी को धन में रख । हमें संपदायें दे ॥३॥

१००५—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—(**स्वादोः**) आनन्दजनक (**इत्था**) इस प्रकार से (**विषूवतः**) व्यापक [विस्तृत] (**मधोः**) विज्ञान की (**पिबन्ति**) रक्षा करती हैं (**गौर्यः**) वेदवाणियां (**याः**) जो (**इन्द्रेण**) परमेश्वर के साथ (**सयावरीः**) समान काल से रहने वाली (**वृष्णा**) कामनाओं की वर्षा करने वाले (**मदन्ति**) स्तुति [वर्णन] करती हैं (**शोभथा**) शोभन होता है (**वस्वीः**) सकल पदार्थों का वर्णन करने वाली (**अनु**) अनुसार ही (**स्वराज्यं**) सुख का राज्य ॥१॥

भावार्थ—कामनाओं की वर्षा करने वाले परमेश्वर के साथ समान काल से रहने वाली जो वेदवाणियां उसकी प्रशंसा करती हैं तथा आनन्ददायक और व्यापक विज्ञान की रक्षा करती हैं उन के अनुसार ही सुख का राज्य सुशोभित होता है ॥१॥

१००६—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥

पदार्थ—(**ताः**) उनके (**अस्य**) इस (**पृशनायुवः**) ज्ञान का स्पर्श करने वाली (**सोमं**) विद्वान् को (**श्रीणन्ति**) परिपक्व करती हैं (**पृश्नयः**) अनेक प्रकार के छन्दों वाली (**प्रियाः**) प्रिय (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर की (**धेनवः**) वेदवाणियां (**वज्रं**) पंचदश स्तोम आदि स्तुतियों और सामों की (**हिन्वन्ति**) प्रेरणा करती हैं (**सायकं**) दुःख का अन्त करने वाले (**वस्वीः**) समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाली उनके (**अनु**) अनुसार (**स्वराज्यं**) सुख का राज्य होता है ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान का प्रकाश करने वाली, अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त तथा मनोहर परमेश्वर की दी हुई जो वेदवाणियाँ विद्वान् को परिपक्व करती हैं तथा दुःख का अन्त करने वाले पंचदश स्तोम आदि स्तोत्रों और साम की प्रेरणा करती हैं उनके अनुसार ही यथार्थ स्वराज्य होता है ॥२॥

१००७—गोतमः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

पदार्थ—(**ताः**) वे (**अस्य**) इस (**नमसा**) नमस्कार के साथ (**सहः**) पराक्रम की (**सपर्यन्ति**) प्रशंसा करती हैं (**प्रचेतसः**) उत्तम ज्ञान वाले (**व्रतानि**) नियमों या कर्मों का (**अस्य**) इसके (**सश्चिरे**) बताती हैं [ज्ञान करवाती हैं] (**पुरूणि**) बहुत (**पूर्वचित्तये**) प्रथम ज्ञान के लिए (**वस्वीः**) समस्त पदार्थों का ज्ञान करवाती (**अनु**) अनुसार (**स्वराज्यम्**) स्वराज्य होता है ॥३॥

भावार्थ—वे वेदवाणियां उत्तम ज्ञानवाले, परमेश्वर के पराक्रम की आदर के साथ प्रशंसा करती हैं । सब से प्रथम ज्ञान के लिए वे इस परमेश्वर के अनेक नियमों को जानती हैं । उनके अनुसार ही स्वराज्य की प्राप्ति होती है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१००८—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥१॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया जाता है (अंशुः) प्रकाश वाला (मदाय) आनन्द के लिए (अप्सु) कर्मों में (दक्षः) कुशल (गिरिष्ठाः) वेदवाणी में स्थिति रखने वाला (श्येनो न) आत्मा के समान (योनिम्) निमित्त कारण ब्रह्म में (आसदत्) स्थिति पाता है ॥१॥

भावार्थ—कर्मयोगी, वेदवाणी में विचरने वाला तथा तेजस्वी विद्वान् संसार के सुख के लिए उत्पन्न किया जाता है। वह आत्मा के समान निमित्त कारण परमेश्वर में स्थिति पाता है ॥१॥

१००९—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१२ ३२३१ २र३२ १२ ३२३ १२
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥२॥

पदार्थ—(शुभ्रम्) तेजस्वी (अन्धः) रात्रि-दिन (देववातम्) विद्वानों से प्राप्त किये जाने वाले (अप्सु) शुभ कर्मों में (धौतम्) ज्ञात (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (सुतम्) संसार के उत्पादक (स्वदन्ति) आनन्द लेते हैं (गावः) स्तोता लोग (पयोभिः) ज्ञानों द्वारा ॥२॥

भावार्थ—स्तोता लोग ज्ञान के द्वारा ज्योतिःस्वरूप, विद्वानों से प्राप्त किये जाने वाले, प्रत्येक शुभ कर्म में मनुष्यों द्वारा स्मरण किये गये तथा सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का आनन्द लेते हैं ॥२॥

१०१०—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

२ ३२३१ २र३१२ ३१२ २३१२ ३१२
आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसं सधमादे ॥३॥

पदार्थ—(आत्) अनन्तर (ईम्) इस (अश्वं) अग्नि के (न) समान (हेतारम्) गतिशील (अशूशुभन्) सुशोभित करते हैं (अमृताय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (मधोः) ज्ञान का (रसः) आस्वाद [आनन्द] लेने वाले (सधमादे) ज्ञान यज्ञ में ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानीजन अग्नि के समान गतिशील तथा ज्ञान का आनन्द उठाने वाले विद्वान् पुरुष को परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ज्ञानयज्ञ में सारी शक्तियों से सुशोभित करते हैं ॥३॥

१०११—ऊर्ध्वसद्मा । सोमः । ककुप् ।

१२ ३२ ३२उ३१२ ३१२ ३२ १ २र३१ २
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ।१।

पदार्थ—(अभि) उद्देश्य में रख कर (द्युम्नं) अन्न के (बृहत्) महान् (यशः) सूर्य को (इषस्पते) हे अन्न और ज्ञान के स्वामी (दिदीहि) प्रकाशित करता है (देव) हे देव (देवयुम्) दिव्य गुणों से युक्त करने वाले (वि) विशेष रूप से (कोशम्) मेघ को (मध्यमम्) मध्यम स्थान में रहने वाले (युव) छोडता है ॥१॥

भावार्थ—हे अन्न आदि के स्वामी परमात्म देव ! हमारे अन्न की उत्पत्ति को उद्देश्य में रख कर तू दिव्य गुणों से युक्त करनेवाले महान् सूर्य को प्रकाशित करता है तथा आकाश में होनेवाले मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है ॥१॥

१०१२—कृतयशाः । सोमः । सतोबृहती ।

१ २ ३क २र ३२ ३२उ ३२३ १२
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।

३२ ३१२ ३२३२उ३ १२ ३ १२
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपोजिन्वन् गविष्टये धियः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (वच्यस्व) प्राप्त हो (सुदक्ष) हे सुन्दर बलवान् (चम्वोः) द्यु और पृथिवी लोक का (सुतः) उत्पादक (विशां) प्रजाओं का (वह्निः) अग्नि के (न) समान (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी (वृष्टिं) वर्षा को (दिवः) आकाश से (पवस्व) प्रेरित कर (रीतिम्) प्रकार को (अपः) कर्मों के (जिन्वन्) प्रेरित करता हुआ (गविष्टये) स्तोताओं के इष्ट के लिए (धियः) बुद्धियों को ॥२॥

भावार्थ—हे बलशाली परमेश्वर ! तू द्यु और पृथिवी लोक का उत्पादक तथा अग्नि के समान समस्त प्रजाओं का रक्षक है। तू हमें प्राप्त हो। स्तुति करने वालों के कल्याण के लिए कर्म की रीति और बुद्धियों को प्रेरणा करता हुआ आकाश से वृष्टि की प्रेरणा कर ॥२॥

१०१३—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

३१ २र३१२ ३२ ३२३ १२
प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

२ ३१२ ३१२३१२३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१॥

पदार्थ—(प्राणा) जीवन का संचार करनेवाला (शिशुः) पुत्रस्वरूप (महीनां) वेदवाणियों का (हिन्वन्) जानता हुआ (ऋतस्य) परमेश्वर के (दीधितिम्) विधान को (विश्वा) सारी (परि) सब प्रकार से (प्रिया) प्रिय वस्तुओं का (भुवत्) तिरस्कार करता है (अध) अनन्तर (द्विता) ज्ञान और वैराग्य के दो प्रकार से ॥१॥

भावार्थ—सब में जीवन फूंकनेवाला तथा वेदवाणियों का पुत्रस्वरूप विद्वान् पुरुष परमेश्वर के विधान को जानता हुआ सारी प्रिय चित्त को विचलित करनेवाली वस्तुओं का ज्ञान और वैराग्य से तिरस्कार करता है ॥१॥

१०१४—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

१२३१२ ३ २ १२३१ २र ३ २
उप त्रितस्य पाष्यो३ रभक्त यद् गुहा पदम् ।

३१२ ३१ २र ३१२ ३२
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्रितस्य) मेधावी जीव के (पाष्योः) ज्ञान और कर्म के [हेतुभूत] (अभक्त) भागी बनता है (यत्) जो (गुहा) अन्तःकरण में [स्थित] (पदम्) स्वरूप को (यज्ञस्य) परमेश्वर के (सप्तधामभिः) सप्त छन्दों से बंधे हुए ज्ञानों से (अध) अनन्तर (प्रियं) प्रिय ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म के कारण मेधावी जीव के अन्तःकरण में स्थित परमेश्वर के परमप्रिय पद को विद्वान् सात छन्दों में बंधे वेदज्ञान के द्वारा जानता है ॥२॥

१०१५—त्रितः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २३२ ३ १२ ३१ २र ३२
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम् ।

१ २ ३ १२३ २ ३१२
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥३॥

पदार्थ—(त्रीणि) तीन (त्रितस्य) तीन सम्यों से युक्त जीव के (धारया) वेदवाणी द्वारा (पृष्ठेषु) नाना लोकों में (ऐरयत्) प्रेरित करता है (रयिम्) धन को (मिमीते) उपदेश करता है (अस्य) इस (योजना) बन्धनों को (वि) विशेष (सुक्रतुः) उत्तम ज्ञानवाला ॥३॥

भावार्थ—उत्तम ज्ञान से युक्त परमेश्वर नाना लोकों में धन आदि को प्रेरित करता है। वह अपनी वेदवाणी से इस तीन तापों से युक्त जीव के तीनों बन्धनों को ज्ञात करा देता है ॥३॥

१०१६—रेभः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१२३१२ ३२३ १२ ३२
पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।

१२ ३ १ २ ३२ ३१२
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर [अपने को] (वाजसातये) विज्ञान की प्राप्ति के लिए (पवित्रे) पवित्र [मानव शरीर] में (धारया) वेदवाणी से (सुतः) उत्पन्न (इन्द्राय) आत्मा के लिए (सोम) हे पुरुष (विष्णवे) परमेश्वर प्राप्ति के लिए (मधुमत्तरः) कर्म में प्रवीण ॥१॥

भावार्थ—हे पुरुष ! कर्म में प्रवीण तथा इस पवित्र मानव शरीर में उत्पन्न तू विज्ञान, आत्मज्ञान, परमात्मा तथा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए अपने वेदवाणी से पवित्र कर ॥१॥

१०१७—रेभः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३२३ १२ ३१२ ३१२
त्वा रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।

३ २ ३२उ ३२३ १२ ३ १२
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२॥

पदार्थ—(त्वां) तेरी (रिहन्ति) पूजा करती हैं (धीतयः) स्तुतियां (हरिम्) अज्ञान के हरण करनेवाले (पवित्रे) पवित्र (अद्रुहः) द्रोहरहित (वत्सं) बच्चे को (जातम्) उत्पन्न (न) समान (मातरः) माताएँ (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (विधर्मणि) विशेष धर्मरूप यज्ञ में ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! द्रोहरहित स्तुतियां पवित्र यज्ञ में उत्पन्न बच्चे को माताओं के समान, अज्ञाननाशक तेरी पूजा करती हैं ॥२॥

१०१८—रेभः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २र
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।

१२ ३१२ ३ १२ ३ २
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (द्यां) द्युलोक को (च) और (महिव्रत) हे महान् व्रतवाले (पृथिवीं) पृथिवी को (च) और (अति) अत्यन्त (जभ्रिषे) धारण करता है (प्रति) हमारे प्रति (द्रापिम्) देय वस्तु को (अमुञ्चथाः) दे (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (महित्वना) अपनी महिमा से ॥३॥

भावार्थ—हे महाव्रती शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू अपनी महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को धारण करता है । तू हमें देने योग्य वस्तु दे ॥३॥

१०१९—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्य्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१॥

पदार्थ—(इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (वाजी) ज्ञानवान् (पवते) पवित्र करता है (गोन्योघा) इन्द्रियों के समुदायवाला (इन्द्रे) परमेश्वर में (सोमः) जीवात्मा (सहः) शक्ति को (इन्वन्) जानता हुआ (मदाय) आनन्द के लिए (हन्ति) नाश करता है (रक्षः) दुर्गुणरूप राक्षस का (बाधते) बाधा पहुँचाता है (अरातिम्) काम-क्रोध आदि शत्रुओं को (वरिवः) ज्ञान-धन को (कृण्वन्) करता हुआ (वृजनस्य) बल का (राजा) स्वामी ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवान्, इन्द्रिय समुदाय से युक्त बल का स्वामी तथा ऐश्वर्यवान् जीवात्मा परमेश्वर में शक्ति को जानता हुआ आनन्द की प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करता है । वह ज्ञानरूपी धन को प्राप्त करता हुआ दुर्गुण राक्षस का विनाश करता है और काम आदि शत्रुओं को बाधा पहुँचाता है ॥१॥

१०२०—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २र ३ १ २
अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (धारया) वाणी से (मध्वा) मधुर (पृचानः) सम्बद्ध करता हुआ (तिरः) प्राप्त (रोम) सामों को (पवते) पवित्र करता है (अद्रिदुग्धः) मेघ आदि को पूरा करनेवाला (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इन्द्रस्य) जीव के (सख्यं) मित्र भाव को (जुषाणः) प्रसन्नता से स्वीकार करता हुआ (देवः) देव (देवस्य) उत्तम गुण युक्त (मत्सरः) आनन्दस्वरूप (मदाय) आनन्द के लिए ॥२॥

भावार्थ—मेघ आदि की पूर्ति करने वाला, आनन्दस्वरूप ऐश्वर्यशाली तथा जीव की मित्रता को स्वीकार करने वाला परमेश्वरदेव जीव के आनन्द के लिए मधुर वाणी के साथ अपने ज्ञान में प्राप्त सामों को सम्बद्ध करता हुआ उसे पवित्र करता है ॥२॥

१०२१—मन्युः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवांत्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।

२ ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥३॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार (व्रतानि) कर्मों को (पवते) पवित्र करता है (पुनानः) पवित्र करता हुआ (देवः) देव (देवान्) इन्द्रियों को (स्वेन) अपने (रसेन) रस से (पृञ्चन्) संयुक्त करता हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (धर्माणि) धर्मों को (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (वसानः) धारण करता हुआ (दश) दश (क्षिपः) अंगुलियों को (अव्यत) रख देता है (सानो) ऊँचे शिखर पर (अव्ये) प्रकृति के ॥३॥

भावार्थ—इन्द्रियों को अपने रस से संयुक्त और पवित्र करता हुआ तथा ऋतु के अनुसार धर्मों को धारण करता हुआ ऐश्वर्यवान् जीव अपने अनेक कर्मों को पवित्र करता है और प्रकृति के उच्च शिखर पर अपनी दश अंगुलियों को रख देता है अर्थात् अधिकार पा लेता है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१०२२—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली-भाँति (ते) तेरा (अग्ने) हे परमेश्वर! (इधीमहि) ध्यान करते हैं (द्युमन्तं) प्रकाशस्वरूप (देव) हे देव (अजरम्) अजर (यत्) जो (ह) निश्चय से (स्या) वह (ते) तेरा दिया हुआ (पनीयसी) प्रशंसनीय (समित्) प्रकाश (दीदयति) दीप्त करती है (द्यवि) द्युलोक में (इषम्) अन्न को (स्तोतृभ्यः) स्तोता लोगों के लिए (आभर) भरपूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्म देव! हम तुझ प्रकाशस्वरूप और अजर अमर का ध्यान करते हैं । जो तेरा प्रशंसनीय प्रकाश द्युलोक में प्रदीप्त हो रहा है उसके द्वारा स्तोताओं के लिए तू अन्न आदि को प्रदान कर ॥१॥

१०२३—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (ऋचा) मंत्र से (हविः) स्तुति (शुक्रस्य) शुद्धस्वरूप (ज्योतिष्पते) सूर्य आदि प्रकाशों के पालक (सुश्चन्द्र) हे आनन्ददाता (दस्म) हे बुराइयों के दूर करनेवाले (विश्पते) हे प्रजाओं के स्वामी (हव्यवाट्) हे कर्मफल दाता (तुभ्यं) तेरे लिए (हूयते) स्तुति की जाती है (इषम्) ज्ञान को (स्तोतृभ्यः) भक्तों के लिए (आभर) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे सूर्य आदि ज्योतियों के स्वामी, आनन्ददाता, दुर्गुण-निवारक प्रजा के स्वामी तथा कर्मफल देनेवाले परमेश्वर ! तुझ शुद्धस्वरूप के मन्त्र द्वारा तेरे लिए स्तुति की जाती है । तू भक्तों को ज्ञान प्रदान कर ॥२॥

१०२४—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली-भांति (उभे) दोनों (सुश्चन्द्र) हे आह्लादक (विश्पते) प्रजा के स्वामी (दर्वी) होम के पात्र (श्रीणीषे) पकाते हैं (आसनि) अग्नि के मुख में (उतो) और (नः) हम लोगों को (उत्पुपूर्याः) उत्तम प्रकार से पूर्ण कर (उक्थेषु) सामों में (शवसस्पते) हे बल के रक्षक (इषम्) अन्न आदि को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिए (आभर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक प्रजाओं के स्वामी तथा शोभन आह्लादक परमेश्वर ! दो प्रकार के होम पात्रों द्वारा अग्नि के मुख में हम हवन करते हैं । स्तुतियों के विषय में हमें ज्ञान की पूर्णता प्रदान कर । स्तुतिकर्त्ताओं को धन, ज्ञान आदि प्रदान कर ॥३॥

१०२५—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (साम) साम (गायत) गाओ (विप्राय) विद्वान् (बृहते) महान् (बृहत्) बृहत् नामवाले (ब्रह्मकृते) ब्रह्मदर्शी (विपश्चिते) मेधावी (पनस्यवे) उपासक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ब्रह्मदर्शी, मेधावी, उपासक तथा महान् विद्वान् जीव के लिए बृहत् नामक साम का गान करो ॥१॥

१०२६—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि । २॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे परमेश्वर ! (अभिभूः) सबसे बड़ा (असि) है (त्वम्) तू (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाशित करता है (विश्वकर्मा) सृष्टिकर्त्ता (विश्वदेवः) सबका देव (महान्) महान् (असि) है ।२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सर्वशक्तिमान् है । तू सूर्य को प्रकाश देता है । तू ही सृष्टिकर्त्ता सबका देव तथा महान् है ॥२॥

१०२७—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३ २ ३ २
विभ्राजं ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनं दिवः ।

३ १ २ ३ १ २
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥

पदार्थ—(विभ्राजन्) प्रकाशित करता हुआ (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (स्वः) सूर्य को (अगच्छः) होता है (रोचनम्) प्रकाशक (दिवः) द्युलोक के (देवाः) विद्वान् लोग (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सख्याय) मित्रता के लिए (येमिरे) यत्न करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने तेज से सूर्यलोक को प्रकाशित करता हुआ द्युलोक को भी प्रकाश देता है । विद्वान् लोग तेरी मित्रता के लिए यत्न करते हैं ।३॥

१०२८—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वां पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न किया जाता है (सोमः) शरीर और आत्मबल (इन्द्र) हे परमेश्वर (ते) तेरी प्राप्ति के लिए (शविष्ठ) हे सर्वशक्तिमान् (धृष्णो) दुष्टों का दमन करनेवाले (आगहि) प्राप्त हो (आ) भली भांति (त्वा) तू (पृणक्तु) परिपूर्ण कर (इन्द्रियम्) हमारी इन्द्रिय को (रजः) अन्तरिक्ष को (सूर्यो न) सूर्य के समान (रश्मिभिः) किरणों के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान्, दुष्टों का दमन करनेवाले परमेश्वर ! तेरी प्राप्ति के लिए शरीर और आत्मबल पैदा किया जाता है। तू प्राप्त हो। तू हमारी इन्द्रियों को प्रकाश से पूर्ण कर जैसे सूर्य अपनी किरणों से लोक को भर देता है।१।

१०२९—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३१२३ २ ३१२ ३१२
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
३ २३२३ २३१ २ ३१२
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥२॥

पदार्थ—(आतिष्ठ) स्थित हो (वृत्रहन्) हे बुराइयों को दूर करनेवाले (रथम्) शरीर रूपी रथ में (युक्ता) जोड़े गए हैं (ते) तेरे लिए ही (ब्रह्मणा) परमेश्वर के द्वारा (हरी) वायु और विद्युत् (अर्वाचीनं) नवीन (सु) सुन्दर (ते) तेरे (मनः) मन को (ग्रावा) मेघ के साथ युक्त (कृणोतु) करे (वग्नुना) वेदवाणी से ॥२॥

भावार्थ—हे बुराइयों को दूर करनेवाले जीव ! तू शरीर रूप रथ में विराजमान हो। तेरे लिए ही परमेश्वर ने मेघ के साथ वायु और विद्युत् को जोड़ा है। वह तेरे मन को वेदवाणी के द्वारा नवीन करे ॥२॥

१०३०—गोतमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २२ ३ १ २
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २
ऋषीणां सुष्टुतिरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रं) परमेश्वर को (इत्) ही (हरी) ऋक् और साम (वहतः) [प्राप्त कराते हैं] पहुँचाते हैं (अप्रतिधृष्टशवसम्) सर्वशक्तिमान् (ऋषीणां) ऋषियों की (सुष्टुतीः) मनोहर स्तुतियों में (यज्ञम्) यज्ञ में (च) और (मानुषाणाम्) मनुष्यों के ॥३॥

भावार्थ—ऋक् और साम ऋषियों की स्तुतियों तथा मनुष्यों के यज्ञ में सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का ज्ञान कराते हैं ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 षष्ठोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

सप्तमोऽध्यायः

१०३१—आकृष्टामाषाः सिकतानिवावरी च । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१॥

पदार्थ—(ज्योतिः) प्रकाशक (यज्ञस्य) संसार रूप यज्ञ का (पवते) वर्षा करता है (मधु) ज्ञान को (प्रियम्) प्यारे (पिता) रक्षक (देवानाम्) देवों का (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (विभूवसुः) महान् ऐश्वर्यवाला (दधाति) धारण करता है (रत्नम्) धनादि को (स्वधयोः) द्यु और पृथिवीलोक में (अपीच्यम्) छिपे हुए (मदिन्तमः) अत्यन्त आनन्ददायक (मत्सरः) प्रसन्न करनेवाला (इन्द्रियः) आत्मा का हितकारक (रसः) एक रस ॥१॥

भावार्थ—संसार रूप यज्ञ का प्रकाशक, देवों का रक्षक और उत्पादक, महान् ऐश्वर्यवाला अत्यन्त आनन्द का दाता, प्रसन्नता देनेवाला, आत्मा का हितकारी तथा एकरस परमेश्वर प्रियज्ञान की वर्षा करता है। वही द्यु और पृथिवीलोक में छिपे नाना प्रकार के धनों को धारण करता है ॥१॥

१०३२—आकृष्टामाषाः सिकतानिवावरी च । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३क २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२॥

पदार्थ—(अभिक्रन्दन्) उपदेश करता हुआ (कलशम्) आनन्दमय कोश में (वाजी) शक्तिशाली (अर्षति) व्यापक हो रहा है (पतिः) पालक (दिवः) सूर्य आदि का (शतधारः) अनेक प्रकार से धारण करनेवाला (विचक्षणः) सबका साक्षी (हरिः) मनुष्य (मित्रस्य) परमेश्वर के (सदनेषु) लोकों में (सीदति) विराजता है (मर्मृजानः) अपने को शुद्ध पवित्र करता हुआ (अविभिः) प्रकृतिसम्बन्धी (सिन्धुभिः) बहाव से (वृषा) सामर्थ्ययुक्त ॥२॥

भावार्थ—शक्तिशाली सूर्य आदि का रक्षक, संसार को अनेक प्रकार से धारण करनेवाला तथा सर्वसाक्षी परमेश्वर जीव को उपदेश करता हुआ आनन्दमय कोश में व्यापक हो रहा है। सामर्थ्ययुक्त मनुष्य प्रकृति के बहाव से अपने को पवित्र करता हुआ परमेश्वर के उत्पन्न किए हुए लोकों में विराजमान होता है ॥२॥

१०३३—आकृष्टामाषाः सिकतानिवावरीच । सोमः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२
अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रेवाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
२ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २
अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३॥

पदार्थ—(अग्रे) पूर्व या आगे (सिन्धूनां) समुद्रों के (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अर्षसि) वर्तमान रहता है (अग्रे) आगे (वाचः) वाणी के (अग्रियः) प्रथम ही विद्यमान (गोषु) सूर्य की किरणों में (गच्छसि) व्यापक हो रहा है (अग्रे) पहले (वाजस्य) अन्न आदि के (भजसे) विभाग करता है (महद्धनं) महान् धन का (स्वायुधः) अच्छी प्रकार मनुष्यमात्र का पोषण करनेवाला (सोतृभिः) यज्ञ करनेवालों से युक्त (सोम) हे परमेश्वर (सूयसे) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू शुद्धस्वरूप, सबसे प्रथम विद्यमान तथा मनुष्यमात्र का भलीप्रकार रक्षक है। तू समुद्रों और वाणियों के पूर्व ही विद्यमान रहता है। सूर्य की किरणों में तू ही व्यापक है। अन्न आदि के उत्पन्न होने के पूर्व विद्यमान हुआ तू अनेक यजमानों से युक्त महान् धनों को पैदा करता और विभाग करता है ॥३॥

१०३४—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २२
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥१॥

पदार्थ—(असृक्षत) उत्पन्न किए जाते हैं (प्र) उत्तम (वाजिनः) ज्ञानवान् (गव्या) वेदज्ञान की इच्छा से (सोमासः) पुरुष (अश्वया) व्यापक (शुक्रासः) तेजस्वी (वीरया) बलवती (आशवः) कुशाग्र बुद्धि ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी, तेजस्वी तथा कुशाग्र बुद्धि पुरुष व्यापक तथा बलवती वेदज्ञान की इच्छायुक्त पैदा किये जाते हैं ॥१॥

१०३५—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥२॥

पदार्थ—(शुम्भमानाः) सुशोभित (ऋतायुभिः) परमेश्वरप्रदत्त आयुओं से (मृज्यमानाः) शुद्ध किये गये (गभस्त्योः) ग्रहण और त्याग से (पवन्ते) विचरते हैं (वारे) वरण करने योग्य (अव्यये) अविनाशी परमेश्वर में ॥२॥

भावार्थ—ईश्वर प्रदत्त आयुओं से सुशोभित तथा ज्ञान, ग्रहण और त्याग से पवित्र विद्वान् पुरुष भक्ति योग्य परमेश्वर में विचरते हैं ॥२॥

१०३६—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २२
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥३॥

पदार्थ (ते) वे (विश्वाः) सारे (दाशुषे) त्यागी पुरुष के लिए (वसु) अग्नि का (सोमा) विद्वान् (दिव्यानि) दिव्य लोकसम्बन्धी (पार्थिवा) पृथिवी की (पवन्ताम्) ज्ञान कराते हैं (आन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्ष की ॥३॥

भावार्थ—वे विद्वान् पुरुष यज्ञकर्त्ता को द्युलोक, पृथिवीलोक और अन्तरिक्ष की सारी अग्नि का ज्ञान कराते हैं ।।३।।

१०३७—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १२र ३ १२ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।।१।।

पदार्थ—(**पवस्व**) पवित्र करता है (**देववीः**) देवों का उत्पन्न करनेवाला (**अति**) अत्यन्त (**पवित्रं**) पवित्रस्वरूप (**सोम**) हे परमेश्वर (**रंह्या**) वेग से (**इन्दुम्**) जीवात्मा में (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (**विश**) व्यापक है ।।१।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! देवों का उत्पन्न करनेवाला तथा कामनाओं को सफल बनानेवाला तू शुद्धस्वरूप जीवात्मा को पवित्र करता हुआ उसमें व्यापक है ।।१।।

१०३८—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३२३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ।।२।।

पदार्थ—(**आवच्यस्व**) भली भांति प्राप्त करा (**महि**) पर्याप्त (**प्सरः**) भोग्य पदार्थ (**वृषा**) मनोरथ को सफल करनेवाला (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यवान् (**द्युम्नवत्तमः**) अत्यन्त यशस्वी (**आ**) भली भाँति (**योनिम्**) अपने कारणस्वरूप में (**धर्णसिः**) जगत् का धारणकर्त्ता (**सदः**) विद्यमान है ।।२।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! मनोरथ को सफल करनेवाला अत्यन्त यशस्वी तथा जगत् का धारणकर्त्ता तू प्रभूत भोग्य पदार्थ हमें प्राप्त कराता है और तू अपने कारणस्वरूप में स्थित है ।।२।।

१०३९—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३२उ ३ १ २ ३१२३१२ ३ १ २ ३१२
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ।।३।।

पदार्थ—(**अधुक्षत**) पूर्ण करती है (**प्रियम्**) प्रियकारी (**मधु**) आनन्द को (**धाराः**) वाणियें (**सुतस्य**) सृष्टिकर्त्ता (**वेधसः**) विधाता की (**अपो**) जलों को (**वसिष्ट**) बसाता है (**सुक्रतुः**) सुन्दर कर्मवाला ।।३।।

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता विधाता परमेश्वर की वेदरूप वाणियां प्रिय आनन्द को पूरित करती हैं । सुन्दर कार्योंवाला वह परमेश्वर जलों को निवास देता है ।।३।।

१०४०—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २र ३ १२
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ।।४।।

पदार्थ—(**महान्तम्**) जल को (त्वा) तू (**महीः**) महान् (अनु) पश्चात् (**आपः**) जल (**अर्षन्ति**) प्राप्त होते हैं (**सिन्धवः**) गतिशील (**यत्**) जब (**गोभिः**) सूर्य की किरणों से (**वासयिष्यसे**) आच्छादित करता है ।।४।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जब अन्तरिक्षस्थ जल को सूर्य की किरणों से आच्छादित करता है तब जल की महावृष्टि होती है ।।४।।

१०४१—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३१२ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ।।५।।

पदार्थ—(**समुद्रः**) प्राणिमात्र को आनन्द देनेवाला (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**मामृजे**) शुद्ध करता है (**विष्टम्भः**) सबका स्तम्भरूप (**धरुणः**) धारक (**दिवः**) द्युलोक का (**सोमः**) परमेश्वर (**पवित्रे**) जल और वायु दोनों को (**अस्मयुः**) हमारे कल्याण की कामना करनेवाला ।।५।।

भावार्थ—प्राणिमात्र के आनन्द का स्थान, लोकों का स्तम्भरूप, द्युलोक धारक तथा हमारे कल्याण की कामना करनेवाला परमेश्वर अन्तरिक्ष में जल और वायु को पवित्र करता है ।।५।।

१०४२—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २र
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्युते ।।६।।

पदार्थ—(**अचिक्रदत्**) उपदेश करता है (**वृषा**) कामनाओं को सफल करनेवाला (**हरिः**) अज्ञान का हरणकर्त्ता (**महान्**) महान् (**मित्रो न**) मित्र के समान (**दर्शतः**) साक्षात् करने के योग्य (**सं**) सम्यक् (**सूर्येण**) सूर्य के द्वारा (**दिद्युते**) प्रकाशित कर रहा है ।।६।।

भावार्थ—हमारी कामनाओं को सफल करनेवाला, अज्ञाननाशक तथा साक्षात्कार के योग्य महान् परमेश्वर मित्र के समान हमारे हृदय में हित का उपदेश करता है और सूर्य के द्वारा लोक को प्रकाशित कर रहा है ।।६।।

१०४३—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३१२३ १ २
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ।।७।।

पदार्थ—(**गिरः**) वाणियां (**ते**) तेरी (**इन्दो**) ऐश्वर्यवान् (**ओजसा**) शक्ति से (**मर्मृज्यन्ते**) शुद्ध की जाती हैं (**अपस्युवः**) कर्म और ज्ञान का प्रकाश करनेवाली (**याभिः**) जिनके द्वारा (**मदाय**) स्तुति के लिए (**शुम्भसे**) सुशोभित होता है ।।७।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! कर्म और ज्ञान का प्रकाश करनेवाली तेरी वेदवाणियां तेरी शक्ति से स्तुति के लिए शुद्ध की जाती हैं जिन के द्वारा तू सुशोभित होता है ।।७।।

१०४४—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १२३१२ ३ १ २ २३१२ ३२
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ।।८।।

पदार्थ—(**तं**) उस (**त्वा**) तुझे (**मदाय**) आनन्द के लिए (**घृष्वये**) बुरी वासनाओं का दलन करनेवाले (**लोककृत्नुम्**) सृष्टिकर्त्ता (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं (**तव**) तेरी (**प्रशस्तये**) स्तुति के लिए (**महे**) महान् ।।८।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बुरी वासनाओं को दूर करनेवाले आनन्द के लिए तथा तेरी स्तुति के लिए तुझे स्वीकार करते हैं ।।८।।

१०४५—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ।।९।।

पदार्थ—(**गोषा**) गाय का दाता (**इन्दो**) हे परम ऐश्वर्यशाले (**नृषा**) मनुष्यों का दाता (**असि**) है (**अश्वसा**) घोड़ों का दाता (**वाजसा**) अन्न आदि का दाता (**उत**) और (**आत्मा**) आत्मा (**यज्ञस्य**) संसार रूप यज्ञ का (**पूर्व्यः**) सनातन ।।९।।

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर । तू गौओं, मनुष्यों, घोड़ों तथा अन्नों का दाता है । तू ही संसाररूप यज्ञ का सनातन आत्मा है ।।९।।

१०४६—मेधातिथिः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।।१०।।

पदार्थ—(**अस्मभ्यम्**) हमारी (**इन्दो**) हे परमैश्वर्यवान् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रिय को (**मधोः**) ज्ञान की (**पवस्व**) पवित्र कर (**धारया**) धार से (**पर्जन्यः**) मेघ के (**वृष्टिमान्**) वर्षा करनेवाले (**इव**) समान ।।१०।।

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों को वर्षा करनेवाले मेघ के समान ज्ञान की धारा से पवित्र कर ।।१०।।

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१०४७—हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सना च सोम जेषि च पवमान महिश्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।१।।

पदार्थ—(**सना**) सनातन (**च**) और (**सोम**) हे परमेश्वर (**जेषि**) जीतता है (**च**) भी (**पवमान**) हे शुद्धस्वरूप (**महिश्रवः**) सकल संपदाओं के स्वामी (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमारा (**वस्यसः**) कल्याण (**कृधि**) कर ।।१।।

भावार्थ—हे सकल संपदाओं के स्वामी तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू सनातन है और अजेय है । हमारा कल्याण कर ।।१।।

१०४८—हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २क १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।२।।

पदार्थ—(**सना**) सनातन (**ज्योतिः**) प्रकाश (**सना**) सनातन (**स्वः**) सुख (**विश्वा**) सारे (**च**) और सौभाग्य भी (**अथ**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) शरण (**कृधि**) दे ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर तेरी ज्योति, सुख और सारे सौभाग्य सनातन हैं तू हमें शरण दे ।।२।।

१०४९—हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।३।।

पदार्थ—(**सना**) प्रदान कर (**दक्षम्**) बल को (**उत**) और (**क्रतुम्**) बुद्धि को (**अप**) दूर (**सोम**) हे परमेश्वर (**मृधः**) दुर्गुणरूप शत्रुओं को (**जहि**) मार भगा (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) धनाढ्य (**कृधि**) कर ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें बल और बुद्धि प्रदान कर । हमारे दुर्गुणों को हमसे दूर भगा । हमें धनाढ्य बना ।।३।।

१०५०—हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ।।४।।

पदार्थ—(**पवीतारः**) हे विद्वानो (**पुनीतन**) पवित्र करो (**सोमम्**) वायु को (**इन्द्राय**) जीव के (**पातवे**) रक्षा के लिए (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) उत्तम (**कृधि**) बना ॥४॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जीव की रक्षा के लिए यज्ञ आदि के द्वारा वायु को पवित्र करो और हमें उत्तम बनाओ ॥४॥

१०५१— *हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥५॥

पदार्थ—(**त्वं**) तू (**सूर्ये**) सूर्यसंबन्धी विद्युत् के विषय का (**आ भज**) भागी बना (**तव**) अपने (**क्रत्वा**) ज्ञान के द्वारा (**तव**) तेरी (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) श्रेष्ठ (**कृधि**) कर ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अपने ज्ञान तथा रक्षा के द्वारा हमें सारे विद्युत् के ज्ञान का भागी बना और हमें श्रेष्ठ गुणवाला कर ॥५॥

१०५२—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६॥

पदार्थ—(**तव**) तेरे (**क्रत्वाः**) ज्ञान के द्वारा (**तव**) तेरी (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**ज्योक्**) चिरकाल तक (**पश्येम**) देखें, समझें (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) योग्य (**कृधि**) बना ॥६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तेरे ज्ञान और रक्षाओं के द्वारा चिरकाल तक सूर्य को देखें और उसका ज्ञान प्राप्त करें । तू हमें योग्य बना ॥६॥

१०५३—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७॥

पदार्थ—(**अभ्यर्ष**) प्राप्त करा (**स्वायुध**) मनुष्यों के उत्तम रक्षक (**सोम**) हे परमेश्वर (**द्विबर्हसम्**) द्यु और पृथिवी लोक में फैले हुए (**रयिम्**) धन को (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) उन्नत (**कृधि**) कर ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यों के रक्षक परमेश्वर ! तू हमें द्युलोक तथा पृथिवी पर फैले हुए धन को प्राप्त करा और हमें उन्नत कर ॥७॥

१०५४—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २

अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८॥

पदार्थ—(**अभ्यर्ष**) प्राप्त हो (**अनपच्युतः**) अविनाशी (**वाजिन्**) हे बलवान् (**समत्सु**) संग्रामों में (**सासहिः**) शत्रुओं का अभिभव करने की शक्ति देने वाला (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) शरण में आये का रक्षक (**कृधि**) बना ॥८॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अविनाशी तथा संग्रामों में जीतने का साहस देने वाला तू हमें प्राप्त हो और शरण में आए हुए का रक्षक बना ॥८॥

१०५५—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९॥

पदार्थ— (**त्वां**) तुझे (**यज्ञैः**) स्तोत्रों से (**अवीवृधन्**) स्तुति करते हैं (**पवमान**) हे शुद्ध स्वरूप (**विधर्मणि**) विशेष धर्मवाले ज्ञानयज्ञ में (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमे (**वस्यसः**) सुखी (**कृधि**) कर ॥९॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! विशेष धर्मकार्य में स्तोत्रों के द्वारा तेरी स्तुति करते हैं । तू हमें सुखी बना ॥९॥

१०५६—*हिरण्यस्तूपः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥

पदार्थ—(**रयिम्**) धन को [सम्पदाएं] (**नः**) हमें (**चित्रम्**) बहुत प्रकार के (**अश्विनम्**) विस्तृत (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशाली (**विश्वायुम्**) दीर्घायु करने वाले (**आभर**) प्रदान कर (**अथा**) अनन्तर (**नः**) हमें (**वस्यसः**) सफल मनोरथ (**कृधि**) कर ॥१०॥

भावार्थ—हे सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! तू हमें अनेक प्रकार के विस्तृत और दीर्घायु देने वाले धन को प्रदान कर तथा हमें सफल मनोरथ बना ॥१०॥

१०५७—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥१॥

पदार्थ—(**तरत्**) तर जाता है (**सः**)वह (**मन्दी**) स्तुति करने वाला (**धावति**) उत्तम गति पाता है (**धारा**) वेदवाणी से (**सुतस्य**) स्तुति किये गये या वर्णित किए गये (**अन्धसः**) अज्ञान से (**तरत्**) तरता है (**सः**) वह (**मन्दी**) स्तोता (**धावति**) उत्तम गति पाता है ॥१॥

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा वर्णन किये गये परमेश्वर की स्तुति करने वाला अज्ञान से पार हो जाता है और अवश्य उत्तम गति को पाता है ॥१॥

१०५८—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥२॥

पदार्थ—(**उस्रा**) देनेवाला (**वेद**) प्राप्त होता है (**वसूनां**) सम्पदाओं का (**मर्तस्य**) मनुष्य की (**देवी**) परमेश्वर (**अवसः**) रक्षाओ को (**तरत्**) [पाप से] पार हो जाता है (**सः**) वह (**मन्दी**) उपासक (**धावति**) उत्तम गति पाता है ॥२॥

भावार्थ—धन का दाता परमेश्वर जिस पुरुष की रक्षा को स्वयं प्राप्त होता है वह स्तुति करता हुआ पुरुष पाप से तर जाता है और उत्तम गति पाता है ॥२॥

१०५९—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥३॥

पदार्थ—(**ध्वस्रयोः**) ध्वंस करनेवाले (**पुरुषन्त्यो**) बहुत पदार्थों के विभाग करनेवाले (**आ**) भली भांति (**सहस्राणि**) हजारों प्रकार के ज्ञान (**दद्महे**) ग्रहण करते हैं,(**तरत्**) तर जाता है (**सः**) वह (**मन्दी**) स्तोता (**धावति**) उत्तम गति पाता है ॥३॥

भावार्थ—हम अनेकों पदार्थों को नष्ट करनेवाले तथा अनेकों का विभाग करनेवाले परमेश्वर और सूर्य के सहस्रों प्रकार के ज्ञान, सुख आदि को ग्रहण करते हैं । जो स्तुति करता है वह पाप से तर जाता है और उत्तम गति प्राप्त करता है ॥३॥

१०६०—*उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥४॥

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**ययोः**) जिन दोनों (**त्रिंशतं**) तीन सौ [सैकड़ों] (**तना**) धनों का (**सहस्राणि**) हजारों (**च**) और (**दद्महे**) ग्रहण करते हैं (**तरत्**) तर जाता है (**स**) वह (**मन्दी**) स्तुति करनेवाला (**धावति**) उत्तम गति पाता है ॥४॥

भावार्थ—जिन परमेश्वर और सूर्य के द्वारा सैकड़ों और सहस्रों प्रकार की सम्पदाएं हमें प्राप्त होती हैं । परमेश्वर की स्तुति करनेवाला तर जाता है और उत्तम गति पाता है ॥४॥

१०६१—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥१॥

पदार्थ—(**एते**) ये (**सोमाः**) विद्वान् (**असृक्षत**) उत्पन्न किए जाते हैं (**गृणानाः**) स्तुति करनेवाले (**शवसे**) यश के लिए (**महे**) महान् (**मदिन्तमस्य**) आनन्ददाता परमेश्वर की (**धारया**) स्तुति के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—स्तुतियों से परमेश्वर की भक्ति करनेवाले विद्वान् पुरुष महान् यश के लाभ के लिए उत्पन्न किए जाते हैं ॥१॥

१०६२—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥२॥

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार से (**गव्यानि**) गोदुग्ध आदि (**वीतये**) भोग के लिए (**नृम्णा**) धन (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**अर्षसि**) देता है (**सनद्वाजः**) सदा अन्नदाता तू (**परिस्रव**) दया कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें पवित्र करता हुआ हमारे भोग के लिए गोदुग्ध आदि धन प्रदान करता है । सदा अन्न का दाता तू हम पर दया कर ॥२॥

१०६३—*जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥३॥

पदार्थ—(**उत**) और (**नः**) हमें (**गोमतीः**) इन्द्रियों को प्रकाश देनेवाला (**इषः**) ज्ञान को (**विश्वा**) संपूर्ण (**अर्ष**) प्राप्त करा (**परिष्टुभः**) प्रशंसनीय (**गृणानः**) स्तुति किया हुआ (**जमदग्निना**) आहिताग्नि ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! निरन्तर यज्ञ करनेवाले हमारे द्वारा प्रार्थित तू हमें इन्द्रियों का हितकारी और प्रशंसनीय सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान कर ॥३॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१०६४—*कुत्सः । अग्निः । जगती ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्र का (अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) वेद के उत्पादक परमेश्वर के लिए (रथमिव) ज्ञान के समान (संमहेम) सम्मान करते हैं (मनीषया) उत्तम बुद्धि से (भद्रा) कल्याणकारी (हि) निश्चित रूप से (नः) हमारी (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्य) इसके (संसदि) भजन रूप सत्संग में (अग्ने) हे परमेश्वर ! (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषाम) किसी से दुःख पाएँ (वयं) हम (तव) तेरी ॥१॥

भावार्थ—हम पूजनीय वेदोत्पादक परमेश्वर के लिए ज्ञान के समान इस स्तोत्र का बुद्धि से सन्मान करते हैं । निश्चित रूप से इसके भजन में हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी होती है । हे परमेश्वर ! तेरी मित्रता में हमें किसी से दुःख न होवे ॥१॥

१०६५—कुत्सः । अग्निः । जगती ।

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२॥

पदार्थ—(भराम) प्रज्वलित करते हैं (इध्मं) अग्नि को (कृणवामा) उसमें डालते हैं (हवींषि) सामग्री को (ते) तेरी प्राप्ति के उद्देश्य से (चितयन्तः) चिन्तन करते हुए (पर्वणा, पर्वणा) परिपूर्ण साधनों से (वयम्) हम (जीवातवे) जीवन धारण के लिए (प्रतरं) उत्तम (साधय) सिद्ध कर (धियः) बुद्धियों को (अग्ने) हे परमेश्वर (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषामा) किसी को दुःख देवें (वयम्) हम (तव) तेरी ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पूर्ण साधनों से तेरी प्राप्ति की चिन्ता करते हुए अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और उसमें आहुति प्रदान करते हैं । तू हमारे जीवन के लिए हमें उत्तम बुद्धि प्रदान कर । तेरी मित्रता में रहते हुए हम किसी को दुःख न देवें ॥२॥

१०६६—कुत्सः । अग्निः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २क १ २र ३ १ २र ३ १ २र

त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

पदार्थ—(शकेम) समर्थ हों (त्वा) तेरी (समिधम्) प्रकाशस्वरूप (साधय) सिद्ध कर (धियः) कर्म और ज्ञान को (त्वे) तेरे सहारे पर (देवाः) देवगण (हविः) हवि को (अदन्ति) ग्रहण करते हैं (आहुतम्) अग्नि में होम की गई (त्वं) तु (आदित्यां) आदित्यसंज्ञक विद्वानों को (आवह) प्राप्त करा (तान्) उन्हें (हि) निश्चितरूप से (उश्मसि) चाहते हैं (अग्ने) हे परमेश्वर (सख्ये) मित्रता में (मा) नहीं (रिषामा) हम किसी का हानि पहुँचाएं तथा किसी को हम से हानि न पहुँचे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तुझ प्रकाशस्वरूप की उपासना करने में समर्थ होवें । तू हमारी बुद्धि और कर्म को उत्तम प्रेरणा दे । तेरे सहारे पर अग्नि में दी गई हवि को देवगण ग्रहण करते हैं । तू आदित्य विद्वानों को उत्पन्न कर । निश्चय ही हम उनकी कामना करते हैं । तेरी मित्रता में हम से किसी को या किसी से हम को हानि न पहुँचे ॥३॥

१०६७—वसिष्ठः । आदित्याः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) उद्देश्य से (वां) तुम दोनों के (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होने पर (मित्रं) सबके मित्र (गृणीषे) स्तुति करता हूँ (वरुणम्) वरण करने के योग्य (अर्यमणम्) न्यायकारी (रिशादसम्) बुराइयों का हनन करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम्हारे कल्याण के उद्देश्य से मैं सब के मित्र, वरण करने योग्य तथा बुराइयों को दूर करनेवाले न्यायकारी परमेश्वर की स्तुति करता हूँ ॥१॥

१०६८—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥२॥

पदार्थ—(राया) धनसहित (हिरण्यया) रमणीय (मतिः) स्तुति (इयं) यह (अवृकाय) अखण्डित (शवसे) बल के लिए (इयं) यह (विप्राः) हे मेधावी पुरुषो, (मेधसातये) बुद्धि की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! यह परमेश्वर की स्तुति रमणीय धनसहित अखण्डित बल तथा बुद्धि के लिए हो ॥२॥

१०६९—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३क २र

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥३॥

पदार्थ—(ते) तेरे (स्याम) [भक्त] हों (देव) हे देव (वरुण) हे वरण करने के योग्य (ते) तेरे (मित्र) हे सबके मित्र (सूरिभिः) विद्वानों के (सह) सहित (इषं) ज्ञान (स्वः) सुख (धीमहि) धारण करें ॥३॥

भावार्थ—हे वरणीय तथा सबके मित्र परमात्म देव ! हम विद्वानों के साथ तेरे भक्त हों तथा तेरे ज्ञान और सुख को धारण करें ॥३॥

१०७०—त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २र

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥१॥

पदार्थ—(भिन्धि) विनाश कर (विश्वा) सारे (अप) पृथक् (द्विषः) द्वेषों का (परि) सब प्रकार से (बाधः) बाधा पहुँचानेवाली (जहि) हनन कर (मृधः) हिंसक वृत्तियों को (वसु) विद्याधन (स्पार्हं) चाहने योग्य (तद्) उसे (आभर) भरपूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! सारे द्वेषों का विनाश कर । बाधा पहुँचाने वाली हिंसक वृत्तियों को दूर भगा । चाहने योग्य जो ज्ञान धन है उसे प्रदान कर ॥१॥

१०७१—त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरे (विश्वम्) सकल जगत् (आनुषक्) निरन्तर (भूरेः) पर्याप्त (दत्तस्य) दिये हुए को (वेदति) जानता है (वसु) धन (स्पार्हं) चाहने योग्य (तत्) वह (आभर) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे दिए हुए जिस पर्याप्त धन को सारा संसार जानता है, चाहने योग्य उस धन को हमें प्रदान कर ॥२॥

१०७२—त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २र

यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (वीडौ) बल में (इन्द्र) हे सेनापते (यत्) जो (स्थिरे) पृथिवी में (यत्) जो (पर्शाने) विचारशील (पराभृतम्) सुरक्षित (वसु) धन (स्पार्हं) चाहने योग्य (तत्) उसे (आ भर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे सेनापते ! जो धन बल में, पृथिवी और विचारशील मनुष्य में सुरक्षित है उस चाहने योग्य धन को हमें प्रदान कर ॥३॥

१०७३—श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञस्य) संसार रूप यज्ञ के (हि) निश्चित रूप से (स्थः) हैं (ऋत्विजा) ऋत्विग् (सस्नी) निपुण (वाजेषु) ज्ञानों में (कर्मसु) कर्मों में (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (तस्य) उसका (बोधतम्) बोध कराओ ॥१॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! आप दोनों जिस संसाररूप यज्ञ के ऋत्विज हैं तथा जिसके ज्ञान और कर्म में निपुण हैं, उस संसार का हमें ज्ञान करावें ॥१॥

१०७४—श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२॥

पदार्थ—(तोशासा) सन्तुष्ट करनेवाले (रथयावाना) संसाररूप रथ पर विराजमान हुए (वृत्रहणा) बुराइयों के दूर करनेवाले (अपराजिता) किसी से भी न हारनेवाले (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (तस्य) संसार को (बोधतम्) जानते हो ॥२॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! सब को सन्तुष्ट करनेवाले, संसाररूप रथ पर विराजमान हुए, बुराइयों के निवारक तथा किसी से भी न पराजित होने वाले तुम दोनों संसार को जानते हो ॥२॥

१०७५—श्यावाश्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३॥

पदार्थ—(इदं) इस (वां) तुम दोनों के (मदिरं) प्रसन्नता देनेवाले (मधु) ज्ञान को (अधुक्षत्) दुहते हैं (अद्रिभिः) अखण्डव्रतों से (नरः) मनुष्य (इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (तस्य) उसका (बोधतम्) बोध कराओ ॥३॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! ज्ञानी मनुष्य दृढ़ व्रतों से तुम्हारे इस आनन्ददायक ज्ञान को दुहते हैं । आप दोनों उसका हमें बोध कराएँ ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१०७६—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३१२३१२३१२ ३२३१२३१२

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव के लिए (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (मरुत्वते) धनादि से युक्त (पवस्व) उपदेश कर (मधुमत्तमः) अत्यन्त ज्ञानवाला (अर्कस्य) पूजनीय परमेश्वर के (योनिम्) मोक्ष धाम में (आसदम्) स्थित होऊँ ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष ! अत्यन्त ज्ञानी तू धनादि से युक्त पुरुष के लिए उपदेश प्रदान कर । मैं पूजनीय परमेश्वर के मोक्ष धाम में स्थित होऊँ ॥१॥

१०७७—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २३१२ ३ २

तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।

१ २ ११२

सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तुझे (विप्राः) मेधावी पुरुष (वचोविदः) वेदज्ञ (परिष्कृण्वन्ति) परिचर्या करते हैं [उपासना करते हैं] (धर्णसिम्) सबके धारण करनेवाले (सं) सम्यक् (त्वा) तेरे उद्देश्य से (मृजन्ति) अपने को पवित्र करते हैं (आयवः) मनुष्य लोग ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मेधावी वेदज्ञ लोग तुझ सर्वाधिकार की उपासना करते हैं । मनुष्य लोग तेरे ही उद्देश्य से अपने आप को शुद्ध पवित्र करते हैं ॥२॥

१०७८—कश्यपः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२३१ २र३१२ १२ ३१२

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥३॥

पदार्थ—(रसं) आनन्द रस को (ते) तेरे (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (पिबन्तु) पान करें (वरुणः) श्रेष्ठ (कवे) हे वेद-काव्य के कर्त्ता (पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (मरुतः) ऋत्विग् लोग ॥३॥

भावार्थ—हे वेद के कर्त्ता परमेश्वर ! उपकारी, न्यायकारी, श्रेष्ठ पुरुष और ऋत्विग् लोग तुझ शुद्धस्वरूप के आनन्द रस का पान करें ॥३॥

१०७९—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ १२ ३१ २र

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

१ २ ३१२ ३१२३२३१२ ३क २र

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥१॥

पदार्थ—(मृज्यमानः) पवित्र किया हुआ (सुहस्त्या) हे सिद्धहस्त (समुद्रे) मन में (वाचम्) वाणी की (इन्वसि) प्रेरणा करता है (रयिं) धन को (पिशङ्गं) सुवर्णमय (बहुलं) अधिक (पुरुस्पृहं) बहुतों से चाहने योग्य (पवमान) हे पवित्र स्वभाववाले (अभ्यर्षसि) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे सिद्धहस्त तथा पवित्र स्वभाव विद्वान् पुरुष ! पवित्र किया हुआ तू सबके मन में वाणी की प्रेरणा करता है तथा बहुतों से चाहने योग्य सुवर्णमय प्रचुर धन को प्राप्त करता है ॥१॥

१०८०—सप्तर्षयः । सोमः । बृहती ।

३ २उ ३१२ ३२३१२ ३१२

पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।

३ १२ ३१ २र ३१२

देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करनेवाला (वारे) वरण करने योग्य (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अव्यये) नित्य (वृषः) सबके मनोरथों को सफल करनेवाला (अचिक्रदत्) विविध प्रकार से गति देता है । (वने) प्रकृतिरूप वन में (देवानां) जीवों के (सोम) हे परमेश्वर (पवमान) शुद्धस्वरूप (निष्कृतं) कर्मफल को (गोभिः) तेज से (अञ्जानः) व्यापक होता हुआ (अर्षसि) प्राप्त कराता है ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! पवित्रकारक तथा सबके मनोरथों को सफल करनेवाला तू वरण करने योग्य नित्य प्रकृतिरूपी कारण वन में अपने तेज से व्यापक होता हुआ विविध प्रकार की गति दे रहा है । तू जीवों के कर्म का फल प्रदान करता है ॥२॥

१०८१—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३२३२उ ३ १२ ३२ ३ १ २

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।

१२३ १२

समादित्येभिरख्यत ॥३॥

पदार्थ—(एतम्) इस (उ) पाद-पूरण (त्यं) उसको (दश) दश (क्षिपः) दुःखों को दूर फेंकनेवाले यम तथा नियम (मृजन्ति) पवित्र करते हैं (सिन्धुमातरम्) परमेश्वर है माता जिसकी (सं) सम्यक् (आदित्येभिः) बारह मासों से (अख्यत) संगत होता है ॥३॥

भावार्थ—दश यम और नियम परमेश्वर की रक्षा में रहनेवाले विद्वान् को शुद्ध कर देते हैं । वह बारह मास प्रशंसा का पात्र होता है ॥३॥

१०८२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २र३२३१२३१२ ३२३ २ १ २र ३ १ २

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥१॥

पदार्थ—(सं) सम्यक् (इन्द्रेण) विद्युत् के साथ (उत) और (वायुना) वायु के साथ (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (एति) व्यापक है (पवित्रे) पवित्र संसार में (आ) भली भाँति (सं) सम्यक् (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ ॥१॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर विद्युत्, वायु और सूर्य की किरणों के साथ पवित्र जगत् में व्यापक हो रहा है ॥१॥

१०८३—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १२ ३१२३१२ ३१२ १२३१ २र

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (भगाय) ऐश्वर्यशाली (वायवे) व्यापक (पूष्णे) पालन करनेवाले (पवस्व) पवित्र कर (मधुमान्) ज्ञानवान् (चारुः) शोभन (मित्रे) मित्र (वरुणे) वरण के योग्य (च) और ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! शोभन ज्ञानवान् तू ऐश्वर्यशाली, व्यापक पालनकर्त्ता, मित्र तथा वरण करने योग्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए हमें पवित्र कर ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१०८४—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३२३१२ ३ १२ ३२३ २३१२

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥

पदार्थ—(रेवतीः) धन को देनेवाली (नः) हमें (सधमादे) समान सुख के स्थान (इन्द्रे) परमेश्वर में (सन्तु) हों (तुविवाजाः) ज्ञान का बोध करानेवाली (क्षुमन्तः) अन्नवाले (याभिः) जिनके द्वारा (मदेम) हर्ष प्राप्त करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्न आदि से युक्त हम लोग समान सुख के दाता परमेश्वर में स्थित हुए जिन स्तुतियों से हर्षित होते हैं वे हमें धनदात्री और ज्ञान का बोध करानेवाली होवें ॥१॥

१०८५—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २३ १२ ३२ ३१२ ३२

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।

३२उ ३ २३क २र

ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (घ) अवश्य (त्वावान्) अनुपम (त्मना) अपने आप (युक्तः) हम पर कृपा से युक्त (स्तोतृभ्यः) हम भक्तों के लिए (धृष्णो) शक्तिमान् परमेश्वर (ईयानः) प्रार्थना किया हुआ (ऋणोः) संचालन कर (अक्षं न) नाभि के समान (चक्र्योः) रथ के चक्कों को ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अनुपम, स्वयं कृपा से युक्त तथा प्रार्थना किया हुआ तू हम भक्तों का रथ के चक्कों को रथ नाभि के समान सब तरफ से संचालन कर ॥२॥

१०८६—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३१ २र ३ २ ३२उ ३ १ २र

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (यद्) जो (दुवः) सेवा [उपासना] (शतक्रतो) हे अनन्तकर्मन् (आ) भली भांति (कामं) इच्छा को (जरितृणाम्) स्तुति करनेवालों की (ऋणोः) पूरा कर (अक्षं न) आत्मा के समान (शचीभिः) कर्मों के द्वारा ॥३॥

भावार्थ—हे अनन्त कर्मवाले परमेश्वर! उपासना से उपासकों की कामनाओं को कर्म के द्वारा आत्मा के समान पूर्ण कर ॥३॥

१०८७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २३१२३१ ३१२ ३ २३ १२

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥१॥

पदार्थ—(सुरूपकृत्नुम्) विद्या से सुशोभित कर देनेवाले (ऊतये) विद्या की प्राप्ति के लिए (सुदुघाम्) सुखपूर्वक दुही जानेवाली के (इव) समान (गोदुहे) दोहन करने वाले के लिए (जुहूमसि) पुकारते हैं (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन ॥१॥

भावार्थ—हम विद्या से सुशोभित करनेवाले विद्वान् को विद्या प्राप्ति के लिए सुख से दुही जाने वाली गाय को दुहने वाले के समान प्रतिदिन सन्मान करते हैं ॥१॥

१०८८—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१२३ २३१ २३१२ ३२उ ३२३ १२
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमारे (सवना) यज्ञों में (आगहि) व्यापक हो रहा है (सोमस्य) संसार की (सोमपाः) हे संसार के रक्षक (पिब) रक्षा कर (गोदा) इन्द्रियों का दाता (इत्) ही (रेवतः) जीव का (मदः) सुखकारी ॥२॥

भावार्थ—हे संसार के रक्षक परमेश्वर ! तू हमारे यज्ञों में व्यापक हो रहा है। तू ही संसार की रक्षा करता है। तू जीव का इन्द्रियदाता और सुखी करनेवाला है ॥२॥

१०८६—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१२३१२ ३१२ ३२ २३१२३१२
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

पदार्थ—(अथ) अनन्तर (ते) तेरे (अन्तमानां) समीप की (विद्याम) जानें (सुमतीनां) शोभन बुद्धियों को (मा) न (नः) हमें (अतिख्यः) वञ्चित कर (आगहि) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम तेरी समीपवर्ती उत्तम बुद्धियों को जानें। तू हमें उनसे वंचित न कर। तू हमें प्राप्त हो ॥३॥

१०६०—मान्धाता । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

३१ २र३१२ ३२३१२
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।

३१२ ३१२३१२ ३२
महान्तं त्वां महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।

३१ २र ३१ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

पदार्थ—(उभे) दोनों (यत्) जो (इन्द्र) सूर्य (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी को (आपप्राथ) प्रकाश से पूर्ण करता है (उषा इव) उषा के समान (महान्तं) सबसे महान् (त्वा) इसको (महीनां) पृथिव्यादि लोकों में (सम्राजम्) प्रकाश देने वाला (चर्षणीनां) देखने वाले मनुष्यों को (देवी) परमेश्वर (जनित्री) उत्पन्न करने वाला (अजीजनत्) उत्पन्न करता है (भद्रा) कल्याणकारी (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—सूर्य द्युलोक और पृथिवी को उषा के समान अपने प्रकाश से पूर्ण करता है। वह पृथिवी आदि लोकों से भी बड़ा है और देखने वालों को प्रकाश देनेवाला है। कल्याणकारी सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ही उसका उत्पादक है ॥१॥

१०६१—मान्धाता । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

३१२ ३१२३ २३ १२
दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्ति बिभर्षि मन्तुमः ।

१२ ३२३२३१ २र
पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ।

३१ २र ३१ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

पदार्थ—(दीर्घं) बड़ा (हि) निश्चय ही (अंकुशं) अंकुश (यथा) जैसे (शक्ति) सामर्थ्य को (बिभर्षि) धारण करता है (मन्तुमः) हे ज्ञानिन् (पूर्वेण) अगले (मघवन्) हे सारी संपदाओं के स्वामी (पदा) पावों से [पक्ष में व्याप्ति से] (वयाम्) वृक्ष की शाखा को (अजः) बकरा (यथा) जैसे (यमः) अपने अधिकार में करता है (देवी) दिव्य गुणयुक्त (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) उत्पन्न करता है (भद्रा) कल्याणकारी (जनित्री) उत्पन्न करनेवाला (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञान तथा सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! कल्याणकारी दिव्य गुणयुक्त सर्वोत्पादक तू अंकुश के समान महान् शक्ति को धारण करता है। तू समस्त लोकों को पैदा करता है और जिस प्रकार अगले पाँव से बकरा शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार तू अपनी व्याप्ति से उनकी व्यवस्था करता है ॥२॥

१०६२—मान्धाता । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

१२ ३१ २र ३२
अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् ।

३ १ २र ३२ ३१२३ १२
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्मां अभिदासति ।

३१ २र ३१ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥

पदार्थ—(अव) नीचे (स्म) पादपूरक (दुर्हणायतः) दुःखपूर्वक हरण करनेवाले (मर्त्तस्य) मनुष्य के (तनुहि) गिरा (स्थिरम्) शक्ति को (अधस्पदं) पैरों तले (तम्) उस (ईम्) पादपूरक (कृधि) कर (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) दास बनाता है। (देवी) दिव्यगुण युक्त (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) पैदा करता है (भद्रा) कल्याणकारी (जनित्री) उत्पादक (अजीजनत्) जीवन देता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू दुःखपूर्वक हरण करनेवाले मनुष्य की शक्ति को नीचे गिरा। जो हमें दास बनाता है और हम यदि किसी को दास बनाते हैं तो उन्हें कुचल दे। दिव्य गुणयुक्त सर्वोत्पादक तू सबको उत्पन्न करता है और जीवन प्रदान करता है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१०६३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१ २३ २३२३१२ १२ ३१२
परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) सबके हृदय में उपदेश करता हुआ (गिरिष्ठाः) वाणी में स्थित (पवित्रे) इस पवित्र संसार में (सोमः) परमेश्वर (अक्षरत्) संचालन करता है (मदेषु) स्तुति विषय में (सर्वधा) सबका धारणकर्त्ता (असि) है ॥१॥

भावार्थ—अन्तःकरण में उपदेश करनेवाला, वाणी पर विराजमान परमेश्वर पवित्र संसार का संचालन करता है। हे परमेश्वर ! तू स्तोत्रों में सब कुछ धारण करता है ॥१॥

१०६४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ २३२उ ३२ ३१ २र १२ ३१२
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (विप्रः) मेधावी (त्वं) तू (कविः) वेदकाव्य का कर्त्ता (मधु) आनन्द का दाता (प्रजातम्) उत्पन्न (अन्धसः) अन्न से (मदेषु) आनन्दों में (सर्वधा) सबको धारण करनेवाला (असि) है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मेधावी तथा वेद-काव्य का कर्त्ता है। तू आनन्द में सबको धारण करता है। तू ही अन्न से उत्पन्न सुख को प्रदान करता है ॥२॥

१०६५—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३१२ ३१२ ३१२ १२ ३१२
त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि॥३॥

पदार्थ—(त्वे) तुझ में (विश्वे) सब (सजोषसः) समान प्रेम के साथ (देवासः) विद्वान् लोग (पीतिम्) आनन्द को (आशत) प्राप्त करते हैं (मदेषु) अपने स्तोत्रों में (सर्वधा) सारे ज्ञानों का धारण करनेवाला (असि) है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर तेरी शरण में एक समान प्रेम वाले सब विद्वान् लोग आनन्द पाते हैं। तू अपने स्तोत्रों में सबको धारण करता है ॥३॥

१०६६—ऋणंचयः । सोमः । यवमध्या गायत्री ।

१२३१ २र३२ ३१२३१ २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् ।

२३ १२ ३२
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह (सुन्वे) उत्पन्न करता है (यः) जो (वसूनाम्) वस्तुओं को (यः) जो (रायाम्) धनों को (आनेता) प्राप्त करानेवाला है (यः) जो (इळानाम्) वाणियों का (सोमः) परमेश्वर (यः सुक्षितीनाम्) जो सुन्दर भू-भागों का ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर आठ वसुओं, वेदवाणियों, सुन्दर भू-भागों तथा धनों का प्राप्त करानेवाला है वही जगत् को रचता है ॥१॥

१०६७—ऋणंचयः । सोमः । सतो बृहती ।

१२३२३ २३१२३२३१२ ३२३ १२
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।

१ २र ३१ २र३१२ ३२३१२ ३२
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरे (इन्द्रः) आत्मज्ञानी (पिबात्) पान करता है (यस्य) जिसके (मरुतः) उपासक लोग (यस्य) जिसके (अर्यमणा) न्यायकारी (भगः) भाग्यवान् (आ) भली भांति (येन) जिससे (मित्रावरुणा) हितैषी और श्रेष्ठ पुरुष को [सहायक] (करामहे) करते हैं (आ) सब प्रकार से (इन्द्रम्) आत्मा को (अवसे) रक्षा के लिए (महे) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस तेरे आनन्द का आत्मज्ञानी, उपासक, न्यायकारी और भाग्यशाली पुरुष भी पान करते हैं और जिस तेरी कथा से हम

अपनी महान् रक्षा के लिए हितैषी और श्रेष्ठ पुरुष को अपना सहायक बनाते हैं, उस तुझे हम स्तुति से प्रसन्न करते हैं ॥२॥

१०९८—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १२ ३२३१ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २३१ २ ३१ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उसको (वः) तुम लोग (सखायः) हे मित्रो (मदाय) आनन्द के लिए (पुनानम्) सबके पवित्रकर्त्ता (अभि) सब प्रकार से (गायत) भजन करो (शिशुन्न) प्राण वायु के समान (हव्यैः) हवनों के द्वारा (स्वदयन्त) अच्छी तरह ग्रहण करो (गूर्तिभिः) स्तुतियों से ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग आनन्द प्राप्ति के लिए सबके पवित्रकर्त्ता परमेश्वर का भजन करो । हवन के द्वारा प्राण वायु के समान स्तुतियों से उसे ग्रहण करो ॥१॥

१०९९—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३१२ ३२३१२ ३१ २
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
३ १ २र ३ २ ३ १२
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२॥

पदार्थ—(सं) सम्यक् प्रकार (वत्सः) बच्चे के (इव) समान (मातृभिः) माताओं द्वारा (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (हिन्वानः) जाना हुआ (अज्यते) ज्ञात होता है (देवावीः) देवों के रक्षक (मदः) आनन्ददाता (मतिभिः) विद्वानों के द्वारा (परिष्कृतः) सुशोभित ॥२॥

भावार्थ—विद्वानों द्वारा ज्ञात, सुशोभित देवों का रक्षक, आनन्ददाता तथा सकल ऐश्वर्योंवाला परमेश्वर माताओं द्वारा बच्चे के समान भली भांति जाना जाता है ॥२॥

११००—पर्वतनारदौ । सोमः । उष्णिक् ।

३१ २र३ १२३ १ २र ३१२
अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
३२ ३२ ३ १२ १ २
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥३॥

पदार्थ—(अयं) यह (दक्षाय) वृद्धि के लिए (साधनः) परम साधन (अयं) यह (शर्धाय) बल के लिए (वीतये) ज्ञान के लिए (अयं) यह (देवेभ्यः) सब देवों के लिए (मधुमत्तरः) अतिशय आनन्ददायक (सुतः) सृष्टिकर्त्ता ॥३॥

भावार्थ—सब देवों के लिए आनन्द का दाता और सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर हमारे वृद्धि बल और ज्ञान का परम साधन है ॥३॥

११०१—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १२३ १ २ ३१ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २३१२ ३क २र ३१२
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१॥

पदार्थ—(सोमाः) परमेश्वर (पवन्ते) व्यापक हो रहा है (इन्दवः) सर्वैश्वर्ययुक्त (अस्मभ्य) हमारे लिए (गातुवित्तमाः) उत्तम पथ-प्रदर्शक (मित्राः) स्नेही (स्वानाः) जीवनदाता (अरेपसः) पापरहित (स्वाध्यः) चिन्तन करने के योग्य (स्वर्विदः) सर्वज्ञ [सुखदाता] ॥१॥

भावार्थ—सकल ऐश्वर्यवान्, हमारा पथ-प्रदर्शक, स्नेही जीवनदाता, निष्पाप चिन्तन करने के योग्य तथा सर्वज्ञ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

११०२—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
१२ ३ १ २३१ २ ३ १२ ३ २ ३ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२॥

पदार्थ—(ते) वह (पूतासः) पवित्र (विपश्चितः) ज्ञानवान् (सोमासः) परमेश्वर (दध्याशिरः) जगत् को धारण करता हुआ आश्रय (सूरासः) सूर्य के (न) समान (दर्शतासः) साक्षात् करने के योग्य (जिगत्नवः) व्यापक (ध्रुवा) नित्य (घृते) प्रकाश में ॥२॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, ज्ञानवान्, सर्वाधार, व्यापक तथा नित्य परमेश्वर सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश में साक्षात् करने के योग्य है ॥२॥

११०३—मनुः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१२३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥३॥

पदार्थ—(सुष्वाणासः) शोभन सत्योपदेष्टा (वि) विशेष (अद्रिभिः) आदर से (चिताना) विचारा जानेवाला (गोः) पृथिवी के (अधित्वचि) पृष्ठ पर (इषम्) अन्न और ज्ञान को (अस्मभ्यं) हमें (अभितः) सब तरफ से (समस्वरन्) प्रदान करता है (वसुविदः) सारी सम्पदाओं का दाता ॥३॥

भावार्थ—सुन्दर सत्योपदेष्टा पृथिवी पर आदर और अटूट श्रद्धा के द्वारा जानने के योग्य तथा सकल सम्पदाओं का दाता परमेश्वर हमें सब तरफ से अन्न और ज्ञान प्रदान करता है ॥३॥

११०४—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (पवा) गति से (पवस्व) प्राप्त कर (एना) इन (वसूनि) धनों को (मांश्चत्वे) अश्व पर (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (सरसि) जल पर (प्रधन्व) चल (ब्रध्नश्चित्) अत्यन्त महान् (यस्य) जिसका (वातः न) वायु के समान (जूतिम्) वेग को (पुरुमेधाः) बहुत ज्ञानवान् (चित्) ही (तकवे) गमन के लिए (नरं) मनुष्य को (धात्) धारण करे ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली पुरुष ! महान् और ज्ञानवान् तू अश्व और जल पर गमन कर । इस गति से समस्त धनों को प्राप्त कर । वायु के समान जिसकी गति को तू प्राप्त करता है उस नेता परमेश्वर को धारण कर ॥१॥

११०५—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३१२ ३१२३१२३ १ २ ३२३१ २ ३ २
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
३ २३१ २ ३१ २र ३ २उ ३ १२३१ २
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥२॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (एना) इस (पवया) पावन शक्ति से (पवस्व) पवित्र कर (अधि) में (श्रुते) शास्त्र में (श्रवाय्यस्य) श्रवण करने योग्य (तीर्थे) पार लगानेवाले (षष्ठिं) साठ (सहस्रा) हजार (नैगुतः) सूक्ष्मातिसूक्ष्म [रहस्यमय] (वसूनि) धनों का (वृक्षं न) वृक्ष के समान (पक्वं) पके हुए फलोंवाले (धूनवत्) हिलाकर (रणाय) जीवन संग्राम में विजय के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है । अपनी पावन शक्ति से श्रवण करने योग्य अपने पार लगानेवाले वेदरूप शास्त्र में हमें पवित्र कर । तू पके हुए फलवाले वृक्ष के समान हमें साठ सहस्र [अनेक प्रकार का] धन प्रदान कर ॥२॥

११०६—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२३१२ ३२३१२३१ २र ३ १२ ३१२
महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
१ २ ३१२ ३२३२३ २३ २३१ २ ३२
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥३॥

पदार्थ—(महि) द्यु और पृथिवीलोक (इमे) ये (अस्य) इसके (वृषनामा) वर्षा करनेवाले और स्थान या संज्ञावाले (शूषे) सुख को देनेवाले (माँश्चत्वे) अनुभूति के साधन (वा) अथवा (पृशने) चर्मेन्द्रिय (वा) अथवा (वधत्रे) बल की रक्षा करनेवाले (अस्वापयत्) शक्ति हीन कर देता है (निगुतः) सूक्ष्मातिसूक्ष्म (स्नेहयच्च) और नष्ट कर देता है (अप) दूर (अमित्रान्) काम-क्रोध आदि रोगों को (अपाचितः) दूर करता है (अचेतः) जड़ता या मूर्खता को ॥३॥

भावार्थ—वर्षावाले और स्थानरूप ये परमेश्वर के द्युलोक और पृथिवी सुख देनेवाले हैं । सूक्ष्मरूप यह परमेश्वर बाह्यज्ञान की अनुभूति के साधन बल की रक्षा करनेवाले चर्मेन्द्रिय में स्थित रोग और काम, क्रोधादिकों को शक्तिहीन करके नष्ट कर देता है । वह मूर्खता को दूर भगाता है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

११०७—बन्धुः, सुबन्धुः । सुतबन्धुः, विप्रबन्धुश्च । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३२३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे आचार्य (त्वं) तू (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (उत) और (त्राता) रक्षा करनेवाला है (शिवः) कल्याण करनेवाला (भुवः) होता है (वरूथ्यः) श्रेष्ठ ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य देव ! तू हमारे अत्यन्त समीप, रक्षक, कल्याणकारी तथा श्रेष्ठ है ॥१॥

११०८—बन्धुः, सुबन्धुः, सुतबन्धुः, विप्रबन्धुश्च । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

पदार्थ—(वसुः) बसानेवाला (अग्निः) परमेश्वर (वसुश्रवाः) कीर्ति-धन से सम्पन्न (अच्छा) साक्षात् (नक्षिः) प्राप्त होता है (द्युमत्तमः) प्रकाशों का प्रकाशक (रयिं) सम्पदा (दाः) देता है ॥२॥

भावार्थ—सबको निवास देनेवाला, यशस्वी और प्रकाशकों का भी प्रकाशक परमेश्वर हमें ज्ञान से प्राप्त होता है और धन प्रदान करता है ॥२॥

११०९—बन्धुः, सुबन्धुः, सुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १२ ३ १२ ३ १२

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥

पदार्थ—(तं) उस (त्वा) तेरी (शोचिष्ठ) हे प्रकाशस्वरूप (दीदिवः) हे तेजस्वी (सुम्नाय) सुख के लिए (नूनम्) निश्चयरूप से (ईमहे) याचना करते हैं (सखिभ्यः) मित्र आदि के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप तथा तेजस्वी परमेश्वर ! मित्रों के सुख के लिए हम निश्चय तेरी याचना करते हैं ॥३॥

१११०—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

पदार्थ—(इमा) इन सब (नु) शीघ्र (कं) सुख (भुवना) लोकों का (सीषधेम) सिद्ध करें (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वे) सारे (च) भी (देवाः) विद्वान् तथा दिव्य शक्तियां ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर और समस्त विद्वान् आदि दिव्य शक्तियां लोकों का कल्याण करें ॥१॥

११११—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३क १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यज्ञं च नस्तन्वञ्च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥२॥

पदार्थ—(यज्ञं) यज्ञ को (च) और (नः) हमारे (तन्वं) शरीर को (च) और (प्रजां) सन्तान को (च) और (आदित्यैः) विद्वान् सूर्य और संवत्सर के [साथ] (इन्द्रः) परमेश्वर (सह) साथ (सीषधातु) सिद्ध करें ।२।

भावार्थ—परमेश्वर विद्वान्, सूर्य, संवत्सर आदि के साथ हमारे यज्ञ, शरीर और सन्तति की उन्नति और रक्षा कर ॥२॥

१११२—भुवनः, साधनो वा । विश्वेदेवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥३॥

पदार्थ—(आदित्यैः) सूर्यादियों से (इन्द्रः) परमेश्वर (सगणः) समस्त पदार्थ समुदाय से युक्त (मरुद्भिः) वायु तथा सुवर्ण आदिकों से (अस्मभ्यं) हमारे लिए (भेषजा) औषधि (करत्) करे ॥३॥

भावार्थ—समस्त पदार्थ समुदाय से युक्त परमेश्वर सूर्य आदि तथा सुवर्ण और वायु आदि के द्वारा हमारे रोगों का निवारण करे या औषध करते का ज्ञान दे ॥३॥

१११३—वामदेवः । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायता यं जुजोषते ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (इन्द्राय) आत्मा के लिए (वृत्रहन्तमाय) बुरी वृत्तियों से दूर रहनेवाले, (विप्राय) ज्ञानों के ज्ञाता, (गाथम्) प्रशंसा (गायत) करो (यम्) जिसको (जुजोषते) स्वीकार करता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वज्जन ! आप लोग बुरी वृत्तियों से दूर रहनेवाले, ज्ञान गुणसम्पन्न जीव की प्रशस्ति करो। जिसको प्रभु चाहता है उसे स्वीकार करता है ॥१॥

१११४—वामदेवः । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र

अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥२॥

पदार्थ—(अर्चन्ति) आदर करते हैं (अर्कम) आदर योग्य (मरुतः) मनुष्य जन (स्वर्काः) प्रशंसा वचनों से युक्त (आ स्तोभति) प्रशस्ति करते हैं (श्रुतः) विख्यात (युवा) युक्त (सः) वह (इन्द्रः) योगी ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वज्जन ! प्रशंसा वचनों से युक्त मनुष्यजन योगयुक्त, ऐश्वर्य-शाली आदरणीय उस योगी का आदर करते हैं जो योगैश्वर्य सम्पन्न और गुणों से प्रसिद्ध था ॥२॥

१११५—वामदेवः । इन्द्रः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥३॥

पदार्थ—(क्षियन्तः) निवास करते हुए (प्रक्षे) गृहसम शरीर में (मधुमति) विद्या और योग से युक्त (पुष्येम) पुष्ट करें (रयिम्) आत्मिक धन को (धीमहे) धारण करें (ते) तुझे (इन्द्र) हे ईश्वर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्या और योगबल से युक्त शरीर में रहते हुए हम आत्मिक धन को पुष्ट करें और तुझ को धारण करें ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 सप्तमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

अष्टमोऽध्यायः

१११६—वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) श्रेष्ठता से (काव्यं) त्रयी विद्या [चारों वेद] को (उशना इव) धर्मात्मा के समान (ब्रुवाणः) प्रवचन करता हुआ (देवः) देव (देवानां) सारे दिव्य इन्द्रियादि पदार्थों की (जनिमा) उत्पत्ति को (विवक्ति) वर्णन करता है (महिव्रतः) महान् व्रत वाला (शुचिबन्धुः) तेजस्वी (पावकः) दुर्गुणों का शोधक (पदा) उत्तम गतियों से (वराहः) सात्त्विक आहार वाला (अभ्येति) प्राप्त होता है (रेभन्) उपदेश करता हुआ । १॥

भावार्थ—महान् व्रतधारी, तेजस्वी, दुर्गुणों का शोधक, सात्विक आहारवाला तथा दिव्यगुण विद्वान् पुरुष धर्मात्मा के समान त्रयी विद्या का प्रवचन करता हुआ इन्द्रियादि तथा सूर्य आदि पदार्थों की उत्पत्ति का वर्णन करता है । वह उपदेश देता हुआ उत्तम गतियों को प्राप्त करता है ॥१॥

१११७—वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप्

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम रूप से (हंसासः) आत्मज्ञानी (तृपलाः) शीघ्र-कारी (वग्नुं) वेदवाणी रूप (अच्छा) अच्छी तरह (अमात्) संसार भय से (अस्तं) गृह (वृषगणा) धर्म की व्याख्या या लक्षण करनेवाले (अयासुः) जाते हैं (अङ्गोषिणं) स्तुति के योग्य (पवमानं) शुद्धस्वरूप (सखायः) सखा भाववाले (दुर्मर्षं) किसी से न दबाए जाने योग्य शक्तिशाली (वाणम्) वेदवाणी का (प्रवदन्ति) वर्णन करते हैं (साकम्) साथ साथ ॥२॥

भावार्थ—शीघ्र गतिवाले, धर्म का लक्षण और व्याख्यान करनेवाले तथा परस्पर मित्र आत्मज्ञानी लोग संसार भय से लोक की रक्षा के लिए वेदवाणी रूप गृह को अच्छी तरह प्राप्त होते हैं। वे स्तुति के योग्य, शुद्धस्वरूप, शक्तिशाली परमेश्वर तथा वेद का साथ साथ वर्णन करते हैं ॥२॥

११९८—वृषगणः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३१२ ३२र ३ १ २ ३ १ २र

स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।

३ १२ ३१२३ २३२३१२३१२३२

परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३॥

पदार्थ—(स) वह (योजते) जोड़ता है (उरुगायस्य) प्रशंसनीय [आत्मा की] (जूतिं) गति को (वृथा) अनायास (क्रीडन्तम्) क्रीडा करते हुए (मिमते) मापती हैं (न) नहीं (गावः) इन्द्रियां (परीणसं) बहुत प्रकार के तेज को (कृणुते) उत्पन्न करता है (तिग्मशृङ्गः) महान् तेजस्वी (दिवा) दिन में (हरिः) अज्ञाननिवारक (ददृशे) जाना जाता है (नक्तं) रात्रि में (ऋज्रः) प्रकाशस्वरूप ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर आत्मा की गति का योग कराता है । वृथा क्रीडा में फंसे उसे इन्द्रियां नहीं माप सकतीं । महान् तेजस्वी अज्ञान-निवारक प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर विविध तेजों को उत्पन्न करता है और दिन-रात मनुष्यों के अनुभव में आता है ॥३॥

१११९—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३१२३१२३१२३१२ १ २ ३१२

प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥४॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (स्वानासः) परस्पर प्रश्नोत्तर करनेवाले (रथा इव) यतियों के समान (अर्वन्तो न) प्रशस्त ज्ञानवान् के समान (श्रवस्यवः) यश की चाहना करनेवाले (सोमासः) पुरुष (राये) ऋद्धि-सिद्धि आदि धन के लिए (अक्रमुः) पराक्रम करते हैं ॥४॥

भावार्थ—यश की कामना करनेवाले और परस्पर आत्मज्ञानविषयक प्रश्नोत्तर करते हुए, यती और प्रशस्तज्ञान वाले के समान ऋद्धि और सिद्धि के लिए पराक्रम करते हैं ॥४॥

११२०—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥५॥

पदार्थ—(हिन्वानासः) प्रेरित (रथा इव) रथ के समान (दधन्विरे) धारण किये जाते हैं (गभस्त्योः) हाथों में (भरासः) भार (कारिणाम्) काम करनेवालों के (इव) समान ॥५॥

भावार्थ—प्रेरित रथ तथा काम करनेवालों के भार के समान सांसारिक भोग्य पदार्थों को परमेश्वर ने हमारे हाथों में दे रखा है ॥५॥

११२१—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।

३ २उ ३ २ ३ १ २

यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६॥

पदार्थ—(राजानः) राजाओं के (न) समान (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से (सोमासः) पृथिवी से लेकर प्रकृति जीव तथा ईश्वर पर्यन्त समस्त पदार्थ (गोभिः) वेदवाणियों के द्वारा (अंजते) वर्णन किये जाते हैं (यज्ञः) यज्ञ के (न) समान (सप्तधातृभिः) सात छन्दों द्वारा ॥६॥

भावार्थ—प्रशंसा वचनों से राजाओं के समान तथा सात छन्दों से यज्ञ के समान पृथिवी आदि से लेकर प्रकृति जीव तथा परमेश्वर पर्यन्त पदार्थ वेदवाणियों से वर्णन किये जाते हैं ॥६॥

११२२—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१२३२ ३१२३१२ ३१२३२ १२ ३ १२

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥७॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानासः) उपदेश करते हुए (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिए (बर्हणा) महान् (गिरा) वाणी से (मधोः) ज्ञान की (अर्षन्ति) परिपूर्ण करते हैं (धारया) धारा से ॥७॥

भावार्थ—महान् वेदवाणी द्वारा उपदेश करते हुए ऐश्वर्यवान् पुरुष सुख-प्राप्ति के लिए ज्ञान की धारा से लोक को तृप्त करते हैं ॥७॥

११२३—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २३१ २३ १ २ ३२३१२ २३२३१२

आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८॥

पदार्थ—(आपानासः) व्यापक अनुभववाले (विवस्वतः) परमेश्वर के (जिन्वन्तः) जानते हुए (उषसः) प्रकाशस्वरूप (भगम्) ऐश्वर्य को (सूराः) सूर (अण्वं) सूक्ष्म (वितन्वते) विस्तार करते हैं ॥८॥

भावार्थ—व्यापक अनुभव वाले सूर विद्वान् पुरुष जानते हुए प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के सूक्ष्म ऐश्वर्य का प्रचार द्वारा विस्तार करते हैं ॥८॥

११२४—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२३१२ ३२३१२ ३१२ २३ १२ ३१२

अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥९॥

पदार्थ—(अप) पृथक् (द्वारा) मार्ग (मतीनां) स्तुतियों के (प्रत्नाः) पुराने (ऋण्वन्ति) खोलते हैं (कारवः) करनेवाले कुशल (वृष्णः) सुखों की वर्षा करनेवाले (हरसे) प्रकाश के लिए (आयवः) मनुष्य ॥९॥

भावार्थ—स्तुति करनेवाले मनुष्य सुखों की वर्षा करने वाले परमेश्वर के प्रकाश के लिए उपासना के सनातन द्वार को खोल देते हैं ॥९॥

११२५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १२ ३१२ ३१२ ३१२र ३१२

समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥१०॥

पदार्थ—(समीचीनासः) उत्तम गुणवाले (आशत) व्यापक हो रहे हैं (होतारः) ऋत्विग् (सप्तजानयः) सातजन (पदं) परम पद को (एकस्य) एक के (पिप्रतः) याचना करते हुए ॥१०॥

भावार्थ—उत्तम गुणवाले सात ऋत्विक् जन अद्वितीय परमेश्वर के परम पद की याचना करते हुए यज्ञ में स्थित होते हैं ॥१०॥

११२६—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १२३१२३ १२३२ ३ १ २र३ १ २

नाभा नाभिं न आददे चक्षुषा सूर्यं दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥११॥

पदार्थ—(नाभा) नाभि में, देश में (नाभिं) परमेश्वर को (नः) अपने (आ ददे) ग्रहण करता हूँ (चक्षुषा) आंख से (सूर्यं) सूर्य के समान (दृशे) देखने के लिए (कवेः) वेद काव्य के कर्त्ता (अपत्यं) सन्ततिरूप संसारी प्राणियों को (आ दुहे) पूरा करता हूँ ॥११॥

भावार्थ—मैं आंख से सूर्य के समान प्रकाश को देखने के लिए अपने नाभि-प्रदेश में धारणा द्वारा परमेश्वर को ग्रहण करता हूँ । वेद के कर्त्ता परमेश्वर के सन्ततिरूप संसार के समस्त प्राणियों को सुख से पूर्ण करता हूँ ॥११॥

११२७—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २३२ ३२३१२ ३२३ १ २ ३२ १२ ३ १ २

अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (प्रियं) प्यारे (दिवः) प्रकाशस्वरूप के (पदं) परमपद (अध्वर्युभिः) उपासकों द्वारा (गुहा) अन्तःकरण में (हितम्) धारणा द्वारा जाने गये (सूरः) विद्वान् पुरुष (पश्यति) देखता है (चक्षसा) ज्ञान की आंख से ॥१२॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष उपासकों द्वारा हृदय में धारणा द्वारा जाने गए प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के प्यारे परमपद को ज्ञान की आंख से देखता है ॥१२॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

११२८—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

१२३१ २ ३१ २र ३१२ ३१२ ३ १ २३१२

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजना ॥१॥

पदार्थ—(असृग्रम्) उत्पन्न किये जाते हैं (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (पथा) मार्ग से (धर्मन्) धर्म में (ऋतस्य) परमेश्वर के द्वारा निर्धारित (सुश्रियः) शोभा वाले (विदाना) जानते हुए (अस्य) इस संसार की (योजना) विधान ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली धर्म में सुशोभित इस ससार के विधान को जाननेवाले विद्वान् जन परमेश्वर के द्वारा निर्धारित मार्ग से रचे जाते हैं ॥१॥

११२९—जगदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२उ ३१२ ३२३२३१ २र ३२३२ ३ १२

प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (धाराः) वाणियों को (मधोः) विधान की (अग्रियः) प्रथम (महीः) महान् (अपः) कर्मों को (विगाहते) मिलाता है (हविः) ग्रहण करने योग्य (हविःषु) ग्रहण करने योग्यों में (वन्द्यः) स्तुति करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—पूज्यों का पूज्य परमेश्वर विस्तृत कर्मों और ज्ञान की मूल वाणियों को सृष्टि के आदि में मिलाता है ॥२॥

११३०—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२३२ ३१२३१ २र ३१२ २३२ ३ १ २३२

प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (युजा) युक्तियुक्त (वाचः) वाणियों को (अग्रियः) प्रथम विद्यमान (वृषा) कामनाओं को सफल करने वाला (उ) पादपूरक (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (वने) जल के विषय में

(सद्म) गृह आदि (अभि) विषय में (सत्यः) सत्यस्वरूप (अध्वरः) कल्याणकारी ॥३॥

भावार्थ—सर्वप्रथम विद्यमान, सत्यस्वरूप, कल्याणकारी और मनोरथों को पूर्ण करनेवाला परमेश्वर जल और गृह निर्माण आदि के विषय में युक्तियुक्त वाणियों का उपदेश करता है ॥३॥

११३१—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १र ३ १ २

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥४॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (यत्) जब (काव्या) वेदरूप काव्यों को (कविः) कवि (नृम्णा) धन और बलों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) प्राप्त करता है (स्वः) सुख को (वाजी) ज्ञानवान् (सिषासति) भागी होता है ॥४॥

भावार्थ—कवि पुरुष जब अपने बल और धन को पवित्र करता हुआ वेदमय काव्य को प्राप्त करता है तब वह परमज्ञानी हुआ सुख पाता है ॥४॥

११३२—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५॥

पदार्थ—(पवमानः) शुद्धस्वरूप (अभि) भली भांति (स्पृधः) विघ्न करने वालों को (विशः) प्रजा के (राजा) के (इव) समान (सीदति) दमन करता है (यत्) जब (ईम्) इस (ऋण्वन्ति) जान लेते हैं (वेधसः) बुद्धिमान् पुरुष ॥५॥

भावार्थ—जब ज्ञानी पुरुष परमेश्वर को जान लेते हैं तब वह शुद्धस्वरूप विघ्नों को दूर करता है जैसे राजा प्रजा के विघ्नों को दूर करता है ॥५॥

११३३—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥६॥

पदार्थ—(अव्याः) प्रकृति के (वारे) आवरण में (परि) सब प्रकार से (प्रियः) प्यारा (हरिः) अज्ञानहर्त्ता (वनेषु) विभागयुक्त पदार्थों में (सीदति) विराजमान है (रेभः) स्तोता (वनुष्यते) भजन करता है (मती) स्तुति द्वारा ॥६॥

भावार्थ—प्यारा अज्ञानहर्त्ता परमेश्वर प्रकृति के आवरण तथा समस्त विभागयुक्त पदार्थों में विराजमान हो रहा है। स्तोता स्तुतियों द्वारा उसका भजन करता है ॥६॥

११३४—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥

पदार्थ—(सः) वह (वायुं) वायु को (इन्द्रं) विद्युत् को (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा को (साकं) साथ (मदेन) सुख के (गच्छति) जान लेता है (रणा) व्यवहार करता है (यः) जो (अस्य) इसके (धर्मणा) धर्म से ॥७॥

भावार्थ—जो इस परमेश्वर के बतलाए धर्म-मार्ग से चलता है वह सुख, पूर्वक वायु, विद्युत् चन्द्र, और सूर्य का ज्ञान कर लेता है ॥७॥

११३५—जमदग्नि-असित-देवला । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (मित्रे) वायु में (वरुणे) जल में (भगे) सूर्य में (मधोः) आनन्दस्वरूप की (पवन्ते) व्यापक हो रही हैं (ऊर्मयः) प्रकाश की लहरें (विदानाः) जानते हुए (अस्य) इसको (शक्मभिः) कर्म और शक्तियों से युक्त हो जाते हैं ॥८॥

भावार्थ—आनन्दस्वरूप परमेश्वर के प्रकाश की लहरें वायु, जल तथा सूर्य आदि में व्यापक हो रही हैं। जो पुरुष इस प्रभु को जान लेते हैं वे शक्ति और कर्म से युक्त हो जाते हैं ॥८॥

११३६—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥९॥

पदार्थ—(अस्मभ्यम्) हमें (रोदसी) हे दण्ड से दुष्टों को रुलानेवाले (रयिं) जल को (मध्वः) आनन्दप्रद (वाजस्य) ज्ञान की (सातये) प्राप्ति के लिए (श्रवः) यश (वसूनि) धनों को (संजितम्) दे ॥९॥

भावार्थ—हे दुष्टों को रुलानेवाले परमेश्वर और राजन् ! आप दोनों हमें आनन्दकारी ज्ञान के प्राप्त करने के लिए यश, जल तथा समस्त सम्पदाएँ प्रदान करें ॥९॥

११३७—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (दक्षं) पराक्रम को (मयोभुवम्) सुख को देनेवाले (वह्निम्) सब कुछ प्राप्त करानेवाले (अद्या) आज (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (पान्तम्) रक्षा करनेवाले (आ) भली प्रकार (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने योग्य ॥१०॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम आज सुखदाता, सब कुछ प्रदान करनेवाले, रक्षक तथा अनेकों से चाहने योग्य तेरे पराक्रम को स्वीकार करते हैं ॥१०॥

११३८—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (मन्द्रम्) आनन्ददाता (आ) भली प्रकार (वरेण्यम्) वरण करने योग्य (आ) भली प्रकार (विप्रम्) मेधावी (आ) भली भांति (मनीषिणम्) सबके मनों के ज्ञाता (पान्तम्) रक्षक (आ) भली भांति (पुरुस्पृहम्) सबसे चाहने योग्य ॥११॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम आनन्ददाता, वरण के योग्य, मेधावी, सबके मनों में रमनेवाले, रक्षक तथा सबके द्वारा चाहने योग्य तुझ को स्वीकार करते हैं ॥११॥

११३९—जमदग्नि-असित-देवलाः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (रयिम्) परम धनरूप (आ) भली भांति (सुचेतुनम्) उत्तम ज्ञानी (आ) भली प्रकार (सुक्रतो) हे उत्तम कर्मवाले (तनूषु) आत्माओं में [व्यापक] (आ) भली भांति (पान्तम्) रक्षक (आ) अच्छी तरह (पुरुस्पृहम्) अनेकों से चाहने योग्य ॥१२॥

भावार्थ—हे उत्तम कर्मवाले परमेश्वर ! हम भक्तों के परम धन, उत्तम ज्ञानी, आत्माओं में व्यापक, रक्षक तथा सर्वपूज्य तुझको स्वीकार करते हैं ॥१२॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

११४०—भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ २ ३ २

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—(मूर्धानम्) मस्तकरूप, उन्नत भाग (दिवः) द्युलोक के (अरतिं) अपनी व्यापकता से धारण करनेवाले (पृथिव्याः) पृथिवी लोक के (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हित के साधनभूत (ऋते) सत्य के नियम में (आ) भली भांति (जातम्) उत्पन्न हुए (अग्निम्) अग्नि को (कविम्) तीक्ष्ण तेजवाले (सम्राजम्) प्रकाशमान (अतिथिम्) सदा गतिशील (जनानाम्) लोगों के (आसन्) मुखरूप (नः) हमारे लिए (पात्रम्) रक्षक (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (देवाः) परमेश्वर, सूर्य और वायु आदि दिव्य शक्तियां ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य तथा वायु देव द्युलोक के मस्तकरूप, पृथिवी को व्याप्त होकर धारण करनेवाले, सबके हित के साधनभूत, सत्य नियम में उत्पन्न हुए, तीक्ष्ण तेजवाले, प्रकाशमान, निरन्तर गतिशील, प्राकृतिक देवों के मुखरूप तथा लोगों के रक्षक अग्नि को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

११४१—भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥२॥

पदार्थ—(त्वां) तेरी (विश्वे) समस्त (अमृत) हे अमर (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (शिशुं न) बच्चे के समान (देवाः) विद्वान् लोग (अभि) भली प्रकार (संनवन्ते) स्तुति करते हैं (तव) तेरे (क्रतुभिः) ज्ञानों से (अमृतत्वम्) मोक्ष को (आयन्) प्राप्त करते हैं (वैश्वानर) हे समस्त मनुष्यों के हितकारी (यत्) जो (पित्रोः) द्यु और पृथिवीलोक के (अदीदेः) प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—हे अजर, अमर तथा सर्वहितकारक परमेश्वर ! तू द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता है। सारे विद्वान् पुरुष उत्पन्न शिशु के समान तेरी प्रशंसा करते हैं और तुम्हारे ज्ञानों से मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥२॥

११४२—भरद्वाजः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

नाभि यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३॥

पदार्थ—(नाभि) नाभिरूप [मूल आधार] (यज्ञानां) यज्ञों के (सदनं) स्थान (रयीणां) धनों के (महाम्) महान् (आहावम्) स्तुति किए जानेवाले (अभि) भली भांति (संनवन्त) स्तुति करते हैं (वैश्वानरं) सबके हितसाधक (रथ्यम्) रथ को सिद्ध करनेवाले (अध्वराणाम्) अन्तरिक्ष आदि लोकों के (यज्ञस्य) यज्ञ के (केतुं) प्रकाशक ध्वजारूप (जनयन्त) प्रकट करते हैं (देवाः) विद्वान् लोग ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् जन यज्ञों के मूल आधार, समस्त धनों के एकमात्र स्थान, महान् तथा स्तुत्य परमेश्वर की स्तुति करते हैं और अन्तरिक्ष आदि लोक तथा यज्ञ के प्रकाशक, रथ के साधक, समस्त व्यवहारों में हितकारक भौतिक अग्नि को ज्ञान द्वारा प्रकट करते हैं ॥३॥

११४३—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम प्रकार से (वः) तुम लोग (मित्राय) परमेश्वर के लिए (गायत) प्रशंसा करो (वरुणाय) जीव के लिए (विपा) विस्तृत (गिरा) वेदवाणी से (महिक्षत्रौ) महाबली (ऋतं) सत्य (बृहत्) महान् ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग परमेश्वर और जीव की विस्तृत वेदवाणी द्वारा प्रशंसा करो । महाबली वे दोनों सत्यस्वरूप और महान् हैं ॥१॥

११४४—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२॥

पदार्थ—(सम्राजा) अच्छी तरह प्रकाशमान (या) जो (घृतयोनी) प्रकाश के आश्रय (मित्रः) परमेश्वर (च) और (उभा) दोनों (वरुणः) वरुण (च) और (देवाः) देव (देवेषु) तैंतीस देवों में (प्रशस्ता) श्रेष्ठ [प्रशंसनीय] ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर और जीवात्म देव, तेजस्वी, प्रकाश के आश्रय तथा तैंतीस देवों में प्रशंसनीय हैं उनकी तुम लोग प्रशंसा करो ॥२॥

११४५—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥

पदार्थ—(ता) वे दोनों (नः) हमारे लिए (शक्तं) समर्थ हैं (पार्थिवस्य) पृथ्वीसम्बन्धी (महः) महान् (रायः) संपदाएँ (दिव्यस्य) उत्तम द्युलोकसंबन्धी (महि) महान् (वां) तुम दोनों का (क्षत्रं) बल (देवेषु) तैंतीस देवों में ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर पृथ्वी लोकसम्बन्धी तथा दिव्य संपदाओं के देने में और जीव उनका उपभोग करने में समर्थ है । हे परमेश्वर और जीव ! तुम्हारा बल अन्य देवों में महान् है ॥३॥

११४६—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (आयाहि) हमें प्राप्त हो (चित्रभानो) हे अनिर्वचनीय प्रकाश वाले (सुताः) उत्पन्न (इमे) ये संसारी प्राणी (त्वायवः) तुम्हारे मिलने की इच्छावाले (अण्वीभिः) सूक्ष्म तन्मात्राओं से (तना) विस्तारित (पूतासः) पवित्र ॥१॥

भावार्थ—हे अद्भुत प्रकाशवाले परमेश्वर ! तू हमें प्राप्त हो । सूक्ष्म पंच तन्मात्राओं से शरीर के विस्तार को प्राप्त हुए पवित्र तथा उत्पन्न ये संसारी प्राणी तेरी प्राप्ति के इच्छुक हैं ॥१॥

११४७—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (आयाहि) प्राप्त हो (धिया) उत्तम बुद्धि से (इषितः) जाने गये (विप्रजूतः) मेधावी पुरुषों को प्राप्त होनेवाले (सुतावतः) पदार्थ विद्या के ज्ञाता (उप) समीप (ब्रह्माणि) ब्राह्मणि [ब्रह्मवित्] (वाघतः) ऋत्विजों को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम बुद्धि से जानने योग्य तथा मेधावियों को प्राप्त होनेवाला तू पदार्थविद्या के ज्ञाता ब्रह्मवित् ऋत्विजों को प्राप्त हो ॥२॥

११४८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा याहि तूतुजानः उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (आयाहि) भली भांति जानता है (तूतुजानः) शीघ्र गतिवाला (उप) समीप (ब्रह्माणि) स्तुतियों को (हरिवः) अज्ञान आदि के हर्त्ता (सुते) उत्पन्न संसार में (दधिष्व) धारण करता है (नः) हमारे लिए (चनः) अन्न आदि पदार्थों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शीघ्रगति वाला, अज्ञान नाशक तू हमारी स्तुतियों को जानता है और संसार में हमारे लिए अन्न आदि को धारण करता है ॥३॥

११४९—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (ईडिष्व) स्तुति कर (यः) जो (अर्चिषा) अपने तेज से (वना) जगत् के कारण पदार्थों को (विश्वा) सारे (परिष्वजत्) व्याप्त करता है (कृष्णा) आकर्षण धारणवाले अग्नि, सूर्य तथा पृथ्वी आदि को (कृणोति) रचता है (जिह्वया) वाणी वेदवाणी के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो परमेश्वर अपने तेज से जगत् के समस्त मूल कारण पदार्थों को व्यापन कर रहा है तथा वेदवाणी के द्वारा धारण, आकर्षणवाले अग्नि, 'सूर्य' पृथिवी आदि को रचता है, तू उसकी स्तुति कर ॥१॥

११५०—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (इद्धे) प्रदीप्त अग्नि में (आ विवासति) भली भांति करता है (सुम्नम्) यज्ञ को (इन्द्रस्य) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (मर्त्यः) मनुष्य (द्युम्नाय) यश के लिए (सुतरा) सुख से पार करने योग्य (अपः) कर्म ॥२॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रदीप्त अग्नि में भली भांति यज्ञ करता है, वह परम यश के लिए पार लगानेवाले कर्मों को कर रहा है ॥२॥

११५१—भरद्वाजः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥३॥

पदार्थ—(ता) वे दोनों [तुम] (नः) हमें (वाजवतीः) बल देनेवाली (इषः) अन्न तथा विज्ञान (आशून्) शीघ्रगामी (पिपृतम्) प्रदान करें (अर्वतः) घोड़ों को (आ) भली भांति (इन्द्रं) विद्युत् (अग्निम्) सुवर्ण आदि धन को (वोढवे) प्राप्त करने के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और राजन् ! आप दोनों विद्युत् और सुवर्ण आदि की प्राप्ति के लिए हमें बलशाली अन्न और विज्ञान तथा शीघ्रगामी अश्व आदि प्रदान करें ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

११५२—सिकतानिवावरी । इन्द्रः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम प्रकार से (उ) वितर्क (अयासीद्) प्राप्त करता है (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के दिए (निष्कृतम्) कर्मफल को (सखा) मित्ररूप (सख्युः) मित्र के (न) नहीं (प्रमिनाति) माप कर सकता है (सङ्गिरम्) वेदवाणी को (मर्य इव) मनुष्य के समान (युवतिभिः) युवतियों के साथ (समर्षति) संसक्त होता है (सोमः) जीव (कलशे) संसार में (शतयामना) सैकड़ों (पथा) मार्ग से ॥१॥

भावार्थ—मित्ररूप ऐश्वर्यशाली जीव सर्वमित्र परमेश्वर के द्वारा दिए गए कर्मफल को प्राप्त करता है । वह परमेश्वर की वेदवाणी को माप नहीं सकता । युवती के साथ मनुष्य के समान वह सैकड़ों मार्गों से संहार में विचरता है ॥१॥

११५३—सिकतानिवावरी । इन्द्रः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २

हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम प्रकार से (वः) तुम्हारी (धियः) बुद्धियाँ (मन्द्रयुवः) वाणी से युक्त (विपन्युवः) हे मेधावी (पनस्युवः) स्तुति करनेवाले (संवरणेषु) उपासना गृहों में (अक्रमुः) विस्तृत होती हैं । (हरिं) अज्ञान का हरण करने वाले (क्रीडन्तम्) सृष्टि की क्रीड़ा करने वाले (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं (अभि) सब

प्रकार से (स्तुभः) स्तोता (धेनवः) वेदवाणियां (पयसा) ज्ञान से युक्त (इत्) ही (अशिश्रयुः) आश्रय लेती हैं ॥२॥

भावार्थ—हे वाणी से युक्त स्तुति करने वाले मेधावीगण ! आप लोगों की बुद्धियां उपासना गृहों में विस्तृत होती हैं । स्तोता लोग अज्ञान-नाशक सृष्टि की क्रीड़ा करनेवाले परमेश्वर की स्तुति करते हैं तथा वेदवाणियां ज्ञान के साथ उस परमेश्वर में आश्रय लेती हैं ॥२॥

११५४—*सिकतानिवावरी । इन्द्रः । जगती ।*

१ २ ३१२३ २३ २३२३ १२३१२ ३१२
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
२ ३ १२३ २उ ३१२ ३१ २र३१२ ३ १२
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) भलीभांति (नः) हमें (सोम) हे सृष्टिकर्ता (संयतं) संगृहीत (पिप्युषीम्) वृद्धि करनेवाले (इषम्) अन्न को (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (पवस्व) प्रदान कर (पवमान) हे सर्वव्यापक (ऊर्मिणा) बोध के साथ (या) जो (नः) हमारे लिए (दोहते) पूर्ण करता है (त्रिः) तीन बार (अहन्) दिन में (असश्चुषी) बिना बाधा के (क्षुमद्) अन्नवाला (वाजवत्) ज्ञानयुक्त (मधुमत्) आनन्ददायक (सुवीर्यं) पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ! सर्वव्यापक तू हमें उस संगृहीत, वृद्धि करनेवाले अन्न को ज्ञान के साथ प्रदान कर जो कि अन्नवाले, ज्ञानयुक्त, आनन्द पराक्रम को हमारे लिए दिन के तीनों भागों में बिना बाधा के पूरा करता है ॥३॥

११५५—पुरुहन्मः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २र ३२ ३१२३१२
न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
२ ३ २३१ ३ १२३१२३१२ ३ १ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

पदार्थ—(न किः) कोई नहीं (तं) उसको (कर्मणा) कर्म के द्वारा (नशत्) नाश करता है (यः) जो (चकार) करता है (सदावृधम्) सर्वदा उन्नत करनेवाले (इन्द्रम्) आत्मा को (न) इस अवस्था में (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (विश्वगूर्त्तम्) सब में प्रशंसनीय (ऋभ्वसम्) महान् (अधृष्टम्) न दबाये जाने योग्य (धृष्णुम्) दबानेवाला (ओजसा) तेज से ॥१॥

भावार्थ—जो मनुष्य सबके प्रशंसा योग्य, महान्, न दबायी जानेवाली तथा अपने तेज से अन्यों को दबानेवाली आत्मशक्ति को यज्ञ और कर्मों द्वारा सदा उन्नत करता है, उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता ॥१॥

११५६—*पुरुहन्मा । इन्द्रः । बृहती ।*

१२ ३१ २र ३ १ २र ३१२३१२
अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
२ ३२३ १ २ ३ २ ३ १ २
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥२॥

पदार्थ—(अषाढम्) अपराध को क्षमा न करनेवाला (उग्रम्) महान् शक्तिशाली (पृतनासु) संग्रामों में (सासहिं) साहस देनेवाले (यस्मिन्) जिस में (महीः) महान् (उरुज्रयः) वेगवती (सं) सम्यक् (धेनवः) वेदवाणियां (जायमाने) उत्पत्ति करनेवाले (अनोनवुः) स्तुति करती हैं (द्यावः) द्युलोक-सम्बन्धी (क्षामीः) पृथिवीलोकवाले प्राणी (अनोनवुः) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! उत्पत्तिकर्त्ता जिस परमेश्वर की महान् वेगवती वेदवाणियां प्रशंसा करती हैं तथा द्यु और पृथिवी लोकस्थ प्राणी जिसकी स्तुति करते हैं, तुम लोग अपराध को न क्षमा करनेवाले, महाशक्तिशाली और संग्रामों में साहस देनेवाले प्रभु की स्तुति करो ॥२॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

११५७—*नारदः । सोमः । उष्णिक् ।*

१२ ३ १ २र ३ २३ १२
सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥१॥

पदार्थ—(सखायः) हे मित्रो (आ) भली भांति (निषीदत) बैठो (पुनानाय) पवित्रात्मा की (प्रगायत) प्रशंसा करो (शिशुं न) बच्चे के समान (यज्ञैः) पांच महायज्ञों से (परिभूषत) प्रसन्न करो (श्रिये) अपनी शोभा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! समीप बैठो और पवित्र आत्मा विद्वान् पुरुष की प्रशंसा करो तथा अपने कल्याण के लिए उसे बच्चे के समान पांच यज्ञों से प्रसन्न करो ॥१॥

११५८—नारदः । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३२उ ३१२ ३१२ ३ १२
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
३ २क १२३१ २र
देवाव्यं३ मदमभि द्विशवसम् ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (ई) इस (वत्सं न) बच्चे के समान (मातृभिः) माताओं से (सृजत) मेल करो (गयसाधनम्) धन आदि के साधक (देवाव्यम्) दिव्य पदार्थों के रक्षक (मदम्) आनन्ददाता (अभि) सब प्रकार से (द्विशवसम्) सबसे द्विगुण बलवाला अथवा सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश करने रूप दो बलोंवाला ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! समस्त धनों के दाता, सब देवों के रक्षक, आनन्ददाता और द्विगुण बलवाले परमेश्वर के साथ मेल करो । जैसे मातायें बच्चे के साथ मेल करती हैं ॥२॥

११५९—*नारदः । सोमः । उष्णिक् ।*

३१२ ३१२३२३ १२ ३१२
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
१२ ३२३ १२ ३ १२
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३॥

पदार्थ—(पुनाता) पवित्र करो (दक्षसाधनम्) समस्त बलों के साधनभूत (यथा) जैसे (शर्धाय) बल के लिए (वीतये) ज्ञान के लिए (यथा) जिस प्रकार (मित्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (वरुणाय) जीव के ज्ञान के लिए (शन्तमम्) सुखकारक ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बल के साधक, सुख गुण वाले आत्मा को उस तरह पवित्र करो जिस प्रकार से बल, ज्ञान, परमेश्वर तथा आत्मा की प्राप्ति हो सके ॥३॥

११६०—*अग्नयः धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा ।*

२ ३क २र ३१२ ३२ ३२३.२उ ३१२
प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारास्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तमरूप से (वाजी) बलवान् (अक्षाः) व्याप्त कर रहा है (सहस्रधारः) असंख्य वाणियोंवाले (तिरः) दबाकर (पवित्रं) अग्नि, सूर्य आदि को (वि) विशेषरूप से (वारम्) वरण करने योग्य (अव्यम्) प्रकृति के विकार [प्राकृतिक] ॥१॥

भावार्थ—बलवान् और असंख्य वाणियों वाला परमेश्वर वरण के योग्य प्राकृतिक अग्नि तथा सूर्य आदि को दबाकर व्याप्त कर रहा है ॥१॥

११६१—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा ।*

२ ३क २र ३१२ ३ १ २ ३ १ २र ३२
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (वाजी) बलवान् (अक्षाः) संचालन कर रहा है (सहस्ररेताः) सहस्रों प्रकार की सामर्थ्य वाला (अद्भिः) कर्मों के द्वारा (मृजानः) शुद्ध करने वाला (गोभिः) वेदवाणियों से (श्रीणानः) परिपक्व करनेवाला ॥२॥

भावार्थ—बलवान्, अनन्तशक्तिवाला अपने पवित्र कर्मों द्वारा सबका शुद्ध कर्त्ता तथा वेदवाणियों से सबको परिपक्व करनेवाला परमेश्वर सबका संचालन कर रहा है ॥२॥

११६२—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥३॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सोम) हे जीव (याहि) जा (इन्द्रस्य) परमेश्वर की (कुक्षा) शरण में (नृभिः) नेताओं द्वारा (येमानः) नियम चलाया हुआ (अद्रिभिः) आदरणीय (सुतः) उत्पन्न हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे जीव! संसार में पैदा हुआ तथा आदरणीय नेताओं से नियम पर चलाया गया तू परमेश्वर की शरण में जा ! ॥३॥

११६३—*भृगुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३२३१ २३१२ ३२ २३१ २३१२
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥१॥

पदार्थ—(ये) जो (सोमासः) प्राणी (परावति) दूर देश में (ये) जो (अर्वावति) समीप देश में (सुन्विरे) उत्पन्न हुए हैं (ये) जो (वा) अथवा (अदः) इस (शर्यणावति) पृथ्वी पर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! जो प्राणी हमसे दूर, समीप देश या इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं, वे सब हमारा कल्याण करें ॥१॥

११६४—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ २ र २ ३ १ २ ३ १ २

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (आर्जीकेषु) सरलस्वभाववाले (कृत्वसु) निर्मित योनियों में (ये) जो (मध्ये) मध्य में (पस्त्यानाम्) गृहों के (ये) जो (वा) अथवा (जनेषु) जनों में (पंचसु) पाँच ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो प्राणी सरल स्वभाववाली योनियों में हैं जो गृहस्थ हैं अथवा जो पंचजनों में हैं [चारोंवर्ण पांचवां निषाद] वे हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥२॥

११६५—भृगुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे (नः) हमारे लिए (वृष्टि) सुख की वर्षा (दिवस्परि) द्युलोक पर्यन्त (पवन्ताम्) प्राप्त करावे (आ) भली भांति (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम (स्वानाः) स्वयं प्राणशक्तिवाले=बलवान् (देवासः) विद्वान् (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो बलवान्, विद्वान् तथा ऐश्वर्यवान् पुरुष हैं वे हमारे लिए द्युलोकपर्यन्त सुख की वर्षा करें तथा उत्तम पराक्रम प्रदान करें ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

११६६—वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (ते) तेरा (वत्सः) बुद्धि (मनः) मन को (यमत्) नियम में रखता है (परमात्) परम (चित्) ही (सधस्थात्) समान स्थान से (अग्ने) हे विद्वान् (त्वां) तुझे (कामये) चाहता हूँ (गिरा) प्रार्थना से ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष! तेरी बुद्धि परमपद रूप स्थान में मन को नियन्त्रित करती है । मैं प्रार्थनापूर्वक तेरी कामना करता हूँ ॥१॥

११६७—वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

१ २उ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(पुरुत्रा) सब जगह (हि) निश्चय (सदृङ्) समदर्शी (असि) है (दिशः) दिशाओं को (विश्वा) सारी (अनु) लक्ष्यकर (प्रभुः) स्वामी (समत्सु) जीवन संग्रामों में (त्वा) तुझे (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सर्वत्र समदर्शी तथा समस्त दिशाओं का स्वामी है । हम जीवन-संग्रामों में तेरी ही पुकार करते हैं ॥२॥

११६८—वत्सः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ र ३ १ २ १ २ ३ १ २

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥

पदार्थ—(समत्सु) जीवन-संग्रामों में (अग्निम्) परमेश्वर को (अवसे) रक्षा के लिए (वाजयन्तः) बल की कामना करते हुए (हवामहे) पुकारते हैं (वाजेषु) संग्रामों में (चित्रराधसम्) नाना प्रकार के धन की याचना करने योग्य ॥३॥

भावार्थ—बल की कामना करते हुए हम संग्रामों में अनेक प्रकार के धनवाले परमेश्वर को, जीवन-संग्राम में अपनी रक्षा के लिए पुकारते हैं ॥३॥

११६९—नृमेधः । इन्द्रः । विराडुष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।

१ ३ १ २ ३ १ २

आ वीरं पृतनासहम् ॥१॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (आभर) भरपूर कर (ओजः) बल (नृम्णम्) धन से (शतक्रतो) हे सैकड़ों यज्ञोंवाले (विचर्षणे) हे प्रजा के साक्षी (आ) भली भांति (वीरं) बलवान् (पृतनासहम्) संग्राम का जीतने वाला ॥१॥

भावार्थ—हे सैकड़ों यज्ञों के करने वाले तथा सब के साक्षी राजन् ! तू हमारे लिए बल, धन तथा संग्राम जीतने वाले बलवान् प्रदान कर ॥१॥

११७०—नृमेधः । इन्द्रः । विराडुष्णिक् ।

१ २र ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

१ २ ३ १ २

अथा ते सुम्नमीमहे ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (नः) हमारा (पिता) पिता (वसो) हे सबको निवास देनेवाले (त्वं) तू (माता) माता (शतक्रतो) हे सैकड़ों यज्ञों के स्वामी (बभूविथ) है (अथ) अनन्तर (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (ईमहे) चाहते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सबके निवासदाता तथा असंख्य यज्ञों के स्वामी परमेश्वर ! तू ही हमारा पिता और माता है । हम तेरे सुख की याचना करते हैं ॥२॥

११७१—नृमेधः । इन्द्रः । विराड् उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वां) तेरी (शुष्मिन्) हे बलशाली (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गए (वाजयन्तम्) सत्य-असत्य के ज्ञान करानेवाले (उपब्रुवे) स्तुति करता हूँ (सहस्कृत) हे बलदाता (सः) वह तू (नः) हमें (रास्व) दे (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे बलशाली, बहुतों से पुकारने योग्य तथा बलदाता परमेश्वर ! मैं तुझ सत्य और असत्य का ज्ञान करानेवाले की स्तुति करता हूँ । तू हमें उत्तम पराक्रम दे ॥३॥

११७२—अत्रिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो (इन्द्र) हे राजन् (चित्र) हे अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाले (मे) मेरे पास (इह) यहाँ (न) नहीं (अस्ति) है (त्वादातम्) तेरे देने योग्य (अद्रिवः) हे दण्डधारी (राधः) धन को (तत्) वह (नः) हमें (विदद्वसो) हे सारी संपदाओं वाले (उभया) दोनों (हस्त्या) हाथों से (आ भर) प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ—हे दण्डधारी, समस्त संपदाओं वाले तथा अद्भुत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त राजन् ! तेरे देने योग्य जो वस्तु मेरे पास नहीं, वह मुझे दोनों हाथों से प्रदान कर ॥१॥

११७३—अत्रिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जो (मन्यसे) मानता है (वरेण्यम्) उत्तम (इन्द्र) हे परमेश्वर (द्युक्षं) अन्न (तत्) वह (आ भर) दे, (विद्याम) प्राप्त करें (तस्य) उस (ते) तेरे (वयं) हम (अकूपारस्य) अच्छी तरह से भरणपोषण करनेवाले (दावनः) दान को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस अन्न को तू उत्तम मानता है वह हमें प्रदान कर । हम तेरे उस अच्छी तरह भरण-पोषण करनेवाले दान को प्राप्त करें ॥२॥

११७४—अत्रिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यत्ते दिक्ष प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (ते) तेरा (दिक्षु) दिशाओं में (प्रराध्यं) आराधना के योग्य (मनः) ज्ञान (अस्ति) है (श्रुतं) प्रसिद्ध (बृहत्) महान् (तेन) उससे (दृढा चित्) दृढ (अद्रिवः) हे आदरणीय (आ) भली भांति (वाजं) ज्ञान को (दर्षि) देता है (सातये) भक्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे आदरणीय परमेश्वर! दिशाओं में विख्यात, आराधना के योग्य तथा महान् जो तेरा ज्ञान है उसके द्वारा भक्ति के लिए संशयरहित ज्ञान को हमें प्रदान कर ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 अष्टमोऽध्यायः समाप्तः 卐

नवमोऽध्यायः

११७५—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥

पदार्थ—(शिशुं) शिशुरूप प्रशंसनीय (जज्ञानं) उत्पन्न हुए (हर्यतं) मनोहर (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (शुम्भन्ति) सुशोभित करते हैं (विप्रम्) मेधावी (मरुतः) ऋत्विग् लोग वेद के ज्ञाता (गरणेन) वेद की वाणी से (कविः) उत्तम बुद्धि वाला (गीर्भिः) स्तुतियों द्वारा (काव्येन) वेदरूपी काव्य से (कविः) क्रान्तप्रज्ञ मेधावी (सन्) हुआ (सोमः) आत्मा (पवित्रम्) अग्नि, वायु, सूर्य आदि को (अत्येति) अतिक्रमण [लंघन] कर जाता है (रेभन्) परमेश्वर की अर्चना करते हुए ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुए, पुत्रवत् प्रशंसनीय, ज्ञानगुण युक्त जीव को वेदज्ञानी लोग वेद की वाणी से सुशोभित कर पवित्र करते हैं। वह उत्तम बुद्धि वाला जीव स्तुतियों तथा वेदरूप काव्य के द्वारा अत्यन्त ज्ञानवान् होकर परमात्मा की अर्चना करता हुआ संसार के अग्नि, वायु तथा सूर्य आदि पदार्थों को पार कर जाता है ॥१॥

११७६—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनुराजति ष्टुप् ॥२॥

पदार्थ—(ऋषिमनाः) सर्वज्ञतायुक्त ज्ञान वाला (यः) जो (ऋषिकृत्) ऋषियों को उत्पन्न करने वाला (स्वर्षाः) आनन्दस्वरूप (सहस्रनीथः) सबसे स्तुति किया जाने योग्य (पदवीः) पथप्रदर्शक (कवीनां) ज्ञानियों का (तृतीयं) तीसरे (धामः) स्थान या लोक को (महिषः) महान् (सिषासन्) विभक्त करता हुआ (सोमः) परमेश्वर (विराजम्) प्रकाशमान अग्नि या सूर्य को (अनुराजति) प्रकाशित करता है (स्तुप्) धारण कर्त्ता ॥२॥

भावार्थ—सर्वज्ञ, ऋषियों का उत्पादक, आनन्दस्वरूप, सबकी उपासना के योग्य, ज्ञानियों का पथप्रदर्शक, महान् तथा सबका धारण करने वाला परमेश्वर द्यु लोक का विभाग करता हुआ सौर अग्नि को प्रकाशित करता है ॥२॥

११७७—प्रतर्दनः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥

पदार्थ—(चमूषत्) द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक (श्येनः) ज्ञानी (शकुनः) समर्थ (विभृत्वा) सबका भरण-पोषण करने वाला (गोविन्दुः) सूर्य, पृथिवी तथा वेदवाणी आदि का ज्ञाता (द्रप्से) भूगोल पर (आयुधानि) जलों को धारण करता हुआ (अपां) जलों के (ऊर्मिम्) प्रेरक (सचमानः) संयुक्त या सम्बन्ध करता हुआ (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (तुरीयम्) चतुर्थ (धाम) मोक्ष धाम को (महिषः) महान् (विवक्ति) बताता है ॥३॥

भावार्थ—द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों में व्यापक, ज्ञानी, सर्वशक्तिमान्, सब का धारण-पोषण करने वाला तथा सूर्य आदि का ज्ञाता महान् परमेश्वर भूगोल पर जलों को धारण करता है। जल की वर्षा करने वाले अन्तरिक्ष को सम्बद्ध करता है तथा मोक्षधाम का उपदेश करता है ॥३॥

११७८—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३क २र
एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(एते) ये (सोमाः) परमेश्वर और विद्वान् लोग (अभि) सब ओर से (प्रियम्) प्रिय (इन्द्रस्य) जीव की (कामम्) कामना को (अक्षरन्) बरसाते हैं (वर्धन्तः) बढ़ाते हुए (अस्य) इसके (वीर्यम्) पराक्रम को ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर तथा विद्वान् जन जीव के पराक्रम को बढ़ाते हुए इसकी प्रिय कामना की वृष्टि करते हैं ॥१॥

११७९—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥२॥

पदार्थ—(पुनानासः) पवित्र करने वाले (चमूषदः) द्यु और पृथिवी लोक के ज्ञाता (गच्छन्तः) जानते हुए (वायुम्) वायु को (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा को (ते) वे (नः) हमें (धत्त) धारण कराओ (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को ॥२॥

भावार्थ—हे पवित्र करने वाले तथा द्यु और पृथिवी आदि के ज्ञाता परमेश्वर और विद्वान् लोग ! आप वायु, सूर्य और चन्द्रमा आदि सभी को जानने वाले हो। आप हमें उत्तम बल धारण कराएँ ॥२॥

११८०—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (सोम) हे पुरुष (राधसे) आराधना के लिए (पुनानः) पवित्र हुआ (हार्दि) हृदय स्थान में होने वाले मन को (चोदय) प्रेरित कर (देवानाम्) देवों के (योनिम्) परम पद में (आ सदम्) स्थित होता हूँ ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! पवित्र हुआ तू परमेश्वर की आराधना के लिए अपने मन को प्रेरित कर। मैं देवों के परम पद में स्थित होता हूँ ॥३॥

११८१—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥

पदार्थ—(मृजन्ति) शुद्ध करती हैं (त्वा) तुझे (दश) दश यम-नियम (क्षिपः) अज्ञानमल को दूर फेंकने वाले (हिन्वन्ति) प्राप्त होती हैं (सप्त) सात स्थानों में [नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्धज्योतिः, नासिकाग्र, जिह्वाग्र, तात्वग्र तथा ज्ञान मात्र से बाह्यविषय] होने वाली (धीतयः) धारणाएँ (अनु) अनुकूल बना कर (विप्राः) ज्ञानीजन (अमादिषुः) प्रसन्न होते हैं ॥४॥

भावार्थ—हे आत्मशक्ते ! दश यम-नियम तुम्हारे अविद्या आदि मलों को दूर करते हैं तथा सात स्थानों में होने वाली धारणाएँ तुझे प्राप्त होती हैं। तुझे अनुकूल कर लेने पर ज्ञानीजन प्रसन्न होते हैं ॥४॥

११८२—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र १ २र
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥

पदार्थ—(देवेभ्यः) देवों के (त्वा) तुझे (मदाय) प्रसन्नता के लिए (कं) सुखस्वरूप (सृजानम्) उत्पन्न करने वाले (अति) अत्यन्त (मेष्यः) भेड़ आदि पशुओं को (सं) सम्यक् (गोभिः) स्तुतिरूप वेदवाणियों से (वासयामसि) आच्छादित करते हैं ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दुग्ध से विद्वानों तथा दिव्यशक्तियों की प्रसन्नता के लिये भेड़ आदि को अधिक रूप में उत्पन्न करने वाले आनन्दस्वरूप तुझे हम स्तुतियों से स्मरण करते हैं ॥५॥

११८३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र २ ३ १ २
पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥६॥

पदार्थ—(पुनानः) पवित्र करता हुआ (कलशेषु) शरीरों को (आ) भली भांति (वस्त्राणि) वस्त्र आदि को (अरुषः) प्रकाशस्वरूप (हरिः) अज्ञान-नाशक (परि) सब ओर से (गव्यानि) पृथिवी, सूर्य तथा इनके विकार सोना, चांदी, अन्न, औषधि आदि समस्त पदार्थों को (अव्यत) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—शरीरों को पवित्र करता हुआ प्रकाशस्वरूप तथा अज्ञान-निवारक परमेश्वर सोना, चांदी, अन्न, ओषधि तथा वस्त्र आदि पदार्थों को हमें प्रदान करता है ॥६॥

११८४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥७॥

पदार्थ—(मघोनः) यज्ञ करनेवाले (आपवस्व) भली भांति पवित्र कर (नः) हमें (जहि) नष्ट कर (विश्वा) सारे (अप) बुरी तरह (द्विषः) द्वेषों को (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (सखायम्) सखाभूत जीवात्मा में (आविश) प्रविष्ट हो ॥७॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू यज्ञ करनेवाले हम लोगों को पवित्र कर। हमारे सारे द्वेषों को विनष्ट कर। मित्रस्वरूप आत्मा में व्यापक हो ॥७॥

११८५—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥८॥

पदार्थ—(नृचक्षसं) मनुष्यमात्र के कर्मों के साक्षी (त्वा) तुझे (वयम्) हम लोग (इन्द्रपीतं) जीवात्माओं की रक्षा करनेवाले (स्वर्विदम्) सूर्य आदि पदार्थों के ज्ञाता (भक्षीमहि) भागी बनें (प्रजां) प्रजा के (इषम्) अन्न के ॥८॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग मनुष्यों के कर्मों के साक्षी, आत्माओं के रक्षक तथा सर्वज्ञ तुझ परमेश्वर की स्तुति करते हुए सन्तान तथा अन्नादि के भागी बनें ॥८॥

११८६—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
वृष्टिं दिवः परिस्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥९॥

पदार्थ—(वृष्टिं) वर्षा को (दिवः) द्युलोक से (परिस्रव) बरसा (द्युम्नं) अन्न तथा धन (पृथिव्या अधि) पृथिवी में (सहः) बल (नः) हमें (सोम) हे परमेश्वर (पृत्सु) संग्रामों में (धाः) धारण करा ॥९॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू द्युलोक से वर्षा कर । पृथिवी में अन्न तथा धन दे और संग्रामों में हमें बल प्रदान कर ॥९॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

११८७—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—(सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) प्राप्त कराता है (सहस्रधारः) सर्वाधार (अत्यविः) प्रकृति के परे रहनेवाला (वायोः) गतिशील (इन्द्रस्य) जीव के (निष्कृतम्) कर्मफल को ॥१॥

भावार्थ—पवित्रकारक, सर्वाधार तथा प्रकृति से परे स्थित परमेश्वर अनेकों योनियों में आने जानेवाले जीव के कर्मफलों को देता है ॥१॥

११८८—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥२॥

पदार्थ—(पवमानम्) शुद्धस्वरूप (अवस्यवः) रक्षा की कामना करनेवाले (विप्रम्) मेधावी (अभि) भली भांति (प्रगायत) भजन करो (सुष्वाणं) जगत्कर्त्ता (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे रक्षा की कामनावालो ! तुम लोग दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए शुद्धस्वरूप, सर्वज्ञ तथा निमित्त कारण परमेश्वर का भजन करो ॥२॥

११८९—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥३॥

पदार्थ—पवन्ते) पवित्र करते हैं (वाजसातये) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (सोमाः) विद्वान् लोग (सहस्रपाजसः) सर्व प्रकार के बल से युक्त (गृणानाः) स्तुति करनेवाले (देववीतये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए ॥३॥

भावार्थ—अनेक प्रकार के बल से युक्त भक्त विद्वान् लोग ज्ञान और परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने को पवित्र करते हैं ॥३॥

११९०—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्य्यम् ॥४॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (वाजसातये) जीवन संग्राम के लिए (पवस्व) प्रदान कर (बृहतीः) महान् (इषः) अन्न और विज्ञानों का (द्युमद्) दीप्तिमान् (इन्दो) हे ऐश्वर्यवान् (सुवीर्य) सुन्दर पराक्रम को ॥४॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू जीवन संग्राम के लिए हमें महान् अन्न, विज्ञान तथा दीप्तिमान् पराक्रम प्रदान कर ॥४॥

११९१—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २ ३ १ २
अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥५॥

पदार्थ—(अत्याः) अश्व (हियाना) प्रेरित (न) समान (हेतृभिः) संग्राम करने वाले वीरों से (असृग्रम्) पैदा किए जाते हैं (वाजसातये) संग्राम जीतने के लिए (वि) विशेषरूप से (वारम्) आवरण को (अव्यम्) प्रकृति सम्बन्धी (आशवः) शीघ्रगामी ॥५॥

भावार्थ - संग्राम जीतने के लिए सवारों द्वारा प्रेरित किए गए शीघ्रगामी घोड़ों के समान जीव लोग प्राकृतिक आवरण को जीतने के लिए संसार में उत्पन्न किए जाते हैं ॥५॥

११९२—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥६॥

पदार्थ—(ते) वे (नः) हमें (सहस्रिणम्) बहुत प्रकार वाला (रयिम्) धन (पवन्ताम्) प्राप्त करावें (आ) भली भांति (सुवीर्यम्) उत्तम बल को (स्वाना) सत्योपदेष्टा (देवासः) दिव्य गुणवाले (इन्दवः) ऐश्वर्यशाली ॥६॥

भावार्थ—सत्योपदेष्टा दिव्य गुणवाले ऐश्वर्यशाली परमेश्वर और विद्वान् पुरुष हमें सहस्रों प्रकार का धन और उत्तम बल प्रदान करें ॥६॥

११९३—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥७॥

पदार्थ—(वाश्राः) शब्द करती हुई (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् (अभि) भली प्रकार से (वत्सं) बच्चे को (न) समान (मातरः) माता के (दधन्विरे) धारण करते हैं (गभस्त्योः) दोनों हाथों में ॥७॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली भक्तजन बच्चे को शब्द करती हुई माताओं के समान परमेश्वर को प्राप्त करते हैं । उसके द्वारा दिए हुए सांसारिक भोग को अपने दोनों हाथों में धारण करते हैं ॥७॥

११९४—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥८॥

पदार्थ—(जुष्टः) प्रीतियुक्त (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (मत्सरः) प्रसन्नतायुक्त (पवमानः) पवित्रकारी (कनिक्रदत्) जानता हुआ (विश्वाः) समस्त (अप) दूर करना (द्विषः) द्वेषों को (जहि) विनष्ट कर ॥८॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! परमेश्वर के प्रति प्रेमयुक्त, प्रसन्न तथा पवित्रकारी स्वभाववाला तू जानता हुआ हमारे समस्त द्वेषों को विनष्ट कर ॥८॥

११९५—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥९॥

पदार्थ - (अपघ्नन्तः) दूर करते हुए (अराव्णः) धर्मकार्य के विघ्नों को (पवमानाः) पवित्रकारक (स्वर्दृशः) सुख के दिखाने वाले (योनौ) मूल कारण परमेश्वर में (ऋतस्य) सत्य के (सीदत) स्थित होवो ॥९॥

भावार्थ—हे पवित्र कारक स्वभाव वाले विद्वान् जन ! सुख प्राप्त कराने वाले आप लोग धर्म कार्य के विघ्नों को दूर करते हुए सत्य के मूल कारण परमेश्वर में स्थिति प्राप्त करो ॥९॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

११९६—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्त धारया । इन्द्राय मधुमत्तमा ॥१॥

पदार्थ—(सोमाः) आत्माएँ (असृग्रम्) उत्पन्न की जाती हैं (इन्दवः) ऐश्वर्यवाली (सुताः) पुत्रस्वरूप (ऋतस्य) सत्यज्ञान की (धारया) वाणी से (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (मधुमत्तमाः) उत्तम ज्ञानवाली ॥१॥

भावार्थ—ऐश्वर्ययुक्त, पुत्रस्वरूप तथा उत्तम ज्ञान वाली आत्मायें वेदवाणी द्वारा परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए संसार में उत्पन्न की जाती हैं ॥१॥

११९७—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (विप्राः) मेधावीजन (अनूषत) स्तुति करते हैं (गावः) गायें (वत्सं) बछड़े के (न) समान (धेनवः) दुग्ध देने वाली (इन्द्रं) परमेश्वर का (सोमस्य) आनन्द रस का (पीतये) पान करने के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष बछड़े को दूध देने वाली गायों के समान आनन्द रस के पान के लिए परमेश्वर की स्तुति करते हैं ॥२॥

११९८—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३ १ २र ३ २
मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—(मदच्युत्) आनन्द बहाने वाले (क्षेति) निवास करता है (सादने) स्थान में (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मा) प्रवाह में (विपश्चित्) ज्ञानी (सोमः) परमेश्वर (गौरी अधि) वाणियों में (श्रितः) स्थित ॥३॥

भावार्थ—आनन्ददाता, सर्वज्ञ तथा प्रत्येक की वाणी में स्थित परमेश्वर नदी की लहरों तथा स्थानों में निवास कर रहा है ॥३॥

११९९—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४॥

पदार्थ—(दिवः) द्युलोक की (नाभा) नाभि में [मध्य में] (विचक्षणः) सबका साक्षी (अव्याः) प्रकृति के (वारे) परदे में (महीयते) महत्ता प्रकट कर रहा है (सोमः) परमेश्वर (यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम कर्म वाला (कविः) वेद रूप काव्य का निर्माता ॥४॥

भावार्थ—सबका साक्षी, उत्तम कर्मकर्त्ता तथा वेद काव्य का रचने वाला परमेश्वर द्युलोक के मध्य तथा प्रकृति के परदे में भी अपनी महानता को प्रकट कर रहा है ॥४॥

१२००—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (सोमः) परमेश्वर (कलशेषु) सबके शरीरों में (आः) व्यापक होकर स्थित है (अन्तः) मध्य में (पवित्रे) अग्नि, वायु तथा सूर्य आदि में (आहितः) व्याप्त है (तम्) उसे (इन्दुः) ज्ञानी आत्मा (परिषस्वजे) मिल जाता है ॥५॥

भावार्थ—जो परमेश्वर प्रत्येक शरीर में तथा अग्नि वायु और सूर्य आदि पदार्थों में व्यापक हो रहा है उसको ज्ञानी जीव प्राप्त करता है ॥५॥

१२०१—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥६॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम रूप से (वाचम्) वाणी को (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इष्यति) गति देता है (समुद्रस्य) आकाश की (अधिविष्टपि) सूर्य मे (जिन्वन्) व्याप्त करता हुआ (कोशं) कोश को (मधुश्चुतम्) आनन्द को बहाने वाले ॥६॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर सूर्य लोक तथा आनन्दमय कोश में व्यापक होता हुआ आकाश के शब्द को गति प्रदान करता है ॥६॥

१२०२—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥७॥

पदार्थ—(नित्यस्तोत्रः) निरन्तर किया जाने वाला (वनस्पतिः) लोकों का पालक (धेनाम्) वेद वाणी को (अन्तः) अन्तःकरण या मध्य (सबर्दुघाम्) सुख को दोहन करने वाली (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (मानुषा) मनुष्यों में (युजा) योगद्वारा ॥७॥

भावार्थ—नित्य स्तुति किया जाने वाला तथा समस्त लोकों का स्वामी परमेश्वर समाधि द्वारा मनुष्यों को वेद का ज्ञान प्रदान करता है ॥७॥

१२०३—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (धारय) धारण कर (रयिम्) धन को (सहस्रवर्चसम्) अनेकों प्रकार के तेज वाले (अस्मे) हम में (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (स्वाभुवम्) उत्तम भूमि वाले ॥८॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य संपन्न तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें अनेकों प्रकार के तेजों से युक्त तथा भूमि वाला धन धारण करा ॥८॥

१२०४—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २
अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥९॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्रिया) प्रिय वस्तुओं को (दिवः) द्युलोक से (कविः) वेद काव्य का कर्त्ता (विप्रः) मेधावी (सः) वह (धारया) वेद वाणी द्वारा (सुतः) जगत् कर्त्ता (सोमः) परमेश्वर (हिन्वे) बढ़ता है (परावतिः) दूर स्थान में ॥९॥

भावार्थ—वेद काव्य का करने वाला, मेधावी तथा वेद ज्ञान द्वारा जगत् का उत्पादक परमेश्वर द्युलोक और उस से दूर के स्थान पृथिवी आदि में भी प्रिय वस्तुओं को पैदा करता है ॥९॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१२०५—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥

पदार्थ—(उत्) ऊपर (शुष्मासः) प्रचण्ड शक्ति (ईरते) प्रकट होती है (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मेः) लहर से (इव) समान (स्वनः) शब्द के (वाणस्य) वाणी की (चोदय) प्रेरित करता है (पविम्) शब्द शक्ति को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी प्रचण्ड शक्तियां नदी की लहर से उत्पन्न शब्द के समान उनसे ही स्वयं प्रकट हो रही हैं । तू वाणी की शब्दोच्चारण शक्ति को प्रेरणा देता है ॥१॥

१२०६—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २उ ३ २ ३ १ २
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥२॥

पदार्थ—(प्रसवे) सृष्टि काल में (ते) तेरी (उदीरते) प्रकट होती हैं (तिस्रः) तीन [ऋक्, यजु तथा साम] (वाचः) वाणियाँ (मखस्युवः) संसार यज्ञ के करने की इच्छा वाले (यत्) जो (अव्ये) प्रकृतिमय (एधि) व्यापक होता है (सानवि) शिखर में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू प्रकृति के उच्च शिखर में व्यापक है । सृष्टि काल में संसार यज्ञ के कर्त्ता तेरी ऋक्, यजु और साम रूप वाणियां प्रकट होती हैं ॥२॥

१२०७—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
अव्या वारैः परि प्रियम् हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥३॥

पदार्थ—(अव्या) प्रकृति के (वारैः) वाल सदृश लोकों से (परि) सब प्रकार से (प्रियम्) प्रिय (हरिम्) दुःख हर्त्ता (हिन्वन्ति) जानते है (अद्रिभिः) मेघ तथा पर्वतो से (पवमानं) शुद्धस्वरूप (मधुश्चुतम्) आनन्ददाता ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् लोग प्रिय, दुःखों के हर्त्ता, शुद्धस्वरूप तथा आनन्ददाता परमेश्वर का प्रकृति के लोकों तथा मेघ पर्वत आदि से अनुगान करते हैं ॥३॥

१२०८—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥४॥

पदार्थ—(आपवस्व) पवित्र कर (मदिन्तम) हे सुखदाता (पवित्रं) अग्नि आदि संसार के पदार्थ को (धारया) धारण शक्ति से (कवे) हे ज्ञानमय (अर्कस्य) मन्त्र के (योनिम्) कारण में (आसदम्) स्थित होऊँ ॥४॥

भावार्थ—हे सुखदाता तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू अपनी धारण शक्ति से संसार के अग्नि आदि पदार्थों को पवित्र कर । मैं मन्त्रों के निमित्तकारण तुझ में स्थित होऊँ ॥४॥

१२०९—उचथ्यः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह (पवस्व) पवित्र कर (मदिन्तम) हे हर्षदायक (गोभिः) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकों से (अंजानः) अपनी महिमा को जनाता हुआ (अक्तुभिः) रात्रियों द्वारा (आ) भली भांति (इन्द्रस्य) जीव के (जठरं) मध्य (विश) प्रविष्ट है ॥५॥

भावार्थ—हे परम हर्ष के दाता परमेश्वर ! पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा रात्रियों आदि द्वारा अपनी महिमा को प्रकट करता हुआ तू जीव के मध्य में व्यापक है ॥५॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१२१०—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (वीती) मार्ग से (परिस्रव) चल (यः) जो (ते) तेरे (इन्दो) हे ऐश्वर्य वाले (मदेषु) स्तुतियों में (आ) भली भांति (अवाहन्) पार करता है (नवतीः नव) ९९ प्रकार के विघ्नों को ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान् पुरुष ! तू इस ज्ञान मार्ग से चल जो कि तेरी स्तुतियों में निन्यानवे के चक्कर से पार लगाता है ॥१॥

१२११—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥२॥

पदार्थ—(पुरःसद्यः) अत्यन्त शीघ्र (इत्थाधिये) सत्य कर्म वाले (दिवोदासाय) दिव्यगुणों के दाता या प्रकाश के दाता के लिए (शंबरम्) सुख चाहने वाले (अध) मंगल कामना से (त्यं) उस (तुर्वशम्) समीपस्थ (यदुम्) मनुष्य को ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सत्य कर्म वाले तथा प्रकाश के दाता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए सुख चाहने वाले पुरुष को शीघ्र ही मंगल कामना से उस प्रभु के समीपस्थ कर ॥२॥

१२१२—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (नः) हमें (अश्वम्) बल (अश्वावत्) बल के दाता (गोमत्) गाय आदि से युक्त (इन्दो) हे ऐश्वर्यवान् (हिरण्यवत्) स्वर्णयुक्त (क्षरा) बरसा (सहस्रिणीः) सहस्रों प्रकार के (इषः) ज्ञानों को ॥३॥

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! बल का दाता तू हमें गाय तथा सोना आदि प्राप्त कराने वाला बल और सहस्रों प्रकार के ज्ञान प्रदान कर ।३।

१२१३—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१॥

पदार्थ—(अपघ्नन्) दूर फेंकता हुआ (पवते) पवित्र करता है (मृधः) पापों को (अप) निवारण करता है (सोमः) परमेश्वर (अराव्णः) दान आदि के विघ्नों को (गच्छन्) प्राप्त करता हुआ (इन्द्रस्य) जीव के (निष्कृतम्) विस्तार को ॥१॥

भावार्थ—धर्म के विघ्नों और पापों को दूर करता हुआ तथा जीव का विस्तार करता हुआ परमेश्वर संसार को पवित्र करता है ॥१॥

१२१४—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२॥

पदार्थ—(महः) तेज (नः) हमें (रायः) धन (आभर) प्रदान कर (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (जही) नष्ट कर (मृधः) हिंसक मनोवृत्तियों का (रास्व) दे (इन्दो) परम ऐश्वर्यवान् (वीरवत्) वीरों से युक्त (यशः) यश को ॥२॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप तथा सकल ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर ! तू हमें तेज तथा धनों को प्रदान कर । पापों को दूर कर । हे प्रभो ! हमें वीरों से युक्त यश दे ॥२॥

१२१५—अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।

१ २ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमामिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥३॥

पदार्थ—(न) नहीं (त्वा) तुझे (शतं) सौ (चन) भी (ह्रुतः) हरण करने वाले (राधः) धन को (दित्सन्तम्) देने की इच्छा करते हुए (आमिनन्) हानि पहुँचा सकते हैं (यत्) जब (पुनानः) पवित्र करता हुआ (मखस्यसे) संसार रूप यज्ञ को करना चाहता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सब का पवित्र कर्त्ता तू जब संसार रूप यज्ञ को रचता है तो धन प्रदान करने की इच्छा करने वाले तुझे सैकड़ों धनापहरण करने वाले लोग हानि नहीं पहुँचा सकते ॥३॥

१२१६—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (पवस्व) पवित्र कर (धारया) वाणी से (यया) जिसके द्वारा (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाशित करता है (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (अपः) कर्मों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जिस वेदवाणी से मनुष्यों के कर्मों की प्रेरणा करता हुआ सूर्य को प्रकाशित करता है उससे हमें पवित्र कर ॥१॥

१२१७—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥२॥

पदार्थ—(अयुक्त) जोड़ रक्खा है (सूरः) वीर (एतशं) घोड़े के समान वेग को (पवमानः) व्यापक (मनौ अधि) मन में (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से (यातवे) सर्वत्र जाने के लिए ॥२॥

भावार्थ—बलशाली तथा व्यापक परमेश्वर ने आकाश मार्ग से सर्वत्र जाने आने के लिये मन में घोड़े के समान वेग को जोड़ रक्खा है ॥२॥

१२१८—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥३॥

पदार्थ—(उत) अपि च [और भी] (त्या) उन (हरितः) दिशाओं या हरणशील किरणों को (रथे) सूर्य में (सूरः) बलवान् (अयुक्त) जोड़ता है (यातवे) ज्ञान कराने के लिये (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इन्द्रः) यह इन्द्र है (इति) ऐसा (ब्रुवन्) कहता हुआ ॥३॥

भावार्थ—बलवान् तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर 'यह सूर्य है' ऐसा उच्चारण करता हुआ लोगों के ज्ञान के लिये किरणों और दिशाओं को सूर्य मण्डल में जोड़ता है ॥३॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१२१९—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर को (वः) तुम लोग (देवम्) देव (अग्निभिः) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम में होने वाली अग्नियों से (सजोषाः) समान भाव से सेवन करने वाले (यजिष्ठं) परमपूजनीय (दूतम्) दुःखों का निवारक (अध्वरे) यज्ञ में (कृणुध्वम्) बनाओ (यः) जो (मर्त्येषु) मरण धर्म वालों में (निध्रुविः) ध्रुव=नित्य है (ऋतावा) सत्य धर्म वाला (तपुः) दुष्टों को तपाने वाला (मूर्धा) सर्वोत्तम (घृतान्नः) प्रकाशक और प्रलय कर्त्ता (पावकः) व्यापक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तीनों आश्रमों की अग्नियों से युक्त तुम लोग उस परम पूजनीय परमात्मदेव को अपने यज्ञ में दुःख निवारक समझो जो कि विनाशी पदार्थों में नित्य, सत्य धर्म वाला, सर्वोत्तम, सृष्टि का प्रकाशक प्रलयकर्त्ता तथा सर्वव्यापक है ॥१॥

१२२०—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥

पदार्थ—(प्रोथद्) समर्थ होता हुआ [पर्याप्त] (अश्वः) विद्युत् के (न) समान (यवसे) संयोग वियोग के लिये (अविष्यन्) रक्षा करता हुआ (यदा) जब (महः) महान् (संवरणात्) आवरण से (व्यस्थात्) विशेष रूप से स्थित होता है । (आत्) अनन्तर (अस्य) इसके (वातः) वायु (अनु) पीछे (वाति) बहती है (शोचिः) तेज के (अध) अनन्तर (स्म) पादपूरक (ते) तव (व्रजनम्) व्यापकता (कृष्णं) खींचने वाली (अस्ति) है ॥२॥

भावार्थ—संयोग वियोग के लिये पर्याप्त होती हुई विद्युत् के समान महान् आवरण से रक्षा करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र स्थित है । इसके तेज के पीछे वायु बहती है । हे परमेश्वर तेरी व्यापकता सब लोकों का आकर्षण करने वाली है ॥२॥

१२२१—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

पदार्थ—(उत्) तथा (यस्य) जिस (ते) तेरा (नवजातस्य) नये-नये पदार्थों को पैदा करने वाले (वृष्णः) सुख की वर्षा करने वाले (अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप (चरन्ति) विचरती हैं (अजराः) अजर अमर (इधानाः) प्रकाशकारी शक्तियाँ (अच्छा) प्रति (द्याम्) द्युलोक के (अरुषः) प्रकाशक (धूमः) कम्पन देने वाला (एषि) व्याप्त करता है (सं) सम्यक् (दूतः) शुभ गुण का प्राप्त कराने वाला (अग्ने) हे परमेश्वर (ईयसे) गतिमान् कर रहा है (हि) निश्चय ही (देवान्) समस्त देवों को ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! नवीन-नवीन पदार्थों के उत्पादक तथा सुख की वर्षा करने वाले जिस तेरी अजर अमर प्रकाशमयी शक्तियाँ सर्वत्र विचरती हैं, वह प्रकाशक, पदार्थों में कम्पन देने वाला तथा शुभ गुण दाता तू द्युलोक में भी व्यापक है । तू समस्त देवों को गतिमान् कर रहा है ॥३॥

१२२२—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१॥

पदार्थ—(तम्) उस (इन्द्रं) आत्मा को (वाजयामसि) बलवान् करते हैं (महे) महान् (वृत्राय) दुर्गुणों के (हन्तवे) नाश के लिये (सः) वह (वृषा) बलवान् (वृषभः) धर्म से प्रकाशमान होवे ॥१॥

भावार्थ—हम बुराइयों के नाश करने के लिये आत्मशक्ति को बलवान् करते हैं । वह बलवती और धर्मात्मा होवे ।१।

१२२३—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (सः) वह (दामने) देने के लिए (क्षतः) समर्थ है (ओजिष्ठः) ओजस्वी (सः) वह (बले) बल में (हितः) हितकारी (द्युम्नी) यशस्वी (श्लोकी) वेदवाणियों का स्वामी (सः) वह (सोम्यः) सौम्यगुण वाला है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सब कुछ देने में समर्थ है। वह ओजस्वी तथा बल में हितकारी है। वह यशस्वी, वेद वाणी का स्वामी और सौम्य स्वभाव वाला है ॥२॥

१२२४—सुकक्षः। इन्द्रः। गायत्री।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३॥

पदार्थ—(गिरा) वेद वाणी द्वारा (वज्रः) वज्र के (न) समान (सम्भृतः) धारण किया हुआ (सबलः) बलवान् (अनपच्युतः) न डिगने वाला (ववक्षे) धारण करता है (उग्रः) तीव्र (अस्तृतः) न दबाया जाने वाला ॥३॥

भावार्थ—वेद वाणी द्वारा धारण किया हुआ, वज्र के समान बलवान, न डिगने वाला, तेजस्वी तथा किसी से न दबाया जाने वाला परमेश्वर संपूर्ण जगत् को धारण करता है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१२२५—उचथ्यः। सोमः। गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे ॥१॥

पदार्थ—(अध्वर्यो) वेदज्ञ (अद्रिभिः) आदरणीयों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) पुरुष को (पवित्रे) परमेश्वर की शरण में (आनय) ला (पुनाहि) पवित्र कर (इन्द्राय) विद्वान् की ((पातवे) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे वेदज्ञ ! तू आदरणीय व्यक्तियों की सन्तान इस पुरुष को विद्वान् की रक्षा के लिए पवित्र कर और परमेश्वर की शरण में ला ॥१॥

१२२६—उचथ्यः। सोमः। गायत्री।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र १ २ ३ १ २
तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत। पवमानस्य मरुतः ॥

पदार्थ—(तव)) तेरे (त्ये) वे (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (अन्धसः) अन्न का (देवाः) विद्वान् लोग (मधोः) मधुर (व्याशत) उपभोग करते हैं (पवमानस्य) शुद्ध स्वरूप (मरुतः) ऋत्विग् लोग ॥२॥

भावार्थ—हे सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् और याज्ञिक लोग तुझ शुद्ध स्वरूप के द्वारा दिये हुए मधुर अन्न का उपभोग करते हैं ॥२॥

१२२७—उचथ्यः। सोमः। गायत्री।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमत्तमम् ॥३॥

पदार्थ—(दिवः) परमेश्वर के (पीयूषम्) अमृत (उत्तमम्) उत्तम (सोमम्) बोध को (इन्द्राय) जीव के लिए (वज्रिणे) दुर्गुणों की वर्जनशक्ति-युक्त (सुनोत) उत्पन्न कर (मधुमत्तमम्) मधुविद्या से अत्यन्त युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् जन ! आप लोग अमृतरूप, उत्तम तथा मधु विद्या से संपन्न ब्रह्मज्ञान, दुर्गुणों को निवारण करने वाली शक्ति से युक्त जीव के लिए उत्पन्न करो ॥३॥

१२२८—कविः। सोमः। जगती।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥१॥

पदार्थ—(धर्ता) धारणकर्त्ता (दिवः) दिव्यगुण का (पवते) पवित्र करता है (कृत्व्यः) कर्मयोगी (रसः) सरल (दक्षः) निपुण (देवानाम्) विद्वानों में (अनुमाद्यः) प्रशंसनीय (नृभिः) मनुष्यों से (हरिः) अज्ञान का निवारण करने वाला (सृजानः) छोड़ता हुआ (अत्यो न) घोड़े के समान (सत्वभिः) प्राणियों के साथ (वृथा) विना प्रयत्न के (पाजांसि) बलों को (कृणुषे) उत्पन्न करता है (नदीषु) नाड़ी रूप नदियों में (आ) भली भांति ॥१॥

भावार्थ—दिव्य गुणों का धारण करने वाला, कर्मयोगी, सरल विद्वानों में दक्ष, मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय, अज्ञाननिवारक तथा प्राणियों के साथ वैर भाव को छोड़ता हुआ विद्वान् पुरुष अश्व के समान अपनी नाड़ियों में बलों को उत्पन्न कर लेता है ॥१॥

१२२९—कविः। सोमः। जगती।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २ ३ १ २र
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व३ः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥

पदार्थ—(शूरः) बलवान् के (न) समान (धत्ते) धारण करता है (आयुधा) शस्त्रों को (गभस्त्योः) दोनों हाथों में (स्वः) द्युलोक का (सिषासन्) विभाग करता हुआ (रथिरः) महारथी (गविष्टिषु) सूर्य की किरणों की संगतियों में (इन्द्रस्य) जीव के (शुष्मं) बल को (ईरयन्) प्रेरित करता हुआ (अपस्युभिः) कर्म करने की इच्छा करनेवाले (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (हिन्वानः) जाना जाता हुआ (अज्यते) प्राप्त किया जाता है (मनीषिभिः) मनस्वी लोगों से ॥१॥

भावार्थ—जिस प्रकार महारथी योद्धा अपने हाथों में अस्त्र-शस्त्र को धारण करता है उसी प्रकार ऐश्वर्यशाली परमेश्वर द्युलोक का विभाग करता हुआ उसे किरणों की संगति में धारण करता है। वह जीव के बल को प्रेरणा देने वाला है। कर्मयोगी मनस्वी लोग उसे जान कर प्राप्त करते हैं ॥२॥

१२३०—कविः। सोमः। जगती।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) जीव के [अथवा जीवों के] (सोम) हे परमेश्वर (पवमानः) शुद्ध (ऊर्मिणा) प्रकाश से (तविष्यमाणः) स्तुति किया जाने वाला (जठरेषु) मध्यों में [अथवा मध्य में] (आ) भली भांति (विश) व्यापक हो रहा है (प्र) उत्तम रूप से (नः) हमारे लिए (पिन्व) पूर्ण कर (विद्युत्) बिजली (अभ्रा) मेघों के (इव) समान (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (धिया) कर्म से (नः) हमारे (वाजान्) अन्न आदि को (उप) समीप (माहि) उत्पन्न कर (शश्वतः) बहुत प्रकार के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध स्वरूप तथा स्तुति किया जाने वाला तू अपने प्रकाश के द्वारा जीव के मध्य में व्यापक हो रहा है। तू हमारे लिए मेघों को विद्युत् के समान द्यु और पृथिवी लोक को भरपूर कर तथा अपने पवित्र रचना कर्म से हमारे समीप विविध प्रकार के अन्नों को उत्पन्न कर ॥३॥

१२३१—देवातिथिः। इन्द्रः। बृहती।

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

पदार्थ—(यत्) यद्यपि (इन्द्र) हे जीव (प्राग्) उत्तम गति वाला (अपाग्) अधम गति वाला (उदङ्) ऊपर के लोकों में जाने वाला (न्यक्) नीचे के लोकों में होने वाला (वा) और (हूयसे) कहा जाता है (नृभिः) ज्ञान मार्ग के नेताओं से (सिमा) सब (पुरू) बहुत (नृषूतः) मनुष्य योनि में उत्पन्न किया गया (असि) है (अनवे) मनुष्य के लिए (असि) है (प्रशर्ध) हे उत्तम बल वाले (तुर्वशे) समीप में स्थित ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम बलवाले जीव ! तू उत्तम, अधम योनि तथा ऊपर नीचे सभी लोकों में कर्मानुसार उत्पन्न होने वाला है ऐसा ज्ञानमार्ग पर चलने वाले बतलाते हैं। मनुष्य योनि में पैदा हुआ तू सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य के ज्ञान के लिए तू समीप है ॥१॥

१२३२—देवातिथिः। इन्द्रः। बृहती।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

पदार्थ—(यद्) यद्यपि (रुमे) रमण योग्य में (रुशमे) हिंसक में (श्यावके) ज्ञानी में (कृपे) समर्थ में (इन्द्र) हे परमेश्वर (मादयसे) प्रसन्न होता है (सचा) समान भाव से (कण्वासः) मेधावी जन (त्वा) तुझे (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (ब्रह्मवाहसे) वेद के वाहक (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् (आयच्छन्ति) ढूंढ लेते हैं (आगहि) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ! तू यद्यपि रमण योग्य, हिंसक ज्ञानी तथा सामर्थ्य वाले पर समान रूप से प्रसन्न होता है, परन्तु वेद के ज्ञाता ज्ञानी जन तुझे स्तोत्रों से ढूँढते हैं और तू उन्हें प्राप्त होता है ॥२॥

१२३३—भर्गः। इन्द्रः। बृहती।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ट आ गमत् ।१।

पदार्थ—(उभयं) दोनों [लौकिक तथा पारमार्थिक] (शृणवत्) सुनें (च) और (नः) हमारे ((इन्द्रः) विद्वान् (अर्वाग्) सामने हुआ (इदं) यह (वचः) वचन को (सत्राच्या) यज्ञ कराने वाली (मघवान्) यज्ञकर्त्ता

(सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए (धिया) बुद्धि या कर्म से (शविष्ट) बलशाली (आगमत्) प्राप्त होवे ।।१।।

भावार्थ—शक्तिशाली तथा याज्ञिक विद्वान् सामने होकर हमारे लौकिक तथा पारलौकिक वचन को सुनें, तथा यज्ञसम्बन्धी कर्म से संसार की रक्षा के लिए हमें प्राप्त हों ।।१।।

१२३४—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

२उ ३ १२ ३ १ २र ३ १२ ३ १२
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
३२३ १२ ३ १ २र ३ १२ ३ २३ १२
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ।।२।।

पदार्थ—(तं) उस (हि) क्योंकि (स्वराजम्) स्वयं प्रकाशमान (वृषभम्) सुखों की वर्षा करने वाले (तं) व्यापक (ओजसा) तेजसे (धिषणे) द्यु और पृथिवी लोक (निष्टतक्षतुः) प्रकट करते हैं (उत) और (उपमानाम्) उपमाभूत आकाश आदि का (प्रथमः) आदि कारण (निषीदसि) व्यापक हो रहा है (सोमकामं) संसार रचना की इच्छा वाला (हि) निश्चय (ते) तेरा (मनः) ज्ञान है ।।२।।

भावार्थ—स्वप्रकाशस्वरूप तथा सुखों की वर्षा करनेवाले उस व्यापक परमेश्वर की महिमा को अपने ओज से द्यु और पृथिवी लोक प्रकट कर रहे हैं । हे परमेश्वर ! तू उपमा भूत आकाश आदि का आदिकारण तथा सब में व्यापक हो रहा है । तेरा ज्ञान सृष्टिरचना की इच्छा वाला है ।।२।।

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

१२३५—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमारोह धर्मणा ।।१।।

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देव) हे देव (आयुषक्) आयु के दाता (इन्द्रम्) जीव का (गच्छतु) प्राप्त होवे (ते) तेरा (मदः) आनन्द (वायुम्) वायु को (आरोह) चढ़ता है (धर्मणा) अपनी सर्वाधारता और सर्वशक्तित्व से ।।१।

भावार्थ—हे परमात्म देव ! तू आयु का दाता है । हमें पवित्र कर । तेरा आनन्द जीव को प्राप्त होवे । तू अपनी सर्वशक्तिमत्ता से वायु पर भी नियंत्रण रखता है ।।१।।

१२३६—निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमाविश ।।२।।

पदार्थ—(पवमान) हे पवित्र स्वरूप (नि) संपूर्ण रूप से (तोशसे) देता है (रयिम्) धन (सोम) हे परमेश्वर (श्रवाय्यम्) प्रशंसनीय (इन्दो) हे सर्वेश्वर (समुद्रम्) आकाश में (आविश) व्यापक हो रहा है ।।२।।

भावार्थ—हे सर्वेश्वर तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें प्रशंसनीय धन प्रदान करता है । तू आकाश में व्यापक हो रहा है ।।२।।

१२३७—निध्रुविः । सोमः । गायत्री

३ १ २ ३ १२ २१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १२
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ।।३।।

पदार्थ—(अपघ्नन्) नाश करता हुआ (पवसे) पवित्र करता है । (मृधः) हिंसक वृत्तियों को (क्रतुवित्) यज्ञ के ज्ञाता (सोम) हे विद्वान् (मत्सरः) सुख से युक्त (नुदस्व) ज्ञान से प्रेरित कर (अदेवयुम्) परमेश्वर की उपासना न करने वाले (जनम्) मनुष्य को ।।३।।

भावार्थ—हे विद्वन् ! यज्ञ का ज्ञाता, तथा सुखयुक्त तू हिंसक वृत्तियों को दूर करता हुआ सब को पवित्र करता है । तू परमेश्वर की उपासना न करने वालों को उपासना की तरफ प्रेरित कर ।।३।।

१२३८—अम्बरीषः । सोम. । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१२ ३१२ ३ १ २३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ।।१।।

पदार्थ—(अभी) सब प्रकार से (नः) हमें (वाजसातमम्) अन्न को देने वाले (रयिम्) धन को (अर्ष) प्रदान कर (शतस्पृहम्) सैकड़ों से चाहने योग्य (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (सहस्रभर्णसं) सहस्रों का भरण-पोषण करने वाले (तुविद्युम्नं) बहुत यशदायक (विभासहम्) शत्रुओं को नीचा दिखाने वाले ।।१।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली राजन् ! तू हमें अन्न के देने वाले, सैकड़ों से चाहने योग्य, हजारों का भरण-पोषण करनेवाले, बहुत यशदायक तथा शत्रुओं के दबानेवाले धन को प्रदान कर ।।१।।

१२३९—अम्बरीषः । सोमः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
१ २र ३ १ २र ३ १ २
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ।।२।।

पदार्थ—(वयम्) हम (ते) तेरे (अस्य) इस (राधसः) धन के (वसोः) निवास देने वाले (वसो) हे शरणदाता (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाहने योग्य (नि) निरन्तर (नेदिष्ठतमा) अत्यन्त समीपवर्त्ती (इषः) ज्ञान के (स्याम) हों (सुम्ने) सुख में (ते) तेरे (अध्रिगो) हे अचल ।।२।।

भावार्थ—हे ध्रुव तथा शरणदाता परमेश्वर ! हम तेरे इस लोक के धन, तुझ में निवास देने वाले, बहुतों से चाहने योग्य ज्ञान तथा तेरे परम आनन्द के निरन्तर समीपवर्त्ती होवें ।।२।।

१२४०—अम्बरीषः । सोम । अनुष्टुप् ।

२३ २ ३ १२ ३२३२३ १२
परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३२३ १ २३२३ १ २र ३२
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ।।३।।

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्यः) वह (स्वानाः) स्वयं चित्स्वरूप (अक्षरत्) संचालन करता है (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (अव्ये) प्रकृति के कार्य में (मदच्युतः) आनन्द का स्रोत बहाने वाला (धारा) वाणी के साथ (यः) जो (ऊर्ध्वः) सब से मुख्य (अध्वरे) यज्ञ में (भ्राजा न) दीप्ति के समान (याति) व्यापक हो रहा है (गव्ययुः) पृथिवी आदि को रचने वाला ।।३।।

भावार्थ—स्वयंचेतन, आनन्ददाता, पृथिवी आदि का कर्त्ता, सर्वश्रेष्ठ तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर प्रकृति के कार्य को संसार में संचालन करता है । वह दीप्ति के समान वेद वाणी के साथ यज्ञ में व्यापक हो रहा है ।।३।।

१२४१—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २३२ ३ २ ३२३ २ ३ १ २र
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ।।

पदार्थ—(पवस्व) गति देता है (सोम) हे जीव ! (महान्) बड़ा (समुद्रः) जिस में प्राणी सुख पाते हैं (पिता) रक्षक (देवानाम्) इन्द्रियों के (विश्वा) समस्त (अभि) में (धाम) स्थानों में ।।१।।

भावार्थ—हे जीव ! महान्, प्राणियों के सुख का आश्रय तथा शरीर का रक्षक तू इन्द्रियों के समस्त गोलकों में गति देता है ।।१।।

१२४२—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ।।

पदार्थ—(शुक्रः) शुद्धस्वरूप (पवस्व) दे (देवेभ्यः) देवों के लिए (सोम) हे परमेश्वर (दिवे) द्युलोक के लिए (पृथिव्यै) पृथिवी लोक के लिए (शं) सुख (च) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिए ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप तू विद्वान्, तथा प्रजा के लिए पृथिवी और द्युलोक आदि में सुख प्रदान कर ।।२।।

१२४३—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

३ २३ १२ ३ २ ३ १२३ १ २र ३ १ २
दिवो धर्त्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ।।३।।

पदार्थ—(दिवः) द्युलोक का (धर्त्ता) धारणकर्ता (असि) है (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (पीयूषः) अमृतरूप (सत्ये) त्रिकाल सत्य प्रकृति में (विधर्मन्) विविध धर्मवाली (वाजी) शक्तिमान् (पवस्व) व्यापक है ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप, अमृत तथा सर्वशक्तिमान् तू द्युलोक का धारण करने वाला है । तू त्रिकाल सत्य विविध धर्मोंवाली प्रकृति में व्यापक है ।।३।।

卐 अष्टमः खण्डः समाप्तः 卐

१२४४—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र
प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ।।१।।

पदार्थ—(प्रेष्ठ) अत्यन्त प्रिय (वो) तुम्हारे (अतिथिम्) अतिथि की (स्तुषे) प्रशंसा करता हूँ (मित्रमिव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रिय (अग्ने) हे विद्वन् (रथं) सूर्य के (न) समान (वेद्यम्) प्राप्त होने योग्य ।।१।।

भावार्थ—हे विद्वन् ! मैं प्रिय मित्र के समान तुम्हारे अत्यन्त प्रिय अतिथि की प्राप्त होने योग्य सूर्य के समान प्रशंसा करता हूँ ।।१।।

१२४५—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ २
कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥२॥

पदार्थ—(कविम्) कवि के (इव) समान (प्रशंस्यं) प्रशंसनीय (यं) जिसको (देवासः) विद्वान् लोग (इति) ऐसा (द्विता) दो प्रकार का [आत्मा तथा परमात्मा] (नि) संपूर्णतया (मर्त्येषु) मरणधर्मा लोगों में (आदधुः) स्वीकार करते हैं ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी लोग कवि के समान प्रशंसनीय परमात्मा और आत्मा के भेद से दो प्रकार की आत्माओं को मरणधर्माओं में स्थित स्वीकार करते हैं ॥२॥

१२४६—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (यविष्ठ) अजर (दाशुषः) उपकारी (नॄन्) मनुष्य की (पाहि) रक्षा करता है (शृणुही) सुनता है (गिरः) स्तुतियों की (रक्षा) रक्षा करता है (तोकम्) पुत्र की (उत) और (त्मना) स्वयम् ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अजर अमर तू उपकारी मनुष्यों की रक्षा करता है । उनकी स्तुतियों को सुनता है तथा संतति का स्वयं ही पालन करता है ॥३॥

१२४७—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (इन्द्र) हे परमेश्वर (नः) हमें (गधि) प्राप्त हो (प्रिय) हे भक्तों के प्यारे (सत्राजित्) हे सत्य के द्वारा जीतने वाले (अगोह्य) हे न छिपाये जाने वाले (गिरिः) मेघ के (न) समान (विश्वतः) सब तरफ से (पृथुः) विशाल (पतिः) स्वामी (दिवः) द्युलोक का ॥१॥

भावार्थ—हे भक्तों के प्यारे, सत्य द्वारा सब के विजयी यथा स्वयंप्रकाश परमेश्वर ! तू विशाल मेघ के समान द्युलोक का पति है । तू हमें प्राप्त हो ॥१॥

१२४८—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (हि) निश्चय (सत्य) हे सत्य स्वरूप (सोमपाः) संसार के पालक (उभे) दोनों (बभूथ) वश में रखता है (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (इन्द्र) हे परमेश्वर (सुन्वतः) यज्ञकर्त्ता की (वृधः) उन्नति करने वाला (पतिः) रक्षक (दिवः) सूर्य लोक का ॥२॥

भावार्थ—हे सत्यस्वरूप परमेश्वर ! संसार का रक्षक तू निश्चय से द्यु और पृथिवी लोक को अपने वश में रखता है । तू यजमान की उन्नति करने वाला तथा सूर्यलोक का पालक है ॥२॥

१२४९—नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्त्ता पुरामसि ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (शश्वतीनाम्) प्रवाहरूप अनादि (इन्द्र) हे परमेश्वर (धर्त्ता) धारणकर्त्ता (पुराम्) लोकों का (असि) है (हन्ता) नाश करने वाला (दस्योः) अनावृष्टि या दुष्कर्मकारियों की (मनोः) आयु का (वृधः) बढ़ाने वाला (पतिः) पालक (दिवः) वृष्टि का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रवाहरूप से अनादि हुए लोक लोकान्तरों का स्वामी है । तू अनावृष्टि का नाशक, आयु का वर्धक और वृष्टि की रक्षा करने वाला है ॥३॥

१२५०—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥१॥

पदार्थ—(पुराम्) लोकों का (भिन्दुः) भेदन=प्रलय करने वाला (युवा) अजर (कविः) ज्ञानी (अमितौजाः) अनन्तशक्ति वाला (अजायत) प्रलय करता है । (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) सब के (कर्मणः) कर्मका (धर्त्ता) धारण करने वाला (वज्री) दण्डधारी (पुरुष्टुतः) सब के द्वारा उपासना किया गया ।१।

भावार्थ—लोकों को छिन्न-भिन्न करनेवाला अजर, ज्ञानी, अनन्तशक्तिवाला, सब के कर्म का धारण कर्त्ता, न्यायकारी तथा सब के द्वारा उपास्य परमेश्वर समस्त जगत् का प्रलय करता है ॥१॥

१२५१—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।

२ ३ १ २र ३ १ २
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (वलस्य) मेघ के (गोमत) सूर्य की किरणों से युक्त (अपावः) खोलता है (अद्रिवः) हे मेघों के स्वामी (बिलम्) जलद्वार को (त्वां) तुझ में (देवाः) विद्वान् जन (अबिभ्युषः) भय या उपद्रव से रहित (तुज्यमानासः) शीघ्रकारी (आविषुः) प्रविष्ट होते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे मेघों के स्वामी परमेश्वर ! तू सूर्य किरणों से युक्त मेघ के जलद्वार को खोल कर वृष्टि करता है । भयरहित तथा शीघ्रगतिवाले विद्वान्जन तुझ में लीन हो जाते हैं ॥२॥

१२५२—जेता । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर की (ईशानम्) शासन करनेवाले (ओजसा) बल से (अभि) सब प्रकार से (स्तोमैः) स्तोत्रों से (अनूषत) स्तुति करो (सहस्रं) हजारों (यस्य) जिसके (रातयः) दान हैं (उत) और (वा) अथवा (सन्ति) हैं (भूयसीः) अधिक भी ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अनन्त बल से शासन करनेवाले परमेश्वर की स्तोत्रों से स्तुति करो । उसके दान सहस्र तथा उस से भी अधिक हैं ॥३॥

卐 नवमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 नवमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

दशमोऽध्यायः

१२५३—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥१॥

पदार्थ—(अक्रान्) लांघता है (समुद्रः) प्राणियों को सुख देने वाला (प्रथमे) उत्तम (विधर्मन्) आकाश में (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (प्रजाः) अन्न, बारह महीनों तथा सूर्य से उत्पन्न होनेवाले पदार्थों को (भुवनस्य) भुवन का (गोपाः) पालक (वृषा) वर्षा करनेवाला (पवित्रे) शब्द की रक्षा करनेवाले (अधि) ऊपर (सानोः) शिखर के (अव्ये) पृथिवीसम्बन्धी (बृहत्) महान् (सोमः) सूर्य (वावृधे) बढ़ता है (स्वानः) उत्पन्न हुआ (अद्रिः) अभेद्य ॥१॥

भावार्थ—प्राणियों को आनन्द देनेवाला, भुवन का पालक, अन्न, बारह मास तथा ऋतु वनस्पति आदि उत्पत्तिवाली वस्तुओं को उत्पन्न करता हुआ, वृष्टि का करनेवाला, प्रतिदिन उदय होता हुआ, अभेद्य तथा महान् सूर्य शब्द को अपने में सुरक्षित रखनेवाले उत्तम आकाश में किरणों से फैलता है और पृथिवी के शिखर पर वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५४—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २३२ ३२३१२ ३ १२ ३१२र ३१२

मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।

२ ३ २३ १२३१२३२उ ३ १२ ३१ २

मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥२॥

पदार्थ—(मत्सि) सुखमय करता है (वायुम्) वायु को (इष्टये) यज्ञ के लिए (राधसे) धन के लिए (नः) हमारे (मत्सि) सुखमय करता है (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (मत्सि) सुखमय करता है (शर्धः) बल को (मारुतं) वायु सम्बन्धी (मत्सि) सुखमय करता है (देवान्) इन्द्रियगण तथा विद्वानों को (मत्सि) सुखमय करता है (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक को (देव) हे देव (सोम) हे परमेश्वर ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! सब को पवित्र करता हुआ तू हमारे यज्ञ और धन की सिद्धि के लिए वायु, प्राण, अपान, वायुओं के बल, इन्द्रियगण, विद्वान् तथा द्यु और पृथिवी लोक को सुखमय करता है ॥२॥

१२५५—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३१ २र ३१२ ३१ २र ३२

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।

१२३२ ३१२ ३ १ २र ३२३ ३ १ २

अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥

पदार्थ—(महत्) महान् (तत्) वह (महिषः) महान् (चकार) करता है (अपां) कर्मों का (यत्) जो (गर्भः) ग्रहण करनेवाला (अवृणीत) स्वीकार करता है (देवान्) इन्द्रियों को (अदधात्) धारण करता है (इन्द्रे) मन में (पवमानः) शुद्ध (ओजः) बल को (अजनयत्) उत्पन्न करता है (ज्योतिः) प्रकाश को (सूर्ये) शरीरस्थ प्राण में (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् ॥३॥

भावार्थ—महान् कर्मों का धारण करनेवाला, शुद्ध तथा ऐश्वर्यवान् जीव महान् कार्यों को करता है । वह इन्द्रियों को ग्रहण करता है । वही मन के अन्दर बल और प्राण में जीवन शक्ति प्रदान करता है ॥३॥

१२५६—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (अमर्त्यः) अमर (पर्णवीः) पक्षी के (इव) समान (दीयते) जाता है [प्राप्त होता है] (अभि) लक्ष्य करके (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों को (आसदम) स्थिति के परम आश्रय को ॥१॥

भावार्थ—यह अमर जीव अपने गन्तव्य पथों को लक्ष्य में रख कर पक्षी की तरह सब के परम आश्रय परमेश्वर को प्राप्त होता है ॥१॥

१२५७—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र३ १२३ २ ३ १ २ २३१२ ३१२

एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो विगाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (विप्रैः) मेधावी पुरुषों द्वारा (अभिष्टुतः) उपासना किया गया (अपः) कर्मों और ज्ञानों को (देवः) परमात्मा (विगाहते) मिलाता है (दधद्) धारण करता हुआ (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) दानी के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी जनों से उपासना किया गया वह परमेश्वर दानी पुरुष के लिए विविध रत्नों को देता हुआ ज्ञान और कर्म की संगति लगाता है ॥२॥

१२५८—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १२

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (विश्वानि) सारी (वार्या) उत्तम वस्तुओं को (शूरः) सर्व शक्तिमान (यन्) प्राप्त करता हुआ (इव) सा (सत्वभिः) बलों से (पवमानः) शुद्धस्वरूप (सिषासति) बांटने की इच्छा करता है ॥३॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् तथा शुद्धस्वरूप परमेश्वर अपनी शक्तियों से सारी उत्तम वस्तुओं को प्राप्त करता हुआ भक्तों को बांटने की इच्छा करता है ॥३॥

१२५९—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३१२ ३१२ ३२

एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (रथर्यति) प्राप्त होता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (दिशस्यति) प्रदान करता है (आविष्कृणोति) प्रकट करता है (वग्वनुम्) शब्द और अर्थ को ॥४॥

भावार्थ—परमेश्वरदेव हमें प्राप्त होता है । वह देने योग्य सभी वस्तुयें प्रदान करता है । शब्द तथा अर्थ को वही प्रकट करता है ॥४॥

१२६०—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२३१ २३२ ३१२ ३१२ २३१२

एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) दिव्य (विपन्युभिः) ज्ञानी जनों से (पवमानः) शुद्ध (ऋतायुभिः) सत्य को चाहने वाले (हरिः) अज्ञान का हरण करने वाला (वाजाय) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (मृज्यते) शुद्ध किया जाता है ॥५॥

भावार्थ—अज्ञान का निवारक, शुद्ध तथा दिव्य आत्मा सत्य की खोज करने वाले ज्ञानीजनों से ज्ञान-प्राप्ति के लिए अविद्यादि मलों को दूर कर के पवित्र किया जाता है ॥५॥

१२६१—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२३२३२३२ ३१२ १२ ३ १२

एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (विपा) वेदवाणी द्वारा (कृतः) सृष्टिकर्त्ता (अति) अत्यन्त (ह्वरांसि) कुटिलताओं को (धावति) शुद्ध करता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अदाभ्यः) न दबाया जाने योग्य ॥६॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता, शुद्धस्वरूप, तथा न दबाये जाने योग्य परमात्मा वेदवाणी द्वारा समस्त कुटिलताओं को दूर करता है ॥६॥

१२६२—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३१२ ३१ २र ३१२ १२ ३१२

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥

पदार्थ—(एषः) यह (दिवं) द्युलोक को (विधावति) व्याप्त करता है (तिरः) प्राप्त होकर (रजांसि) लोकों को (धारया) वाणी द्वारा (पवमानः) शुद्धस्वरूप (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ ॥७॥

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा सबको उपदेश करता हुआ शुद्ध स्वरूप परमेश्वर प्राप्त होकर द्यु तथा अन्य सभी लोकों में व्यापक हो रहा है ॥७॥

१२६३—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३ १२ ३२उ ३१२ १२ ३ ३२

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥८॥

पदार्थ—(एषः) यह (दिवं) द्युलोक को (व्यासरत्) विस्तृत करता है (तिरः) प्राप्त हो कर (रजांसि) लोकों को (अस्तृतः) किसी से न दबाया जाने वाला (पवमानः) शुद्धस्वरूप (स्वध्वरः) सृष्टि-रचनारूप उत्तम यज्ञ का करने वाला ॥८॥

भावार्थ—किसी से न दबाया जाने योग्य, शुद्धस्वरूप, संसार यज्ञ का कर्त्ता परमेश्वर व्याप्त होकर द्यु और अन्य लोकों का विस्तार करता है ॥८॥

१२६४—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२३ २३१२ ३२३१ २ ३२ १२३१२

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरि पवित्रे अर्षति ॥९॥

पदार्थ—(एषः) यह (प्रत्नेन) प्रवाह रूप से अनादि काल से चले आये (जन्मना) जन्म से (देवः) देव (देवेभ्यः) दिव्यगुणों के लिए (सुतः) उत्पन्न किया गया (हरिः) अविद्या आदि का दूर करने वाला (पवित्रे) परम पवित्र (अर्षति) पहुँचता है ॥९॥

भावार्थ—अनादि प्रवाह से प्राप्त हुए जन्म से दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए उत्पन्न हुआ आत्मा रूपी देव अपने अविद्या आदि क्लेशों का नाश करता हुआ परमपवित्र परमेश्वर तक पहुँच जाता है ॥९॥

१२६५—शुनःशेपः । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३१२३२३२३१२ १२ ३२

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१०॥

पदार्थ—(एषः) यह (उ) ही (स्यः) वह (पुरुव्रतः) अनेकों कर्मों वाला (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (इषः) ज्ञानों को (धारया) वेदवाणी से (पवते) पवित्र करता है (सुतः) पुत्रस्वरूप ॥१०॥

भावार्थ—विविध कर्मों वाला, पुत्रस्वरूप तथा वार वार उत्पन्न होता हुआ यह जीव ज्ञानों को उत्पन्न करता हुआ अपने को वेदवाणी से पवित्र करता है ॥१०॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१२६६—असितदेवलौ । सोमः । गायत्री ।

३२३२३२ ३२३१२ ३१२ २३१२ ३२

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (धिया) बुद्धि से (याति) पहुँच जाता है (अण्व्या) सूक्ष्म (शूरः) योद्धा (रथेभिः) रथों से (आशुभिः) वेग से चलते (गच्छन्) जानता हुआ (इन्द्रस्य) जीव के (निष्कृतम्) समस्त कर्मों को ॥१॥

भावार्थ—जीव के समस्त कर्मों को जानता हुआ परमेश्वर अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसी प्रकार समस्त स्थानों पर तत्काल पहुँच जाता है जिस प्रकार कि शीघ्रगामी रथों से योद्धा अपने युद्धस्थान पर शीघ्र पहुँचता है ॥१॥

१२६७—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३२३१२ ३२३१२ २३१२३ १२
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (पुरू) बहुत (धिया) ज्ञान से (अयते) गति करता है अथवा (धियायते) कर्म की इच्छा करता है (बृहते) बड़े (देवतातये) संसार यज्ञ के लिए (यत्र) जिसमें (अमृतासः) अमर [नित्य] जीव लोग (आशत) व्याप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर महान् सृष्टि रचनारूप यज्ञ को करने के लिए अपने ज्ञान से विविध प्रकार का प्रयत्न करता है। इस संसाररूप यज्ञ में अनेकों नित्य जीव स्थिति पाते हैं ॥२॥

१२६८—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३१२ ३२३२३१२३१२ ३ २३१ २र
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥३॥

पदार्थ—(एतम्) इस (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (मर्ज्यम्) शुद्ध करने योग्य (उप) समीप (द्रोणेषु) गन्तव्य मार्गों के विषय में (आयवः) मनुष्य लोग (प्रचक्राणम्) उत्पन्न करने वाले (महीः) महान् (इषः) ज्ञानों को ॥३॥

भावार्थ—मनुष्य लोग गन्तव्य पथों के विषय में महान् ज्ञानों को उत्पन्न करनेवाले शुद्ध करने योग्य इस आत्मा को शुद्ध करते हैं ॥३॥

१२६९—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३२३१ २र ३ २ ३ १२ ३२ १२३ २ ३ १२
एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (हितः) सबका धारण कर्त्ता (वि) विशेष रूप से (नीयते) प्राप्त किया जाता है (अन्तः) अन्तःकरण में (शुन्ध्यावता) शुद्धियुक्त (पथा) मार्ग से (यदि) जब (तुञ्जन्ति) अर्पण करते हैं (भूर्णयः) ज्ञान से भरपूर हुए ॥४॥

भावार्थ—जब ज्ञान से भरपूर पुरुष अपने कर्मों को इसमें समर्पण कर देते हैं तब यह सर्वाधार परमेश्वर शुद्धियुक्त पथ से अन्तःकरण में प्राप्त किया जाता है ।४॥

१२७०—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३२३ १२ ३२३१२३१२ २३ १२३ १२
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (रुक्मिभिः) सूर्य, प्रकाश तथा सुवर्ण हैं जिनमें उनसे युक्त (ईयते) जाना जाता है [अनुमान द्वारा] (वाजी) शक्तिशाली (शुभ्रेभिः) शोभायुक्त (अंशुभिः) सृष्टि के तत्त्वावयवों द्वारा (पतिः) स्वामी (सिन्धूनाम्) समुद्रों का (भवन्) होता हुआ ॥५॥

भावार्थ—समुद्रों का स्वामी होता हुआ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सूर्य आदि से युक्त शोभायमान सृष्टि के तत्त्व अवयवों से अनुमान किया जाता है ॥५॥

१२७१—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ १२३ १२ ३ २क १२ ३ १ २र३१२
एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (शृङ्गाणि) अग्नियों को (दोधुवत्) कम्पन देता है (शिशीते) तीक्ष्ण करता है (यूथ्यः) यूथों का स्वामी (वृषा) सुख की वृष्टि करने वाला (नृम्णा) धनों को (दधानः) धारण करता हुआ (ओजसा) बल से ॥६॥

भावार्थ—समस्त पदार्थ समूहों का स्वामी तथा सुख की वर्षा करने वाला परमेश्वर बल से धनों को धारण करता हुआ अग्नियों में कंपन देता है और उन्हें तीक्ष्ण करता है ॥६॥

१२७२—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३१२र३ ३१ २र २३१२
एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥७॥

पदार्थ—(एषः) यह (वसूनि) कार्य-कारण द्रव्यों का (पिब्दनः) पीस डालने योग्य (परुषा) प्रकाश वाले (ययिवान्) पार करता हुआ (अति) अतिक्रमण करके (अव) पृथक् रूप से (शादेषु) तृण-वनस्पति आदि में (गच्छति) व्यापक हो रहा है ॥७॥

भावार्थ—विघ्नों को पीस डालने वाला परमेश्वर प्रकाशवाले सृष्टि के कार्य और कारण पदार्थों को लांघ कर पार स्थित होता हुआ तृण तथा वनस्पति आदि सभी में पृथक् होता हुआ व्यापक है ॥७॥

१२७३—असितदेवलो । सोमः । गायत्री ।

३२३२उ ३ २३१२ ३ १२ ३ २३१२
एतमुत्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥८॥

पदार्थ—(एतम्) इस (उ) पादपूरक (त्यं) उस (दश) दस (क्षिपः) इन्द्रियां (हरिम्) विषयों का हरण करनेवाले (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (यातवे) विषयों की तरफ जाने के लिए (स्वायुधम्) शोभन प्राणों को धारण करने वाले (मदिन्तमम्) अत्यन्त सुखी ॥८॥

भावार्थ—विषय के ग्रहण करने वाले, प्राणधारी तथा सुखी इस जीव को दस इन्द्रियां विषयों की तरफ जाने के लिए प्रेरित करती हैं ॥८॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१२७४—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२३ २उ ३ २उ ३१२
एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
२ ३ १२ ३१२
गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (उ) पादपूरक (स्यः) वह (वृषा) कामनाओं की वृष्टि करने वाला (रथः) जानने वाला (अव्याः) प्रकृति के (वारेभिः) आवरणों से [युक्त को] (अव्यत) व्याप्त करता है (गच्छन्) जानता हुआ (वाजं) ज्ञान को (सहस्रिणम्) सहस्रों प्रकार के ॥१॥

भावार्थ—मनोरथों की वृष्टि करने वाला तथा सर्वज्ञाता परमेश्वर सहस्रों प्रकार के ज्ञानों को जानता हुआ प्रकृति के आवरणों से युक्त जगत् को व्याप्त करता है ॥१॥

१२७५—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२३२३।१२३ १२ ३१२ २३१ ३१२
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥

पदार्थ—(एतम्) इस (त्रितस्य) ज्ञान से पूर्ण अथवा तीनों स्थानों पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ में स्थित परमेश्वर की (योषणः) मिश्रण और वियोगकारी शक्तियां (हरिम्) हरे-भरे (हिन्वन्ति) बढ़ाती हैं (अद्रिभिः) मेघ आदि से युक्त (इन्दुम्) ऐश्वर्य के साधन (इन्द्राय) जीव के (पीतये) भोग के लिए ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान के परिपूर्ण तीनों लोकों में व्याप्त परमेश्वर की संयोग और वियोगकारिणी शक्तियां हरे-भरे तथा ऐश्वर्य के साधनभूत इस संसार को जीव के लिए बढ़ाती हैं ॥२॥

१२७६—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३१ २र ३ २ ३ २उ ३१२ १२ ३ २उ ३१२
एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (मानुषीषु) मानवी (आ) भली भांति (श्येनः) आत्मा के (न) समान (विक्षु) प्रजाओं में (सीदति) व्यापक होकर स्थित है (गच्छन्) प्राप्त होता हुआ (जारः) आदित्य के (न) समान (योषितम्) सेवन करने योग्य को [उषा को] ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर जीवात्मा के समान तथा सेवनीय उषा काल को प्राप्त होते हुए आदित्य के समान समस्त मानवी प्रजा में स्थित है ॥३॥

१२७७—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३१ २र ३१ २र २उ ३२३१२
एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (मद्यः) आनन्ददाता (रसः) स्नेह रखनेवाला (अवचष्टे) देखता और उपदेश करता है (दिवः) द्यु आदि लोकों को (शिशुः) प्रशंसनीय (यः) जो (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (वारम्) वरण करने योग्य में (आविशत्) प्रविष्ट हो रहा है ॥४॥

भावार्थ—जो द्यु आदि लोकों का द्रष्टा और उपदेष्टा है तथा वरण करने योग्य वस्तु में व्यापक हो रहा है वह आनन्ददाता, भक्त से स्नेह रखनेवाला, प्रशंसनीय तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर है ॥४॥

१२७८—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

३२उ ३१२३१ २र ३२ २३१२३२ ३२
एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन्योनिमभिप्रियम् ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (स्यः) वह (पीतये) पान करने के लिये (सुतः) उत्पन्न हुआ (हरिः) अज्ञान का हरण करनेवाला (अर्षति) प्राप्त होता है (धर्णसिः)

धारण करनेवाला (क्रन्दन्) स्तुति करता हुआ (योनिम्) परमेश्वर को (अभि) भली प्रकार (प्रियम्) प्यारे ॥५॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुआ, अज्ञान का निवारक तथा सत्य गुणों का धारण करनेवाला विद्वान् पुरुष स्तुति करता हुआ आनन्द रस को पान करने के लिये प्यारे प्रभु को प्राप्त करता है ॥५॥

१२७९—*राहूगणः । सोमः । गायत्री ।*

३२ ३२३१२ ३१२ ३१२ २३१२३१२
एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥

पदार्थ—(एतम्) इस (त्यम्) उस (हरितः) अंगुलियाँ [अथवा उपलक्षण से इन्द्रियाँ] (दश) दश (मर्मृज्यन्ते) अलंकृत करती हैं (अपस्युवः) कर्म की इच्छा करनेवालीं (याभिः) जिन से (मदाय) सुख के लिए (शुम्भते) सुशोभित होता है ॥६॥

भावार्थ—इस जीव को, कर्म को सिद्ध करनेवाली दश अंगुलियां (अथवा इन्द्रियां) अलंकृत करती हैं जिनके द्वारा यह लौकिक सुख की प्राप्ति के लिए सुशोभित होता है ॥६॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१२८०—*प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२३२ ३१ २र ३१ २र३१२
एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२३१३१२
अव्यं वारं वि धावति ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (वाजी) शक्तिशाली (हितः) धारण किया जाने वाला (नृभिः) ज्ञानमार्ग के प्रदर्शकों से (विश्ववित्) सर्वज्ञ (मनसः) मनन शक्ति का (पतिः) स्वामी (अव्यं) प्रकृतिसम्बन्धी (वारम्) आवरण को (विधावति) शुद्ध पवित्र करता है ॥१॥

भावार्थ—शक्तिशाली, ज्ञानमार्ग के नेताओं से जानने योग्य सर्वज्ञ तथा मनन शक्ति का स्वामी परमेश्वर प्रकृतिसम्बन्धी आवरण को शुद्ध पवित्र करता है ॥१॥

१२८१—*प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२३१२ ३१२ ३१२३२ २३१२ ३२
एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (पवित्र) वेदमन्त्र में (अक्षरत्) प्राप्त होता है (सोमः) परमेश्वर (देवेभ्यः) क्रीडा करनेवाले जीवों के लिए (सुतः) उत्पन्न करनेवाला (विश्वा) सारे (धामानि) नाम, जन्म तथा स्थानों में (आविशन्) व्यापक होता हुआ ॥२॥

भावार्थ—संसार में क्रीडा करनेवाले जीवों के लिए समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर सारे नाम, जन्म और स्थानों में व्यापक होता हुआ वेदमन्त्र के मनन में हमें प्राप्त होता है ॥२॥

१२८२—*प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२३१२ ३२३२३१२ ३१२३१२
एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (देवः) देव (शुभायते) शुभ करता है (अधि) अधिष्ठाता रूप से (योनौ) मूल कारण प्रकृति में (अमर्त्यः) अजर अमर (वृत्रहा) अज्ञान का नाशक (देववीतमः) समस्त देवों में व्यापक ॥३॥

भावार्थ—अज्ञान का नाश करनेवाला, समस्त देवों में व्यापक, अजर तथा अमर यह परमात्मदेव मूल कारण प्रकृति में अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर सब का शुभ कल्याण करता है ॥३॥

१२८३—*प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२उ ३१२ ३१२३१२३२ ३१ २र
एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥४॥

पदार्थ—(एषः) यह (वृषा) बलवान् (कनिक्रदत्) स्तुति करता हुआ (दशभिः) दश (जामिभिः) गतिशील [इन्द्रियों] द्वारा (यतः) बंधा हुआ (अभि) भली प्रकार (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों पर (धावति) चलता है ॥४॥

भावार्थ—ज्ञान और कर्म की साधनभूत दश इन्द्रियों से बंधा हुआ यह बलवान् जीव स्तुति करता हुआ अपने गन्तव्य मार्गों पर चलता है ॥४॥

१२८४—*प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३१ २र ३१२ ३२३१२ ३१२ ३१ २र
एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अधि द्यवि) द्युलोक में (पवित्रे) पवित्र (मत्सरः) आनन्द देनेवाला (मदः) स्वयं आनन्दस्वरूप ॥५॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप, आनन्द का दाता तथा आनन्दस्वरूप परमेश्वर पवित्र द्युलोक में सूर्य को प्रकाशित करता है ॥५॥

१२८५—*प्रियमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३१ २र ३१२ ३१२ १२३१ २र
एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (सूर्येण) सूर्य से (हासते) हर्ष युक्त कर रहा है (संवसानः) आच्छादित करता हुआ (विवस्वता) प्रकाशमान (पतिः) स्वामी (वाचः) वेदवाणी का (अदाभ्यः) न दबाए जाने योग्य ॥६॥

भावार्थ—वेदवाणी का स्वामी तथा किसी से न दबाए जाने योग्य परमेश्वर प्रकाशमान सूर्य से त्रिलोकी को आच्छादित करता हुआ सबको हर्षित कर रहा है ।६।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१२८६—*नृमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२३२३१२ ३२३ १२ ३ २उ ३१२
एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥१॥

पदार्थ—(एषः) यह (कविः) मेधावी (अभिष्टुतः) स्तुति किया हुआ (पवित्रे) पवित्र आत्मा में (अधि) अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर (तोशते) संतुष्ट करता है (पुनानः) पवित्र करता हुआ (घ्नन्) नष्ट करता हुआ (अप) दूर (द्विषः) द्वेष आदि शत्रुओं को ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानी, स्तुति किया हुआ तथा पवित्र करनेवाला परमेश्वर काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करता हुआ पवित्र आत्मा में अधिष्ठाता रूप से स्थित होकर उसे संतुष्ट करता है ॥१॥

१२८७—*नृमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३१ २र ३१२ ३१ २र ३१२ ३१२
एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥२॥

पदार्थ—(एषः) यह (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (वायवे) बन्धन से छुड़ानेवाले (स्वर्जित्) स्वर्ग सुख को जीतने वाला (परि) सब प्रकार से (षिच्यते) सींचा जाता है [ज्ञान की धारा से] (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (दक्षसाधनः) बल का साधक ॥२॥

भावार्थ—स्वर्ग सुख को जीतने वाला, आत्मबल का साधक जीव बंधन से छुड़ाने वाले परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानियों द्वारा ज्ञानधारा से सींचा जाता है ॥२॥

१२८८—*नृमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२उ ३१२ ३२३१ २र३२
एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
२३१२ ३२
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३॥

पदार्थ—(एषः) यह (नृभिः) मनुष्यों से (नीयते) प्राप्त किया जाता है (दिवः) द्युलोक के (मूर्धा) मस्तक के समान श्रेष्ठ (वृषा) शक्तिशाली (सुतः) सब का उत्पन्न करने वाला (सोमः) परमेश्वर (वनेषु) उपासनाओं में (विश्ववित्) सर्वज्ञ ॥३॥

भावार्थ—द्युलोक के मस्तक के समान, शक्तिशाली, सबका उत्पन्न करने वाला तथा सर्वज्ञ परमेश्वर मनुष्यों द्वारा उपासनाओं में प्राप्त किया जाता है ॥३॥

१२८९—*नृमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२३१२ ३१२ ३२१२ ३१ २र
एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४॥

पदार्थ—(एषः)यह (गव्युः) पृथिवी, सूर्य तथा वाणी का दाता (अचिक्रदत्) उपदेश करता है (पवमानः) शुद्धस्वरूप (हिरण्ययुः) स्वर्ण का दाता (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (सत्राजित्) सर्वदा विजयी (अस्तृतः) किसी से न दबाए जाने योग्य ॥४॥

भावार्थ—पृथिवी, सूर्य तथा वेदवाणी का दाता, शुद्धस्वरूप, सुवर्ण का देने वाला, सदा विजयी किसी से न दबाया जाने वाला तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमें उपदेश करता है ॥४॥

१२९०—*नृमेधः । सोमः । गायत्री ।*

३२३क २र ३१२३२३१२ ३२उ३२३१
एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥५॥

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) सर्वशक्तिमान् (असिष्यदत्) व्यापक हो रहा है (अन्तरिक्षे) आकाश में (वृषा) सुख की वर्षा करनेवाला (हरिः) अज्ञान का हर्त्ता (पुनानः) पवित्र करता हुआ (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (इन्द्रम्) जीवात्मा को (आ) भली भांति ॥५॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, सुख की वर्षा करने वाला, अज्ञानहर्त्ता तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जीवात्मा को पवित्र करता हुआ आकाश में व्यापक हो रहा है ॥५॥

१२९१—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
३ १२ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥६॥

पदार्थ—(एषः) यह (शुष्मी) सर्वशक्तिमान् (अदाभ्यः) न मारे जाने योग्य (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षति) व्यापक हो रहा है (देवावीः) देवों की रक्षा करने वाला (अघशंसहा) पाप की प्रशंसा करने वालों का दण्डदाता ॥६॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, अहिंसनीय, देवों का रक्षक तथा पापियों को दण्ड देने वाला परमेश्वर सबको पवित्र करता हुआ व्यापक हो रहा है ॥६॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१२९२—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥१॥

पदार्थ—(सः) वह (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (पीतये) रक्षा के लिए (वृषा) मनोरथों की वर्षा करने वाला (सोमः) परमेश्वर (पवित्रे) विद्युत् में (अर्षति) गति दे रहा है (विघ्नन्) विनाश करता हुआ (रक्षांसि) विघ्नों का (देवयुः) देवों को संयुक्त करने वाला ॥१॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता मनोरथों को पूर्ण करने वाला तथा समस्त देवों को उन के गुण और क्रियाओं से युक्त करने वाला परमेश्वर हमारी रक्षा के लिए विघ्नों का निवारण करता हुआ विद्युत् में गति दे रहा है ॥१॥

१२९३—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (पवित्रे) रश्मिसमूह में (विचक्षणः) साक्षी (हरिः) तापहर्त्ता (अर्षति) गति दे रहा है (धर्णसिः) सर्वाधार (अभि) विषय में (योनिम्) जल तथा आकाश के (कनिक्रदत्) उपदेश करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—सबका साक्षी, तापहर्त्ता, तथा सर्वाधार परमेश्वर आकाश और जल के विषय में उपदेश करता हुआ किरणसमूह में गति प्रदान कर रहा है ॥२॥

१२९४—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
स वाजी रोचने दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वाजी) बलवान् (रोचनम्) प्रकाशक (दिवः) द्युलोक का (पवमानः) व्यापक (वि) विशेष रूप से (धावति) व्याप्त करता है (रक्षोहा) दुर्गुणों का नाशक (वरम्) वरणीय (अव्ययम्) प्रकृति और जीव को ॥३॥

भावार्थ—बलवान्, द्युलोक का प्रकाशक, व्यापक तथा दुर्गुणों का नाश करने वाला परमेश्वर वरण करने योग्य जीव और प्रकृति में व्यापक है ॥३॥

१२९५—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह (त्रितस्य) पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक [तीन स्थानों-में] विद्यमान वायु के (अधि सानवि) उच्च प्रदेश में (पवमानः) शुद्धस्वरूप (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (जामिभिः) जलों से (सूर्यम्) सूर्य को (सह) साथ ॥४॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर तीनों लोकों में विद्यमान वायु के उच्च प्रदेश में अन्तरिक्षस्थ जलों के साथ सूर्य को प्रकाशित करता है ॥४॥

१२९६—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २
स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥५॥

पदार्थ—(सः) वह (वृत्रहा) दुर्गुणों का दूर करनेवाला (वृषा) मनोरथों की वृष्टि करनेवाला (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (वरिवोविद्) सम्पत्ति का प्राप्त कराने वाला (अदाभ्यः) न मारे जाने योग्य (सोमः) परमेश्वर (वाजं) अन्न के (इव) समान (असरत्) व्याप्त होता है ॥५॥

भावार्थ—दुर्गुणों के निवारक, मनोरथों को पूर्ण करनेवाला, सृष्टिकर्त्ता, सम्पदाओं का दाता तथा अहिंसनीय परमेश्वर समस्त पदार्थों में उसी प्रकार व्याप्त हो रहा है जिस प्रकार खानेवाले की नस-नस में अन्न व्याप्त होता है ॥५॥

१२९७—राहूगणः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
स देवः कविनेषितो ३ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६॥

पदार्थ—(सः) वह (देवः) देव (कविना) विद्वान् के द्वारा (इषितः) प्रेरित किया हुआ (अभि) पर (द्रोणानि) गन्तव्य मार्गों (धावति) चलता है (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (इन्द्राय) परमेश्वर की (मंहयन्) पूजा करता हुआ ॥६॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् जीवात्मदेव विद्वान् के द्वारा प्रेरित किया गया परमेश्वर की भक्ति करता हुआ गन्तव्य मार्गों पर चलता है ॥६॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१२९८—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ । पवमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (पावमानीः) पवित्र करनेवाली वेदवाणियों को (अध्येति) अध्ययन करता है (ऋषिभिः) साक्षात्कार करनेवाले ऋषियों से (संभृतम्) धारण किए जानेवाले (रसम्) आनन्द का (सर्वं) सब (सः) वह (पूतम्) पवित्र हुए (अश्नाति) भोगता है (स्वदितं) खाने योग्य वस्तु को (मातरिश्वना) वायु के द्वारा ॥१॥

भावार्थ—जो पुरुष वेदवाणियों का अध्ययन करता है वह मंत्रद्रष्टाओं के द्वारा धारण किए जानेवाले आनन्द और वायु से पवित्र किये गये सब खाद्य वस्तुओं का उपभोग करता है ॥१॥

१२९९—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥२॥

पदार्थ—(पावमानीः) परमेश्वर के ज्ञानवाली (यः) जो (अध्येति) अध्ययन करता है (ऋषिभिः) मंत्रद्रष्टाओं द्वारा (संभृतम्) धारण किए जानेवाले (रसम्) साररूप (तस्मै) उसके लिए (सरस्वती) ज्ञान-विज्ञानयुक्त वाणी (दुहे) पूर्ण करती है (क्षीरम्) दुग्ध को (सर्पिः) घृत को (मधु) मधु (उदकम्) जल को ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष मंत्रद्रष्टाओं द्वारा हृदय में धारण किए जानेवाली वेदवाणियों का स्वाध्याय करता है उसके लिये ज्ञान-विज्ञान को देनेवाली वेदवाणी दुग्ध, घृत, मधु तथा जल आदि पदार्थों को पूरा करती है ॥२॥

१३००—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥३॥

पदार्थ—(पावमानीः) जीव और परमेश्वर का ज्ञान करानेवाली वेदवाणियाँ (स्वस्त्ययनीः) कल्याणकारिणी (सुदुघा) ज्ञान का उत्तम रूप से दोहन करानेवाला (हि) निश्चय ही (घृतश्चुतः) तेज को फैलानेवाली (ऋषिभिः) ज्ञानियों द्वारा (संभृतम्) धारण किया जानेवाला (रसः) सार है (ब्रह्मणेषु) वेद के ज्ञाताओं में (अमृतम्) अमरत्व मोक्षानन्द (हितम्) स्थापित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान देनेवाली वेदवाणियाँ कल्याण-कारिणी, ज्ञान का दोहन करानेवाली तथा तेज देनेवाली हैं। ये ज्ञानियों द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य सार हैं। इन के द्वारा वेद के ज्ञाताओं में अमरत्व स्थापित हो जाता है ॥३॥

१३०१—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

३ १२ ३ २ ३१ २र ३ २
पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
२ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १ २
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

पदार्थ—(पावमानीः) पवित्र वेदवाणियां (दधन्तु) धारण कराती हैं (नः) हमें (इमम्) यह (लोकम्) लोक (अथो) अथवा अनन्तर (अमुम्) पर [उस] (कामान्) मनोरथों को (समर्धयन्तु) सफल करती हैं (नः) हमारे (देवीः) दिव्यगुणयुक्त (देवैः) समस्त देवों से (समाहृताः) संयुक्त हुई ॥४॥

भावार्थ—समस्त देवों के ज्ञान से युक्त दिव्यगुणवाली वेदवाणियां हमें यह लोक और इसके अनन्तर परलोक प्राप्त कराती हैं। वे हमारे मनोरथों को सफल करती हैं ॥४॥

१३०२—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पावमान्यध्येतृस्तुतिः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥५॥

पदार्थ—(येन) जिस (देवाः) विद्वान् लोग(पवित्रेण) मंत्र से (आत्मानं) अपने को (पुनते) पवित्र करते हैं (सदा) सदा (तेन) उस (सहस्रधारेण) बहुत प्रकार के शब्द हैं जिसमें (पावमानीः) वेदवाणियां (नः) हमें (पुनन्तु) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थ—विद्वान् जन जिन वेदमंत्रों से अपने को सदा पवित्र करते हैं उन सहस्रों प्रकार से युक्त वेदमंत्रों से वेदवाणियां हमें पवित्र करें ॥५॥

१३०३—पवित्रो वा वसिष्ठो वा उभौ वा। पावमान्यध्येतृस्तुतिः। अनुष्टुप्।

३ २ ३ १२३१२ ३२
पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।

१२ ३१२ ३१२
पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥६॥

पदार्थ—(पावमानीः) पवित्र वेदवाणियां (स्वस्त्ययनीः) कल्याणकारिणी (ताभिः) उनके द्वारा (गच्छति) प्राप्त करता है (नान्दनम्) पुत्र आदि समृद्धियों को (पुण्यान्) पवित्र (भक्षान्) खाद्य सामग्री को [च] और (भक्षयति) खाता है (अमृतत्वं) मोक्ष को (च) और (गच्छति) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थ—वेदवाणियां कल्याणकारिणी हैं। उनके द्वारा मनुष्य पुत्र आदि समृद्धियों को प्राप्त करता, पवित्र खाद्यसामग्री का सेवन करता और अन्त में मोक्ष का लाभ करता है ॥६॥

卐 **सप्तमः खण्डः समाप्तः** 卐

१३०४—वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१२ ३१ २र ३१२३ २ ३२३१२३ १२३२
अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।

३ १२३१२ ३२३१ २ ३ १२ ३१२
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥१॥

पदार्थ—(अगन्म) प्राप्त होवें (महा) महान् (नमसा) नमस्कार या स्तुति से (यविष्ठम्) अजर अमर (यः) जो (दीदाय) प्रकाशित करता है (समिद्धः) प्रकाशयुक्त (स्वे) अपने (दुरोणे) गृहरूप संसार में (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रकाशवाले (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक के (अन्तः) मध्य में (उर्वी) महान् (स्वाहुतम्) अच्छी प्रकार स्तुति किये गये (विश्वतः) सब ओर से (प्रत्यञ्चम्) सर्वव्यापक ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशस्वरूप जो परमेश्वर अपने व्यापकता के स्थान संसार में समस्त प्रकाशमान पदार्थों को प्रकाशित कर रहा है वह अद्भुत प्रकाशवाला तथा महान् द्यु और पृथिवी लोक के मध्य सब ओर से व्यापक है। स्तुति किये गये उस महान् प्रभु को हम प्राप्त होवें ॥१॥

१३०५—वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

२३१ २र ३१२३२३ १ २३२३ २३१२
समह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निष्टवे दम आ जातवेदाः।

१ २ ३१२३ २३१ २३२३१ २३१२
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (मह्ना) महिमा से (विश्वा) सारे (दुरितानि) दुर्गुणों को (साह्वान्) दूर करता हुआ (अग्निः) परमेश्वर (स्तवे) स्तुति किया जाता है (दमे) उपासना गृह में (आ) भली भाँति (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में व्यापक (सः) वह (नः) हमारे (रक्षिषद्) बचावे (दुरितात्) दुर्गुण से (अवद्यात्) निन्दनीय (अस्मान्) हमें (गृणतः) स्तुति करने वाले (उत) और (नः) हमें (मघोनः) यज्ञ करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—अपनी महिमा से सारे दुर्गुणों को दबा देने वाला, तथा सर्वव्यापक परमेश्वर उपासना गृह में स्तुति से स्मरण किया जाता है। वह हम उपासक तथा यज्ञ करनेवालों को हमारे दुर्गुणों से बचाता है ॥२॥

१३०६—वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१ २र ३२ ३१ २३ १ २ ३२ ३१२
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।

१ २र ३१२ ३१२ ३२ ३ १२
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(त्वं) तू (वरुणः) वरण करने योग्य (उत) और (मित्रः) मित्र (अग्ने) हे परमेश्वर (त्वां) तेरा (वर्धन्ति) वर्णन करते हैं (मतिभिः) स्तुतियों से (वसिष्ठाः) ज्ञान में निवास करने वाले लोग (त्वे) तुझ में (वसु) धन (सुषणनानि) अच्छे प्रकार विभाजित (सन्तु) होते हैं (यूयम्) तू (पात) रक्षाकर (स्वस्तिभिः) सुखों से (सदा) सदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू वरुण और मित्र है। ज्ञानी पुरुष स्तुतियों से तेरा वर्णन करते हैं। समस्त धन तेरे आश्रय में ही अच्छी प्रकार विभाजित होते हैं। तू सुखों द्वारा हमारी सदा रक्षा कर ॥३॥

१३०७—वत्सः। इन्द्रः। गायत्री।

३२उ ३१ २र ३१२ ३१२ १२३१२
महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

पदार्थ—(महान्) महान् (इन्द्रः) परमेश्वर (यः) जो (ओजसा) बल से (पर्जन्यः) मेघ के (वृष्टिमान्) बरसने वाले (इव) समान (स्तोमैः) स्तुतियों द्वारा (वत्सस्य) स्तोता की (वावृधे) वर्णन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ—बरसने वाले मेघ के समान अपने बल से महान् परमेश्वर स्तुति करनेवाले की स्तुतियों द्वारा वर्णन किया जाता है ॥१॥

१३०८—वत्सः। इन्द्रः। गायत्री।

२ ३२ ३ १२र ३ १२३ २३१२ ३ १२ ३१२
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधा ॥२॥

पदार्थ—(कण्वाः) ज्ञानीजन (इन्द्रम्) परमेश्वर को (यत्) जब (अक्रत) बना लेते हैं [कर लेते हैं] (स्तोमैः) स्तुतियों से (यज्ञस्य) यज्ञ का (साधनम्) साधन (जामि) अतिरिक्त (ब्रुवते) कहते हैं (आयुधा) यज्ञनिमित्त जल आदि को ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानी जन जब परमेश्वर को स्तुतियों द्वारा यज्ञ का साधन बना लेते हैं तो जल आदि साधनों को अतिरिक्त समझते हैं ॥२॥

१३०९—वत्सः। इन्द्रः। गायत्री।

३२३२३ १२३ २र ३१२ १२ ३२३ १२
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥३॥

पदार्थ—(प्रजाम्) प्रजा को (ऋतस्य) सत्यस्वरूप (पिप्रतः) पूर्ण करती हुई (प्र) उत्तमरूप से (यत्) जिस कारण से (भरन्त) पोषण करती हैं (वह्नयः) अग्नियां (विप्राः) मेधावी लोग (ऋतस्य) यज्ञ के (वाहसा) वहन करने वाले मंत्र से ॥३॥

भावार्थ—यज्ञ की अग्नियां सत्यस्वरूप परमेश्वर की प्रजा को धन-धान्य से पूर्ण करती हुई पुष्ट करती हैं इसलिए मेधावी जन यज्ञ के मंत्रों से उन्हें [अग्नियों को] यज्ञ के लिए प्रचलित करते हैं ॥३॥

卐 **अष्टमः खण्डः समाप्तः** 卐

१३१०—शतं वैखानसाः। सोमः। गायत्री।

१२ ३ १२३१२३ १२ ३ १२३१२
पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत। जीरा अजिरशोचिषः ॥१॥

पदार्थ—(पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (जिघ्नतः) गतिमान करते हुए (हरेः) दुःखों के हरण करनेवाले (चन्द्राः) चन्द्र आदि सुखकारक पदार्थ (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं (जीरा) शीघ्र गति (अजिरशोचिषः) तीव्र प्रकाशवाले ॥१॥

भावार्थ—शीघ्र गतिवाले चन्द्र आदि सुखकारी पदार्थ शुद्धस्वरूप, सब को गति देनेवाले, दुःखों के हर्त्ता तथा तीव्र प्रकाशवाले परमेश्वर के निमित्त से उत्पन्न होते हैं ॥१॥

१३११—शतं वैखानसाः। सोमः। गायत्री।

३२ ३१२ ३ १ २ ३१२ १२ ३१२
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः। हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२॥

पदार्थ—(पवमानः) शुद्धस्वरूप (रथीतमः) महाबली (शुभ्रेभिः) तेजों से (शुभ्रशस्तमः) अत्यन्त प्रकाशमान (हरिश्चन्द्रः) तापहर्त्ता तथा आनन्ददाता (मरुद्गणः) वायुओं के समूहवाला ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर शुद्धस्वरूप, महाबली, तेजों से अत्यन्त प्रकाशमान, ताप का हरण करनेवाला, आनन्द का दाता तथा वायु-समूहों का स्वामी है ॥२॥

१३१२—शतं वैखानसाः। सोमः। गायत्री।

१२ ३क २र ३ १२ ३१२ १२ ३२ ३१२
पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः। दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥

पदार्थ—(पवमान) हे शुद्धस्वरूप (व्यश्नुहि) व्याप्त करता है (रश्मिभिः) प्रकाशों से (वाजसातमः) अन्न आदि के अत्यन्त दाता (दधत्) धारण करते हुए (स्तोत्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम को ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर! अन्न आदि का महान् दाता तू स्तुति वाले को उत्तम पराक्रम देता हुआ प्रकाशों से जगत् को व्याप्त करता है ॥३॥

१३१३—सप्तर्षयः। सोमः। विराड्बृहती।

२३१ २ ३ २उ ३१२३ २३ २
परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।

३ १ २र ३ २क २उ ३२३२३१२
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब ओर से (इतः) इस संसार में (सिञ्चत) सेचन करो (सुतम्) सृष्टिकर्त्ता (सोमः) परमेश्वर (यः) जो (उत्तम) उत्तम (हविः) जल को (दधन्वान्) धारण करता हुआ (यः) जो (नर्यः) मनुष्य-

मात्र का हितकारी (अप्सु) अन्तरिक्ष में (अन्तः) मध्य (आ) भली भाँति (सुषाव) उत्पन्न करता है (सोमम्) वायु को (अद्रिभिः) मेघों के साथ ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अपनी स्तुतियों से इस संसार में उस सृष्टि-कर्त्ता परमेश्वर को सींचो जोकि मनुष्यों का हितकारी है तथा उत्तम जल को धारण करता हुआ अन्तरिक्ष के मध्य में बादलों से युक्त वायु को उत्पन्न करता है ॥१॥

१३१४—सप्तर्षयः । सोमः । भुरिग् बृहती ।

३ १२ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ १२
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः
३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १२
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥

पदार्थ—(नूनम्) निश्चय ही (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अविभिः) भेड़ों से (परिस्रव) वृष्टि कर (अदब्धः) अहिंसनीय (सुरभिन्तरः) सब सुगंधियों में उत्तम सुगन्ध (सुते) उत्पन्न संसार में (चित्) पादपूरक (त्वा) तेरी (अप्सु) आकाश आदि में (मदामः) स्तुति करते हैं (अन्धसा) अन्न से (श्रीणन्त.) युक्त होते हुए (गोभिः) गौओं से (उत्तरम्) ऊपर स्थित ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पवित्र करता हुआ, न मारा जाने योग्य, तथा सब सुगन्धों की परम सुगन्ध तू इस उत्पन्न संसार में सुख की वर्षा कर। भेड़ों, गायों तथा अन्न से युक्त हुए हम लोग आकाशादि लोकों पर अधिष्ठाता रूप से स्थित तुझ प्रभु की स्तुति करते हैं ॥२॥

१३१५—सप्तर्षयः । सोमः । पिपीलिका मध्या गायत्री ।

१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
परिस्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (स्वानः) सत्योपदेष्टा (चक्षसे) साक्षात्कार के लिए (देवमादनः) विद्वानों को तृप्त करनेवाला (क्रतुः) सृष्टि यज्ञ का कर्त्ता (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (विचक्षणः) ज्ञानी ॥३॥

भावार्थ—सत्योपदेष्टा, विद्वानों की सुख से तृप्ति करनेवाला, सृष्टि रूप यज्ञ का कर्त्ता, ऐश्वर्यशाली तथा महान् ज्ञानी परमेश्वर साक्षात्कार करने के लिए सब प्रकार से जाना जाता है ॥३॥

१३१६—वसुः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
२ २उ ३ १२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥१॥

पदार्थ—(असावि) उत्पन्न होता है (सोमः) जीव (अरुषः) प्रकाशमान (वृषाः) बलवान् (हरिः) विषयों में विचरन वाला (राजा इव) राजा के समान (दस्मः) दर्शनीय (अभि) लक्ष्य करके (गाः) इन्द्रियों को (अचिक्रदत्) विविध प्रकार की गति करता है (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वारम्) आवरण को (अत्येषि) लांघ जाता है (अव्ययं) प्रकृतिमय (श्येनः) वाज पक्षी के (न) समान (योनिम्) परमेश्वर में (घृतवन्तम्) प्रकाश वाले (आसदत्) स्थित होता है ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशमान, बलवान्, विषयों में विचरने वाला तथा राजा के समान दर्शनीय जीव उत्पन्न होता है। वह इन्द्रियों की तरफ अनेक प्रकार की गति करता है। पवित्र हुआ वह प्राकृतिक आवरण को लांघ जाता है तथा वाज पक्षी के समान झट प्रकाशमय परमेश्वर में स्थित हो जाता है ॥१॥

१३१७—वसुः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
स्वसार आपो अभि गाः उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥२॥

पदार्थ—(पर्जन्यः) मेघ के समान (पिता) रक्षक (महिषस्य) आत्मा का (पर्णिनः) पत्ते के समान चंचल जीवन वाले (नाभा) मध्य में (पृथिव्याः) पृथिवी के (गिरिषु) मेघों तथा पर्वतों में (क्षयं) निवास (दधे) धारण करता है (स्वसारः) अच्छी तरह फेंके जाने की क्रिया वाला (आपः) जल (अभि) आर (गाः) सूर्य की किरणों की (उदासरन्) जाता है (सम्) सम्यक् (ग्रावभिः) मेघों के साथ (वसते) आच्छादित करते हैं (वीते) व्याप्त (अध्वरे) अन्तरिक्ष को ॥२॥

भावार्थ—मेघ के समान पत्रवत् चंचल जीवन को धारण करने वाले जीव का रक्षक परमेश्वर पृथिवी के मध्य और पर्वत तथा मेघों में निवास कर रहा है। उसकी क्रिया से फेंका गया जल सूर्य की किरणों को प्राप्त होता है तथा मेघों के साथ व्यापक अन्तरिक्ष को आच्छादित करता है ॥२॥

१३१८—वसुः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
३ १२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अप सेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ।३।

पदार्थ—(कविः) वेद काव्य का कर्त्ता (वेधस्या) बुद्धि के साथ (पर्येषि) व्याप्त हो रहा है (माहिनम्) पृथिवी को (अत्यः) वायु के (न) समान (मृष्टः) शुद्ध (अभि) सब प्रकार (वाजम्) पराक्रम को (अर्षसि) प्राप्त कराता है (अपसेधन्) दूर करता हुआ (दुरिता) दुर्गुणों को (सोम) हे परमेश्वर (नः) हमारे (मृड) सुखी कर (घृता) जलों को (वसानः) आच्छादन करता हुआ (परि) सब प्रकार (यासि) प्राप्त होता है (निर्णिजम्) शुद्ध पवित्र पुरुष को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! वेदकाव्य का कर्त्ता तू अपने ज्ञान के साथ पृथिवी में व्याप्त हो रहा है। शुद्ध वायु की भाँति तू पराक्रम प्राप्त करता है। हमारे दुर्गुणों को दूर करता हुआ तू हमें सुखी कर। जल को व्याप्त करता हुआ तू शुद्ध पवित्र व्यक्ति को प्राप्त हाता है ॥३॥

卐 नवमः खण्डः समाप्तः 卐

१३१९—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २र
आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१॥

पदार्थ—(आयन्तः) आश्रित हुए (इव) पादपूरक (सूर्यम्) लोक को कर्म में प्रेरित करने वाले (विश्वा, इत्) समस्त, ही परमेश्वर के (भक्षत) बांटने की इच्छा रखते हुए (वसूनि) धन, पशु, और भूमि को (जातः) उत्पन्न हुए (जनिमानि) उत्पन्न होने वाले (ओजसा) पुरुषार्थ से (प्रति) प्रत्येक (भागम्) भाग को (न) अनु (दीधिमः) समझें ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के दिये धन, पशु और भूमि को बांटने की इच्छा करते हुए हम आश्रित होकर प्रभु की उपासना करते हैं। उसके विभाजन से मिले हुए प्रत्येक भाग को हम पुरुषार्थ से अपना भाग समझें ॥१॥

१३२०—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥

पदार्थ—(अलर्षिरातिम्) निष्पाप तथा पर्याप्त दान वाले (वसुदाम्) धन, भूमि तथा पशुओं के दाता (उपस्तुहि) उपासना करो (भद्राः) कल्याण करने वाले (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (रातयः) दान हैं (यः) जो (अस्य) इसकी (कामं) कामनाको (विधतः) परिचर्या [पूजा—आराधना] करने वाले (न) नहीं (रोषति) नष्ट करता (मनः) मन को (दानाय) दान के लिए (चोदयन्) प्रेरित करता हुआ ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! परमेश्वर के दान कल्याणकारी हैं। वह भक्त के मन को दान देने की प्रेरणा करता हुआ उसकी कामना को पूरा करता है। तू निष्पाप और पर्याप्त दान करने वाले, पशु, भूमि तथा धन के दाता परमेश्वर की उपासना कर ॥२॥

१३२१—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

१२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
१२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥

पदार्थ—(यतः) जिससे (इन्द्र) हे राजन् (भयामहे) हम डरते हैं (ततः) उस से (नः) हमें (अभय) निर्भय (कृधि) कर (मघवन्) हे धनों के स्वामी (शग्धि) समर्थ होता है (तव) तू (तत्) वह (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (वि) विशिष्ट (द्विषः) द्वेषियों को (वि) विविध प्रकार से (मृधः) शत्रुओं को (जहि) नष्ट कर ॥१॥

भावार्थ—हे धनों के स्वामी राजन् ! हम जिससे डरते हैं उससे हमें निर्भय कर। तू हमारी रक्षा में समर्थ है। हमारे द्वेषियों और शत्रुओं को नष्ट कर ॥१॥

१३२२—भर्गः । इन्द्र। । बृहती

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (हि) निश्चय (राधसस्पते) हे धनों के स्वामिन् (राधसः) धन के (महः) महान् (क्षयस्य) निवास स्थान का (विधर्ता) विशेष रूप से धारण कर्ता (तम्) उस (त्वा) तुझे (वयम्) हम (मघवन्) हे यज्ञों के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर (गिर्वणः) हे स्तुतियों से स्तुति करने योग्य (सुतावन्तः) संसारी (हवामहे) पुकारते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे धनों तथा यज्ञों के स्वामी उपास्य परमेश्वर ! तू महान् धन और निवास स्थान ब्रह्माण्ड का धारण करने वाला है । संसारी हम लोग तुझे पुकारते हैं ॥२॥

卐 दशमः खण्डः समाप्तः 卐

१३२३—*भरद्वाजः । सोमः । गायत्री ।*

१ २   ३ २ ३ १   २र   ३ २ १ २   ३ १ २

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तु (सोम) हे परमेश्वर (धारयुः) वेदमंत्रों की चाहना करता (असि) है (मन्द्रः) आनन्ददाता (ओजिष्ठः) ओजस्वी (अध्वरे) यज्ञ में (पवस्व) पवित्र कर (मंहयद्रयिः) धन का देने वाला ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तु वेद की कामनावाला, आनन्ददाता, ओजस्वी तथा धन का देनेवाला है । हे प्रभु, तू यज्ञ में हमें पवित्र कर ॥१॥

१३२४—*भरद्वाजः । सोमः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   १ २   २ १   २र

त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तु (सुतः) सृष्टिकर्त्ता (मदिन्तमः) आनन्द दाता (दधन्वान्) धारणकर्त्ता (मत्सरिन्तमः) हर्ष का दाता (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (सत्राजित्) सदा जीतने वाला (अस्तृतः) न मारा जाने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टिकर्त्ता, आनन्ददाता, सबका धारणकर्त्ता, हर्ष का देनेवाला, ऐश्वर्यवान्, सदा विजयी तथा किसी से न मारा जानेवाला है ॥२॥

१३२५—*भरद्वाजः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १   २र ३क २र ३ १ २   ३ २ ३ २ ३ १ २

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सुष्वाणः) सृष्टि करता हुआ (अद्रिभिः) नित्य शक्तियों द्वारा (अभ्यर्ष) व्यापक होता है (कनिक्रदत्) विविध प्रकार की गतियों को करता हुआ (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) बल को (आभर) प्रदान कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर अपनी नित्य शक्तियों से जगत् को पैदा करने वाला तू विविध प्रकार की गतियों को करता हुआ व्यापक हो रहा है । तू हमें प्रकाश से युक्त बल प्रदान कर ॥३॥

१३२६—*मनुः । सोमः । उष्णिक् ।*

१२   ३ १ २ ३   २ ३   १ २ ३ १ २

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२ ३ २ ३ १ २

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (धाराभिः) वेदवाणियों से (ओजसा) तेज से (आ) भली प्रकार (कलशम्) कलाओं से युक्त को (मधुमान्) विज्ञानवाले (सोम) हे विद्वान् (नः) हमें (सदः) प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् पुरुष ! विज्ञानवान् तू दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हमें वेदवाणियों और तेज से पवित्र कर ! तू कलाओं से युक्त अपनी आत्मा को प्राप्त कर ॥१॥

१३२७—*मनुः । सोमः । उष्णिक् ।*

१ २ ३   १ २ ३ २ ३   २ ३   १ २

तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।

१   १ १ २   ३ १ २ ३ १ २

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥२॥

पदार्थ—(तव) तेरे (द्रप्सा) आनन्द गुण (उदप्रुतः) रस को बहाने वाले (इन्द्रम्) जीव को (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिए (वावृधुः) बढ़ाते हैं (त्वां) तुझे (देवासः) ज्ञानी पुरुष (अमृताय) मोक्ष प्राप्ति के लिए (कम्) सुख स्वरूप को (पपुः) पान करते हैं [प्राप्त करते हैं] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! भक्ति-रस को बहाने वाले तेरे आनन्द गुण जीव को आनन्द-प्राप्ति के लिए आगे बढ़ाते हैं । ज्ञानीजन मोक्ष सिद्धि के लिए तुझ सुख-स्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥२॥

१३२८—*मनुः । सोमः । उष्णिक् ।*

१ २   ३ १ २   ३ २

आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।

३ १ २   ३ १ २

वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (नः) हमें (सुतासः) हे संसार में उत्पन्न (इन्दवः) हे ऐश्वर्यवान् (पुनानाः) हे पवित्र हुए (धावत) प्राप्त कराओ (रयिम्) परमेश्वर का (वृष्टिद्यावः) सुख की वृष्टि और ज्ञान प्रकाश को करनेवाले (रीत्यापः) नीति और कर्म का विस्तार करनेवाले (स्वर्विदः) स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले ॥३॥

भावार्थ—हे संसार में उत्पन्न हुए, ऐश्वर्यशाली तथा पवित्र हुए ज्ञानी पुरुषो ! सुख की वृष्टि और ज्ञान का प्रकाश करनेवाले, नीति और कर्मों का विस्तार करनेवाले तथा स्वर्ग प्राप्त करानेवाले आप लोग हमें परमेश्वरी की प्राप्ति कराओ ॥३॥

१३२९—*अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।*

२ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २   ३ १ २

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

२ ३ २उ   ३ २उ ३ १ २   ३ १   २र

यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार से (त्यं) उस (हर्यतम्) कमनीय (हरिम्) अज्ञान को हटानेवाले (बभ्रुम्) शोभन (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) वरण करने योग्य गुण से (यः) जो (देवान्) परमेश्वर, जीव तथा अन्य दिव्य पदार्थों को (विश्वान्) समस्त (इत्) हि (परि) अच्छी तरह से (मदेन) आनन्द के (सह) साथ (गच्छति) जान लेता है ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् जन कमनीय, अज्ञान का हरण करनेवाले, तथा शोभायमान इस पुरुष को श्रेष्ठ गुणों से भली प्रकार पवित्र करते हैं । पवित्र हुआ वह परमेश्वर, जीव तथा अन्य समस्त देवों को आनन्दपूर्वक जान लेता है ॥१॥

१३३०—*अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।*

२उ   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।

३ १   २र ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥२॥

पदार्थ—(द्विः) दो गुणा (यं) जिसको (पञ्च) पांच (स्वयशसम्) स्वयं यशस्वी (सखायः) मित्रता रखनेवाली (अद्रिसंहतम्) अभेद्य शक्तियों से युक्त (प्रियम्) प्यारे (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (काम्यम्) चाहने योग्य (प्रस्नापयन्ते) नहलाती हैं (ऊर्मयः) [विषयों के] प्रकाशवाली ॥२॥

भावार्थ—मित्रता रखनेवाली, विषयों की प्रकाशक दश इन्द्रियां स्वयं यशस्वी अभेद्य शक्तियों से युक्त परमेश्वर के प्रिय तथा सब के चाहने योग्य जीव को संसार-सागर में स्नान कराती हैं ॥२॥

१३३१—*अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।*

१ २   ३ १ २   ३ १   २र

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

१ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राय) जीव की (सोम) हे परमेश्वर (पातवे) रक्षा करने के लिये (वृत्रघ्ने) बुराइयों को दूर करनेवाले (परि) भली प्रकार (सिच्यसे) सींचा जाता है (नरे) मनुष्य के (च) और (दक्षिणावते) यज्ञ की दक्षिणा देने वाले (वीराय) वीर (सदनासदे) यज्ञ में स्थित ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू बुराइयों को दूर करनेवाले जीव तथा दक्षिणा देनेवाले, वीर और यज्ञकर्त्ता यजमान की रक्षा के लिये हमारे भक्तिरस से सिक्त किया जाता है ॥३॥

१३३२—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा पङ्क्तिः ।*

१ २   ३ २उ ३ २   ३ २ ३ २ ३ १   २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) गतिशील हो (सोम) हे आत्मन् (महे) महान् (दक्षाय) आत्मबल के लिये (अश्वः) घोड़े के (न) समान (निक्तः) धुलकर स्वच्छ हुआ (वाजी) बलवान् (धनाय) मोक्षरूप धन के लिये ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! धुलकर स्वच्छ हुए अश्व के समान अविद्या आदि दोषों से धुलकर साफ हुआ बलवान् तू महान् आत्मबल तथा मोक्षरूप धन की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हो ॥१॥

१३३३—*अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा पङ्क्तिः ।*

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम रूप से (**ते**) वे (**सोतारः**) सामर्थ्यवाले (**रसम्**) स्नेह करनेवाले [रागी] (**मदाय**) आनन्दप्राप्ति के लिये (**पुनन्ति**) पवित्र करते हैं (**सोमम्**) आत्मा को (**महे**) महान् (**द्युम्नाय**) यश के लिये ।।२।।

भावार्थ—सामर्थ्य वाले भक्त लोग आनन्द और महान् यश की प्राप्ति के लिये संसार के पदार्थों से स्नेह करनेवाले आत्मा को पवित्र करते हैं ।।२।।

१३३४—*अग्नयो धिष्ण्या: । सोम: । द्विपदा पङ्क्तिः ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ।।३।।

पदार्थ—(**शिशुम्**) प्रसंशनीय (**जज्ञानं**) उत्पन्न हुए (**हरिम्**) बुराइयों का हरण करनेवाले (**मृजन्ति**) शुद्ध करते हैं (**पवित्रे**) पवित्र कर्म में (**सोमम्**) आत्मा को (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (**इन्दुम्**) ऐश्वर्यशाली ।।३।।

भावार्थ—विद्वान् जन दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये प्रशंसनीय संसार में उत्पन्न होनेवाले दुर्गुणों के निवारक तथा ऐश्वर्यशाली आत्मा को पवित्र कर्म में शुद्ध करते हैं ।।३।।

१३३५—*अमहीयु: । सोम: । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ।।१।।

पदार्थ—(**उप**) समीप (**उ**) पादपूरक (**सु**) उत्तम रूप से (**जातम्**) उत्पन्न हुए (**अप्तुरम्**) कर्मों को प्रेरणा देनेवाले (**गोभिः**) वेदवाणियों से (**भङ्गम्**) दुर्गुणों को नष्ट करनेवाले अथवा दुःखों के भञ्जक (**परिष्कृतम्**) सुशोभित (**इन्दुम्**) ऐश्वर्यवान् (**देवाः**) दिव्य शक्तियां और गुण (**अयासिषुः**) प्राप्त होते हैं ।।१।।

भावार्थ—उत्तमरूप से उत्पन्न हुए, शुभकर्मों को प्रेरणा देनेवाले, दुःखों के भंजक, वेदवाणियों से सुशोभित तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् को दिव्य शक्ति और गुण प्राप्त होते हैं ।।१।।

१३३६—*अमहीयुः । सोमः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १ २

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदं सनिः ।।२।।

पदार्थ— (**तम्**) उस (**इत्**) ही (**वर्धन्तु**) वर्णन करती हैं (**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियाँ (**वत्सम्**) बच्चे को (**सं**) सम्यक् (**शिश्वरीः**) माताओं के (**इव**) समान (**यः**) जो (**इन्द्रस्य**) जीव के (**हृदं सनिः**) हृदय में पृथक् स्थित है ।।२।।

भावार्थ—जिस प्रकार माता बच्चे की प्रशंसा करती है, उसी प्रकार हमारी वाणियां उस परमेश्वर की प्रशंसा करती हैं जो कि जीव के हृदय में पृथक् होता हुआ स्थित है ।।२।।

१३३७—*अमहीयु: । सोम: । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ।।३।।

पदार्थ—(**अर्ष**) प्राप्त करा (**नः**) हमारी (**सोम**) हे परमेश्वर (**शं**) सुख (**गवे**) इन्द्रियों के लिये (**धुक्षस्व**) परिपूर्ण कर (**पिप्युषीम्**) पालन-पोषण करनेवाले (**इषम्**) अन्न को (**वर्ध**) बढ़ा (**समुद्रम्**) सुख के सागर को (**उक्थ्य**) हे प्रशंसनीय ।।३।।

भावार्थ—हे प्रशंसनीय परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों को सुख प्राप्त करा । तू हमें हमारे पालन-पोषण में समर्थ अन्न से परिपूर्ण कर । हे प्रभो ! तू संसार में सुख का सागर बहा दे ।।३।।

卐 एकादशः खण्डः समाप्तः 卐

१३३८—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।१।।

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**घा**) निश्चय (**ये**) जो (**अग्निम्**) आत्मा का (**इन्धते**) प्रकाश करते हैं [साक्षात् करते हैं] (**स्तृणन्ति**) विस्तार करते हैं (**बर्हिः**) ज्ञान यज्ञ का (**आनुषक्**) निरन्तर (**येषाम्**) जिनके (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**युवा**) अजर (**सखा**) मित्र है ।।१।।

भावार्थ—जो लोग निश्चित रूप से आत्मा का साक्षात्कार करते तथा जिनका अजर अमर परमेश्वर ही मित्र है वे निरन्तर ज्ञान-यज्ञ का विस्तार करते हैं ।।१।।

१३३९—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ २ ३ १ २

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।२।।

पदार्थ—(**बृहत्**) महान् (**इत्**) ही (**इध्मः**) आत्मा (**एषाम्**) इनके (**भूरि**) बहुत (**शस्त्रम्**) स्तुति (**पृथुः**) विस्तृत (**स्वरुः**) अपना वचन (**येषाम्**) जिनके (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**युवा**) अजर अमर (**सखा**) मित्र है ।।२।।

भावार्थ—जिनका अजर अमर परमेश्वर सखा है। इनकी आत्मा महान्, स्तुति पर्याप्त और वाक् शक्ति विस्तृत होती है ।।२।।

१३४०—*त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।३।।

पदार्थ—(**अयुद्धः**) न युद्ध करनेवाला (**इत्**) भी (**युधावृतम्**) योधाओं से युक्त शत्रु को (**शूरः**) वीर (**आजति**) परास्त करता है (**सत्वभिः**) अपने बलों से (**येषाम्**) जिनका (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**युवा**) अजर अमर (**सखा**) सहायक है ।।३।।

भावार्थ—जिसका अजर अमर परमेश्वर सहायक है वह युद्ध न करनेवाला भी वीर अपने बल से योद्धाओं से युक्त शत्रु को परास्त करता है ।।३।।

१३४१—*गोतमः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।।१।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**एक इत्**) अकेला ही [विना किसी की सहायता के] (**विदयते**) देता है (**वसु**) धन को (**मर्त्ताय**) मनुष्य के लिए (**दाशुषे**) त्यागी (**ईशान**) स्वामी (**अप्रतिष्कुतः**) किसी से विरोध न किया जानेवाला (**इन्द्रः**) दाता पुरुष (**अंग**) हे लोगो ! ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! धन का स्वामी तथा किसी से न विरोध किया जानेवाला वह दानी पुरुष अकेला ही त्यागी मनुष्य को पर्याप्त धन प्रदान करता है ।।१।।

१३४२—*गोतमः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ।।२।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**चित्**) कोई भी (**त्वा**) तेरी (**बहुभ्यः आ**) बहुतों में (**सुतावान्**) संसारी पुरुष (**आविवासति**) उपासना करता है (**उग्रम्**) महान् (**तत्**) वह (**पत्यते**) देता है (**शवः**) बल (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**अंग**) हे लोगो ! ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बहुतों में जो कोई संसारी पुरुष तेरी उपासना करता है उसे तू महान् बल प्रदान करता है ।।२।।

१३४३—*गोतमः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कदा नः शुश्रुवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ।।३।।

पदार्थ—(**कदा**) कब (**मर्तम्**) मनुष्य को (**अराधसम्**) आराधना नहीं करनेवाले (**पदा**) एक पांव से (**क्षुम्पम्**) खुम्ब के [कुकुरमुत्ता] (**इव**) समान (**स्फुरत्**) नष्ट करेगा (**कदा**) कब (**नः**) हमारी (**शुश्रुवत्**) सुनेगा (**गिरः**) स्तुतियां (**इन्द्रः**) परमेश्वर [राजा] (**अंग**) हे लोगो ! ।।३।।

भावार्थ—हे राजन् ! तू उपासना न करने वाले मनुष्य को एक पैर से खुम्ब (कुकुरमुत्ते) के समान कब कुचल देगा । हे परमेश्वर, तू हमारी स्तुतियों को कब सुनेगा ।।३।।

१३४४—*मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ।।१।।

पदार्थ—(**गायन्ति**) गाते हैं (**त्वा**) तुझे (**गायत्रिणः**) भूलोकवासी मनुष्य (**अर्चन्ति**) पूजते हैं (**अर्कम्**) पूज्य (**अर्किणः**) परमेश्वर की उपासना करनेवाले (**ब्रह्माणः**) वेद के जाननेवाले (**त्वा**) तुझे (**शतक्रतो**) हे विविध कर्मों के करनेवाले (**उत्**) उत्कृष्ट (**वंशमिव**) कुल के समान (**येमिरे**) उन्नत करते हैं ।।१।।

भावार्थ—हे विविध कर्मों के करनेवाले आत्मन् ! भूलोक पर रहनेवाले मनुष्य तेरा वर्णन करते हैं । तुझ पूजनीय शक्ति का ही परमेश्वर के उपासक भी सत्कार करते हैं । वेद के जाननेवाले लोग वंश के समान तुझे उन्नत करते हैं ।।१।।

१३४५—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१३ ३ १ १ २२ ३ १ २२ ३ १ २

यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

१३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२॥

पदार्थ—(यत्) जब (सानोः) एक कर्म की सिद्धि हो जाने से (सानु) दूसरे कर्म को (आरुहः) आरम्भ करता है (भूरि) बहुत (अस्पष्ट) स्पर्श करता हुआ (कर्त्वम्) करने के लिये (तत्) तब (इन्द्रः) परमेश्वर (अर्थम्) प्रयोजन को (चेतति) भली भांति जानता है (यूथेन) सुख देनेवाले पदार्थ समूह के साथ (वृष्णिः) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (एजति) प्राप्त कराता है ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्य ! जब तू अनेक कर्मों को करता हुआ एक की सिद्धि के पश्चात् दूसरों का प्रारम्भ करता है तब सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि करनेवाला परमेश्वर तेरे प्रयोजन को जानता है और सुख देनेवाले पदार्थों के समूह के साथ उसे पूरा करता है ॥२॥

१३४६—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

१ २ ३ १ २२

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥

पदार्थ—(युंक्ष्वा) युक्त करता है (हि) निश्चय (केशिना) सूर्य और वायु को (हरी) आकर्षण और धारणवाले (वृषणा) वर्षा के निमित्त (कक्ष्यप्रा) अपनी अपनी कक्षाओं के पदार्थों को पूर्ण करनेवाले (अथा) अनन्तर (नः) हमारी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सोमपाः) उत्तम पदार्थों के रक्षक (गिराम्) वाणियों की (उपश्रुतिम्) श्रवण (चर) कर ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम पदार्थों के रक्षक परमेश्वर ! तू धारण और आकर्षण वाले, वृष्टि कर्त्ता तथा अपनी कक्षा के पदार्थों को पूरा करानेवाले सूर्य और वायु को युक्त करता है । तू हमारी स्तुति सुन ॥३॥

卐 द्वादशः खण्डः समाप्तः 卐

卐 दशमोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

एकादशोऽध्यायः

१३४७—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—(सुसमिद्धः) सम्यक् प्रकार से प्रकाशित (नः) हमें (आवह) प्राप्त करा (देवान्) दिव्य पदार्थों को (अग्ने) हे परमेश्वर (हविष्मते) यजमान के लिए (होतः) हे दाता (पावक) हे पवित्र कर्त्ता (यक्षि) उपासना करता हूँ (च) और ॥१॥

भावार्थ—हे दाता, तथा पवित्र कर्त्ता परमेश्वर प्रकाशस्वरूप ! तू यजमानों को दिव्य पदार्थ प्राप्त कराता है । हम तेरी उपासना करते हैं ॥१॥

१३४८—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥२॥

पदार्थ—(मधुमन्तम्) ज्ञान और कर्मयुक्त (तनूनपात्) शरीर आदि का रक्षक (यज्ञम्) यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे (कवे) हे ज्ञानमय (अद्या) आज (कृणुहि) कर (ऊतये) रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे ज्ञानमय परमेश्वर ! शरीर आदि का रक्षक तू कर्म और ज्ञान से युक्त विद्वानों के मध्य किये गए हमारे यज्ञ को रक्षा के लिए समर्थ कर ॥२॥

१३४९—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २२ १ २ ३ १ २

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—(नराशंसम्) मनुष्यों से स्तुति किया जानेवाला (इह) इस संसार में (प्रियम्) प्रिय [प्यारे] (अस्मिन्) इस (यज्ञे) उपासना यज्ञ में (उपह्वये) पुकारते हैं (मधुजिह्वं) विज्ञानयुक्त वेद-वाणीवाले (हविष्कृतम्) समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाले ॥३॥

भावार्थ—मैं संसार में इस अपने उपासना यज्ञ में सब मनुष्यों के उपास्य, प्रिय, विज्ञानमयी वेदवाणीवाले तथा समस्त भोग्य पदार्थों के उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर को पुकारता हूँ ॥३॥

१३५०—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥४॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (सुखतमे) अति सुखदायक (रथे) संसार रूप रथ में (देवान्) तैंतीस देवों को (ईडितः) पूजित (आवह) प्राप्त कराता (असि) है (होता) सबका ग्रहणकर्त्ता (मनुः) मननीय (हितः) हितकारक ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वपूज्य तू अत्यन्त सुखदायक संसार रथ में तैंतीस देवों को यथास्थान प्राप्त कराता है । तू सब पदार्थों का ग्रहण करनेवाला सबका हितकारक और मनन करने योग्य है ॥४॥

१३५१—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जो कुछ (अद्य) आज (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होने पर (अनागाः) निर्दोष (मित्रः) स्नेही (अर्यमा) न्यायकारी (सुवाति) उत्पन्न करता है (सविता) सकल जगत् का उत्पादक (भगः) ऐश्वर्यशाली ॥१॥

भावार्थ—सूर्य के उदय होने पर आज निर्दोष, सबका मित्र, न्यायकारी तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जो कुछ उत्पन्न करता है वह हमें सुखकर हो ॥१॥

१३५२—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

सु प्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥२॥

पदार्थ—(सुप्रावीः) उत्तम रूप से रक्षक (अस्तु) होवे (सक्षयः) [स्थान में व्यापक] स्थान से युक्त (प्र) उत्कृष्ट (नु) शीघ्र (यामन्) संसार में (सुदानवः) अच्छे गुणों के दाता लोग (ये) जो (नः) हमें (अंहः) पाप को (अतिपिप्रति) पार कराते हैं ॥२॥

भावार्थ—जो सुगुणदाता इस संसार में हमें पापों से शीघ्र बचाते हैं उनका सर्वव्यापक सर्वाधार परमेश्वर रक्षक होवे ॥२॥

१३५३—वसिष्ठः । आदित्यः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (स्वराजः) स्वयं प्रकाशस्वरूप (अदितिः) नित्य परमेश्वर (अदब्धस्य) कल्याणकारी (व्रतस्य) नियम के (ये) जो (महो) महान् (राजानः) राजा (ईशते) समर्थ होते हैं ॥३॥

भावार्थ—महान् प्रकाशमान तथा कल्याणकारी नियम के शासक आदित्य तथा नित्य परमेश्वर सामर्थ्यवाले हैं ॥३॥

१३५४—प्रगाथः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २

उत्त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्तम रूप से (त्वा) तुझे (मदन्तु) प्रसन्न करें (सोमाः) विद्वान् लोग (कृणुष्व) सम्पन्न कर (राधः) धन (अद्रिवः) आदरणीय (अव) पृथक् (ब्रह्मद्विषः) विद्वानों से द्रोह करनेवालों को (जहि) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् लोग तुझे उत्तमता से प्रसन्न करें । आदर के योग्य तू हमें धन दे । विद्वानों से द्वेष करनेवालों को दूर भगा ॥१॥

१३५५—प्रगाथः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र

पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥२॥

पदार्थ—(पदा) ज्ञान से (पणीन्) केवल व्यापारबुद्धिवाले धनी (अराधसः) शुभ कर्म में धन न देनेवाले कन्जूस को (नि) निश्चय (बाधस्व) ठीक रास्ते पर ला (महान्) सबसे बड़ा (असि) है (न हि) नहीं (त्वा) तेरा (कश्चन) कोई भी (प्रति) प्रतिनिधि [बराबरी करनेवाला] ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! दान आदि से रहित केवल धन कमानेवाले व्यापारियों को अपने ज्ञान से ठीक मार्ग पर लगा । तू सब से बड़ा है । तेरे समान कोई नहीं ॥२॥

१३५६—प्रगाथः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र २उ ३ १ २

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (ईशिषे) स्वामी होता है (सुतानाम्) उत्पन्न पदार्थों का (इन्द्र) हे परमेश्वर (त्वम्) तू (असुतानाम्) उत्पन्न नहीं होनेवाले जो प्रकृति आदि अथवा भविष्य में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का (त्वम्) तू (राजा) स्वामी (जनानाम्) प्राणिमात्र का ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू उत्पन्न होनेवाले कार्य और उत्पन्न न होनेवाले कारण जीव प्रकृति आदि का स्वामी है । तू प्राणिमात्र का राजा है ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१३५७—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (जागृविः) एकरस ज्ञान तथा प्रयत्नवाला (विप्रः) सर्वज्ञ (ऋतम्) नियमसूत्र को (मतीनाम्) बुद्धियों के (सोमः) परमेश्वर (पुनानः) पवित्र करता हुआ (असदत्) व्यापक होता है (चमूषु) द्यौ, पृथिवी आदि लोकों में (सपन्ति) पूजा करते हैं (यम्) जिसकी (मिथुनासः) नर नारी (निकामाः) अत्यन्त कामनावाले (अध्वर्यवः) याज्ञिक लोग (रथिरासः) महारथी (सुहस्ताः) कार्यकुशल [सिद्धहस्त] ॥१॥

भावार्थ—एकरस क्रियावाला, सर्वज्ञ तथा सबकी बुद्धियों के नियमसूत्र को पवित्र करनेवाला परमेश्वर द्यु, पृथिवी आदि सभी लोकों में व्यापक हो रहा है । अत्यन्त कामनावाले सब नर-नारी, याज्ञिक, महारथी तथा सिद्धहस्त लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१॥

१३५८—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र

प्रियाचिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (पुनानः) पवित्र करनेवाला (उप) समीप (सूरे) सूर्य में (दधानः) धारण या पुष्ट करता हुआ (आ) भली भांति (उभे) दोनों (अप्राः) पूर्ण करता है (रोदसी) द्यु और पृथिवीलोक को (वि) विशेष (सः) वह (आवः) विस्तार करता है (प्रिया) प्रिय (चित्) हि (यस्य) जिसकी (प्रियसासः) अत्यन्त प्रेम का पात्र है (ऊती) रक्षा (सतः) विद्यमान (धनम्) सम्पत् (कारिणे न) काम करनेवाले के समान (प्रयंसत्) प्रदान करे ॥२॥

भावार्थ—सबको पवित्र करनेवाला और सूर्य में तेज-पुंज को धारण करता हुआ परमेश्वर द्युलोक और पृथिवी में व्यापक हो रहा है । वह संसार का विशेष रूप से विस्तार करता है । सदा विद्यमान और सबको प्रिय, जिसकी रक्षा हमारा अत्यन्त कल्याण करनेवाली है, वह सेवक के समान हमें धन प्रदान करे ॥२॥

१३५९—पराशरः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वर्धिता) सबको उन्नत करनेवाला (वर्धनः) उपदेश करनेवाला (पूयमानः) जाना जाता हुआ (सोमः) परमेश्वर (मीढ्वान्) वर्षा करने वाला (अभि) सब प्रकार से (नः) हमें (ज्योतिषा) प्रकाश से (आवीत्) रक्षा करता है (यत्र) जिसके विषय में (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्णज्ञानी (पितरः) बुद्धिमान् पुरुष (पदज्ञाः) पद, वाक्य और प्रमाण के जाननेवाले (स्वर्विदः) सुख प्राप्त करनेवाले (अभि) उद्देश्य से (गाः) इन्द्रियों को (अद्रिम्) पर्वत की (इष्णन्) इच्छा करते थे ॥३॥

भावार्थ—जिसके विषय में (ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से) पद, वाक्य और प्रमाण (व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय) के जाननेवाले, सुख प्राप्त करनेवाले हमारे पूर्णज्ञानी पूर्वज इन्द्रियों को वश में करने के उद्देश्य से पर्वत आदि एकान्त स्थानों की कामना करते थे, सबको समुन्नत करनेवाला हमें बुरे भले का उपदेष्टा, वृष्टि का कर्त्ता और जाना जाने योग्य वह परमेश्वर अपने प्रकाश से हमारी रक्षा करता है ॥३॥

१३६०—प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥

पदार्थ—(मा) नहीं (चित्) ही (अन्यत्) दूसरे की (विशंसत) स्तुति करो (सखायः) हे मित्रो, (मा) नहीं (रिषण्यत) हिंसा करो (इन्द्रम्) आत्मा की (इत्) ही (स्तोत) प्रशंसा करो (वृषणम्) सुख की वर्षा करनेवाले (सचा) एकत्र होकर (सुते) उत्पन्न संसार में (मुहुः) वार-वार (उक्था) स्तोत्रों का (च) और (शंसत) गान करो ॥१॥

भावार्थ—हे मित्रो ! किसी दूसरे की उपासना तथा किसी प्राणी की हिंसा मत करो। इस संसार में इकट्ठे होकर सुख की वर्षा करनेवाले आत्मा की प्रशंसा तथा स्तोत्रों का ज्ञान करो ॥१॥

१३६१—प्रगाथः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्वेषिणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

पदार्थ—(अवक्रक्षिणम्) खींचनेवाले (वृषभम्) यथा बैल के समान (जुवम्) शीघ्रकारी (गाम् न) पृथिवी के समान (चर्षणीसहम्) मनुष्यों के भार का सहन (विद्वेषिणम्) द्वेष न करनेवाले (संवननम्) सम्यक् भजन योग्य (उभयंकरम्) दुष्टों को दण्ड और सज्जनों की रक्षा करनेवाले (मंहिष्ठम्) महान् दानी (उभयाविनम्) लोक-परलोक दोनों की रक्षा करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे मित्रो ! तुम लोग बैल के समान सूर्य आदि लोकों में खींच कर क्रिया देनेवाले, शीघ्रकारी, पृथिवी के समान मनुष्यों के भार को सहन करनेवाले, द्वेषरहित, उपासनीय, दुष्टों के दण्डदाता और सज्जनों के रक्षक इस लोक और परलोक के पालक तथा महान् दानी इन्द्र की स्तुति करो ॥२॥

१३६२—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (उ) निश्चय (त्ये) वे (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर (गिरः) स्तुतियाँ (स्तोमासः) स्तोत्ररूप (ईरते) उच्चारण करते हैं (सत्राजितः) सच्ची विजय करानेवाले (धनसा) धन प्राप्त करने के साधन (अक्षितोतयः) अक्षय रक्षावाला (वाजयन्तः) संग्राम के साधन (रथा इव) रथ के समान ॥१॥

भावार्थ—सच्ची विजय करानेवाले, धनप्राप्ति के साधन, अक्षय रक्षा से युक्त तथा संग्राम के अधिकरण रथ के समान अत्यन्त मधुर स्तोत्र रूप हमारी वाणियाँ परमेश्वर को उच्चारण करती हैं ॥१॥

१३६३—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

पदार्थ—(कण्वाः इव) मेधावी पुरुषों के समान (भृगवः) तपस्वी (सूर्या इव) सूर्य की किरणों के समान (विश्वम्) संसार को (इत्) ही (धीतम्) ध्यानमात्र से [लिप्सा से नहीं] (आशत) भोगते हैं (इन्द्रम्) परमेश्वर का (स्तोमेभिः) स्तोत्रों के द्वारा (महयन्त) पूजा करते हुए (आयवः) मनुष्य (प्रियमेधसः) उत्तम बुद्धि से प्रेम करनेवाले (अस्वरन्) नाम का उच्चारण करते हैं ॥२॥

भावार्थ—तपस्वी लोग, ज्ञानीजनों के तथा सूर्य की किरणों के समान ध्यानमात्र से लिप्सारहित होकर संसार का भोग करते हैं, बुद्धि से प्रेम रखनेवाले मनुष्य स्तोत्रों से पूजा करते हुए परमेश्वर के नाम का उच्चारण करते हैं ॥२॥

१३६४—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोमः । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (उ) निश्चय (प्रधन्व) दूर कर (वाजसातये) अन्न की प्राप्ति के लिए (परि) सब प्रकार से (वृत्राणि) बुराइयों को (सक्षणिः) सहनशील (द्विषः) शत्रुओं को (तरध्या) पार करने के लिए

(ऋणया) तीनों प्रकार के ऋणों से नैऋण्य करनेवाले (नः) हमें (ईरसे) प्रेरित करता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! तीनों ऋणों से छुड़ानेवाला तथा सहनशील तू सुन्दर अन्न की प्राप्ति के लिए बाधाओं को दूर करता है। तू हमें शत्रुओं से पार पाने के लिए प्ररणा देता है ॥१॥

१३६५—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोमः । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥२॥

पदार्थ—(अजीजनः) उत्पन्न किया है (हि) निश्चय (पवमान) हे सर्वव्यापक (सूर्यम्) सूर्य को (विधारे) धारण करनेवाले अन्तरिक्ष के ऊपर (शक्मना) शक्ति से (पयः) जल के (गोजीया) किरणों की गति के स्थान (रंहमाणः) गति देता हुआ (पुरन्ध्या) द्युलोक और पृथिवीलोक में ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! किरणों की गति के आधार द्यु और पृथिवी लोक में गति उत्पन्न करनेवाले तूने अपनी शक्ति से जल को धारण करनेवाले अन्तरिक्ष लोक के ऊपर भाग में सूर्य को उत्पन्न किया है ॥२॥

१३६६—त्र्यरुणत्रसदस्यू । सोमः । पिपीलिकामध्या अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २

अनु हि त्वा सुतं सोममदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥३॥

पदार्थ—(अनु) पश्चात् (हि) निश्चय (त्वा) तेरे (सुतम्) उत्पन्न (सोम) हे विद्वान् (मदामसि) प्रसन्न होते हैं (महे) महान् (सम्) सम्यक् (अर्यराज्ये) परमेश्वर के राज्य में (वाजान्) बलों को (अभि) उद्देश्य में रख कर (पवमान) हे पवित्र स्वभाव (प्रगाहसे) संग्रह करता है ॥३॥

भावार्थ—हे पवित्रस्वरूप विद्वान् ! महान् ईश्वर के राज्य में उत्पन्न तेरे साथ हम प्रसन्नता अनुभव करते हैं। तू बलों का संग्रह करता है ॥३॥

१३६७—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥

पदार्थ—(परि) सब प्रकार (प्रधन्व) प्राप्त कर (इन्द्राय) परमेश्वर को (सोम) हे विद्वान् पुरुष (स्वादुः) आनन्द रस का स्वाद लेनेवाला (मित्राय) सबके मित्र (पूष्णे) पालन-पोषण करनेवाले (भगाय) ऐश्वर्यशाली ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! आनन्द रस का अनुभव करनेवाला तू सबके मित्र, पालन-पोषण करनेवाले तथा ऐश्वर्यशाली परमेश्वर को प्राप्त कर ॥१॥

१३६८—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥२॥

पदार्थ—(एव) निश्चय (अमृताय) अमरत्व के लिए (महे) महान् (क्षयाय) निवास के लिए (सः) वह (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (अर्ष) प्रयत्न कर (दिव्यः) दिव्य गुणवाला (पीयूषः) अमृत ॥२॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! शुद्धस्वभाव उत्तम गुणोंवाला तथा अमर मोक्ष धाम की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न कर ॥२॥

१३६९—अग्नयो धिष्ण्याः । सोमः । द्विपदा विराट् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) आत्मा (ते) तेरे (सोम) हे परमेश्वर (सुतस्य) उत्पन्न संसार का (पेयात्) उपभोग करें (क्रत्वे) ज्ञान के लिए (दक्षाय) बल के लिए (विश्वे) सारे (च) और (देवाः) विद्वान् जन ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! ज्ञान और बल की प्राप्ति के लिए ही जीवात्मा और सारे विद्वान् तेरे संसार का उपभोग करें ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१३७०—हिरण्यस्तूपः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरास प्रसुतः साकमीरते ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

तन्तुं ततं परिसर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥१॥

पदार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (इव) समान (रश्मयः) किरणों के (द्रावयित्नवः) बर्फ द्रवीभूत करनेवाली (मत्सरासः) हर्षप्रद (प्रसुतः) उत्पन्न करनेवाले (साकम्) साथ (ईरते) गतिमान हो रहे हैं (तन्तुं) अन्तर्यामिसूत्र (ततं) व्याप्त [विस्तृत] (परि) पर (सर्गासः) रचे गए (आशवः) फैले हुए (न) नहीं (इन्द्रात् ऋते) परमेश्वर के विना (पवते) चलता है (धाम) लोक (किंचन) कोई भी ॥१॥

भावार्थ—द्रवीभूत करनेवाली सूर्य की किरणों के समान, हर्षप्रद, अन्य पदार्थों को उत्पत्ति देनेवाले, फैले हुए रचे गए संसार के सब लोक-लोकान्तर व्यापक विस्तृत ब्रह्मरूप सूत्र पर एक साथ गति कर रहे हैं। उस परमेश्वर के विना कोई भी लोक गति नहीं कर सकता ॥१॥

१३७१—हिरण्यस्तूपः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

पवमानः सन्ततिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (उ) निश्चय (मतिः) बुद्धि (पृच्यते) संयुक्त होती है (सिच्यते) सींचा जाता है (मधु) ब्रह्मज्ञान (मन्द्राजनी) वाणी की (चोदते) प्रेरणा की जाती है (अन्तरासनि) मुख में (पवमानः) पवित्र कर्त्ता (सन्ततिः) विस्तार करनेवाला (सुन्वताम्) यज्ञ करनेवालों का (मधुमान्) ज्ञानवान् (द्रप्सः) कमनीय [कामना करने के योग्य] (परि) सब प्रकार से (वारम्) वरण करने योग्य पुरुष को (अर्षति) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थ—बुद्धि का सम्बन्ध जीव के साथ होता है। ब्रह्मज्ञान जीव के हृदय में दिया जाता है। वाणी का व्यापार मुख में हुआ करता है। यज्ञ करनेवालों को बढ़ानेवाले के समान शुद्धस्वरूप, ज्ञानवान् तथा कामना करने योग्य परमेश्वर उत्तम गुणवाले ज्ञानी पुरुष को ही प्राप्त होता है ॥२॥

१३७२—हिरण्यस्तूपः । सोमः । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥

पदार्थ—(उक्षा) महान् शक्तिवाला (मिमेति) मांगता है (प्रतियन्ति) प्राप्त होती हैं (धनवः) वाणियां (देवस्य) देव [परमेश्वर] की (देवीः) दिव्य-शक्तियां (उपयन्ति) प्राप्त कराती हैं (निष्कृतम्) निस्तार को (अत्यक्रमीद्) अतिक्रमण करता है (अर्जुनम्) रूप को (वारम्) आवरण को (अव्ययम्) प्राकृतिक (अत्कं) वायु के (न) समान (निक्तं) बलवान् (परि) सब प्रकार (सोमः) जीव [आत्मा] (अव्यत) सुरक्षित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ—महान् शक्तिवाला जीव (परमेश्वर से) याचना करता है। उसको वेदवाणियां प्राप्त होती हैं तथा परमात्मदेव की दिव्य शक्तियां उसके निस्तार को प्राप्त कराती हैं। वह संसार के नाम, रूप तथा नित्यप्रकृति के आवरण को बलवान् वायु के समान पार कर सुरक्षित हो जाता है ॥३॥

१३७३—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २

दूरे दृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) अग्नि और परमेश्वर को (नरः) हे मनुष्यो (दीधितिभिः) धारणा आदि उपायों से (अरण्योः) दो अरणियों में [शरीर और आत्मा तथा ज्ञान और कर्मरूप अरणियों में] (हस्तच्युतम्) हाथ से पैदा किये जानेवाले अथवा धारण और आकर्षण को देनेवाले (जनयत) प्रकट करो (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय (दूरेदृशम्) दूर से दिखाई पड़नेवाला वा सूक्ष्मदर्शी (गृहपतिम्) घर के रक्षक वा संसार के स्वामी (अथव्युम्) अगम्य [ज्ञान द्वारा जानने के योग्य] ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग धारण और आकर्षण के सम्पादक, प्रशंसनीय सूक्ष्मदर्शी, संसार के स्वामी तथा ज्ञान-गम्य परमेश्वर को प्रशस्त, दूर तक दिखाई पड़नेवाले, घर के रक्षक, गतिशील तथा दो अरणियों में हाथ के द्वारा संघर्षण से उत्पन्न होनेवाले अग्नि के समान शरीर और आत्मा रूप अरणियों, योग आदि विधानों से प्रकट करो ॥१॥

१३७४—वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२ ३ २उ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस (अग्निम्) परमेश्वर को (अस्ते) उत्तम स्थान में (वसवः) विद्वान् भक्त (न्यृण्वन्) ध्यान से प्राप्त करते हैं (सुप्रतिचक्षम्) साक्षात् करने योग्य (अवसे) रक्षा के लिए (कुतश्चित्) किसी भी भय से (दक्षाय्यः)

पूजनीय (यः) जो (दमे) संसार गृह में (आस) है (नित्यः) अविनाशी [नित्य] ।।२।।

भावार्थ—विद्वान् भक्त किसी भी भय से रक्षा पाने के लिए साक्षात् करने योग्य उस परमेश्वर को उत्तम स्थान में ध्यान से प्राप्त करते हैं जो कि संसार में पूजनीय और अविनाशी है ।।२।।

१३७५—*वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।*

१ २ ३ १ २र ३क २र

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ।।३।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (इद्धः) प्रकाशस्वरूप (अग्ने) हे परमेश्वर (दीदिहि) प्रकाशित कर (पुरः) आगे (नः) हमें (अजस्रया) नित्य (सूर्म्या) ज्ञान प्रकाश से (यविष्ठ) हे अजर (त्वाम्) तुझे (शश्वन्तः) सनातन (उपयन्ति) प्राप्त करते हैं (वाजाः) ज्ञानीजन ।।३।।

भावार्थ—हे अजर अमर परमेश्वर ! प्रकाशस्वरूप तू अपने नित्य ज्ञान-प्रकाश से हमें प्रकाशित कर । निरन्तर अभ्यासवाले ज्ञानीजन तुझे प्राप्त करते हैं ।।३।।

१३७६—*सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यो आत्मा वा । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।।१।।

पदार्थ—(आ) भली भांति (अयम) यह (गौः) ज्ञानवान् (पृश्निः) तेज से परिपूर्ण (अक्रमीत्) लाँघकर स्थित होता है (असदत्) व्यापक हो रहा है (मातरम्) पृथिवी को (पुरः) आगे (पितरम्) सूर्य को (च) और (प्रयन्) गति देता हुआ (स्वः) सुखस्वरूप ।।१।।

भावार्थ—तेज से परिपूर्ण, सुखस्वरूप तथा ज्ञानवान् परमेश्वर प्रत्यक्ष ही पृथिवी और सूर्य को गति देता हुआ उनमें व्यापक होकर उनके परे स्थित हो रहा है ।।१।।

१३७७—*सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यात्मा वा । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ २र ३ १ २र

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ।।२।।

पदार्थ—(अन्तः) शरीर के मध्य (चरति) विचरती है (रोचना) दीप्तिः [प्रकाश] (अस्य) इसके (प्राणात्) ऊपर प्राण से (अपानती) नीचे स्थानों में प्राण को ग्रहण करती हुई (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (महिषः) महान् शक्ति-वाला (दिवम्) यश को ।।२।।

भावार्थ—नाड़ियों में प्राण और अपान का संचार करती हुई इस आत्मा की दीप्ति शरीर में विचरती है । महान् शक्तिवाला यह यश को प्रकाशित करता है ।।२।।

१३७८—*सार्पराज्ञी । सार्पराज्ञी सूर्यात्मा वा । गायत्री ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ।।३।।

पदार्थ—(त्रिंशद्धाम) तीस घड़ी [बारह घण्टे] (विराजति) विराजमान होता है (वाक्) वेदवाणी (पतंगाय) गतिशील [आत्मा के लिए] (धीयते) धारण की जाती है (प्रति) सम्मुख (वस्तोः) दिन के (अह) निश्चय (द्युभिः) सूर्य के तेजों से ।।३।।

भावार्थ—आत्मा दिन के बारह घण्टे निश्चय ही सूर्य के तेजों के साथ शरीर में विराजमान रहता है । गतिशील उस आत्मा के लिए वेद वाणियां धारण की जाती हैं ।।३।।

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

卐

द्वादशोऽध्यायः

१३७९—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

उपप्रयन्तो अध्वरं मंत्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ।।१।।

पदार्थ—(उपप्रयन्तः) अनुष्ठान करते हुए (अध्वरम्) यज्ञ का (मंत्रम्) मन्त्र को (वोचेम) बोलें (अग्नये) परमेश्वर के लिए (आरे) दूर (अस्मे) हम (च) और (शृण्वते) श्रवण करनेवाले ।।१।।

भावार्थ—यज्ञ को करते हुए हम लोग दूर और समीप की बातों को सुनने वाले परमेश्वर के लिए स्तुति मन्त्रों का उच्चारण करें ।।१।।

१३८०—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ।।२।।

पदार्थ—(यः) जो (स्नीहितीषु) परस्पर प्रेम करनेवाली (पूर्व्यः) सनातन (सञ्जग्मानासु) सुसंगत [संघटित] (कृष्टिषु) मनुष्य-प्रजाओं में (अरक्षत्) रक्षा करता है (दाशुषे) त्यागी के लिए (गयम्) धन और प्राण की ।।२।।

भावार्थ—जो सनातन परमेश्वर परस्पर स्नेह करनेवाली, तथा संघटित प्रजाओं में त्यागी पुरुष के धन और प्राण की रक्षा करता है उसकी हम स्तुति करें ।२।

१३८१—*वसिष्ठः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान्पात्वंहसः ।।३।।

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे (वेदः) धन की (अमात्यम्) मंत्री की (अग्निः) परमेश्वर (रक्षतु) रक्षा करे (शन्तमः) कल्याणदाता (उत) और (अस्मान्) हमें (पातु) बचावे (अंहसः) पाप से ।।३।।

भावार्थ—शान्ति के दाता परमेश्वर हमारे धन और जन की रक्षा करें तथा हमें पाप से बचावें ।।३।।

१३८२—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ।।४।।

पदार्थ—(उत) और (ब्रुवन्तु) स्तुति करें (जन्तवः) मनुष्य (उत्) उत्तम (अग्निः) परमेश्वर (वृत्रहा) अज्ञान नाशक (अजनि) उत्पन्न करता है (धनञ्जयः) धन का प्राप्त करनेवाला (रणे रणे) संग्रामों में ।।४।।

भावार्थ—संग्रामों में धन को प्राप्त करनेवाला, तथा अज्ञाननाशक जो परमेश्वर सबको उत्पन्न करता है, मनुष्यों को उसकी स्तुति करनी चाहिए ।।४।।

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१३८३—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ।।१।।

पदार्थ—(अग्ने) हे आत्मन् (युङ्क्ष्व) युक्त कर (हि) निश्चय रूप से (ये) जो (तव) तेरी (अश्वासः) इन्द्रियां (देव) हे देव (साधवः) सकल व्यवहार को सिद्ध करनेवाली (अरम्) पर्याप्त रूप से (वहन्ति) वहन करती हैं (आशवः) विषयों को शीघ्र ग्रहण करने वाली ।।१।।

भावार्थ—हे आत्मदेव ! सकल व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली, तथा विषयों को शीघ्र ग्रहण करनेवाली जो तेरी इन्द्रियां तेरे शरीर को पर्याप्त रूप से वहन करती हैं तू उन्हें अपने वश में कर ।।१।।

१३८४—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २र

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्सोमपीतये ।।२।।

पदार्थ—(अच्छा) अच्छी प्रकार से (नः) हमें (याहि) प्राप्त हो (आवह) प्राप्त करा (अभि) सब प्रकार से (प्रयांसि) अन्नों को (वीतये) भक्षण के लिए (आ) भली भांति (देवान्) देवों को (सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें अच्छी तरह प्राप्त हो । तू भोजन के लिए अन्न को और संसार की रक्षा के लिए देवों को प्राप्त करा ।।२।।

१३८५—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ ३ १ २

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा विभाह्यजर ।।३।।

पदार्थ—(उत्) उत्तम रूप से (अग्ने) हे परमेश्वर (भारत) भरण पोषण करने वाले (द्युमत्) दीप्तिमान (अजस्रेण) नित्य [तेज से] (दविद्युतत्) तेजस्वी (शोच) प्रकाशित हो (विभाहि) प्रकाशित कर (अजर) हे अमर ।।३।।

भावार्थ—हे अजर, अमर तथा सकल संसार के भरण-पोषण करनेवाले परमेश्वर ! तू तेजस्वी है । अपने नित्य तेजसे प्रकाशित हो और हमें प्रकाश दे ।।३।।

१३८६—*प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ।।१।।

पदार्थ—(प्र सुन्वानाय) उत्तम प्रेरणा देनेवाले (अन्धसः) अज्ञान से (मर्त्तः) मनुष्य (न) नहीं (वष्ट) सुने या माने (तत्) वह (वचः) बात को (अप) दूर (श्वानम्) कुत्ते के समान (अराधसम्) उपासना आदि न करनेवाले

को (हत) दूर करो (अमखम्) यज्ञ न करनेवाले को (न) समान (भृगवः) ज्ञानी तपस्वियों के ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अज्ञान से जो मनुष्य सदा प्रेरणा देनेवाले विद्वान् की बात को न सुने उस अधर्मी तथा कुत्ते के समान व्यक्ति को उसी प्रकार दूर करो जिस प्रकार विद्वान् तपस्वी यज्ञ आदि कर्म न करनेवाले को दूर भगाते हैं ॥१॥

१३८७—प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३१ २र ३ २उ ३ २ ३क २र
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र श्रोण्योः ।
१२ ३१ २र ३१ २र ३१२
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (जामि) सृष्टि का उत्पन्न करनेवाला (अत्के) वायु में (अव्यत) व्यापक है (भुजे) गोद में (न) यथा (पुत्रः) पुत्र के (श्रोण्योः) माता-पिता के (सरत्) जाता है (जारः) सूर्य के (न) यथा (योषणाम्) पृथिवी (वरः) वर के (न) यथा (योनिम्) परम पद को (आसीदम्) प्राप्त होता हूँ ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्ता परमेश्वर वायु में व्यापक है। जिस प्रकार पुत्र माता की गोद को, सूर्य पृथिवी को तथा वर कन्या को प्राप्त करता है उसी प्रकार मैं परमपद [मोक्ष धाम] को प्राप्त करता हूँ ॥२॥

१३८८—प्रजापतिः । सोमः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ २
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (वीरः) बलशाली (दक्षसाधनः) बल का साधन (वि) विशेष रूप से (यः) जो (तस्तम्भ) थाम रखता है (रोदसी) द्यु और पृथ्वी लोक को (हरिः) अज्ञान-नाशक (पवित्रे) अग्नि, वायु आदि में (अव्यत) व्यापक हो रहा है (वेधाः न) विद्वान् के समान (योनिम्) निमित्तकारण को (आसदम्) प्राप्त करता हूँ ॥३॥

भावार्थ—बलशाली, बल का साधन तथा अज्ञान-नाशक जो परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक को थामे हुए है वह अग्नि और वायु आदि में भी व्यापक हो रहा है। मैं उस निमित्त कारण प्रभु को ज्ञानी के समान प्राप्त करता हूँ ॥३॥

१३८९—सोभरिः । इन्द्रः । ककुप् ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥१॥

पदार्थ—(अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नेता के बिना [स्वयं नेता है] (त्वम्) तू (अनापिः) बिना भाई-बन्धु के (इन्द्र) हे परमेश्वर (जनुषा) उत्पन्न जगत् के प्रारम्भ से (सनात्) सनातन (असि) है (युधा इत्) हमारे उद्योग से (आपित्वम्) बन्धुता (इच्छसे) चाहता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सृष्टि के आदि से ही शत्रुरहित, स्वयं नेता बन्धुबांधव से रहित तथा सनातन है। तू हमारे उद्योग से हमारी मित्रता स्वीकार करता है ॥१॥

१३९०—सोभरिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥२॥

पदार्थ—(नकिः) कभी नहीं (रेवन्तम्) केवल धनवान् या धन में मस्त को (सख्याय) मित्रता के लिए (विन्दसे) प्राप्त करता है (पीयन्ति) हानि कर सकते हैं (ते) तेरी (सुराश्वः) मद्य पीनेवाले (यत्) जब (आकृणोषि) अपनाता है (नदनुं) स्तुति करनेवाले भक्त को (समूहसि) भली भांति संपन्न करता है (आत् इत) तब (पिता इव) पिता के समान (हूयसे) कहा जाता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू धन में ही मस्त को अपना मित्र नहीं बनाता। शराबी लोग तुझे कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। जब तू स्तुति करनेवाले को अपनाता तथा भलीभांति ज्ञान-सम्पन्न करता है तब तू मित्र के समान कहा जाता है ॥२॥

१३९१—मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥१॥

पदार्थ—(आ) पर्यन्त (त्वा) तुझे (सहस्रं) सहस्रों [स्थानों में] (आशतं) सैकड़ों (युक्ता) जुड़ी हुई (रथे) शरीररूप रथ में (हिरण्यये) ज्योतिर्मय (ब्रह्मयुजः) प्राणों से युक्त (हरयः) विषयों की तरफ ले जाने वाली इन्द्रियाँ (इन्द्र) हे जीव (केशिनः) प्रकाशयुक्त (वहन्तु) प्राप्त कराती हैं (सोमपीतये) संसार के भोग के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! ज्योतिर्मय शरीररूपी रथ में जुड़ी हुई, प्राणों से युक्त तथा प्रकाशमान इन्द्रियां संसार का उपभोग करने के लिए तुझे सैकड़ों अथवा सहस्रों स्थानों को प्राप्त कराती हैं ॥१॥

१३९२—मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली-भांति (त्वा) तुझे (रथे) रमणीय संसार में (हिरण्यये) ज्योतिर्मय (हरी) सूर्य और चन्द्र (मयूरशेप्या) मोर की पूँछ के समान चमकने वाले (शितिपृष्ठा) कृष्णवर्णपीठवाले (वहताम्) जनाते हैं (मध्वः) विज्ञान के ज्ञाता (अन्धसः) अज्ञान से (विवक्षणस्य) कहने योग्य (पीतये) रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! प्रकाशमान इस संसार में मोर की पूँछ के समान चमकनेवाले तथा कृष्ण वर्ण के पीठ वाले सूर्य और चन्द्र कहने योग्य विज्ञान की अज्ञान से रक्षा करने लिए तेरा ज्ञान कराते हैं ॥२॥

१३९३—मेधातिथिमेध्यातिथी । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ २क १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥

पदार्थ—(पिब) रक्षा करता है (तु) पादपूरक (अस्य) इस (गिर्वणः) हे स्तुति-योग्य ! (सुतस्य) उत्पन्न संसार की (पूर्वपा इव) वायु के समान (परिष्कृतस्य) सुसज्जित (रसिनः) अन्न-जल से परिपूर्ण (इयम्) यह (आसुतिः) उत्पत्ति [जन्म] (चारुः) शोभन (मदाय) आनन्द-प्राप्ति के लिए (पत्यते) समर्थ होती है ॥३॥

भावार्थ—हे भजन करने के योग्य परमेश्वर ! तू वायु के समान सुसज्जित तथा अन्न-जल से पूर्ण इस संसार की रक्षा करता है। इसकी यह शोभन उत्पत्ति आनन्द प्राप्ति के लिए समर्थ है अथवा यह हमारा उत्तम जन्म परमानन्द प्राप्ति में समर्थ है ॥३॥

१३९४—ऋजिश्वा । सोमः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥१॥

पदार्थ—(आसोत) ऐश्वर्ययुक्त करो (परिषिञ्चत) ज्ञान से परिपूर्ण करो (अश्वं न) घोड़े के समान (स्तोमम्) प्रशंसनीय (अप्तुरम्) प्राणों का प्रेरणा करनेवाले (रजस्तुरम्) प्रकाश का प्रेरक (वनप्रक्षम्) इन्द्रियों का संचालक (उदप्रुतम्) कर्मानुसार जल में भी जलीय जन्तुओं के रूप में जाने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग अश्व के समान वेगवाले, प्रशंसनीय प्राण और प्रकाश के प्रेरक, इन्द्रियों के संचालक तथा कर्मानुसार जल में भी जाने वाले आत्मा को ऐश्वर्ययुक्त और ज्ञान से परिपूर्ण करो ॥१॥

१३९५—ऊर्ध्वसद्मा । सोमः । सतोबृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ १ २
सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥२॥

पदार्थ—(सहस्रधारम्) अनेक प्रकार की वाणियोंवाले (वृषभम्) सकल मनोरथों को पूरा करनेवाले (पयोदुहम्) ज्ञान का दोहन करनेवाले (प्रियम्) प्रिय (देवाय) दिव्य [देव] (जन्मने) जन्म के लिए (ऋतेन) सत्य नियम से (यः) जो (ऋतजातः) सत्य नियम के उत्पादक (विवावृधे) बढ़ाता है (राजा) प्रकाशस्वरूप (देवः) देव (ऋतम्) ज्ञान को (बृहत्) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सत्य नियम का उत्पादक, प्रकाशस्वरूप जो परमात्मदेव सत्य नियम से महान्ज्ञान को बढ़ाता है उस विविध वेद की वाणियोंवाले, मनोरथ के सफल करनेवाले, ज्ञान के दाता तथा परमप्रिय परमेश्वर को देव जन्म की प्राप्ति के लिए भजो ॥२॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१३९६—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) आत्मा (वृत्राणि) अज्ञान के आवरण को (जंघनत्) नाश करता है (द्रविणस्युः) परमात्मबल की इच्छा करने वाला (विपन्यया) स्तुति द्वारा (समिद्धः) तेजस्वी [ज्ञान से प्रकाशमान] (शुक्रः) शुद्ध (आहुतः) भली भांति ग्रहण किया हुआ ॥१॥

भावार्थ—परमात्मबल की इच्छा करनेवाला, ज्ञान से प्रकाशमान, शुद्ध तथा भली भांति ग्रहण किया गया आत्मा स्तुति द्वारा अज्ञान के आवरण को दूर करता है ॥१॥

१३९७—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३२ ३१ २ ३२ ३१२ १२३२३ २३ २

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥२॥

पदार्थ—(गर्भे) गर्भ में (मातुः) पृथिवी के (पितुः) पिता का (पिता) पिता (विदिद्युतानः) प्रकाशमान (अक्षरे) अविनाशी प्रकृति और जीव में (सीदन्) व्यापक होता हुआ (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) स्थान में ॥२॥

भावार्थ—पिता का भी पिता परमेश्वर पृथ्वी के गर्भ, प्रकृति तथा जीव में व्यापक होता हुआ सत्य के स्थान में स्थित है ॥२॥

१३९८—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१२ ३२३१२३१२ ३ १२ २३ २३१२३२

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥

पदार्थ—(ब्रह्म) अन्न और जल (प्रजावत्) पुत्र आदि से युक्त (आभर) प्रदान कर (जातवेदः) हे सर्वव्यापक (विचर्षणे) हे सबके द्रष्टा (अग्ने) हे परमेश्वर (यत्) जो (दीदयत्) प्रकाशित होता है (दिवि) सूर्य के प्रकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक तथा सर्वसाक्षी परमेश्वर! तू हमें पुत्र आदि से युक्त वह अन्न जल प्रदान कर जो सूर्य के प्रकाश में होनेवाला है ॥३॥

१३९९—वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३१२३१२ ३२३२ ३१२ ३१२

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

३ २ ३ २३१२३१२ ३२३१२ ३२ ३ १२

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥१॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर की (प्रेषा) प्रेरणा से (हेमना) जल आदि के द्वारा (पूयमानः) बाहरी पवित्रता करता हुआ (देवः) देव (देवेभिः) इन्द्रियों के साथ (समपृक्त) सम्पर्क कराता है (रसम्) रस आदि का (सुतः) उत्पन्न (पवित्रम्) परम पावन पद का (पर्येति) प्राप्त करता है (रेभन्) स्तुति करता हुआ (मिता) निर्मित (इव) समान (सद्म) गृह (पशुमन्ति) पशुओं से युक्त (होता) यजमान ॥१॥

भावार्थ—संसार में उत्पन्न हुआ जीव इन्द्रियों से रस आदि का अनुभव करता है। परमेश्वर की प्रेरणा से जल के द्वारा बाह्य शुद्धि करता हुआ वह स्तुति के द्वारा पशुओं से युक्त गृह को यजमान के समान परम पावन पद को प्राप्त करता है ॥१॥

१४००—वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ २क १ २ ३२ ३ २३१२ ३१२

भद्रा वस्त्रा समन्या३वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १२

आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥

पदार्थ—(भद्रा) कल्याणकारक (वस्त्रा) तेजों को (समन्या) शान्तिदायक (वसानः) धारण करता हुआ (महान्) महान् (कविः) मेधावी (निवचनानि) वेदवचनों का (शंसन्) उपदेश करता हुआ (आवच्यस्व) व्यापक हो रहा है (चम्वोः) द्युलोक और पृथिवी में (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा (जागृविः) सर्वदा सावधान (देववीतौ) जीव के ज्ञान में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! कल्याणकारक, शान्तिदायक तेजों को धारण करता हुआ, महान्, मेधावी, सर्वद्रष्टा, सदा सावधान तथा पवित्रकर्त्ता तू जीव के ज्ञान में वेदवचनों का उपदेश करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक में व्यापक हो रहा है ॥२॥

१४०१—वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२ ३ २३ १२ ३१२ ३२३१२ ३ २

समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।

३१ २३१२ ३१२ ३१२ ३२ ३ १२

अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् प्रकार (उ) ही (प्रियः) प्रिय (मृज्यते) पवित्र होता है (सानो) शिखर पर (अव्ये) प्रकृतिमय (यशस्तरः) अति यशस्वी (यशसां) यशवालों में (क्षैतः) पृथिवी पर उत्पन्न (अस्मे) हमारे लिये (अभिस्वर) उपदेश कर (धन्वा) परमेश्वर के विषय में (पूयमानः) पवित्र हुआ (यूयम्) तू (पात) रक्षा कर (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (सदा) सदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वन्! यशस्वियों में अतियशस्वी, प्रिय तथा पृथिवी पर उत्पन्न हुआ तू प्रकृति के शिखर पर हमारे लिये पवित्र होता है और पवित्र हुआ तू हमें परमेश्वर का ज्ञान दे तथा कल्याण के साथ हमारी रक्षा करा ॥३॥

१४०२—तिरश्चिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२३ २३ १२ ३२३२३१२

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।

३२३१२३ १२ ३२३१२

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥१॥

पदार्थ—(एत) आओ (उ) हि (इन्द्रम्) आत्मा का (स्तवाम) गुणगान करें (शुद्धं) शुद्ध (शुद्धेन) पवित्र (साम्ना) साम से (शुद्धैः) पवित्र (उक्थैः) स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) निर्दोष (शुद्धैः) पवित्रकारक गुणों से (आशीर्वान्) पूर्ण कामनाओंवाला (ममत्तु) प्रसन्न करे ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! आओ, पवित्र साम और स्तोत्रों से निर्दोष आत्मा का गुणगान करें। पूर्ण कामनाओं वाला वह अपने पवित्र गुणों से हमें प्रसन्न करे ॥१॥

१४०३—तिरश्चिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१२३२ ३ १ २ ३२३१ २३१२

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (नः) हमें (आगहि) प्राप्त हो (शुद्धः) पतितपावन (शुद्धाभिः) पवित्र (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शुद्धः) पापरहित (रयिम्) धन (निधारय) धारण करा (शुद्धः) निर्लेप (ममद्धि) प्रसन्न हो (सोम्य) हे शान्तस्वभाव ॥२॥

भावार्थ—हे शान्तस्वभाव परमेश्वर! तू शुद्ध, पतितपावन, पापरहित तथा निर्लेप है। हे भगवन्! हमें प्राप्त हो और पवित्र रक्षाओं से हमारी रक्षा कर। हे प्रभो! प्रसन्न हो और धन प्रदान कर ॥२॥

१४०४—तिरश्चिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३१ २र ३१२

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (शुद्धः) शुद्ध (हि) ही (नः) हमें (रयिम्) धन (शुद्धः) पतितपावन (रत्नानि) रत्नों को (दाशुषे) यजमान के लिये (शुद्धः) पापरहित (वृत्राणि) बुराइयों का (जिघ्नसे) नाश करता है (शुद्धः) परमपवित्र (वाजम्) अन्न बल को (सिषाससि) देता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! शुद्ध तू हमें धन प्रदान कर। पतितपावन तू यजमान को रत्न आदि दे। पापरहित तू पापों का नाश कर। परम पवित्र तू अन्न और बल दे ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४०५—सुतंभरः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३२३१२३ १२ ३ १२ ३ १२

अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) परमेश्वर के (स्तोमम्) स्तोत्र को (मनामहे) उच्चारण करते हैं (सिध्रम्) पुरुषार्थसाधक (अद्य) आज (दिविस्पृशः) आकाश में व्यापक (देवस्य) देव के (द्रविणस्यवः) धन की कामना करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—धन की कामना करनेवाले हम लोग आज आकाश में व्यापक परमात्मदेव के पुरुषार्थसाधक स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ॥१॥

१४०६—सुतंभरः । अग्निः । गायत्री ।

३ १२ ३ २३२ ३१ २र३ १२३२३१२

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (जुषत) स्वीकार करे (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियों को (होता) संसार का ग्रहण करनेवाला (यः) जो (मानुषेषु) मनुष्यों में (आ) भली प्रकार (सः) वह (यक्षत्) देता है (दैव्यम्) श्रेष्ठ (जनम्) पुरुष को ॥२॥

भावार्थ—संसार का ग्रहण करनेवाला जो परमेश्वर मनुष्यों में विराजमान है वह हमारी स्तुति सुने और हमें श्रेष्ठ जन देवे ॥२॥

१४०७—सुतंभरः । अग्निः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३ २ ३ २ ३१२ १२३१२र

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर (सप्रथाः) सबसे महान् (असि) है (जुष्टः) सबका प्रेमपात्र (होता) सृष्टिरूप यज्ञ का कर्त्ता (वरेण्यः) श्रेष्ठ (त्वया) तेरे द्वारा (यज्ञं) यज्ञ का (वितन्वते) विस्तार करते हैं ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सब के प्रेम का पात्र, सृष्टिकर्त्ता, श्रेष्ठ तथा अत्यन्त महान् है । तेरे द्वारा ही विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं ।।३।।

१४०८—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ।।१।।

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (त्रिपृष्ठम्) तीन जानने के योग्य [जाग्रत, स्वप्न तथा सुपुप्ति] अवस्थाओंवाले, (वृषणम्) बलवान् (वयोधाम्) आयु तथा सौंदर्य आदि अनेक अवस्थाओं को धारण करनेवाले (अङ्गोषिणम्) शरीर के (अवावशन्त) वर्णन करती हैं (वाणीः) वेदवाणियाँ (वना) प्रकाशों को (वसानः) धारण करनेवाला (वरुणः) अग्नि के (न) समान (सिन्धुः) ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा मोक्षवाला (वि) विशेष (रत्नधा) रत्नों को धारण करनेवाला (दयते) रक्षा करता है (वार्याणि) उत्तम गुणोंवाला ।।१।।

भावार्थ—वेदवाणियां जानने योग्य जाग्रत, स्वप्न तथा सुपुप्ति रूप तीन अवस्थाओं वाले, बलवान्, कुमार, यौवन, वृद्धावस्था और आयु को धारण करनेवाले शरीर के अंग-अंग में विद्यमान जीव का वर्णन करती हैं । तेज को धारण करनेवाले, सुवर्ण आदि रत्नों के दाता अग्नि के समान ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा मोक्षादि धर्मवाला वह जीव उत्तम गुणों की रक्षा करता है ।।१।।

१४०९—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ।।२।।

पदार्थ—(शूरग्रामः) वीरों के समूहवाला, (सर्ववीरः) बहुत वीरोंवाले (सहावान्) सहनशील (जेता) जीतनेवाला (पवस्व) प्राप्त कर (सनिता) दाता (धनानि) धनों के (तिग्मायुधः) तेज शस्त्रोंवाला (क्षिप्रधन्वा) वेगवान् धनुष को धारण करनेवाला (समत्सु) संग्रामों में (असाढः) सहन न किया जानेवाला (साह्वान्) तिरस्कार करनेवाले (पृतनासु) सेनाओं में (शत्रून्) शत्रुओं को ।२।

भावार्थ—हे सेनापति ! शूरों के समूह से युक्त, बहुत वीरों वाला, सहनशील विजयी, धनों का दाता तेज शस्त्रधारी, वेगवान् धनुष से युक्त संग्रामों में न सहा जाने वाला तथा सेनाओं के मध्य में शत्रुओं को दबाता हुआ तू परमेश्वर को प्राप्त कर ।।२।।

१४१०—*वसिष्ठः । सोमः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
३ १ २र ३ २ ३ २क १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अपः सिषासन्नुषसः स्वऽ३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् । ३।।

पदार्थ—(उरुगव्यूतिः) महान् वेदवाणियों के समूहवाला (अभयानि) अभयों को (कृण्वन्) करता हुआ (समीचीने) सुख से सुसंगत (आपवस्व) पवित्र कर (पुरन्धी) द्यु और पृथिवीलोक को (अपः) जलों को (सिषासन्) विभाजन करता हुआ (उषसः) उषा का (स्वः) सूर्य का (गोः) किरणों का (संचिक्रदः) उपदेश करता है (महः) महान् (अस्मभ्यं) हमें (वाजान्) ज्ञानों का ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विस्तृत वेदवाणियों का आधार तू निर्भयता देता हुआ सुख से सुसंगत द्यु और पृथिवी लोक को पवित्र कर । हे प्रभो ! जल, प्रभात, सूर्य तथा किरणों का विभाग करता हुआ तू हमें महान् ज्ञानों का उपदेश कर ।।३।।

१४११—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।१।

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे राजन् (यशाः) यशस्वी (असि) है (ऋजीषी) सरल नीतिवाला (शवसस्पतिः) बल का स्वामी (त्वं) तू (वृत्राणि) विघ्नों का (हंसि) नष्ट करता है (अप्रतीनि) कठिनता से प्रतीकारयोग्य (एक इत्) अकेला ही (पुरु) बहुत (अनुत्तः) स्वतन्त्र (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों का धारण करनेवाला ।।१।।

भावार्थ—हे राजन् ! तू यशस्वी, सीधी नीतिवाला, बल का स्वामी और मनुष्यों का धारण कर्त्ता है । तू स्वतन्त्र अकेला ही अनेकों महान् विघ्नों का नाश करता है ।।१।।

१४१२—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् ।।

पदार्थ—(तम्) उस (उ) ही (त्वा) तुझे (नूनम्) निश्चय (असुर) हे प्राणदाता (प्रचेतसम्) सर्वज्ञ (राधः) धन को (भागम् इव) दाय-भाग के समान (ईमहे) मांगते हैं (मही) महान् (इव) समान (कृत्तिः) यश के (शरणा) शरण (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्र) उत्तम रूप से (ते) तेरा (सुम्ना) आनन्द (न) हमें (अश्नुवन्) प्राप्त हो ।।२।।

भावार्थ—हे प्राणदाता परमेश्वर ! हम तुझ सर्वज्ञ से दाय भाग के समान धन की याचना करते हैं । तेरी महान् शरण आकाश में व्यापक यश के समान है तेरे सुख हमें प्राप्त हों ।।२।।

१४१३—*सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।।१।।

पदार्थ—(यजिष्ठम्) यज्ञ करनेवाले (त्वा) तुझे (ववृमहे) वरण करते हैं (देवम्) देव (देवत्रा) इन्द्रियों में (होतारम्) दान करनेवाले (अमर्त्यम्) अविनाशी [अमर] (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञ के (सुक्रतुम्) उत्तम कर्म करनेवाले ।। १ ।।

भावार्थ—हे जीव ! विविध यज्ञों के कर्त्ता, इन्द्रियों के परमदेव दानी अविनाशी तथा इस संसाररूप यज्ञ में उत्तम कर्मों का विस्तार करनेवाले तेरा हम वरण करते हैं ।।१।।

१४१४—*सौभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ।।२।।

पदार्थ—(अपां) जल तथा अन्तरिक्ष आदि का (नपातम्) धारण करने वाले (सुभगम्) ऐश्वर्यशाली (सुदीदितिम्) प्रकाशस्वरूप (अग्निम्) परमेश्वर की (श्रेष्ठशोचिषम्) उत्तम तेजवाले (सः) वह (नः) हमारे (मित्रस्य) प्राण के लिये (वरुणस्य) अपान के लिये (अपां) जीवों के लिये (आ) भली भाँति (सुम्नं) सुख को (यक्षते) देता है (दिवि) स्वर्ग में [होनेवाले सुख को] ।।२।।

भावार्थ—जल तथा आकाश आदि को धारण करनेवाले, ऐश्वर्यशाली, प्रकाशस्वरूप तथा उत्तम तेजवाले परमेश्वर की हम स्तुति करते है । वह हमारे प्राण, अपान और जीवों के लिये सुख प्रदान करता है तथा वही स्वर्ग सुख भी देता है ।।२।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१४१५—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २ ३ १ २
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ।।१।।

पदार्थ—(यम्) जिस (अग्ने) हे परमेश्वर (पृत्सु) संग्रामों में (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवाः) रक्षा करता है (वाजेषु) जीवन संघर्षों में (यम्) जिसको (जुनाः) प्रेरणा करता है (सः) वह (यन्ता) वश में रखनेवाला (शश्वतीः) सनातन (इषः) प्रजाओं को ।।१।।

भावार्थ – हे परमेश्वर ! तू जिस मनुष्य की संग्रामों में रक्षा करता है तथा जिसको संग्रामों में प्रेरित करता है वही सनातन प्रजा को वश में करता है ।।१।।

१४१६—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ।।२।।

पदार्थ—(नकिः) मर्यादा की रक्षा करनेवाला (अस्य) इसका (सहन्त्य) हे अत्यन्त सहनशील (पर्येता) परिपूर्ण करनेवाला (कयस्य) विजय करनेवाले के (चित्) ही (वाजः) संग्राम (अस्ति) है (श्रवाय्यः) यश का देनेवाला ।।२।।

भावार्थ—हे अत्यन्त सहनशील परमेश्वर ! धर्म मर्यादा की रक्षा करनेवाला तू जिसका संग्राम यशदायक होता है उस विजयी पुरुष की कामना को परिपूर्ण करता है ।।२।।

१४१७—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ।।३।।

पदार्थ—(सः) वह (वाजम्) संग्राम को (विश्वचर्षणिः) सबका साक्षी (अर्वद्भिः) घोड़ों के द्वारा (अस्तु) हो (तरुता) पार करनेवाला (विप्रेभिः) ज्ञानियों द्वारा (अस्तु) होवे (सनिता) [ज्ञान का] दाता हो ॥३॥

भावार्थ—सर्वसाक्षी परमेश्वर घोड़ों द्वारा संग्राम को पार लगावे तथा ज्ञानियों द्वारा हमें ज्ञानदाता होवे ॥३॥

१४१८—नोधाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १२३ २३१२ ३२३१२
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
२ ३१२३ १ २र ३१२ ३ २ ३ २ ३ २
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१॥

पदार्थ—(साकमुक्षः) एक साथ वृद्धि करनेवाले (मर्जयन्त) शुद्ध करते हैं (स्वसारः) अज्ञानादि मलों को दूर फेंकनेवाले (दश) पाँच यम तथा पांच नियम रूप (धीरस्य) मेधावी ध्यानी के (धीतयः) कर्म (धनुत्रीः) उत्तम प्रेरणा करने वाले (हरिः) अज्ञान का नाशक (पर्यद्रवत्) फैलाता है (जाः) उत्पन्न हुई किरणों को (सूर्यस्य) सूर्य की (द्रोणम्) गन्तव्य मार्ग को (ननक्षे) व्याप्त करता है (अत्यः) व्यापक (न) समान (वाजी) अग्नि के ॥१॥

भावार्थ—एक साथ वृद्धिदाता, अविद्या आदि मलों को दूर फैंकनेवाले समाधि आदि योग के अंगों की तरफ प्रेरणा के साधन ध्यानी, मेधावी पुरुष दश यम-नियम आदि कर्म आत्मा को पवित्र करते हैं। अज्ञान का नाशक परमेश्वर सूर्य की किरणों का विस्तार करता है। वह व्यापनशील अग्नि के समान सूर्य की किरणों के गन्तव्य मार्ग में व्यापक है ॥१॥

१४१९—नोधाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ ३२३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (मातृभिः) माताओं के द्वारा (न) जिस प्रकार (शिशुः) बालक (वावशानः) कामना करनेवाला (वृषा) बलवान् (दधन्वे) समझा जाता है (पुरुवारः) बहुत उत्तम कर्मोंवाला (अद्भिः) परमेश्वर के द्वारा (मर्यः) मर्यादा में रहनेवाला पुरुष (न) समान (योषाम्) युवती (अभि) उद्देश्य में रखकर (निष्कृतम्) कर्मफल को (यन्) प्राप्त करता हुआ (संगच्छते) संयुक्त होता है (कलशे) शरीर में (उस्रियाभिः) अपने तेजों से ॥२॥

भावार्थ—माताओं से जिस प्रकार शिशु समझा जाता है उसी प्रकार कामनाओं को करनेवाला, बलवान् तथा उत्तम कर्मोंवाला जीव परमेश्वर के द्वारा जाना जाता है। मर्यादा में रहनेवाला पुरुष जिस प्रकार युवती स्त्री को प्राप्त करता है उसी प्रकार जीव कर्मफल के अनुसार अपने तेजों के साथ शरीर में संयुक्त होता है ॥२॥

१४२०—नोधाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २३२ ३ २
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभिश्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (प्रपिप्ये) पूर्ण करता है (ऊधः) स्तन को (अघ्न्यायाः) गाय के (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (धाराभिः) वेदवाणियों से (सचता) संयुक्त करता है (सुमेधाः) उत्तम ज्ञानवाला (मूर्धानं) सूर्य को (गावः) किरणें (पयसा) जल से (चमूषु) द्यौः, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में (अभिश्रीणन्ति) आच्छादित करती हैं (वसुभिः) वस्त्रों से (न) समान (निक्तैः) धोये हुए ॥३॥

भावार्थ—ऐश्वर्यशाली तथा उत्तम ज्ञानी परमेश्वर, गाय के स्तन को दुग्ध से पूर्ण करता है तथा हमें वेदवाणियों के साथ जोड़ता है। द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर वर्तमान किरणें धवल वस्त्र के समान जल से सूर्य को आच्छादित करती हैं ॥३॥

१४२१—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥१॥

पदार्थ—(पिबा) उपभोगकर (सुतस्य) उत्पन्न जगत् का (रसिनः) सुखदायी (मत्स्व) प्रसन्नकर (नः) हमें (इन्द्रः) हे विद्वान् पुरुष (गोमतः) गौ आदि से युक्त (आपिः) बन्धु (नः) हमें (बोधिः) बोध करा (सधमाद्ये) समान रूप से आनन्ददाता के विषय में (वृधे) उन्नति के लिए (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) तेरे (धियः) ज्ञान और कर्म ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सुखदायी संसार का उपभोग कर। गौ आदि से सम्पन्न हम लोगों को प्रसन्न कर। तू हमारा बन्धु है। हमारी उन्नति के लिए समान आनन्ददाता परमेश्वर के विषय में ज्ञान करा। तेरे ज्ञान और कर्म हमारी रक्षा करें ॥१॥

१४२२—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्माँ चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥

पदार्थ—(भूयाम) हों (ते) तेरी (सुमतौ) सुमति में (वाजिनः) बलवान् और ज्ञानवान् (वयं) हम (मा) नहीं (नः) हमारा (स्तः) नाशकर (अभिमातये) रोग के लिए (अस्मान्) हमारी (चित्राभिः) आश्चर्यमयी (अवताद्) रक्षाकर (अभिष्टिः) मनोरथों से (आ) भली प्रकार (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखों में (यामय) रख ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् तथा ज्ञानवान् तेरी सुमति में रहें। तू रोगों से हमें बचा। विचित्र मनोरथों के द्वारा हमारी रक्षा कर। तू हमें सुख में रख ॥२॥

१४२३—रेणुः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥१॥

पदार्थ—(त्रिः) त्रयीविद्याः—ऋक्, यजु तथा साम (अस्मै) इस जीव के लिए (सप्त) सात (धेनवः) वाणियां सात छन्द (दुदुह्रिरे) दोहन करती हैं (सत्यम्) सत्य (आशिरम्) परिपक्व ज्ञानरूप दुग्ध को (परमे) परमोत्कृष्ट (व्योमनि) व्यापक परमेश्वर में [स्थिति प्राप्त करने के लिए] (चत्वारि) चार प्रकार के (अन्या) अन्य (भुवनानि) कर्म—प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि (निर्णिजे) पवित्र करने के लिए (चारूणि) उत्तम (चक्रे) करता है (यत्) जब (ऋतैः) सत्य विद्याओं से (अवर्धत) सम्पन्न होकर उन्नत होता है ॥१॥

भावार्थ—परमोत्कृष्ट पद व्यापक परमेश्वर में स्थिति पाने के लिए इस जीव को त्रयी विद्या और सात प्रकार की वाणियां ज्ञान का दोहन करती हैं। जब यह जीव सत्य विद्याओं से उन्नत हो जाता है तब आत्मशुद्धि के लिए चार उत्तम कर्म प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को करता है ॥१॥

१४२४—रेणुः । सोमः । जगती ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (भक्षमाणः) विभाजन करता हुआ (अमृतस्य) अमृत=अविनाशी सुख का (चारुणः) उत्तम (उभे) दोनों (द्यावा) द्यु और पृथिवी लोक को (काव्येन) वेदवाणी काव्य से (विशश्रथे) पूर्ण करता है (तेजिष्ठाः) तेजस्वी (अपः) कर्मों की (मंहना) महिमा से (परिव्यत) रक्षा करता है (यदी) जब (देवस्य) परमेश्वर के (श्रवसा) यश और ज्ञान से (सदः) परम पद को (विदुः) जानते हैं ॥२॥

भावार्थ—जब विद्वान् जन वेदज्ञान से उस देव के परम पद को प्राप्त कर लेते हैं तब वह अविनाशी पुरुष उत्तम सुख का वितरण करता हुआ द्यु और पृथिवी को परिपूर्ण कर देता है। अपनी महिमा से तेजस्वी और उत्तम कर्मों की रक्षा करता है ॥२॥

१४२५—रेणुः । सोमः । जगती ।

१ २ ३ १२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
१ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे (अस्य) इसके (सन्तु) हों (केतवः) ज्ञान (अमृत्यवः) अमर (अदाभ्यासः) नाशरहित (जनुषी) जन्मों में (येः) जिन से (नृम्णा) बल (देव्या) इन्द्रिय व्यवहार (च) और (पुनते) पवित्र होता है (आदित्) अनन्तर (राजानम्) प्रकाशस्वरूप (मनना) ज्ञान (अगृभ्णत्) ग्रहण कराते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे जीव ! तेरा ज्ञान सदा नाशरहित होवे। जिससे इस जन्म और दूसरे जन्म में तेरे इन्द्रिय-व्यवहार तथा बल पवित्र होते हैं। अन्त में यह ज्ञान ही सबके सम्राड् परमेश्वर को प्राप्त कराते हैं ॥३॥

卐 पञ्चमः खण्डः समाप्तः 卐

१४२६—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३क २र ३ २ २ ३ १ २र ३ १ २
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३भिमित्रावरुणा पूयमानः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) उद्देश्य से (वायुम्) वायु के (वीति) गति प्रदान करने के लिए (अर्ष) प्राप्त कर (गृणानः) स्तुति किया हुआ (अभि) उद्देश्य से (मित्रावरुणा) प्राण, अपान या सूर्य और चन्द्रमा के (पूयमानः) स्वयं पवित्र और अन्यों को पवित्र करनेवाला (अभि) उद्देश्य से (नरम्) नेता (धीजवनं) बुद्धि से प्रेरणा पानेवाले (रथेष्ठाम्) शरीरधारी (इन्द्रं) जीव को (वृषणं) बलवान् (वज्रबाहुम्) शस्त्रधारी ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! स्तुति किया जानेवाला, स्वयं पवित्र और दूसरों को भी पवित्र करने हारा तू गति देने के लिए वायु, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य सामान्य तथा बुद्धिजीवी शरीर आदि और शस्त्रधारक जीव आदि में व्यापक है ॥१॥

१४२७—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि चन्द्रा भर्त्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (वस्त्रा) वस्त्रों को (सुवसनानि) पहनने योग्य (अर्ष) प्राप्त करा (अभि) उद्देश्य से (धेनूः) गौएँ (सुदुघा) दूध देने वाली (पूयमानः) सबको पवित्र करता हुआ (अभि) भली भांति (चन्द्रा) चांदी (भर्त्तवे) भरण-पोषण करने के योग्य (नः) हमें (हिरण्या) सुवर्ण (अभि) भली भांति (अश्वान्) घोड़ों को (रथिनः) रथ के योग्य (देव) हे देव (सोम) हे परमेश्वर ॥२॥

भावार्थ—हे परमदेव परमेश्वर ! पवित्रस्वरूप तू हमें पहनने योग्य वस्त्र, दूध देनेवाली गौएँ, भरण-पोषण के लिए उपयोगी चांदी और सुवर्ण आदि तथा रथ के योग्य घोड़े प्रदान कर ॥२॥

१४२८—कुत्सः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वाः पार्थिवा पूयमानः ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (नः) हमें (अर्ष) प्रदान कर (दिव्या) सर्वोत्तम (वसुनि) धन (अभि) भली भांति (विश्वाः) सारे (पार्थिवा)पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ (पूयमानः) सबको पवित्र करनेवाला (अभि) भली भांति (येन) जिससे (द्रविणम्) संपदाओं को (अश्नवाम) भोग सकें ऐसा (आर्षेयं) वेदज्ञान को (जमदग्निवत्) आंख के समान (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सबका पवित्र करनेवाला तू हमें उत्तम धन प्रदान कर । सारे पार्थिव पदार्थों को दे और वह चक्षु के समान वैदिक ज्योति कि जिससे हम सकल सम्पदाओं का भोग कर सकें ॥३॥

१४२९—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना उतो दिवम् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (जायथाः) प्रयत्न करता है या सन्नद्ध होता है (अपूर्व्य) हे अनादि (मघवन्) हे सब सम्पदाओं के स्वामिन् (वृत्रहत्याय) प्रलयकालिक अन्धकार के नाश के लिए (तत्) तब (पृथिवीम्) पृथिवी को (अप्रथयः) फैलाता है (तत्) उसी समय (अस्तम्नः) स्थापित करता है (दिवम्) द्युलोक को (उत) और ॥१॥

भावार्थ—हे अनादि, अनन्त और सकल संपदाओं के स्वामी परमेश्वर ! जब तू प्रलयकालिक अन्धकार के हटाने के लिए प्रयत्नशील होता है तब पृथिवी का विस्तार और द्युलोक की रचना करता है ॥१॥

१४३०—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२॥

पदार्थ—(तत्) उसी समय (ते) तेरा (यज्ञः) संसाररूप यज्ञ (अजायत) उत्पन्न होता है (तत्) उसी समय (अर्कः) सूर्य (उत) भी (हस्कृतिः) प्रकाश का कर्त्ता (तत्) उसी समय (विश्वम्) संसार को (अभिभूः) दबा कर स्थित (असि) होता है (यत्) जो (जातं) उत्पन्न हुआ है (यत्) जो (च) और (जन्त्वम्) होगा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उसी समय तेरा संसाररूप यज्ञ उत्पन्न होता है । दिन का उत्पादक सूर्य भी उसी समय उत्पन्न होता है । तू जो कुछ भी पैदा हुआ है और होनेवाला है उस सबको दबा कर स्थित हो रहा है ॥२॥

१४३१—नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
धर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥३॥

पदार्थ—(आमासु) कच्ची ओषधियों आदि द्रव्यों में (पक्वम्) पके हुए रस को (ऐरय) प्रेरणा करता है (आ) भली भांति (सूर्यम्) सूर्य को (रोहयः) स्थापित किया है (दिवि) द्युलोक में (घर्मम्) यज्ञ के (न) समान (सामम्) दुःखनिवारक (तपत) तपो (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (जुष्टम्) प्रसन्नता देनेवाले (गिर्वणसे) स्तुति करने योग्य (बृहत्) बृहत् साम ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू कच्ची ओषधियों में पक्के रस का संचार करता है और सूर्य को द्युलोक में स्थापित करता है । हे विद्वानो ! तुम कल्याणकारी यज्ञ के समान आम स्तुतियों के साथ तपस्या करो तथा स्तुति योग्य उस परमेश्वर के लिए प्रसन्नता के साधन बृहत् साम का गान करो ॥३॥

१४३२—अगस्त्यः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥

पदार्थ—(मत्सि) तृप्त करता है (अपायि) पी लिया है (ते) तेरा (महः) महान् (पात्रस्य) पात्र के (इव) समान (हरिवः) हे सर्वशक्तिमन् (मत्सरः) प्रसन्न करनेवाला (मदः) आनन्दरस (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (ते) तेरा (वृष्णः) बलवान् (इन्दुः) ऐश्वर्यशाली (वाजी) बलदायक (सहस्रसातमः) असंख्य संपदाओं का दाता ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! महान् पात्र के समान तेरा प्रसन्न करनेवाला आनन्द रस जिसने पान कर लिया है वह उसको तृप्त करता है । सकल कामनाओं को पूरा करनेवाला ऐश्वर्यशाली वह आनन्दरस हमारे लिए बलदायक और असंख्य संपदाओं को दाता है ॥१॥

१४३३—अगस्त्यः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
सहावां इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (नः) हमें (ते) तेरा (गन्तु) प्राप्त हो (मत्सरः) आनन्ददायक (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला (मदः) आनन्द (वरेण्यः) श्रेष्ठ (सहावान्) सहायक (इन्द्र) हे परमेश्वर (सानसिः) सेवन करने के योग्य (पृतनाषाट्) काम-क्रोधादि शत्रुओं का दहन करनेवाला (अमर्त्यः) अमर है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्ददायक, सकल मनोरथों का पूरक सर्वथा सहायक, सेवनीय, कामादि शत्रुओं का विघातक तेरा नित्य आनन्द हमें प्राप्त हो ॥२॥

१४३४—अगस्त्यः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (हि) निश्चय से (शूरः) शक्तिशाली (सनिता) दाता (चोदयः) प्रेरित करता है (मनुषः) मनुष्य के (रथम्) शरीर को (सहावान्) दबाता है (दस्युम्) बुरे भाव को (अव्रतम्) कर्मरहित (ओषः) नष्टकर (पात्रम् न) पात्र के समान (शोचिषा) तेज से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वशक्तिमान् और महान् दाता तू मनुष्यों को शरीर प्रदान करता है तथा अपने तेज से शुभकर्म विघातक बुरे भाव को दबाता हुआ उसी तरह नष्ट करता है जैसे अग्नि तपाने से पात्र के मल को नष्ट करती है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 द्वादशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

त्रयोदशोऽध्यायः

१४३५—कविः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मि दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥१॥

पदार्थ—(**पवस्व**) प्रदान कर (**वृष्टिम्**) वर्षा (**आ**) भली भांति (**सु**) सुन्दर (**अपाम्**) जलों की (**ऊर्मिम्**) तरंग [धारा] (**दिवः**) द्युलोक से (**परि**) सब प्रकार से (**अयक्ष्माः**) नीरोगकारी (**बृहतीः**) पर्याप्त (**इषः**) अन्नों को भी ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे कल्याणार्थ आकाशमण्डल से जल की धाराबद्ध वृष्टि कर और हमें नीरोगता देनेवाले अन्न आदि पदार्थ प्रदान कर ॥१॥

१४३६—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ २

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥२॥

पदार्थ—(**तया**) उस (**पवस्व**) पवित्र कर (**धारया**) वेदवाणी से (**यया**) जिससे (**गावः**) ऋत्विग् लोग (**इह**) इसमें (**आगमन्**) सब कर्म को जानते हैं (**जन्यासः**) जनता का हित करनेवाली (**उप**) समीप (**नः**) हमारे (**गृहम्**) यज्ञशाला में ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें उस वेदवाणी से पवित्र कर जिसके द्वारा ऋत्विज् लोग यज्ञशाला में समस्त कर्मों को जान कर करते हैं ॥२॥

१४३७—कविः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥३॥

पदार्थ—(**घृतम्**) तेज को (**पवस्व**) प्रदान कर (**धारया**) वेदवाणी के द्वारा (**यज्ञेषु**) उत्तम यज्ञादि कर्मों में (**देववीतमः**) विद्वानों के अत्यन्त समीप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**वृष्टिम्**) वर्षा को (**आपव**) कर ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ज्ञानियों के अत्यन्त समीप है । यज्ञों में हमारे लिए वेदज्ञान द्वारा तेज प्रदान कर और हम पर आनन्द की वर्षा कर ॥३॥

१४३८—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३क १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सः नः ऊर्जे व्या३व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥४॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**नः**) हमारे (**ऊर्जे**) बल के लिए (**वि**) विशेषरूप से (**अव्ययम्**) अविनाशी (**पवित्रम्**) पतितपावन (**धाव**) प्राप्त करा (**धारया**) वेदवाणी के द्वारा (**देवासः**) विद्वान् सूक्ष्मदर्शी पुरुष (**शृणवन्**) सुनते हैं (**हि**) निश्चय (**कम्**) आनन्दस्वरूप ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे आत्मिक बल की वृष्टि के लिए अपने अविनाशी और पवित्र तेज को वेदवाणी द्वारा प्राप्त करा । क्योंकि हे भगवन्, विद्वान् जन ही तुझ आनन्दस्वरूप को जान-सुन सकते हैं ॥४॥

१४३९—कविः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥५॥

पदार्थ—(**पवमानः**) सर्वव्यापक (**असिष्यदत्**) वर्षा करता है (**रक्षांसि**) घातक भावों को (**अपजंघनत्**) नष्ट करता हुआ (**प्रत्नवत्**) पूर्वकल्प के समान (**रोचयन्**) प्रकाशित करता हुआ (**रुचः**) सूर्य आदि तेजों को ॥५॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर पूर्वकल्प के समान घातक भावों का नाश तथा सूर्य आदि तेजों का प्रकाश करता हुआ वृष्टि करता है ॥५॥

१४४०—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥

पदार्थ—(**प्रति**) ओर (**अस्मै**) इसके लिए (**पिपीषते**) रक्षा करनेवाले (**विश्वानि**) सब कुछ (**विदुषे**) जाननेवाले (**भर**) भरपूर कर (**अरङ्गमाय**) पर्याप्त गतिशील (**जग्मये**) संग्रामों में जाने वाले (**अपश्चादध्वने**) सदा अग्रगामी (**नरः**) नेता ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग प्रजा की रक्षा की इच्छा करनेवाले, सब विषयों के ज्ञाता, संग्रामों में जाने तथा सर्वदा अग्रगामी रहनेवाले इस सेनापति के लिए सारी आवश्यक वस्तुएं भरपूर कर रखो ॥१॥

१४४१—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**ईम्**) पादपूरक (**एनम्**) इसको (**प्रत्येतन**) प्रतीत करो (**सोमेभिः**) ऐश्वर्यों के साथ (**सोमपातमम्**) धन के अत्यन्त रक्षक (**अमत्रेभिः**) पात्रों के साथ (**ऋजीषिणम्**) धन-संग्रह करनेवाले (**इन्द्रम्**) सभाध्यक्ष को (**सुतेभिः**) सुसम्पन्न (**इन्दुभिः**) सोम से ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अन्य धनों के साथ अनेक धनों की रक्षा करनेवाले धन-संग्रह करने में समर्थ इस सभाध्यक्ष का नाना प्रकार के पुष्टिदायक खाद्य पदार्थों से भरे हुए पात्रों से स्वागत करो ॥२॥

१४४२—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र

वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥

पदार्थ—(**यदी**) यदि (**सुतेभिः**) सुसम्पन्न (**इन्दुभिः**) आनन्ददायक (**सोमेभिः**) ऐश्वर्यों से (**प्रतिभूषत**) सुशोभित करो (**वेद**) जानता है (**विश्वस्य**) सबके (**मेधिरः**) बुद्धिमान् (**धृषत्**) धर्म के द्रोहियों को दबानेवाला (**तन्तम्**) उन उनको (**इत्**) ही (**आ**) भली भांति (**ईषते**) प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग सुसम्पन्न और सुखदायी ऐश्वर्यों से सभाध्यक्ष को सुशोभित करो तो वह बुद्धिमान् तथा धर्म-द्रोहियों को दबानेवाला सब विषयों को जानकर उनको यथायोग्य तुम्हारे लिए उपस्थित करेगा ॥३॥

१४४३—भरद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥४॥

पदार्थ—(**अस्मै अस्मै**) इस इसके लिए (**इत्**) ही (**अन्धसः**) अन्न के (**अध्वर्यो**) हे अहिंसा के पक्षपाती (**प्र भर**) पूर्ण कर (**सुतम्**) रस को (**कुवित्**) बहुत (**समस्य**) सब (**जेन्यस्य**) शत्रु की (**शर्धतः**) उत्साही (**अभिशस्तेः**) हिंसा से (**अवस्वरत्**) रक्षा करता है ॥४॥

भावार्थ—हे अहिंसा के पक्षपाती पुरुष ! इन इन सभा-सेनाध्यक्षों के लिए अन्न के सारभूत रस को प्रदान करो । ये लोग जयशील, उत्साही, शत्रु की ओर से किए जानेवाले आक्रमणों से बचाते हैं ॥४॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

१४४४—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥१॥

पदार्थ—(**बभ्रवे**) पालन-पोषण करनेवाले (**नु**) पादपूरक (**स्वतवसे**) स्वयं बलवान् (**अरुणाय**) तेजस्वी (**दिविस्पृशे**) द्युलोक पर्यन्त व्यापक (**सोमाय**) परमेश्वर के लिए (**गाथम्**) सामगान (**अर्चत**) करो ॥१॥

भावार्थ—हे उपासको ! तुम लोग पालन-पोषण करनेवाले, स्वयं बलशाली, तेजस्वी तथा सर्वव्यापक परमेश्वर का साम मन्त्र से गुणगान करो ॥१॥

१४४५—असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥२॥

पदार्थ—(**हस्तच्युतेभिः**) हस्त नक्षत्र से च्युत हुए [बरसते हुए] (**अद्रिभिः**) मेघों से (**सुतम्**) उत्पन्न हुए (**सोमम्**) सोमलता आदि ओषधियां तथा फसली पौदों को (**पुनीतन**) पवित्र कर (**मधौ**) वसन्त ऋतु में (**मधु**) मधुरता, शोभा, (**आधावत**) प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हस्त नक्षत्र में बरसने वाले मेघों से उत्पन्न हुई सोमलता आदि ओषधियों तथा फसली पौदों को पुष्ट करता है तथा वसन्त ऋतु में शोभा और मधुरता प्रदान करता है ॥२॥

१४४६—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

९ ३१ २र ३ २३१ २ २ ३ १ २
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥३॥

पदार्थ—(नमसा) अन्न और जल से (इत्) ही (उपसीदत) सेवा करो (दध्ना) इन्द्रियों से (अभिश्रीणीतन) परिपक्व करो (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान् आत्मा को (इन्द्रे) परमेश्वर की शरण में (दधातन) धारण करो ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग ऐश्वर्यवान् आत्मा को अन्न-जल से तृप्त तथा इन्द्रियों से परिपक्व करो । उसे परमेश्वर की शरण में पहुंचाओ ॥३॥

१४४७—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४॥

पदार्थ—(अमित्रहा) अज्ञान और रोग आदियों का नाश करनेवाला (विचर्षणिः) सबका साक्षी (पवस्व) प्राप्त करा (सोम) हे परमेश्वर (शं) सुख (गवे) इन्द्रियों के लिए (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (अनुकामकृत्) सफल मनोरथ करनेवाला ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अज्ञान और रोगादि शत्रुओं का नाशकर्त्ता, सबका साक्षी तथा विद्वानों को सफलमनोरथ करनेवाला है । तू हमारी इन्द्रियों को शान्ति दे ॥४॥

१४४८—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५॥

पदार्थ—(इन्द्राय) परमेश्वर के (सोम) हे आत्मन् (पातवे) पान करने के लिए (मदाय) आनन्द को (परिषिच्यसे) सब प्रकार से सींचा जाता है (मनश्चित्) मन में चेतना देनेवाला (मनसस्पतिः) मन का स्वामी ॥५॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! मन में चेतनता देनेवाला तथा उसका स्वामी तू परमेश्वर के आनन्द का पान करने के लिए सब प्रकार से ज्ञान द्वारा सींचा जाता है ॥५॥

१४४९—*असितो देवलो वा । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६॥

पदार्थ—(पवमान) हे पवित्रकारक (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम (रयिम्) धन को (सोम) हे विद्वान् (रिरीहि) दे (नः) हमें (इन्दो) हे ऐश्वर्यशाली (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (नः) हमें (युजा) युक्त कर ॥६॥

भावार्थ—हे पवित्रकारक तथा ऐश्वर्यशाली विद्वान् पुरुष ! तू हमें उत्तम पराक्रम तथा ज्ञान धन प्रदान कर । तू हमें परमेश्वर के साथ युक्त कर ॥६॥

१४५०—*सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २
उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्तम (ह) प्रसिद्ध (इत्) ही (अभि) सब प्रकार से (श्रुतामघं) प्रसिद्ध धनी (वृषभम्) बलवान् को (नर्यापसम्) मनुष्यों का उपकार करनेवाले कर्म से युक्त (अस्तारम्) दानी को (एषि) प्राप्त होता है (सूर्य) हे सूर्य के समान तेजस्वी [इन्द्र=विद्वान् पुरुष] ॥१॥

भावार्थ—हे सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! तू प्रसिद्ध धनी, बलवान् मनुष्यों का उपकार करनेवाले तथा दानी आदि सभी को प्राप्त होता है ॥१॥

१४५१—*सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२॥

पदार्थ—(नव) नव संख्या (यः) जो (नवतिं) नव्वे [९०] के समान (पुरः) संघातों का (बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है (बाह्वोजसा) विरोधी किरणों के तेज बल से (अहिं) मेघ को (च) भी (वृत्रहा) अन्धकार का नाशक (अवधीत्) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—जो अन्धकार का नाश करनेवाला सूर्य नव्वे (९०) को नव संख्या के समान विरोधी किरणों के तेजोबल से मेघस्थ जल-संघातों को छिन्न-भिन्न करता है वही मेघ को भी नष्ट करता है ॥२॥

१४५२—*सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारा (इन्द्रः) परमेश्वर (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (अश्वावत्) अश्वयुक्त (गोमद्) गौओं से युक्त (यवमत्) यव आदि धान्यों से युक्त (ऊरुधारेव) गाय के दुग्ध की धारा के समान (दोहते) देता है ॥३॥

भावार्थ—हमारा मित्र, कल्याणकारक वह परमेश्वर दूध की धार के समान गौ, घोड़े और यव आदि धान्यों से युक्त धन को हमें प्रदान करता है ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४५३—*विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।*

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१॥

पदार्थ—(विभ्राट्) प्रकाशस्वरूप (बृहत्) महान् (पिबतु) रक्षा करे (सोम्यं) ओषधियों में होनेवाले (मधु) रस को (आयुः) आयु को (दधत्) धारण करे (यज्ञपतौ) यजमान में (अविह्रुतम्) उपद्रवरहित (वातजूतः) वायु का प्रेरक (यः) जो (अभिरक्षति) भली भांति रक्षा करता है (त्मना) स्वयं (प्रजाः) प्रजा का (पिपर्ति) पूर्ण करता है (बहुधा) बहुत प्रकार से (विराजति) विराजमान होता है ॥१॥

भावार्थ—प्रकाशस्वरूप, महान् तथा वायु को प्रेरणा देनेवाला जो परमेश्वर स्वयं प्रजा की अनेक प्रकार से पूर्ति और रक्षा करता है तथा सब में विराजमान हो रहा है वह ओषधियों के रस की रक्षा करे तथा यजमान को दीर्घायु दे ॥१॥

१४५४—*विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।*

३ २ ३ १ २र २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

पदार्थ—(विभ्राट्) तेजस्वी (बृहत्) महान् (सुभृतं) सबको धारण करनेवाले [सर्वाधार] (वाजसातमं) अन्न, ज्ञान और बल का दाता (धर्मन्) धर्म पर (दिवः) द्युलोक के (धरुणे) धारक (सत्यम्) अविनाशी (अर्पितम्) स्थित (अमित्रहा) रोग आदि का नाशक (वृत्रहा) अज्ञाननाशक (दस्युहन्तमं) विघ्ननाशक (ज्योतिः) परम ज्योति (जज्ञे) जाना जाता है (असुरहा) आसुरी वृत्तियों का विघातक (सपत्नहा) कामादि शत्रुओं का नाशक ॥२॥

भावार्थ—तेजस्वी, महान्, सर्वाधार, बल और ज्ञान का दाता, द्युलोक को धारण करनेवाले धर्म पर स्थित, अविनाशी, रोग, अज्ञान, आसुरी वृत्ति, कामादि शत्रु तथा नाना विघ्नों का नाश करनेवाला परम ज्योति परमेश्वर विद्वानों से जाना जाता है ॥२॥

१४५५—*विभ्राट् । सूर्यः । जगती ।*

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

पदार्थ—(इदं) यह (श्रेष्ठं) श्रेष्ठ (ज्योतिषां) प्रकाशों का भी (ज्योतिः) प्रकाशक (उत्तमं) उत्तम (विश्वजित्) विश्व पर विजय करनेवाला (धनजित्) धन पर विजय करनेवाला (उच्यते) कहा जाता है (बृहत्) महान् (विश्वभ्राट्) विश्व का प्रकाशक (भ्राजः) तेजस्वी (महि) महान् (सूर्यः) परमेश्वर (दृशे) देखने के लिए (उरु) महान् (पप्रथे) विस्तार करता है (सहः) अज्ञाननाशक (ओजः) तेज का (अच्युतम्) अविनाशी ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर श्रेष्ठ, प्रकाशकों का प्रकाशक परमज्योति कहा जाता है । विश्व पर विजय पानेवाला, धन का जेता, विश्व का प्रकाशक तथा महान् वह देखने के लिए अज्ञान-नाशक, अविनाशी तथा महान् तेज का विस्तार करता है ॥३॥

१४५६—*वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्र) हे विद्वान् (क्रतुम्) ज्ञान (नः) हमें (आभर) दे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिए (यथा) जैसे (शिक्षा) शिक्षा दे (नः) हमें (अस्मिन्) इस (पुरुहूत) हे बहुतों से अभिमन्त्रित किए जानेवाले (यामनि) यज्ञ में (जीवाः) साधारण जीव [साधारण जन] (ज्योतिः) परम ज्योति को (अशीमहि) प्राप्त करें ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वप्रिय विद्वान् पुरुष ! तू हमें ज्ञान से परिपूर्ण कर । पुत्रों को पिता के समान हमें शिक्षा दे । साधारण जन इस यज्ञ में तेरी कृपा से परम ज्योति को प्राप्त करें ॥१॥

१४५७—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासोऽवक्रमुः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२॥

पदार्थ—(मा) नहीं (नः) हमें (अज्ञाता) अज्ञात (वृजना) उपद्रवी (दुराध्यः) हठी (मा) नहीं (अशिवासः) अभद्र (अवक्रमुः) आक्रमण करें (त्वया) तुझ से (वयं) हम (प्रवतः) नम्र (शश्वतीः) सनातन (अपः) कर्मों को (अति) अतिक्रमण (शूर) हे शूर (तरामसि) तरते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! अज्ञात, उपद्रवी, दुराग्रही तथा अभद्र लोग हमें कभी न सतावें । नम्र हम लोग तेरी कृपा से पुराने कर्म-बन्धनों को पार कर जावें ॥२॥

१४५८—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा च नो जरितॄन्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥३॥

पदार्थ—(अद्य अद्य) आज (श्वः श्वः) कल (इन्द्र) हे परमेश्वर (त्रास्व) रक्षा करता है (परे च) परसों भी (नः) हमारी (विश्वा) सारे (च) और (नः) हम (जरितॄन्) भक्तों की (सत्पते) हे सज्जनों के पालक ! (अहा) प्रतिदिन (दिवा) दिन में (नक्तं) रात्रि (च) और (रक्षिषः) रक्षा करता है ॥३॥

भावार्थ—हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! तू आज, कल तथा परसों हमारी रक्षा करता है । प्रति दिन हम भक्तों की तू रात-दिन रक्षा करता है ॥३॥

१४५९—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥४॥

पदार्थ—(प्रभंगी) प्रलय करनेवाला (शूरः) सर्व शक्तिमान् (मघवा) यज्ञों का स्वामी (तुवीमघः) सम्पदाओं का स्वामी (संमिश्लः) सर्वव्यापक (वीर्याय) बल के लिए (कम्) सुखस्वरूप (उभा) दोनों (ते) तेरी (बाहू) मित्र और वरुण=प्राण और उदान शक्तियां (वृषणा) वृष्टि करनेवाली (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ (नि) निश्चय(या) जो (वज्रं) जल को (मिमिक्षतुः) बरसाती हैं ॥४॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू प्रलयकर्त्ता, सर्वशक्तिमान् सकल यज्ञ और संपूर्ण सम्पदाओं का स्वामी, सर्वव्यापक तथा पराक्रम के लिए सुखस्वरूप है । वर्षा करनेवाली तेरी प्राण और उदान शक्तियां जल बरसाती हैं ॥४॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१४६०—वसिष्ठः । सरस्वान् । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥

पदार्थ—(जनीयन्तः) कलत्र चाहते हुए (नु) आज (अग्रवः) उपासक (पुत्रीयन्तः) पुत्रों की इच्छा करनेवाले (सुदानवः) उत्तम दानी (सरस्वन्तम्) वाणी के स्वामी परमेश्वर को (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ—स्त्री-पुत्रों को चाहते हुए, उत्तम दानी हम उपासक परमेश्वर को स्मरण करते हैं ॥१॥

१४६१—भरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमारा (प्रिया) कल्याण करनेवाला (प्रियासु) कल्याण करनेवालियों में (सप्तस्वसा) सात छन्दों वाली (सुजुष्टा) भली भांति अभ्यास की हुई (सरस्वती) वेदवाणी (स्तोम्या) प्रशंसा के योग्य (भूत्) हो ॥१॥

भावार्थ—अत्यन्त कल्याणकारिणी, सात छन्दों से युक्त और अभ्यास की गई वेदवाणी प्रशंसा के योग्य हो ॥१॥

१४६२—विश्वामित्रः । सविता । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥

पदार्थ—(तत्) वह (सवितुः) सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का (वरेण्यं) श्रेष्ठ (भर्गः) तेज (देवस्य) देव का (धीमहि) धारण करते हैं (धियः) बुद्धियों को (यः) जो (नः) हमारी (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है ॥१॥

भावार्थ—जो हमारी बुद्धियों को सदा सत्कर्मों में प्रेरित करता है उस सृष्टिकर्त्ता परमात्मदेव के श्रेष्ठ तेज को हम धारण करते हैं ॥१॥

१४६३—मेधातिथिः । ब्रह्मणस्पतिः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥२॥

पदार्थ—(सोमानां) अध्ययनाध्यापन यज्ञों के (स्वरणम्) वक्ता (कृणुहि) कर (ब्रह्मणस्पते) हे वेद विद्या के रक्षक विद्वन् (कक्षीवन्तम्) अनेक विद्याओं का ज्ञाता (यः) जो (औशिजः) मेधावी का पुत्र ॥२॥

भावार्थ—हे वेदविद्या के रक्षक विद्वन् ! तू मेधावी का पुत्र है, अतः हमें अध्यापन-अध्ययन आदि यज्ञों का वक्ता तथा अनेक विद्याओं का ज्ञाता बना ॥२॥

१४६४—मेधातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥

पदार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् (आयूंषि) आयुओं को (पवसे) प्राप्त कराता है (आसुव) प्रदान कर (ऊर्जम्) बल (इषम्) ज्ञान को (च) और (नः) हमें (आरे) दूर (बाधस्व) भगा (दुच्छुनाम्) दुर्गुणों को ॥३॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू हमें आयु प्राप्त कराता है । तू हमें बल और ज्ञान प्रदान कर तथा हमारे दुर्गुणों को दूर कर ॥३॥

१४६५—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २
महि वा क्षत्रं देवेषु ॥१॥

पदार्थ—(ता) वे दोनों (नः) हमारे (शक्तं) समर्थ हैं (पार्थिवस्य) [स्थूल] पार्थिव शरीरवाले (महा) महान् (रायः) धन के (दिव्यस्य) इन्द्रिय सम्बन्धी सूक्ष्म शरीर का (महि) महान् (वा) अथवा (क्षत्रम्) बल (देवेषु) इन्द्रियों में ॥१॥

भावार्थ—प्राण और अपान दोनों हमारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर-सम्बन्धी महान् सम्पत्ति के स्थिर करने में समर्थ हैं । हमारी इन्द्रियों में इनका बल महान् है ॥१॥

१४६६—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्द्धेते ॥२॥

पदार्थ—(ऋतम्) ज्ञान का (ऋतेन) सत्य नियम से (सपन्ता) सम्पर्क रखते हुए (उषिरं) कमनीय (दक्षम्) बल को (आशाते) अधिष्ठातारूप से व्याप्त करते हैं (अद्रुहौ) द्रोहरहित (देवौ) देव (वर्द्धेते) बढ़ाते हैं ॥२॥

भावार्थ—सत्य नियम से ज्ञान का सम्पर्क रखनेवाले, द्रोहरहित, परमेश्वर और जीवात्मदेव कमनीय बल के अधिष्ठाता और बढ़ाने वाले हैं ॥२॥

१४६७—यजतः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥३॥

पदार्थ—(वृष्टिद्यावा) द्युलोक से वृष्टि के द्वारा (रीत्यापा) जल देनेवाले (इषः) अन्न के (पती) पालक (दानुमत्याः) दान करने योग्य (बृहन्तं) महान् (गर्तम्) आकाश को (आशाते) व्याप्त करते हैं ॥३॥

भावार्थ—वर्षा द्वारा जल देनेवाले, दानयोग्य, अन्न के पालक प्राण और उदान महान् अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं ॥३॥

१४६८—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥१॥

पदार्थ—(युञ्जन्ति) युक्त होते हैं (ब्रध्नम्) महान् (अरुषम्) मर्म की रक्षा करनेवाले [तेजस्वी] (चरन्तम्) व्यापक (परि) सब प्रकार से (तस्थुषः) स्थावरों का (रोचन्ते) प्रकाशमान होते हैं (रोचना) ज्ञानयुक्त (दिवि) उत्तम ज्ञान प्रकाश में ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानयुक्त जो लोग महान्, तेजस्वी तथा स्थावर और जंगमों में व्यापक परमेश्वर से युक्त होते हैं वे विज्ञान के प्रकाश में प्रकाशित होते हैं ॥१॥

१४६९—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२॥

पदार्थ—(युञ्जन्ति) युक्त करते हैं (अस्य) इस जीव के (काम्या) कमनीय (हरी) हरणशील (विपक्षसा) विविध प्रकार से ग्रहण किए गए (रथे)

रथ में (शोणा) लाल रंग के (धृष्णू) बलवान् (नृवाहसा) मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के योग्य ।।२।।

भावार्थ—जिस प्रकार लोग कमनीय, विविध प्रकार से ग्रहण किए गए, बलवान्, लाल रंग के तथा मनुष्यों को एक जगह से दूसरी जगह पर ले जाने में समर्थ घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं वैसे ही जीव अपने को परमेश्वर में युक्त करें ।।२।।

१४७०—मधुच्छन्दा । इन्द्र । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २   २ ३ १ २
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ।।३।।

पदार्थ—(केतुं) ज्ञान को (कृण्वन्) करते हुए (अकेतवे) अज्ञानी के लिए (पेशः) स्वर्ण आदि को (मर्याः) हे मनुष्यो (अपेशसे) निर्धन के लिए (समुषद्भिः) इसकी कामना करनेवाले विद्वानों के साथ (अजायथाः) सुखी होओ ।।३।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग अज्ञानी के लिए ज्ञान का प्रकाश तथा निर्धन के लिए स्वर्ण आदि सम्पत्ति को देनेवाले परमेश्वर के उपासक विद्वानों के साथ सुखी होओ ।।३।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१४७१—उशनाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३१   २र   ३ १ २   ३ १ २   ३ १२
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।

२ ३ १ २ ३ १   २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३   १ २
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ।।१।।

पदार्थ—(अयं) यह (सोमः) जीव (इन्द्र) हे परमेश्वर (तुभ्यं) तेरी प्राप्ति के लिए (सुन्वे) जन्म ग्रहण करता है (तुभ्यं) तेरे लिए ही (पवते) पवित्र होता है (त्वम्) तू (अस्य) इसकी (पाहि) रक्षा कर (त्वं) तू (ह) ही (यं) जिसको (चकृष) ज्ञानसंपन्न करता है (त्वं) तू (ववृषे) चुनता है (इन्दुं) ऐश्वर्यवान् (मदाय) आनन्द के लिए (युज्याय) योग के लिए (सोमम्) जीव को ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू जिस ऐश्वर्यशाली जीव को आनन्द और योग के लिए ज्ञानसंपन्न करता तथा चुन लेता है वह संसार में तेरी प्राप्ति के लिये जन्म ग्रहण करता और तेरे ही लिए पवित्र होता है । तू इसकी रक्षा कर ।।१।।

१४७२—उशनाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ २ ३ २ १ २
स ईं रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।

२ ३   १ २   ३क २र ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन उर्ध्वा नवन्त ।।२।।

पदार्थ—(सः) वह (ईं) इसको (रथो न) रथ के समान (भुरिषाड्) भार सहने वाले (अयोजि) युक्त करता है (महः) महान् (पुरूणि) बहुत (सातये) देने के लिए (वसूनि) धनों को (आत् ईम्) इसके बाद (विश्वा) सारे (नहुष्याणि) मनुष्य-सम्बन्धी (जाता) सृष्टियां [प्रजा] (स्वर्षाता) सुखदाता (वने) भजनीय [परमेश्वर की शरण में] (ऊर्ध्वा) उन्नति (नवन्त) प्राप्त करते हैं ।।२।।

भावार्थ—महान् परमेश्वर भार सहन करनेवाले रथ के समान पर्याप्त धन देने के लिए उस जीव को युक्त करता है । भजन के योग्य सुखदायक परमेश्वर की शरण में सारी मनुष्य प्रजा उन्नति लाभ करती है ।।२।।

१४७३—उशनाः । सोमः । त्रिष्टुप् ।

३ २उ   ३ १   २र   ३ १ २   ३ २र   ३ २
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २   ३ १ २   ३ २उ   ३ २
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण् न यज्ञः ।।३।।

पदार्थ—(शुष्मी) बलवान् (शर्धः) बल के (न) समान (मारुतं) वायु-सम्बन्धी (पवस्व) पवित्र कर (अनभिशस्ता) अनिन्दित (दिव्या) द्युलोक में होनेवाली [दिव्य] (यथा) समान (विट्) प्रजा के (आपः) जल के समान (मक्षू) शीघ्र (सुमतिः) शोभन मतिवाला (भव) है (नः) हमारे लिए (सहस्राप्साः) अनेक वेशवाला (पृतनाषाड्) सेनापति के (न) समान (यज्ञः) पूज्य ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू वायु के बल के समान बलवान् द्युलोक की प्रजा सूर्य आदि के समान पवित्र है । तू हमें जल के समान पवित्र कर तथा हमारा सुमति-दाता हो । तू अनेक वेशधारी सेनापति के समान पूजनाय है ।।३।।

१४७४—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१२   ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २   ३ २ ३ १ २ ३   १ २
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ।।१।।

पदार्थ—(त्वम्) तू (अग्ने) हे विद्वन् (यज्ञानां) श्रेष्ठ कर्मों का (होता) कर्त्ता (विश्वेषाम्) सारे (हितः) कल्याणकारी (देवेभिः) उत्तम गुणों द्वारा (मानुषे) मनुष्य (जने) समाज में ।।१।।

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू सारे शुभ कर्मों का कर्त्ता तथा अपने उत्तम गुणों से मनुष्य समाज का हितकारी है ।।१।।

१४७५—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

१ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ २   २ ३ १ २ ३   १ २
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ।।२।।

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (मन्द्राभिः) आनन्ददायक विद्या से युक्त (अध्वरे) कल्याणकारी व्यवहार में (जिह्वाभिः) वाणियों से (यजा) संगत कर (महः) महान् (आ) भली भांति (देवान्) उत्तम गुणों को (वक्षि) प्राप्त करा (यक्षि) दे (च) और ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू कल्याणकारी व्यवहार में हमें आनन्ददायक वाक् शक्तियों से युक्त कर । हमें उत्तम गुण प्रदान कर ।।२।।

१४७६—भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३   १ २   ३ १ २ ३ १ २   १ २ ३ १ २
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ।।३।।

पदार्थ—(वेत्था) जानता है (हि) निश्चय (वेधः) हे विधाता (अध्वनः) बड़े मार्गों को (पथः) छोटे मार्गों को (च) और (देव) हे देव (अञ्जसा) ठीक ठीक (अग्ने) हे परमेश्वर (यज्ञेषु) सांसारिक तथा पारमार्थिक व्यवहारों में (सुक्रतो) हे उत्तम कर्मवाले ।।३।।

भावार्थ—हे विधाता, उत्तम कर्मवाले परमात्मदेव ! तू लौकिक तथा पारमार्थिक व्यवहारों के ऊँचे नीचे मार्गों को ठीक-ठीक जानता है । अतः हमें उत्तम मार्ग पर चला ।।३।।

१४७७—देवश्रवाः, देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १   २र   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ।।१।।

पदार्थ—(होता) कर्मफल दाता (देवः) देव (अमर्त्यः) अविनाशी (पुरस्तात्) प्रथम (एति) विद्यमान होता है (मायया) बुद्धि से (विदथानि) विविध प्रकार के ज्ञानों को (चोदयन्) प्रेरणा करता हुआ ।।१।।

भावार्थ—कर्मफल दाता, सबका देव परमेश्वर अनेक प्रकार के विज्ञानों की प्रेरणा करता हुआ अपनी ज्ञानशक्ति के साथ सृष्टि के आरम्भ से भी पहले विद्यमान रहता है ।।१।।

१४७८—देवश्रवा देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

३१   २र   ३ २ ३ १ २   १ २ ३ २ ३ १ २
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ।।२।।

पदार्थ—(वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् (वाजेषु) संग्रामों में (धीयते) नियुक्त किया जाता है (अध्वरेषु) कल्याणकारी यज्ञों में (प्रणीयते) नेता होता है क्योंकि (विप्रः) ज्ञानी (यज्ञस्य) यज्ञ आदि उत्तम व्यवहारों का (साधनः) साधन [सिद्ध करनेवाला] होता है ।।२।।

भावार्थ—बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष संग्रामों तथा कल्याणकारी यज्ञों का नेता होता है क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही उत्तम और व्यावहारिक कार्यों को सिद्ध कर सकता है ।।२।।

१४७९—देवश्रवा देववातो वा । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३   १ २   ३ २ ३   २ ३ १ २
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।

१ २   ३ २ ३ १ २
दक्षस्य पितरं तना ।।३।।

पदार्थ—(धिया) ज्ञान से (चक्रे) करता है (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ (भूतानां) प्राणिमात्र का (गर्भम्) गर्भ (आदधे) धारण करता है (दक्षस्य) बल का (पितरम्) उत्पादक (तना) संपदायें ।।३।।

भावार्थ—सब से श्रेष्ठ परमेश्वर प्राणिमात्र के गर्भ को धारण करता और सबके लिए बल देनेवाली सम्पदायें उत्पन्न करता है ।।३।।

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१४८०—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ १ २   ३ १ २
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।

३ १ २   ३ २
रसा दधीत वृषभम् ।।१।।

पदार्थ—(आ) भली भांति (सुते) संसार में (सिञ्चत) सींचो (श्रियम्) राजलक्ष्मी को (रोदस्योः) द्युलोक और पृथिवी में (अभिश्रियम्) कीर्ति फैलानेवाली (रसा) है आनन्द देनेवाले मनुष्य (दधात) धारण करो (वृषभम्) सकल कामनाओं के सफल करनेवाले को ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस संसार में यश देनेवाली राजलक्ष्मी को प्राप्त कर पूर्ण करो तथा सकल कामनाओं को सफल करनेवाले परमेश्वर का ध्यान भी करो ।१।

१४८१—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २क २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ते जानत स्वमोक्यां३सं वत्सासो न मातृभिः ।
३ १ २ ३ १ २
मिथो नसन्त जामिभिः ।।२।।

पदार्थ—(ते) तुम सब (जानत) जानो (स्वम्) अपना (ओक्यम्) आश्रय (सम्) सम्यक् (वत्सासः) बच्चों के (न) समान (मातृभिः) माताओं के साथ (मिथः) परस्पर (नसन्त) इकट्ठे होओ (जामिभिः) कुटुम्बियों के साथ ।२।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग माताओं के साथ बच्चों के समान अपने कुटुम्बियों के साथ परस्पर मिलो और अपना आश्रय परमेश्वर को जानो ।।२।।

१४८२—हर्यतः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २उ ३क २र
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ।।३।।

पदार्थ—(उप) समीप (स्रक्वेषु) घरों में (बप्सतः) उपभोग करनेवाले (कृण्वते) करते हैं (धरुणम्) धारण करनेवाले (दिवि) अन्तरिक्ष में (इन्द्रे) सब सम्पदाओं के स्वामी (अग्ना) परमेश्वर में (नमः) नमस्कार (स्वः) सुख का ।।३।।

भावार्थ—गृहों में रहकर जीवनदाता सुखों का उपभोग करते हुए पुरुष सब संपदाओं के स्वामी परमेश्वर को नमस्कार करते हैं ।।३।।

१४८३—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ १ ३ २ ३ १ २
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्ननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ।।१।।

पदार्थ—(तत्) परमेश्वर (इत्) ही (आस) व्यापक हो रहा है (भुवनेषु) लोकों में (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ अनादि (यतः) जिस निमित्त कारण से (जज्ञे) उत्पन्न हुआ (उग्रः) तेजस्वी (त्वेषनृम्णः) दीप्तबलवाला (सद्यः) शीघ्र (जज्ञानः) उत्पन्न [उदय] (निरिणाति) नष्ट करता है (शत्रून्) मनुष्यों को दुःख देनेवाले रोग तथा क्रिमियों को (अनु) अनुकूलता से (यं) जिसकी (विश्वे) सारे (मदन्ति) सुखी होते हैं (ऊमाः) प्राणी ।।१।।

भावार्थ—सर्व श्रेष्ठ तथा अनादि परमेश्वर लोकों में व्यापक हो रहा है। उस निमित्तकारण से ही महान् तेजबलवाला सूर्य उत्पन्न हुआ । वह सूर्य उदय होता हुआ प्राणियों को पीडा देनेवाले रोग तथा क्रमियों का विनाश करता है । उसकी अनुकूलता से सारे प्राणी सुखी होते हैं ।।१।।

१४८४—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वावृधानः शवसा भूर्योजा शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ।।२।।

पदार्थ—(वावृधाना) बढ़ाता हुआ (शवसा) बल से (भूर्योजा) अत्यन्त बलशाली (शत्रुः) विघ्नों का नाश करनेवाला (दासाय) शुभकर्मों के विघातक पापी के लिए (भियसं) भय (दधाति) धारण करता है (अव्यनत्) स्थावर (च) और (व्यनत्) जङ्गम (च) भी (सस्नि) पवित्र (सं) सम्यक् (ते) तेरी (नवन्त) जाते हैं (प्रभृता) शास्त्र विज्ञान से भरे हुए लोग (मदेषु) स्तुतियों में ।।२।।

भावार्थ—अत्यन्त बलशाली तथा विघ्नों का निवारक परमेश्वर अपनी शक्ति से जगत् को बढ़ाता हुआ पापी को भय देता है । वह स्थावर तथा जंगम सभी को पवित्र करता है । हे परमेश्वर ! शास्त्रज्ञान से पूर्ण लोग तेरी ही स्तुतियों में सम्मिलित होते हैं ।।२।।

१४८५—बृहद्दिवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ।।३।।

पदार्थ—(त्वे) तुझ में (क्रतुम्) कर्म को (वृञ्जन्ति) समाप्त करते हैं (विश्वे) सारे (द्विः) दूसरे [गृहस्थ आश्रमवाले] (यत्) जब (एते) ये (त्रिः) तीसरे [वानप्रस्थ आश्रमवाले] अथवा पुत्र का जन्म होने से तीन (भवन्ति) होते हैं (ऊमाः) प्राणी (स्वादोः) स्वादु से (स्वादीयः) स्वादिष्ट (स्वादुना) स्वादु सामग्री से (सृजा) रचता है (सम्) सम्यक् (अदः) यह (सुमधु) उत्तम रस (मधुना) जल से (अभियोधीः) मिलाता है ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सारे प्राणी गृहस्थी या वानप्रस्थी होने पर अपने कर्मों को तुझ में ही समर्पण करते हैं । तू अत्यन्त स्वादवाली वस्तु को स्वाद के कारण भूत सामग्री से तथा उत्तम रस को जल से उत्पन्न करता है ।।३।।

१४८६—गृत्समदः । इन्द्रः । अष्टिः ।

१ २ ३ १ २र ३ २
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
२र ३ २ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।१।।

पदार्थ— (त्रिकद्रुकेषु) तीन=उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय धर्मवाले पदार्थों में (महिषः) महान् (यवाशिरम्) यव दुग्ध आदि से युक्त (तुविशुष्मः) महान् बलशाली (तृम्पत्) तृप्त होता हुआ (सोमम्) सोम आदि ओषधि को (अपिबत्) पान करता है (विष्णुना) परमेश्वर तथा वायु द्वारा (सुतं) उत्पादित (यथावशम्) इच्छानुकूल (सः) वह (ईम्) पदपूरक (ममाद) हर्ष से युक्त होता है (महिकर्म) महान् कर्म (कर्त्तवे) करने के लिए (महान्) महान् (उरुम्) बहुत महान् (सः) वह (एनम्) इसको (सश्चत्) प्राप्त होता है (देवः) देव (देवं) देव (सत्यः) सत्यस्वरूप (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रम्) परमेश्वर को ।१।

भावार्थ—महान् तथा अत्यन्त बलशाली आत्मा उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वाले लोकों में परमेश्वर अथवा वायु के द्वारा उत्पादित यव तथा दुग्ध आदि से मिले सोम आदि भोग्य पदार्थ का अपनी इच्छानुकूल पान करता है । तृप्त होता हुआ वह महान् कर्मों के करने में हर्षित होता है । सत् तथा ऐश्वर्यवान् वह आत्मदेव महान्, सर्वव्यापक तथा सत्यस्वरूप इस परमात्मदेव को प्राप्त करता है ।।१।।

१४८७—गृत्समदः । इन्द्रः । अष्टिः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
३ २ ३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।२।।

पदार्थ—(साकम्) साथ (जातः) उत्पन्न (क्रतुना) ज्ञान तथा कर्म के (साकम्) साथ (ओजसा) बल के (ववक्षिथः) वहन करता है (साकम्) साथ (वृद्धः) बढ़ा हुआ (वीर्यैः) पराक्रमों के (सासहिः) दबानेवाला (मृधः) हिंसक वृत्तियों को (विचर्षणिः) द्रष्टा (दाता) देनेवाला (राधः) धन की (स्तुवते) प्रशंसा करता है (काम्यम्) चाहने योग्य (वसु) सुख के बसानेवाले (प्रचेतनः) चेतनस्वरूप (सः) वह (एनम्) इस (सश्चद्) प्राप्त होता है (देवः) देव (देवम्) देव (सत्यः) अविनाशी (इन्दुः) जीव के (सत्यम्) त्रिकाल सत्य (इन्द्रम्) परमेश्वर को ।।२।।

भावार्थ—चेतनस्वरूप, ज्ञान और कर्म के साथ उत्पन्न, पराक्रम के साथ बढ़ा हुआ, हिंसक वृत्तियों को दबानेवाला, द्रष्टा तथा दाता जो बल से इस शरीर को धारण कर रहा है तथा कामना करने योग्य, सुखकारक संसारी धन की प्रशंसा करता है वह अविनाशी जीव सत्यस्वरूप परमात्मदेव को प्राप्त करता है ।।२।।

१४८८—गृत्समदः । इन्द्रः । अष्टिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा
२र ३ २ ३ १ २
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।३।।

पदार्थ—(अध) अनन्तर (त्विषीमान्) प्रकाशस्वरूप (अभि) सब ओर से (ओजसा) बल से (क्रिविं) कूप के समान (युधा) व्यापकता या गति शक्ति से (अभवत्) है (आ) भली भांति (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को

(अपृणद्) पूर्ण करता है (अस्य) इसके (मज्मना) बल से (प्रवावृधे) बढ़ता है (अधत्त) धारण करता है (अन्यं) दूसरे को (जठरे) मध्य में (प्र) उत्तम रूप से (ईम्) इससे (अरिच्यत्) अतिरिक्त [पृथक्] रहता है (प्रचेतय) जानता है (सः) वह (एनम्) इसको (सश्चत्) संयुक्त करता है (देवः) देव (देवं) दिव्य (सत्यः) अविनाशी (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (सत्यम्) अविनाशी (इन्द्रम्) जीव को ॥३॥

भावार्थ—जो प्रकाशस्वरूप तथा अपने तेज से सब तेजों को दबा लेता है, जो अपनी व्यापकता से कूप के समान द्यु और पृथिवी लोक के गर्त्त को पूर्ण करता है, जिसकी महिमा से सारा जगत् बढ़ता है, जो अपने मध्य में सब पदार्थों को धारण करता तथा स्वयं उनसे पृथक् रहता है, जो सबको जानता तथा अविनाशी जीव को शरीर से युक्त करता है वह सत्यस्वरूप अविनाशी देव परमेश्वर है ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

卐 त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

चतुर्दशोऽध्यायः

१४८९—*प्रियमेधः । इन्द्र । गायत्री ।*

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्र) उत्तम (गोपतिम्) इन्द्रियों के स्वामी (गिरा) वेदवाणी द्वारा (इन्द्रम्) जीव की (अर्चत्) प्रशंसा करो (यथा विदे) यथावत् जानने के लिये (सूनुम्) पुत्र स्वरूप (सत्यस्य) परमेश्वर के (सत्पतिम्) सद्गुण के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! तू इन्द्रियों के स्वामी, परमेश्वर के पुत्ररूप तथा सद्गुणों के पालक जीव को यथावत् जानने के लिये वेदमन्त्र से प्रशंसा कर ॥१॥

१४९०—*प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सन्नवामहे ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भाँति (हरयः) सूर्य की किरणें (ससृज्रिरे) उत्पन्न की गई हैं (अरुषीः) प्रकाशमान (अधि) अधिकार करके (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (यत्र) जिस (अभि सन्नवामहे) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस अन्तरिक्षलोक में सूर्य की किरणें उत्पन्न की गयी हैं उस पर योग-सिद्धियों से अधिकार करके हम परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥२॥

१४९१—*प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (गावः) वेदवाणियाँ (आशिरम्) आश्रयण करने योग्य (दुदुह्रे) दोहन करती हैं (वज्रिणे) न्यायकारी (मधु) विज्ञान को (यत्) जो (सीम्) दूर तक (उपह्वरे) समीप में (विदत्) विद्यमान है ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणियाँ न्यायकारी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए उस ज्ञान का प्रकाश करती हैं जो सर्वत्र विद्यमान है ॥३॥

१४९२—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली प्रकार (नः) हमारे (विश्वासु) सारे (हव्यम्) पुकारने योग्य (इन्द्रम्) विद्या, ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष को (समत्सु) बाधा के समयों में (भूषत) अलंकृत करो (उप) समीप (ब्रह्माणि) वेदाध्ययन (सवनानि) यज्ञ समयों में (वृत्रहन्) हे अज्ञाननाशक (परमज्याः) हे काम, क्रोधादि शत्रुओं के नाशक (ऋचीषम) हे प्रशंसनीय ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सारे विघ्नकालों में विद्वान् पुरुष की सेवा करो। हे अज्ञाननाशक, काम-क्रोधादि को दूर करनेवाले तथा प्रशंसनीय विद्वन् ! आप हमारे वेदाध्ययन और यज्ञ समयों में उपस्थित रहो ॥१॥

१४९३—*नृमेधपुरुमेधौ । इन्द्रः । प्रगाथः ।*

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (दाता) देनेवाला (प्रथमः) प्रथम (राधसाम्) धनों का (असि) है (सत्यः) सत्यस्वरूप (ईशानकृत्) ऐश्वर्यशाली करनेवाला (तुविद्युम्नस्य) बहुत धन और अन्न के (युज्या) जोड़ने योग्य कार्यों को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (पुत्रस्य) पुत्र के (शवसः) बल के (महः) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू धनों आदि का दाता है । तू ही सत्यस्वरूप तथा भक्त को ऐश्वर्यशाली बनानेवाला है । तेरी कृपा से हम बहुत धन, अन्न, पुत्र तथा बल के प्राप्त करानेवाले कार्यों को स्वीकार करते हैं ॥२॥

१४९४—*त्रसदस्युः । सोमः । गायत्री ।*

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २र

प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गहाद्दिव आ निरधुक्षत ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥१॥

पदार्थ—(प्रत्नम्) सनातन (पीयूषम्) अमृतमय (पूर्व्यम्) आदि (यद्) जो (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (महः) महान् (गाहाद्) गम्भीर (दिवः) परमेश्वर से (आनिरधुक्षत) भली प्रकार दोहन करो (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अभि) भली प्रकार (जायमानम्) उत्पन्न हुए (समस्वरन्) प्रशंसा करते हैं ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् लोग, सनातन अपूर्व प्रशंसनीय तथा अमृतरूप आनन्द और ऐश्वर्य को अति गंभीर तथा महान् परमेश्वर से दोहन करते हैं। उत्पन्न हुए उस आनन्द और परमेश्वर की प्रशंसा करते हैं ॥१॥

१४९५—*त्रसदस्युः । सोमः । बृहती ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र

आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।

३ १ २र ३ १ २

दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥२॥

पदार्थ—(आत्) अनन्तर (ईम्) इस (केचित्) कई योगीजन (पश्यमानासः) साक्षात्कार करते हुए (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य (वसुरुचः) आत्मप्रकाश वाले (दिव्याः) दिव्यगुणयुक्त (अभ्यनूषत) उपासना करते हैं (दिवः) द्युलोक के (न) नहीं (वारम्) अन्धकार [आवरण] को (सविता) सूर्य (व्यूर्णुते) हटाता है ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर का साक्षात् करनेवाले, आत्मप्रकाश से युक्त तथा दिव्य विभूतियों वाले योगीजन सूर्य के उदय होने के पूर्व प्राप्त करने योग्य परमेश्वर की उपासना करते हैं ॥२॥

१४९६—*त्रसदस्युः । सोमः । बृहती ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥३॥

पदार्थ—(अध) अनन्तर (यत्) जो (इमे) ये (पवमान) हे शुद्धस्वरूप (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक में (इमा) इन (च) और (विश्वा) सारे (भुवना) लोकों में (अभि) व्यापक होकर (मज्मना) बल के साथ (यूथे) समूह में (न) समान (निष्ठाः) स्थित (वृषभः) बैल के (विराजसि) विराजमान हैं ॥३॥

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! क्योंकि तू गो-समूह में स्थित वृषभ के समान इन द्यु और पृथिवी लोक तथा सारे भुवनों में व्यापक होकर विराजमान है, अतः उपासनीय है ॥३॥

१४९७—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।

१ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस (ऊ) वितर्क (सु) उत्तम रूप से (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारे लिए (सनिम्) सेवनीय (गायत्रम्) सम्पूर्ण लोकों का (नव्यांसम्) नये नये ज्ञान के साधन (अग्ने) हे परमेश्वर (देवेषु) विद्वानों में (प्रवोचः) उपदेश करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारे ग्रहण करने योग्य तथा नये नये ज्ञान के साधनभूत संपूर्ण लोकों का विद्वानों को उपदेश करता है ॥१॥

१४९८—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२॥

पदार्थ—(विभक्ता) वितरण करनेवाला (असि) है (चित्रभानो) हे अद्भुत ज्ञानप्रकाश वाले (सिन्धोः) नदी के (ऊर्मा) प्रवाहशाली नहर के (उपाके) तट पर (आ) समान (सद्यः) तत्काल (दाशुषे) त्यागी के लिए (क्षरसि) वृष्टि करता है ॥२॥

भावार्थ—हे अद्भुत ज्ञान-प्रकाशवाले परमेश्वर ! तू धन का वितरण करने वाला है। नदी के किनारे से नहरों के समान तू दानी पुरुष के लिए धन की वृष्टि करता है ॥२॥

१४९९—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।

२ ३ २ ३ १ २

शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥३॥

पदार्थ— (आ) भली प्रकार (नः) हमें (भज) सेवन कराता है (परमेषु) उत्कृष्ट (आ) भली प्रकार (वाजेषु) भोगों में (मध्यमेषु) मध्यमों में (शिक्षा) उपदेश करता है (वस्वः) धन का (अन्तमस्य) समीपवर्ती पृथिवी लोक के ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें उत्कृष्ट तथा मध्यम श्रेणी के भोगों को प्राप्त कराता है। तू ही पृथिवीलोक-सम्बन्धी धन का उपदेश भी करता है ॥३॥

१५००—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥१॥

पदार्थ—(अहं) मैं विद्वान् जीव (इत्) ही (हि) निश्चय (पितुः) रक्षक (परि) सब प्रकार से (मेधाम्) बुद्धि को ऋतस्य परमेश्वर की (जग्रह) धारण किया है (अह) मैं (सूर्य इव) सूर्य के समान (अजनि) हो गया हूँ ॥१॥

भावार्थ—(समाधि दशा में हुआ विद्वान् जीव कहता है)—मैंने सबके रक्षक परमेश्वर की बुद्धि को धारण कर लिया है। मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ।१।

१५०१—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।

२उ ३ २ ३ २ ३ २

येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥२॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (प्रत्नेन) प्रवाह रूप से होनेवाले अनादिकालिक (जन्मना) जन्म से (गिरः) वेदवाणियों को (शुम्भामि) अलंकृत करता हूँ (कण्ववत्) मेधावी की भांति (येन) जिससे (इन्द्रः) परमेश्वर (शुष्मम्) बल (इत्) ही (दधे) मुझ में धारण कराता है ॥२॥

भावार्थ—मैं मेधावी पुरुष की भांति प्रवाह रूप से अनादि जन्म से वेदवाणी को अलंकृत करता हूँ जिससे परमेश्वर मुझ में बल धारण कराता है ॥२॥

१५०२—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्द्धस्व सुष्टुतः ॥३॥

पदार्थ—(ये) जो (त्वाम्) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (न) नहीं (तुष्टुवुः) स्तुति करते (ऋषयः) मंत्रद्रष्टा (ये) जो (च) और (तुष्टुवुः) स्तुति करते हैं (मम) मेरी (इत्) ही (वर्धस्व) वृद्धि कर (सुष्टुतः) अच्छी प्रकार स्तुति किया हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो लोग तेरी स्तुति नहीं करते और जो मंत्रद्रष्टा लोग तेरी स्तुति करते हैं उनके मध्य वर्तमान हमारे द्वारा स्तुति किया हुआ तू हमारी वृद्धि कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१५०३—अग्निः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३२३ १२

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (विश्वेभिः) नाना प्रकार की (अग्निभिः) अग्नियों से (जोषि) इच्छा करता है (ब्रह्म) ब्रह्माण्ड [के जानने] की (सहस्कृत) हे जल के निर्माता (ये) जो (देवत्रा) देवों में [पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में] (ये) जो (आयुषु) मनुष्यों में [अर्थात् जाठर अग्नि] (तेभिः) उनसे (नः) हमारी (महया) श्रेष्ठ करता है (गिरः) वाणियों को ॥१॥

भावार्थ—हे जल के निर्माता परमेश्वर ! तू नाना प्रकार की अग्नियों के द्वारा हमें ब्रह्माण्ड के जानने की इच्छा कराता है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा मनुष्यों में रहनेवाली अग्नि से हमारी वाणी को शक्ति देता है ॥१॥

१५०४—अग्निः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।

१२ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २

तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (सः) वह (विश्वेभिः) नाना प्रकार की (अग्निभिः) अग्नियों के द्वारा (अग्निः) परमेश्वर (सः) प्रसिद्ध (यस्य) जिसकी (वाजिनः) ऋतुएँ [होती हैं] (तनये) पुत्र (तोके) प्रपौत्र आदि (अस्मत्) हम में (आ) भली प्रकार (सम्यङ्) समीचीन (वाजैः) पराक्रमों से (परीवृतः) युक्त ॥२॥

भावार्थ—जिसकी नाना प्रकार की अग्नियों द्वारा ऋतुएँ पैदा होती हैं, अनन्य पराक्रमों से युक्त वह प्रसिद्ध परमेश्वर हमें तथा हमारे पुत्र पौत्र आदि को प्राप्त होवे ॥२॥

१५०५—अग्निः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (नः) हमारे (अग्ने) हे परमेश्वर (अग्निभिः) अग्नियों द्वारा (ब्रह्म) अन्न जल (यज्ञम्) यज्ञ (च) और (वर्धय) बढ़ाता है (त्वम्) तू (नः) हमें (देवतातये) यज्ञ के लिए (रायः) धनों के (दानाय) दान के लिए (चोदय) प्रेरणा करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अग्नियों द्वारा हमारे अन्न, जल तथा यज्ञ की वृद्धि करता है। तू ही हमें यज्ञ करने तथा धन का दान देने की प्रेरणा करता है ।३।

१५०६—त्रसदस्युः । सोमः । ऊर्ध्व बृहती ।

१ २ ३ २ ३१२ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

१ २र ३क २र

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१॥

पदार्थ—(त्वे) तुझ में (सोम) हे परमेश्वर (प्रथमा) मुख्य (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विग् लोग (महे) महान् (वाजाय) अन्न के लिए (श्रवसे) यश के लिए (धियम्) बुद्धि को (दधुः) धारण करते हैं (सः) वह (त्वम्) तू (नः) हमें (वीर) हे सर्वशक्तिमन् (वीर्याय) बल और पराक्रम के लिए (चोदय) प्रेरणा दे ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! मुख्य ऋत्विग् जन अन्न तथा महान् यश की प्राप्ति के लिए तेरे आश्रय में अपनी मति रखते हैं। तू हमें बल और पराक्रम प्राप्ति की प्रेरणा कर ॥१॥

१५०७—त्रसदस्युः । सोमः । ऊर्ध्व बृहती ।

३क २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कञ्चिज्जनपानमक्षितम् ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२॥

पदार्थ—(अभ्यभि) भली भांति (हि) निश्चय (श्रवसा) यश और धन से (ततर्दिथ) विस्तृत करता है (उत्सम्) कूप के (न) समान (जनपानम्) लोगों के पानी पीने के लिए उपयोगी (अक्षितम्) क्षीण न होने वाला (शर्याभिः) अंगुलियों से (न) समान (भरमाणः) भरनेवाले के (गभस्त्योः) हाथों की ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू लोगों के पानी पीने के योग्य, न क्षीण होनेवाले कूप के समान तथा हाथ से जल भरनेवाले के समान धन और यश से सबको भरपूर कर देता है ॥२॥

१५०८—त्रसदस्युः । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।

१२ ३ २ ३ २ ३ १२

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥३॥

पदार्थ—(अजीजनः) उत्पन्न करता है (अमृत) हे अविनाशी (मर्त्याय) मरणधर्म जीव के लिए (कम्) सुख को (ऋतस्य) जल के (धर्मन्) धारक अन्तरिक्ष में (अमृतस्य) सदा रहनेवाले (चारुणः) कल्याणकारी (सदा) सर्वदा (असरः) व्यापक हो रहा है (वाजम्) अन्न आदि (अच्छा) भली प्रकार (सनिष्यदत्) वितरण करता हुआ ।।३।।

भावार्थ—हे अविनाशी तथा नित्य परमेश्वर ! तू मरणधर्मा प्राणी के लिए सुख उत्पन्न करता है । अन्नादि को प्रदान करता हुआ सदा रहनेवाले तथा कल्याणकारी जल के धारक अन्तरिक्ष में व्यापक हो रहा है ।।३।।

१५०९ —*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१ २र ३ २
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ।।१।।

पदार्थ—(आ) भली भांति (इन्दुम्) यज्ञ की (इन्द्राय) परमेश्वर के निमित्त (सिञ्चत) योजना करो (पिबाति) रक्षा करता है (सोम्यम्) ऐश्वर्य-साधक (मधु) विज्ञान की (प्र) उत्तमरूप से (राधांसि) धनों की (चोदयते) प्रेरणा करता है (महित्वना) अपनी महिमा से ।।१।।

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग परमेश्वर के निमित्त यज्ञ का संपादन करो । वह ऐश्वर्य के साधन विज्ञान की रक्षा करता है तथा अपनी महिमा से धन-प्राप्ति की प्रेरणा देता है ।।१।।

१५१०—*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ।।२।।

पदार्थ—(उप) समीपता से (उ) पादपूरक (हरीणां) मनुष्यों के (पतिम्) पालक (राधः) धन का (पृञ्चन्तम्) सम्पर्क कराते हुए (अब्रवम्) स्तुति करते हैं (नूनं) निश्चय ही (श्रुधि) सुन (स्तुवतः) स्तुति करनेवाले (अश्व्यस्य) विद्वान् की ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मनुष्यों के पालक तथा धन को देनेवाले तुझ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ । तू स्तुति करनेवाले मुझ विद्वान् की टेर सुन ।।२।।

१५११—*विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।*

१ ३क २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
न ह्यां३ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
न की राया नैवथा न भन्दना ।।३।।

पदार्थ—(न हि) नहीं (अंग) हे (पुरा) पहले (च) और (न) नहीं (जज्ञे) पैदा हुआ (वीरतरः) अधिक वीर (त्वत्) तुझ से (न किः) न तो (राया) धन से (न) नहीं (एवथा) रक्षा से (न) नहीं (भन्दना) स्तुति से ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कोई भी तुझ से प्रथम नहीं=अर्थात् तू अनादि है कोई तुझसे अधिक वीर तीनों कालों में न हुआ, न है और न होगा । धन-रक्षा तथा स्तुति द्वारा भी कोई तुझसे बढ़कर या तेरे समान नहीं ।।३।।

१५१२—*प्रियमेधः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ।।१।।

पदार्थ—(नदम्) उपदेष्टा (वः) तुम लोग (ओदतीनाम्) उषाओं का (नदं) उपदेष्टा (योयुवतीनाम्) संयोजक शक्तियों [या चन्द्र किरणों] का (पतिम्) पालक (वः) तुम्हारा (अघ्न्यानाम्) गौओं का (धेनूनाम्) वेदवाणियों का (इषुध्यसि) याचना करो ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उषा तथा संयोजक शक्तियें किरणों आदि के उपदेष्टा और गौओं, वेदवाणियों तथा अपने पालक परमेश्वर की प्रार्थना करो ।।१।।

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५१३—*वसिष्ठः । अग्निः । बृहती ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ।।१।।

पदार्थ—(देवः) दिव्य गुणयुक्त (वः) तुम्हारी (द्रविणोदाः) अग्नि (पूर्णाम्) भरी हुई (विवष्टु) चाहती है (आसिचम्) स्रुवा को (उत्) उत्कृष्ट (वा) और (सिंचध्वम्) सींचो (उप) समीप (पृणध्वम्) भरो (आत्) अनन्तर (इत्) ही (वः) तुम्हें (देवः) परमेश्वर (ओहते) प्राप्त कराता है ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! प्रदीप्त यज्ञ की अग्नि में तुम्हारी घी से भरी स्रुवा पड़नी चाहिए । तुम लोग स्रुवा को घी से भरपूर करो और अग्नि को घी से सींचो । तदनन्तर परमेश्वर तुम्हारे अभीष्ट को प्राप्त करायेगा ।।१।।

१५१४—*वसिष्ठः । अग्निः । बृहती ।*

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ।।२।।

पदार्थ—(तम्) उस (होतारम्) दाता (अध्वरस्य) कल्याणकारी यज्ञ का (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धिवाले (वह्निम्) वाहक=वहन करनेवाला (देवाः) विद्वान् जन (अकृण्वत) बनाते हैं (दधाति) धारण करता है (रत्नम्) रत्न आदि (विधते) उपासक के लिए (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को (अग्निः) परमेश्वर (जनाय) मनुष्य के लिए (दाशुषे) दानी ।।२।।

भावार्थ—विद्वान् जन उस श्रेष्ठ ज्ञानवाले, तथा दाता परमेश्वर को कल्याणकारी यज्ञ का वहन करनेवाला स्वीकार करते हैं जो कि उपासक तथा दानी पुरुष को रत्न तथा उत्तम पराक्रम आदि प्रदान करता है ।।२।।

१५१५—*सौभरिः । अग्निः । बृहती ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु जातमार्यस्य वर्द्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ।।१।।

पदार्थ—(अदर्शि) दिखाई पड़ता है [जाना जाता है] (गातुवित्तमः) पृथिवी का अत्यन्त ज्ञाता (यस्मिन्) जिसके आश्रय में (व्रतानि) नियमों को (आदधुः) धारण करते हैं (उप) समीप (उ) निश्चय (सु) उत्तम (जातम्) प्रसिद्ध (आर्यस्य) श्रेष्ठाचारी के (वर्द्धनम्) बढ़ानेवाले (अग्निम्) विद्वान् को (नक्षन्तु) प्राप्त हो (नः) हमारी (गिरः) प्रशंसा की वाणियां ।।१।।

भावार्थ—जो पृथिवी आदि लोकों का ज्ञाता है, जिसके आश्रय में लोग नियम आदि का धारण करते हैं उस सुप्रसिद्ध श्रेष्ठाचारी की वृद्धि करनेवाले विद्वान् पुरुष को हमारे प्रशंसा के वाक्य प्राप्त हों ।।१।।

१५१६—*सौभरिः । अग्निः । बृहती ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ।।२।।

पदार्थ—(यस्मात्) जिससे (रेजन्त) काँपते हैं (कृष्टयः) मनुष्य (चर्कृत्यानि) सृष्टि के कर्त्तव्य कर्मों को (कृण्वतः) करते हुए (सहस्रसाम्) सहस्रों प्रकार के धनों के दाता (मेधसातौ) यज्ञ में (इव) पादपूरक (त्मना) स्वयं (अग्निम्) परमेश्वर को (धीभिः) बुद्धियों तथा कर्मों द्वारा (नमस्यत) नमस्कार करो ।।२।।

भावार्थ—हे लोगो ! मनुष्य सृष्टि के कर्त्तव्य कर्मों को करनेवाले जिस परमेश्वर से डरते हैं उस सहस्रों प्रकार के धनों के दाता परम प्रभु को यज्ञ में अपने कर्म और ज्ञान से नमस्कार करो ।।२।।

१५१७—*सौभरिः । अग्निः । बृहती ।*

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।।३।।

पदार्थ—(प्र) उत्तम (दैवोदासः) सूर्यसम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (देवः) प्रकाशमान (इन्द्रः न) विद्युत् के समान (मज्मना) बल से (अनु) तरफ (मातरम्) माता (पृथिवीं) पृथिवी की (विवावृते) आती है (तस्थौ) स्थित होती है (नाकस्य) अन्तरिक्ष के (शर्मणि) अवकाश में ।।३।।

भावार्थ—सूर्यसम्बन्धी प्रकाशमान अग्नि विद्युत् के समान अपने बल के साथ समस्त प्राणियों की माता पृथिवी पर आती है । वह अन्तरिक्ष के पोल में भी स्थित है ।।३।।

१५१८—*शतं वैखानसाः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।।१।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे विद्वन् (**आयूंषि**) आयुओं को (**पवसे**) पवित्र कर (**आसुव**) प्राप्त करा (**ऊर्जम्**) बल (**इषम्**) ज्ञान को (**च**) और (**नः**) हमारे (**आरे**) दूर (**बाधस्व**) हटा (**दुच्छुनाम्**) दुर्गुणों को ।।१।।

भावार्थ—हे विद्वन् ! तू हमारी आयुओं को पवित्र कर। हमें बल और ज्ञान दे। हमारे दुर्गुणों को दूर हटा ।।१।।

१५१९—*शतं वैखानसाः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २उ ३ १२ ३ १२ ३१२ १२ ३२

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ।।२।।

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**ऋषिः**) सर्वव्यापक और सर्वद्रष्टा (**पवमानः**) शुद्धस्वरूप (**पांचजन्यः**) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद [अवर्ण] के द्वारा उपास्य (**पुरोहितः**) सृष्टि के पदार्थों की रचना से पूर्व धारण करनेवाला (**तम्**) उसकी (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं (**महागयम्**) महाशक्तिशाली ।।२।।

भावार्थ—परमेश्वर सर्वव्यापक, सर्वसाक्षी, शुद्धस्वरूप सृष्टि के पदार्थों को रचना से पूर्व धारण करनेवाला तथा पांचों जनों का उपास्य है। उस सर्वशक्तिमान् की हम उपासना करते हैं ।।२।।

१५२०—*शतं वैखानसाः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १२३ २र ३ १ २

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिम् मयि पोषम् ।।३।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**पवस्व**) प्राप्त करा (**स्वपाः**) उत्तम कर्मवाला (**अस्मे**) हमें (**वर्चः**) अन्न (**सुवीर्यम्**) उत्तम बल (**दधत्**) धारण करा (**रयिम्**) धन को (**मयि**) मुझे (**पोषम्**) पुष्टि को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उत्तम कर्मवाला तू हमें अन्न तथा उत्तम बल दे। तू हमें धन तथा पुष्टि धारण करा ।।३।।

१५२१—*वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३१२ ३१२ ३ १२ २ ३१२३ १२

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ।।१।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**पावक**) शुद्धस्वरूप (**रोचिषा**) ज्ञान-प्रकाश से (**मंद्रया**) आनन्दकारी (**देव**) हे देव (**जिह्वया**) वेदवाणी से (**आ**) भली प्रकार (**देवान्**) तैंतीस देवों को (**वक्षि**) धारण करता है (**यक्षि**) संगत करता है (**च**) और ।।१।।

भावार्थ—हे शुद्धस्वरूप परमात्म देव ! तू अपने तेज तथा आनन्ददायिनी वेदवाणी से तैंतीस देवों को धारण और संगत करता है ।।१।।

१५२२—*वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवां आ वीतये वह ।।२।।

पदार्थ—(**तं**) उस (**त्वा**) तेरी (**घृतस्नो**) हे प्रकाश के प्रेरक वा उत्पादक (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं (**चित्रभानो**) अद्भुत प्रकाशवाले (**स्वर्दृशम्**) सुख के दिलानेवाले (**देवान्**) विद्वानों को (**आ**) भली भांति (**वीतये**) ज्ञान-प्राप्ति के लिए (**वह**) प्राप्त करा ।।२।।

भावार्थ—हे प्रकाश के उत्पादक तथा अद्भुत प्रकाशवाले परमेश्वर ! हम तुझ सुख दाता की प्रार्थना करते हैं। तू ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें विद्वानों को प्राप्त करा ।।२।।

१५२३—*वसूयवः । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ।।३।।

पदार्थ—(**वीतिहोत्रम्**) प्राप्ति ग्रहण करनेवाले=सर्वव्यापक (**त्वा**) तुझे (**कवे**) हे सर्वज्ञ (**द्युमन्तम्**) प्रकाशस्वरूप (**समिधीमहि**) प्रकाशित करते हैं (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**बृहन्तम्**) महान् (**अध्वरे**) हृदयाकाश में ।।३।।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! हम तुझ सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप तथा महान् प्रभु को अपने हृदयाकाश में समाधिबल से प्रकाशित करते हैं ।।३।।

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५२४—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्र भर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ।।१।।

पदार्थ—(**अव**) रक्षाकर (**नः**) हमारी (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**गायत्रस्य**) गायत्री द्वारा कहे गये ज्ञान के (**प्रभर्मणि**) संपादन में (**विश्वासु**) सारे (**धीषु**) कर्मों में (**वन्द्य**) हे वन्दनीय ।।१।।

भावार्थ—हे समस्त कर्मों में स्तुति किये जाने योग्य परमेश्वर ! तू अपने रक्षा साधनों से गायत्री द्वारा प्रतिपादित ज्ञान के संपदान में हमारी रक्षा कर ।।१।।

१५२५—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ।।२।।

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**नः**) हमें (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**रयिम्**) धन को (**भर**) भरपूर कर (**सत्रासाहम्**) सदा ही दारिद्रय हरण करनेवाले (**वरेण्यम्**) वरण करने योग्य (**विश्वासु**) सारे (**पृत्सु**) संग्रामों में (**दुष्टरम्**) शत्रुओं से न तरा जानेवाले ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें दरिद्रता को सदा दूर करनेवाले, चाहने योग्य तथा समस्त संग्रामों में शत्रुओं द्वारा न समाप्त किये जाने योग्य धन से भरपूर कर ।।२।।

१५२६—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ।।३।।

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**नः**) हमें (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**सुचेतुना**) उत्तम ज्ञान से [युक्त] (**रयिम्**) धन को (**विश्वायुपोषसम्**) समस्त मनुष्यों का पोषण करनेवाले (**मार्डीकम्**) सुख के साधन (**धेहि**) धारण करा (**जीवसे**) जीविका के [जीवन के] लिए ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमें जीविका के लिए उत्तम ज्ञान से युक्त, समस्त मनुष्यों का पोषण करनेवाला तथा सुख का हेतुभूत धन प्रदान कर ।।३।।

१५२७—*केतुः । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ।।१।।

पदार्थ—(**अग्निम्**) आत्मा और परमात्मा को (**हिन्वन्तु**) जाने (**नः**) हमारे (**धियः**) बुद्धियां (**सप्तिम्**) अश्व के (**आशुम्**) शीघ्रगामी (**इव**) समान (**आजिषु**) संग्रामों में (**तेन**) उससे (**जेष्म**) जीतें (**धनम्**) वृद्धि देनेवाले (**धनम्**) धन को ।।१।।

भावार्थ—हमारी बुद्धियां संग्राम में शीघ्रगामी अश्व को योद्धा के समान आत्मा और परमात्मा को जानें। इस ज्ञान से हम वृद्धि करने वाले धन को जीतें ।।१।।

१५२८—*केतुः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २

यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ।।२।।

पदार्थ—(**यया**) जिस (**गाः**) वेदवाणियों को (**आकरामहै**) प्राप्त करें (**सेनया**) विघ्नों का निवारण करनेवाली (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**तव**) तेरी (**ऊत्या**) रक्षा से (**तां**) उसे (**नः**) हमें (**हिन्व**) प्रेरित कर (**मघत्तये**) धन प्राप्ति के लिए ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विघ्नों को दूर करनेवाली जिस तेरी रक्षा से हम वेदवाणियों को प्राप्त करते हैं उसकी हमें उत्तम धन की प्राप्ति के लिए प्रेरणा दे ।।२।।

१५२९—*केतुः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पविम् ।।३।।

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**स्थूरम्**) स्थूल (**रयिम्**) धन को (**भर**) भरपूर कर (**पृथु**) विशाल (**गोमन्तम्**) गौओं से युक्त (**अश्विनम्**) घोड़ों से युक्त (**अङ्धि**) प्रकाशित करता है (**खं**) आकाश को (**वर्तय**) प्रवृत्त करता है (**पविम्**) वाणी को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आकाश को तेज से प्रकाशित करता है। तू वाणी को अपने कर्म में प्रवृत्त करता है। तू हमें गौ तथा अश्व आदि से युक्त विशाल और विस्तृत धन प्रदान कर ।।३।।

१५३०—*केतुः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ २ ३ २ ३ १ २

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ।।४।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**नक्षत्रम्**) नक्षत्र को (**अजरम्**) न जीर्ण हुए (**आ**) भली भांति (**सूर्यम्**) सूर्य को (**रोहयः**) स्थापित किया (**दिवि**) द्युलोक में (**दधत्**) धारण करते हुए (**ज्योतिः**) प्रकाश (**जनेभ्यः**) समस्त प्राणियों के लिए ।।४।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समस्त प्राणियों के लिए प्रकाश को धारण करते हुए तूने न जीर्ण होनेवाले सूर्य और नक्षत्र को द्युलोक में स्थापित किया है ।।४।।

१५३१—*केतुः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २उ ३ १ २

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ।।५।।

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (केतुः) ज्ञाता (विशाम्) प्रजाओं का (असि) है (प्रेष्ठः) अत्यन्त प्रिय (श्रेष्ठः) अत्यन्त महान् (उपस्थसत्) सबके समीप स्थित (बोध) जना [ज्ञान दे] (स्तोत्रे) स्तुति करनेवाले के लिए (वयः) आयु (दधत्) धारण करते हुए ।।५।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू श्रेष्ठ, भक्तों का अत्यन्त प्रिय, समस्त प्रजा का ज्ञाता तथा सर्वव्यापक होने से सबके समीप उपस्थित है ! तू स्तुति करनेवाले को जीवन प्रदान करते हुए बोध दे ।।५।।

१५३२—*विरूपः । अग्निः । गायत्री ।*

३ २३ २ ३२ ३१ २र ३ २ ३२
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
३ १ २र
अपां रेतांसि जिन्वति ।। १ ।।

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि (मूर्धा) मूर्त्तवस्तुओं को धारण करनेवाला (दिविः) द्युलोक का (ककुत्) महान् (पतिः) रक्षक (पृथिव्याः) पृथिवी का (अयम्) यह (अपां) जलों के (रेतांसि) परमाणुओं को (जिन्वति) गति देता है ।। १ ।।

भावार्थ—यह प्रसिद्ध अग्नि मूर्त्त पदार्थों को धारण करने वाला, द्यु तथा पृथिवी लोक का महान् रक्षक है। यह जल के परमाणुओं को गति देता है ।। १ ।।

१५३३—*विरूपः । अग्निः । गायत्री ।*

१२३ १२३ २ ३१२ ३क २र
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
३२ ३२३ १२
स्तोता स्यां तव शर्मणि ।। २ ।।

पदार्थ—(ईशिषे) स्वामी होता है (वार्यस्य) वरणीय (हि) निश्चय (दात्रस्य) देने योग्य धन का (अग्ने) हे परमेश्वर (स्वः पतिः) सुख का रक्षक (स्तोता) भक्त (स्याम्) होऊँ (तव) तेरा (शर्मणि) सुख प्राप्ति के निमित्त ।२।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सुख का रक्षक तू वरणीय तथा देने योग्य धन का स्वामी है । तेरी स्तुति करनेवाला मैं सुख में रहूँ ।।२।।

१५३४—*विरूपः । अग्निः । गायत्री ।*

१२३ १२३ १२ ३१ २र २३ १२३ १२
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ।।३।।

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (अग्ने) हे परमेश्वर (शुचयः) पवित्र (तव) तेरे (शुक्राः) शुद्ध (भ्राजन्तः) प्रकाशमान हुए (ईरते) प्रेरित करते हैं (तव) तेरे (ज्योतींषि) सूर्य तथा नक्षत्र आदि को (अर्चयः) तेजः प्रकाश ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! शुद्ध पवित्र तथा प्रकाशमान तेरे प्रकाशपुंज सूर्य तथा नक्षत्र आदि को प्रकाशित करते हैं ।।३।।

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

पञ्चदशोऽध्यायः

१५३५—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३क २र २ ३ १ २ ३ २
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।।१।।

पदार्थ—(कः) कौन (ते) तेरे (जामिः) बन्धु (जनानाम्) जनों का (अग्ने) हे परमेश्वर (कः) कौन (दाश्वध्वरः) तेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला (कः) सुखस्वरूप (ह) निश्चय (कस्मिन्) किस में (असि) है (श्रितः) आश्रय लिए हुए ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे जनों का बन्धु कौन है। तेरे निमित्त यज्ञ करनेवाला कौन है । सुखस्वरूप तू किसमें आश्रय ले रहा है ।।१।।

१५३६—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ।।२।।

पदार्थ—(त्वं) तू (जामिः) बन्धु (जनानाम्) जनों का (अग्ने) हे परमेश्वर (मित्रः) मित्र (असि) है (प्रियः) प्रिय (सखा) सखा (सखिभ्यः) मित्रता रखनेवाले के लिए (ईड्यः) पूजनीय ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही जनों का बन्धु, तथा प्रिय मित्र है। तुझ से मित्रता करनेवालों का तू हितकारी तथा पूज्य है ।।२।।

१५३७—*गोतमः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २र
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।।३।।

पदार्थ—(यज) संगत कर (नः) हमारे लिए (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (यजा) संगत कर (देवान्) अन्य अग्नि आदि देवों को (ऋतं) जल को (बृहत्) महान (अग्ने) हे परमेश्वर (यक्षि) संगत कर (स्वं) स्वकीय (दमम्) गृह समस्त संसार को ।।३।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्राण, अपान, अग्नि आदि अन्य देव, महान् जल, तथा उसमें व्यापक होने से अपने गृहरूप समस्त संसार को हमारे उपयोग के लिए संगत कर ।।३।।

१५३८—*देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ।।१।।

पदार्थ—(ईडेन्यः) स्तोताओं से स्तुति किया जाने योग्य (नमस्यः) सबका नमस्करणीय (तिरः) तिरस्कार करनेवाला (तमांसि) अज्ञान अन्धकारों को (दर्शतः) सत्य मार्ग दिखानेवाला (सम्) सम्यक् (अग्निः) परमेश्वर (इध्यते) समाधि से प्रकाशित किया जाता है (वृषा) कामनाओं की पूर्त्ति करनेवाला ।।१।।

भावार्थ—सब से स्तुत्य तथा नमस्कार करने योग्य, अज्ञानान्धकार का नाशक, सत्य पथ प्रदर्शक और मनोरथ को पूरा करनेवाला परमेश्वर योग समाधि द्वारा हृदय में साक्षात् किया जाता है ।।१।।

१५३९—*देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ।।२।।

पदार्थ—(वृषा) मनोरथों को पूरा करनेवाला (उ) पादपूरक (अग्निः) परमेश्वर (समिध्यते) हृदय में प्रकाशित होता है (अश्वः) विद्युत् के (न) समान (देववाहनः) समस्त देवों का धारक (तम्) उसकी (हविष्मन्तः) श्रद्धावाले भक्त (ईडते) भक्ति करते हैं ।।२।।

भावार्थ—कामनाओं की पूर्त्ति करनेवाला तैंतीस देवों का धारक परमेश्वर विद्युत् के समान हृदय देश में प्रकाशित होता है। उसकी श्रद्धालु भक्त लोग उपासना करते हैं ।।२।।

१५४०—*देवश्रवा देववातश्च । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ।।३।।

पदार्थ—(वृषणं) मनोरथों को पूरा करनेवाले (त्वा) तेरा (वयं) हम (वृषन्) हे सर्वशक्तिमान् (वृषणः) शक्तिशाली (समिधीमहि) ध्यान करते हैं (अग्ने) हे परमेश्वर (दीद्यतं) प्रकाशमान (बृहत्) अत्यन्त ।।३।।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! शक्तिशाली हम लोग अत्यन्त तेजस्वी तथा मनोरथों को पूरा करनेवाले तुझ प्रभु का ध्यान करते हैं ॥३॥

१५४१—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (ते) तेरा (बृहन्तः) महान् (अर्चयः) प्रकाश (समिधानस्य) ध्यान किया गया (दीदिवः) हे प्रकाशस्वरूप (अग्ने) हे परमेश्वर (शुक्रासः) शुद्ध (ईरते) व्यापक है ॥१॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू ध्यान के योग्य है । तेरा शुद्ध और महान् प्रकाश सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥१॥

१५४२—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २क १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
उप त्वा जुह्वो३मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥२॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे निमित्त (जुह्वः) स्रुवाएँ (मम) मेरी (घृताचीः) घी से भरी (यन्तु) अग्नि में पड़ती रहें (हर्यत) हे कमनीय (अग्ने) परमेश्वर (हव्याः) स्तुतियों को (जुषस्व) स्वीकार कर (नः) हमारी ॥२॥

भावार्थ—हे कामना करने योग्य परमेश्वर ! तेरे निमित्त हमारी घी से भरी स्रुवाएँ अग्नि में पड़ती रहें । तू हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर ॥२॥

१५४३—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥३॥

पदार्थ—(मन्द्रम्) आनन्ददाता (होतारम्) दाता (ऋत्विजम्) ऋतुओं को पैदा करनेवाले (चित्रभानुम्) अद्भुत प्रकाशवाले (विभावसुम्) प्रकाश के धनी (अग्निम्) परमेश्वर की (ईडे) स्तुति करता हूँ (सः) वह (उ) अवश्य (श्रवत्) सुने ॥३॥

भावार्थ—मैं आनन्द तथा कर्मफलदाता, ऋतुओं के उत्पादक, अद्भुत प्रकाशवाले तथा तेजस्वी परमेश्वर की उपासना करता हूँ । वह हमारी स्तुति सुनें ॥३॥

१५४४—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २क २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१॥

पदार्थ—(पाहि) रक्षाकर (नः) हमारी (अग्ने) हे परमेश्वर (एकया) ऋग्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षाकर (उत) और (द्वितीयया) दूसरे यजुर्वेद की वाणी से (पाहि) रक्षाकर (गीर्भिः तिसृभिः) तीनों वाणियों से (ऊर्जाम्पते) हे बलों के स्वामी (पाहि) रक्षाकर (चतसृभिः) चारों वेदवाणियों से (वसो) हे सबको निवास देनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी, तथा सबको निवास देनेवाले परमेश्वर ! तू चारों प्रकार की वेदवाणियों के द्वारा हमारी रक्षाकर ॥१॥

१५४५—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥२॥

पदार्थ—(पाहि) रक्षा कर (विश्वस्मात्) सारे (रक्षसः) बुरी प्रवृत्तियों वालों से (अराव्णः) दान न देनेवाले से (प्र) उत्तम (स्म) पादपूरक (वाजेषु) संग्रामों में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर (त्वाम्) तुझे (इत्) ही (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप (आपिम्) बन्धु (देवतातये) यज्ञ के लिए (नक्षामहे) प्राप्त करते हैं (वृधे) उन्नति के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू समस्त बुरी वृत्तियोंवाले मनुष्य और दान न देनेवाले से हमें बचा । संग्रामों में हमारी रक्षा कर । क्योंकि यज्ञ और हमारी उन्नति के लिए अत्यन्त निकट बन्धु तू ही है । तुझे ही हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१५४६—त्रितः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
चिकिद्वि भाति भासः बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

पदार्थ—(इनः) स्वामी [ईश्वर] (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप (अरतिः) सर्वव्यापक (समिद्धः) तेजस्वी (रौद्रः) दुष्टों को भय देनेवाला (दक्षाय) बल तथा धन का (सुषुमान्) उत्पादक (अदर्शि) साक्षात् किया जाता है (चिकित्) सर्वज्ञ (विभाति) विराजमान है ((भासा) अपने तेज से (बृहता) महान् (असिक्नीम्) रात्रि को (एति) प्राप्त कराता है (रुशतीम्) प्रकाश को (अपाजन्) दूर करता हुआ ॥१॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! सबका स्वामी, सर्वव्यापक तेजस्वी, दुष्टों को दण्ड देनेवाला, बल तथा धन का उत्पादक और सर्वज्ञ तू योगियों से साक्षात्कार किया जाता है । तू महान् प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है तथा रात्रि के अन्धकार को प्राप्त कराता है ॥१॥

१५४७—त्रितः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

पदार्थ—(कृष्णाम्) काली (यत्) जब (एनीम्) आनेवाली रात्रि को (अभि) भली भाँति (वर्पसा) अपने तेज से (भूत्) दवा लेता है तब (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (योषाम्) स्त्रीरूप उषा को (बृहतः) महान् (पितुः) पालक [सूर्य से] (जाम्) उत्पन्न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (भानुम्) प्रकाश को (सूर्यस्य) सूर्य के (स्तभायन्) थांभता हुआ (दिवः) द्युलोक की (वसुभिः) संपदाओं से (अरतिः) सर्वव्यापक (विभाति) प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थ—जब सर्वव्यापक परमेश्वर महान् सूर्य से उत्पन्न स्त्री के समान उषा को प्रकाशित करता हुआ रात्रि को अपने तेज से दबा देता है तब सूर्य के प्रकाश को ऊपर स्थापित करता हुआ द्युलोक की प्रकाशक संपदाओं से समस्त जगत् को प्रकाशित करता है ॥२॥

१५४८—त्रितः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३उ २र ३ २
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठनुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

पदार्थ—(भद्रः) कल्याणकारी (भद्रया) कल्याणकारिणी भक्ति के द्वारा (सचमानः) भजन किया गया (आगात्) प्राप्त होता है (स्वसारम्) रात्रि को (जारः) सूर्य [जैसे] (अभ्येति) प्राप्त करता है (पश्चात्) पीछे (सुप्रकेतैः) उत्तम ज्ञानों से युक्त (द्युभिः) तेजों से (अग्निः) परमेश्वर (वितिष्ठन्) अचल रूप से स्थित होकर (उशद्भिः) कमनीय (वर्णैः) वर्णों [प्रकाशों से] (रामम्) रात्रि के अन्धकार को (अस्थात्) स्थित हो रहा है ॥३॥

भावार्थ—कल्याणकारिणी भक्ति द्वारा भजन किया हुआ परमेश्वर अपने उत्तम ज्ञान रूप प्रकाशों से भक्त के हृदय में स्थित होता हुआ वैसे ही प्राप्त होता है जिस प्रकार कि सूर्य रात्रि के पीछे चलता है । वह चन्द्र और नक्षत्रों के कमनीय प्रकाशों के साथ रात्रि के अन्धकार में स्थित हो रहा है ॥३॥

१५४९—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥१॥

पदार्थ—(कया) सुखमयी [स्तुति से] (ते) तेरी (अग्ने) हे परमेश्वर (अङ्गिरः) हे सृष्टि के अङ्गीभूत समस्त पदार्थों और जीवों में रमनेवाले अर्थात् हे सर्वव्यापक (ऊर्जः) बल (नपात्) हे रक्षक (उप) समीप (स्तुतिम्) उपासना को (वराय) श्रेष्ठ (देव) हे देव (मन्यवे) मनन के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक तथा सर्वव्यापक परमेश्वर देव ! हम सुखमयी स्तुति से उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए तेरी स्तुति करें ॥१॥

१५५०—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥२॥

पदार्थ—(दाशेम) त्याग करें (कस्य) सुखस्वरूप (मनसा) मन से (यज्ञस्य) पूजनीय (सहसो यहो) हे बल के प्राप्त करानेवाले और स्तुति योग्य (कदु) कब (वोचे) बोलूँ (इदम्) यह (नमः) नमस्कार ॥२॥

भावार्थ—हे बल के प्राप्त करानेवाले और उपासनीय परमेश्वर ! सुखस्वरूप तथा पूजनीय तुझ देव के लिए कब नमस्कार करें और तुझ में कर्मफल का कब अर्पण करें (अर्थात् सर्वदा नमस्कार करें) ॥२॥

१५५१—उशनाः । अग्निः । गायत्री ।

१ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३ १ २
अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥३॥

पदार्थ—(अघा) अनन्तर (त्वम् हि) तू ही (नः) हमारी (करः) करता है (विश्वाः) सारी (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (सुक्षितीः) प्रजायें (वाजद्रविणसः) बल और धनयुक्त (गिरः) वाणियों को ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही हमारी वाणियों और प्रजा को बल और धन युक्त करता है ॥३॥

१५५२—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (आयाहि) प्राप्त होता है (अग्निभि) तीन प्रकार की यज्ञ की अग्नियों के द्वारा (होतारम्) कर्म फलदाता (त्वा) तेरी (वृणीमहे) स्तुति करते हैं (आ) भली भाँति (त्वा) तुझे (अनक्तु) प्राप्त करें (प्रयता) प्रयत्न से की जानेवाली (हविष्मती) यज्ञ की सामग्री से युक्त भक्ति (यजिष्ठम्)पूज्य (बर्हिः) कर्म का (आसदे) अनुष्ठान करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें यज्ञ की तीन अग्नियों द्वारा प्राप्त होता है । तुझ कर्म फलदाता की मैं स्तुति करता हूँ । उत्तम कर्म का मैं तेरे लिए अनुष्ठान करता हूँ । यत्नपूर्वक की गई हमारी भक्ति तुझे प्राप्त हो ॥१॥

१५५३—भर्गः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्नि यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥

पदार्थ—(अच्छा) अच्छी तरह (हि) क्योंकि (त्वा) तुझे प्राप्त करने के लिए (सहसः) बल के (सूनो) हे उत्पादक (अङ्गिरः) हे शरीरधारी=जीवों को सुख देनेवाले (स्रुचः) स्रुवाएँ (चरन्ति) चलती हैं (अध्वरे) यज्ञ में (ऊर्जो नपातम्) बल के रक्षक (घृतकेशम्) प्रकाशरूप केशवाले (ईमहे) स्तुति करता हूँ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप की (यज्ञेषु) श्रेष्ठ कर्मों में (पूर्व्यम्) सनातन ॥२॥

भावार्थ—हे बल के उत्पादक, सब जीवों के सुखदाता परमेश्वर हमारे यज्ञादि कर्म तुझे प्राप्त करने के लिए होते हैं । हम बल के रक्षक प्रकाशरूप केशवाले तुझ स्वप्रकाशस्वरूप देव की स्तुति करते हैं ॥२॥

१५५४—पुरुमीढः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१॥

पदार्थ—(अच्छा) अच्छी तरह (नः) हमारी (शीरशोचिषम्) व्यापक प्रकाश वाले (गिरः) स्तुतियाँ (दर्शतम्) भजन के योग्य या साक्षात्कार के योग्य (यन्तु) प्राप्त हों (अच्छा) अच्छी तरह (यज्ञासः) श्रेष्ठ कर्म (नमसा) नमस्कार के साथ (पुरुवसुम्) सकल सम्पदाओंवाले (पुरुप्रशस्तम्) अत्यन्त स्तुति के योग्य (ऊतये) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हमारी स्तुतियां व्यापक प्रकाशवाले और साक्षात्कार के योग्य परमेश्वर को प्राप्त हों । हमारे श्रेष्ठ कर्म भी नमस्कार के साथ सबके आश्रयदाता प्रभु को प्राप्त हों ॥१॥

१५५५—पुरुमीढः । अग्निः । बृहती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्नि सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥२॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर को (सूनुम्) उत्पन्न करनेवाले (सहसः) बल के (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (दानाय) दान के लिए (वार्याणाम्) उत्तम पदार्थों के (द्विता) दो गुणों वाला (यः) जो (अभूत्) होता है (अमृतः) अमर (मर्त्येषु) मरणधर्मवालों में (आ) भली भांति (होता) कर्मफलदाता (मन्द्रतमः) अत्यन्त सुखदायक (विशि) प्रजा में ॥२॥

भावार्थ—कर्मफलदाता जो मनुष्यों में अमररूप से तथा सारी प्रजा में आनन्द स्वरूप से दो प्रकार के गुणों से उत्तम सदा विराजमान है, उस साहस के उत्पादक और सर्वज्ञ परमेश्वर की उत्तम पदार्थों को उसके दान द्वारा प्राप्त करने के लिए स्तुति करता हूँ ॥२॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१५५६—विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥१॥

पदार्थ—(अदाभ्यः) न तिरस्कार करने योग्य (पुरः एता) नेता (विशाम्) प्रजाओं का (अग्निः) परमेश्वर (मानुषीणाम्) मानुषी (तूर्णी) आलस्यादि दोषों से रहित (रथः) आनन्द का दाता (सदा) सर्वदा (नवः) एकरस ॥१॥

भावार्थ—मानुषी प्रजा का एकमात्र नेता, आलस्यादि दोषों से रहित, आनन्ददाता तथा एकरस परमेश्वर कभी भी तिरस्कार करने योग्य नहीं है ॥१॥

१५५७—विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (प्रयांसि) अन्नों को (वाहसा) सब सुखों को प्राप्त करानेवाले से (दाश्वान्) दानी (अश्नोति) पाता है (मर्त्यः) मनुष्य (क्षयम्) वास स्थान को (पावकशोचिषः) पवित्र प्रकाशवाले से ॥२॥

भावार्थ—दानी मनुष्य सब सुखों को प्राप्त करानेवाले तथा पवित्र प्रकाश युक्त परमेश्वर से अन्न और आश्रय प्राप्त करता है ॥२॥

१५५८—विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥३॥

पदार्थ—(साह्वान्) अभिभव करनेवाला (विश्वा) सारे (अभियुजः) प्रतिकूल विचारों का (क्रतुः) पालक (देवानाम्) सब देवों का (अमृक्तः) अतिरस्करणीय (अग्निः) परमेश्वर (तुविश्रवस्तमः) अत्यन्त यशवाला है ॥३॥

भावार्थ—सारे प्रतिकूल विचारों को दूर भगानेवाला, देवों का पालक तथा अतिस्करणीय परमेश्वर अत्यन्त यशस्वी है ॥३॥

१५५९—सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
३ २ ३ १ २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१॥

पदार्थ—(भद्रः) कल्याणकारक (नः) हमारा (अग्निः) विद्वान् पुरुष (आहुतः) उत्तम पद पर प्रतिष्ठित (भद्रा) कल्याणदायक (रातिः) दान (सुभग) हे उत्तम ऐश्वर्यवाले (भद्रः) कल्याणकारी (अध्वरः) यज्ञ (भद्राः) कल्याण करनेवाली हों (उत) और (प्रशस्तयः) स्तुतियाँ ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम ऐश्वर्यवाले परमेश्वर ! उत्तम स्थान पर स्थित विद्वान् हमारा कल्याण करें तथा हमारे यज्ञ, दान, और स्तुतियाँ सभी कल्याणकारी सिद्ध हों ॥१॥

१५६०—सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥२॥

पदार्थ—(भद्रं) कल्याणकारक (मनः) मन (कृणुष्व) कर (वृत्रतूर्ये) पाप को नष्ट करने में (येन) जिससे (समत्सु) पाप और पुण्य के संग्रामों में (सासहिः) पाप को दबा सकनेवाला (अव) नीचे (स्थिराः) हठ (तनुहि) कर (भूरि) बहुत (शर्धताम्) कामक्रोधादि शत्रुओं को (वनेम) भजन करते हैं (ते) तेरा (अभिष्टये) अपने कल्याण के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मेरे मन को उत्तम कर जिससे मैं अज्ञान के विनाश करने और पाप-पुण्य के संग्रामों में पाप को दबाने में समर्थ होऊं । हमारे काम, क्रोधादि शत्रुओं की सेना को तो नीचे दबा । हम अपने कल्याण के लिए तेरा भजन करते हैं ॥२॥

१५६१—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥१॥

पदार्थ– (अग्ने) हे परमेश्वर (वाजस्य) अन्न का (गोमतः) जो धनयुक्त (ईशानः) स्वामी (सहसोयहो) हे बल को प्राप्त करने वाले और स्तुति योग्य (अस्मे) हमें (देहि) दे (जातवेदः) हे सर्वव्यापक (महि) महान् (श्रवः) अन्न और यश ॥१॥

भावार्थ—हे बल के दाता और स्तुत्य, सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू गो धन युक्त अन्न का स्वामी है । हमें प्रचुर अन्न और यश प्रदान कर ॥१॥

१५६२—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।

३ २ ३ १ २

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (इधानः) प्रकाशित करता हुआ (वसुः) लोगों को बसानेवाला (कविः) मेधावी (अग्निः) परमेश्वर (ईडेन्यः) स्तुत्य है (गिरा) स्तुति से (रेवत्) धनयुक्त अन्न (अस्मभ्यम्) हमें (पुर्वणीक) हे अत्यन्त सुख के भण्डार (दीदिहि) दे ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ज्ञान का प्रकाशक, लोगों को बसानेवाला, मेधावी और स्तुति से उपासना करने योग्य है। हे सुख के भण्डार प्रभो ! तू हमें धन प्रदान कर ॥२॥

१५६३—गोतमः । अग्निः । उष्णिक् ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३॥

पदार्थ—(क्षपः) नाशकर (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप (उत) या (त्मना) स्वयं (अग्ने) हे परमेश्वर (वस्तः) दिन (उत) और (उषसः) रात्रि में (सः) वह (तिग्मजम्भ) हे तेजोमुख (रक्षसः) हानिकारक भावों को (दह) भस्माकर (प्रति) प्रत्यक्ष ही ॥३॥

भावार्थ—हे प्रकाशस्वरूप तथा तेजोरूप मुखवाले परमेश्वर ! तू अन्य विद्वानों द्वारा या स्वयं रात्रि और दिन के हमारे पापों को नाशकर और हानिकारक भावों को भस्म कर ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१५६४—गोपवनः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २

अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥

पदार्थ—(विशः विशः) प्रजामात्र के (वः) तुम लोग (अतिथिम्) अतिथि = पूजनीय को (वाजयन्तः) ज्ञान की कामना करते हुए (पुरुप्रियम्) सर्व प्रिय (अग्निम्) परमेश्वर को (वः) तुम लोगों के (दुर्यम्) आश्रय (वचः) वचन का (स्तुषे) स्तुति करता हूँ (शूषस्य) बल के साधक (मन्मभिः) मनन योग्य वचनों से ॥१॥

भावार्थ—हे उपासक लोगो ! ज्ञान की कामना करते हुए तुम लोग प्रत्येक प्रजा के पूजनीय, सर्वप्रिय और अपने स्तुति वचनों के एक मात्र आश्रय परमेश्वर की बल के साधक मनोहर वचनों से स्तुति करो, मैं भी करता हूँ ॥१॥

१५६५—गोपवनः । अग्निः । गायत्री ।

१ २र ३ १ ३ ३ २उ ३ १ २

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।

३ १ २ ३ १ २

प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥२॥

पदार्थ—(यम्) जिसकी (जनासः) लोग (हविष्मन्तः) यज्ञ करनेवाले (मित्रम् न) मित्र के समान (सर्पिरासुतिम्) सर्पणशील जल आदि पदार्थों के उत्पादक (प्रशंसन्ति) स्तुति करते हैं (प्रशस्तिभिः) मनोहर स्तोत्रों से ॥२॥

भावार्थ—यज्ञ करनेवाले लोग सर्पणशील जल आदि पदार्थों के निर्माता जिस जिस परमेश्वर की मित्र के समान प्रशस्तियों से प्रशंसा करते हैं मैं उसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१५६६—गोपवनः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

पदार्थ—(पन्यांसम्) स्तुति के योग्य (जातवेदसम्) सर्वज्ञ (यः) जो (देवताति) यज्ञ में (उद्यता) तैय्यार (हव्यानि) हवियों को [वायु द्वारा] (ऐरयत्) प्रेरित करता है (दिवि) द्युलोक में ॥३॥

भावार्थ—जो यज्ञ में छोड़ी गई हवियों को वायु के द्वारा द्युलोक में पहुँचाता है उस उपास्य और सर्वज्ञ परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ ॥३॥

१५६७—भरद्वाजः वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ ३ २

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहम् कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥१॥

पदार्थ—(समिद्धम्) प्रकाशित (अग्निम्) परमेश्वर को (समिधा) तीव्र तेज से (गिरा) वेदवाणी से (गृणे) स्तुति करता हूँ (शुचिम्) शुद्धस्वरूप (पावकम्) पवित्रस्वभाव (पुरः) आगे (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञ में (ध्रुवम्) नित्य (विप्रम्) ज्ञानी (होतारम्) कर्मफलदाता (पुरुवारम्) बहुतों के उपास्य (अद्रुहम्) किसी से द्रोह न करनेवाले (कविम्) सर्वज्ञ (सुम्नैः) स्तोत्रों से (ईमहे) भजन करते हैं (जातवेदसम्) सर्वव्यापक ॥१॥

भावार्थ—अत्यन्त प्रकाश से प्रकाशित, शुद्धस्वरूप, पवित्रकर्त्ता तथा नित्य परमेश्वर को अपने यज्ञों में स्तुति द्वारा पूर्व स्मरण करता हूँ। उस ही ज्ञानी, कर्मफलदाता, उपास्य, सबकी अनुकूलतावाले सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक की स्तोत्रों से उपासना करता हूँ ॥१॥

१५६८—भरद्वाजः वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ २र १ २र

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीडचम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवासश्च मर्त्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥२॥

पदार्थ—(त्वाम्) तुझे (दूतम्) सुखदाता या दुर्गुण-निवारक (अग्ने) हे परमेश्वर (अमृतम्) अमर (युगे युगे) हर समय पर (हव्यवाहम्) योग्य सामग्री को प्राप्त कराने वाले (दधिरे) धारण करते हैं (पायुम्) रक्षक (ईडचम्) स्तुति के योग्य (देवासः) विद्वान् जन (च) और (मर्त्तासः) मनुष्य (च) और (जागृविम्) सर्वदा सावधान (विभुम्) व्यापक (विश्पतिम्) प्रजा के स्वामी (नमसा) नमस्कार से (निषेदिरे) उपासना करते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वान् मनुष्यजन हर समयों में अविनाशी, रक्षक, उपासनीय, हमारे भोग्य सामग्री के प्राप्त करानेवाले, सुखदाता वा दुर्गुण-निवारक सर्वदा सावधान, सर्वव्यापक, समस्त सृष्टिगत प्रजा के स्वामी तुझ प्रभु को मनसे धारण करते और नमस्कारों के साथ तेरी उपासना करते हैं ॥२॥

१५६९—भरद्वाजो वीतहव्यो वा । अग्निः । जगती ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २

यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥३॥

पदार्थ—(विभूषन्) सुशोभित करता हुआ (अग्ने) हे परमेश्वर (उभयान्) जड़-जंगम दोनों प्रकार के संसार को (अनुव्रता) जगत् रचनाकर्म और नियम के अनुसार (दूतः) दुःखनिवारक (देवानाम्) विद्वानों के (रजसी) द्यु और पृथिवीलोक में (समीयसे) व्यापक हो रहा है (यत्) जिससे (ते) तेरे (धीतिम्) कर्म (सुमतिम) ज्ञान को (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं (अध) अनन्तर (स्म) पादपूरक (त्रिवरूथः) तीनों लोकों में व्यापक अथवा तीनों लोक हैं जिसमें (शिवः) कल्याणकारी (भव) होवे ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! विद्वानों का दुःखहर्त्ता तू जड़ तथा जंगम दोनों प्रकार के जगत् को अपनी सृष्टि-रचना, कर्म और नियम के अनुसार सुशोभित करता हुआ द्यु और पृथिवीलोक में व्यापक हो रहा है। हम तेरे ज्ञान और कर्म को धारण करते हैं। अतः हे प्रभो त्रिलोकीनाथ ! तू हमारा कल्याण कर ॥३॥

१५७०—प्रयोगः अग्निः यविष्ठः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।

३ १ २र

वायोरनीके अस्थिरन् ॥१॥

पदार्थ—(उप) समीप (त्वा) तेरे (जामयः) ज्ञानमयी (गिरः) स्तुतियां या वाणियां (देदिशतीः) बार बार उपदेश करती हुई (हविष्कृतः) यजमान की (वायोः) वायु के (अनीके) मण्डल में (अस्थिरन्) स्थिर होती हैं ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा उपदेश करती हुई ज्ञानमयी यजमान की वाणियां या स्तुतियां वायुमंडल में स्थित हो जाती हैं ॥१॥

१५७१—प्रयोगः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ २

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥२॥

पदार्थ—(यस्य) जिसका (त्रिधातु) सत्व, रजस् और तमस् तीनों धातुएं (अवृतम्) खुली (बर्हि) अन्तरिक्ष (तस्थौ) सदा स्थिर हैं (असन्दिनम्) नहीं बंधा हुआ (आपः) जल (चित्) भी (निदधा) स्थापित है (पदम्) अपने स्थान पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस तेरी सामर्थ्य से सत्व, रजस् और तमस् सृष्टिकाल में बिना रुकावट प्रवृत्त हैं, अन्तरिक्ष सर्वत्र स्थित है तथा जल अपने स्थान पर स्थापित है वह तू सबका उपास्य है ॥२॥

१५७२—प्रयोगः । अग्निः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥३॥

पदार्थ—(पदम्) परम पद (देवस्य) देव का (मीढुषः) सकल मनोरथों की वर्षा करनेवाले (अनाधृष्टाभिः) बाधारहित (ऊतिभिः) रक्षाओं से (भद्रा) कल्याण करनेवाली है (सूर्य इव) सूर्य के समान (उपदृक्) देखने के साधन द्वितीय नेत्ररूप ॥३॥

भावार्थ—सकल मनोरथों को देनेवाले परमात्मदेव का परमस्वरूप बाधारहित रक्षादि गुणों से सम्पन्न है। उसकी कृपा लोक के देखने के साधन द्वितीय नेत्ररूप सूर्य के समान कल्याणकारी है ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 पंचदशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

षोडशोऽध्यायः

१५७३—मेध्यातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (त्वा) तेरी (पूर्वपीतये) प्रथम ज्ञान की रक्षा के लिए (इन्द्र) हे आचार्य (स्तोमेभिः) मन्त्रों से (आयवः) मनुष्य (समीचीनासः) योग्य (ऋभवः) मेधावी (समस्वरन्) प्रशंसा करते हैं (रुद्राः) रुद्र ब्रह्मचारी (गृणन्त) प्रशंसा करते हैं (पूर्व्यम्) वृद्ध ॥१॥

भावार्थ—हे आचार्य ! योग्य बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वज्ञान की रक्षा के लिए तुझ वृद्ध की सब प्रकार से प्रशंसा करते हैं रुद्र ब्रह्मचारी भी तेरी सराहना करते हैं ॥१॥

१५७४—मेध्यातिथि । इन्द्र । बृहती

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥

पदार्थ—(अस्य) इस (इत्) ही (इन्द्रः) परमेश्वर (वावृधे) बढ़ाता है (वृष्ण्यं) वीर्य (शवः) बल (मदे) आनन्द में (सुतस्य) पुत्ररूप (विष्णवि) व्यापक (अद्य) आज (तम्) उसकी (अस्य) इसकी (महिमानम्) महिमा की (आयवः) मनुष्य (अनुष्टुवन्ति) स्तुति करते हैं (पूर्वथा) पहले के समान ही ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर व्यापक आनन्द में विराजमान पुत्ररूप यजमान के बल-वीर्य को बढ़ाता है। आज भी मनुष्य पहले के समान ही उसकी महिमा का गान करते हैं ॥२॥

१५७५—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वाम्) तुम दोनों की (अर्चन्ति) पूजा करते हैं (उक्थिनः) ऋग्वेदी (नीथाविदः) सामगान के ज्ञाता (जरितारः) उद्गाता (इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (इषः) विज्ञानों को (आवृणे) चाहता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! ऋग्वेदी और सामवेदी स्तुति करनेवाले तुम्हारी पूजा और प्रशंसा करते हैं। मैं तुम्हारे विज्ञान की चाहना करता हूँ ॥१॥

१५७६—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (नवतिम्) नब्बे [९०] (पुरः) पुरी को (दासपत्नीः) दूषित मनोवृत्ति से सुरक्षित (अधूनुतम्) कंपाते हो (साकम्) साथ (एकेन) एक ही (कर्मणा) कर्म से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! तुम दोनों दूषित मनोवृत्ति से पालित नब्बे पुरी को एक ही सम्मिलित कर्म से कंपित करते हो ॥२॥

१५७७—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ १ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३अनु ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (अपसः) कर्म का (परि) भली भांति (उप) समीप (प्र) उत्तम (यन्ति) प्राप्त करते हैं (धीतयः) कर्मयोगी पुरुष (ऋतस्य) सत्य के (पथ्या) मार्ग का (अनु) लक्ष्य कर ॥३।

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! कर्मयोगी पुरुष सत्य मार्ग पर चलने के लिए उत्तम कर्मों का अनुष्ठान करते हैं ॥३॥

१५७८—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥४॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे परमेश्वर और जीव (तविषाणि) बल (वां) तुम दोनों का (सधस्थानि) एक साथ (प्रयांसि) उत्तम विज्ञान (युवोः) तुम दोनों (अप्तूर्यं) कर्म की प्रेरणा कर (हितम्) एक साथ स्थित है ॥४॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और जीव ! तुम दोनों में बल, विज्ञान तथा कर्मों की प्रेरणा एक साथ होते हैं ॥४॥

१५७९—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २क १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

पदार्थ—(शग्धि) सिद्ध कर (उ) वितर्क (सु) उत्तम (शचीपते) हे वाणी के स्वामी (इन्द्र) विद्वन् (विश्वाभिः) सारी (ऊतिभिः) रक्षा के साधनों से (भगं न) भगवान् के समान (हि) निश्चित (त्वा) तेरे (यशसं) यशस्वी (वसुविदम्) धन प्राप्त करनेवाले (अनु) अनुकूल (शूर) हे अज्ञाननाशक (चरामसि) आचरण करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे वाणियों के स्वामी अज्ञाननाशक विद्वन्! तू सारे रक्षा के साधनों से हमारा इष्ट सिद्ध कर ! परमेश्वर के समान यशस्वी तथा तुझ धनदाता के अनुकूल हम आचरण करते हैं ॥१॥

१५८०—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
न किर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥२॥

पदार्थ—(पौरः) पूर्ण करनेवाला (अश्वस्य) महत्तत्त्व का (पुरुकृत्) अधिक शक्ति पैदा करनेवाला (गवाम्) इन्द्रियों में (उत्सः) कूप के समान सब को तृप्त करनेवाला (देव) हे देव (हिरण्ययः) ज्योतिः स्वरूप (न किः) नहीं (हि) निश्चय (दानं) दान (परिमर्धिषत्) विनष्ट होता है (त्वे) तेरा (यद्-यद्) जो जो (यामि) चाहता हूँ (तद्) वह (आभर) पूर्ण कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमात्मदेव ! तू हमारे बुद्धितत्त्व का पूर्णकर्त्ता, इन्द्रियों में शक्ति का दाता, कूप के समान तृप्ति करनेवाला तथा ज्योतिःस्वरूप है। तेरे दान का कभी नाश नहीं होता। हे भगवन् ! मैं जो जो चाहूँ उसे पूर्ण कर ॥२॥

१५८१—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

२उ ३ १२ ३२उ ३ १२
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥१॥

पदार्थ—(त्वं) तू (हि) निश्चय (एहि) आ (चेरवे) सेवक के लिए (विदा) दे (भगं) धन (वसुत्तये) धन देने के लिए (उत्) उत्तमता से (वावृषस्व) धन की अत्यन्त वर्षा कर (मघवन्) हे धनवान् (गविष्टये) गौ चाहनेवाले (उत्) अथवा (इन्द्र) हे राजन् (अश्वमिष्टये) अश्व चाहने-वाले ॥१॥

भावार्थ—हे धनवान् राजन् ! तू धन प्रदान करने के लिए आ, और प्रदान कर । गौ और अश्व चाहनेवाले मेरे लिए वार वार धन की वर्षा कर ॥१॥

१५८२—भर्गः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३२३१ २ ३ १२ ३२३१२
त्वं पूरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
१२ ३१२ ३१२ ३२३२३१ २
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥२॥

पदार्थ—(त्वं) तू (पुरू) बहुत (सहस्राणि) हजारों (शतानि) सैकड़ों (च) और (यूथा) पशुओं का समुदाय (दानाय) दान के लिए (मंहसे) देता है (आ) भली भांति (पुरन्दरम्) बुराइयों को दूर करनेवाले (चकृम) करें (विप्रवचसः) विद्वानों के वचनवाले हम (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गायन्तः) गुणगान करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सैकड़ों सहस्रों पशुओं का समुदाय दान करने के लिए हमें प्रदान करता है । ज्ञानी के वचनवाले हम तेरा गान करते हुए बुराइयों को दूर करनेवाले तुझ इन्द्र का अपनी रक्षार्थ साक्षात् करें ॥२॥

१५८३—सौभरिः । अग्निः । बृहती ।

२उ ३१२३२३१२ ३१ २र
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
२३ १ २र ३१२३ १ २र ३१२
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (विश्वा) सारे (दयते) देता है (वसु) धन (होता) यज्ञकर्त्ता (मन्द्रः) सबको प्रसन्न करनेवाला (जनानाम्) जनता के लिए (मधोः) मधु का (न) समान (पात्रा) पात्र (प्रथमानि) प्रथम (अस्मै) इस (प्र) उत्तम (स्तोमा) स्तोत्र (यन्तु) प्राप्त हों (अग्नये) विद्वान् के लिए ॥१॥

भावार्थ—यज्ञकर्त्ता और सबको प्रसन्न करनेवाला जो विद्वान् पुरुष जनता को सकल सम्पदाएँ प्रदान करता है उसके लिए मधु के मुख्य पात्र के समान हमारा प्रशंसा वचन प्राप्त हो ॥१॥

१५८४—सौभरिः । अग्निः । बृहती ।

२ ३२ ३२२क २र ३१२ ३१२ ३१२
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
३२३ १ २र ३२३ १२३१२
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थ—(अश्वं न) अश्व के समान (गीर्भिः) स्तुतियों से (रथ्यं) रथ के योग्य (सुदानवः) उत्तमदानी यजमान (मर्मृज्यन्ते) उपासना करते हैं (देवयवः) दिव्य गुणों की कामना करनेवाले (उभे) दोनों (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र (दस्म) हे साक्षात्कार करने योग्य (विश्पते) प्रजापालक (पर्षि) प्रदान कर (राधः) धन (मघोनाम्) यज्ञ करनेवालों को ॥२॥

भावार्थ—हे दर्शन करने योग्य और सकल प्रजा के पालक परमेश्वर ! दिव्य गुणों को चाहनेवाले सुन्दर दानी यजमान रथ के योग्य अश्व के समान स्तुतियों से तेरी उपासना करते हैं । तू यज्ञ करने करनेवालों को पुत्र और पौत्र दोनों सम्पदाएँ देता है ॥२॥

卐 प्रथमः खण्ड समाप्तः 卐

१५८५—शुनःशेपः । वरुणः । गायत्री ।

३१२ ३१२३१२ १२३१ २र
इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥१॥

पदार्थ—(इमम्) इस (मे) मेरे (वरुण) हे परमेश्वर (श्रुधि) सुन (हवम्) पुकार को (अद्य) आज (च) और (मृडय) सुखी कर (त्वाम्) तेरी (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहनेवाला मैं (आचके) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अपनी रक्षा चाहनेवाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ । आज तू मेरी पुकार सुन तथा मुझे सुखी कर ॥१॥

१५८६—सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

२३ १ १ ३ १ २र १२ ३२३ १ २
कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थ—(कया) सुखमयी (त्वं) तू (नः) हमें (ऊत्या) रक्षा से (अभिप्रमन्दसे) आनन्दित करती है (वृषन्) हे सकल मनोरथों को सफल करनेवाले (कया) सुखमयी कृपा से (स्तोतृभ्यः) भक्तों को (आ भर) परि-पूर्ण कर ॥१॥

भावार्थ—हे सकल मनोरथों को पूरा करनेवाले परमेश्वर ! तू सुखमयी रक्षा से हमें आनन्दित कर और सुखमयी कृपा से भक्तों को भरपूर कर ॥१॥

१५८७—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३२३१२ ३ १२ ३क २र ३२
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
१२ ३२३१९ ३२३१२ ३१२
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) विद्वान् पुरुष को (इत्) ही (देवतातये) यज्ञ के लिए (इन्द्रम्) ईश्वर को (प्रयति) प्रारम्भ होने पर (अध्वरे) कल्याणकारी यज्ञके (इन्द्रम्) सेनापति को (समीके) संग्राम में (वनिनः) भजन करनेवाले (हवामहे) पुकारते हैं (इन्द्रम्) धनवान् को (धनस्य) धन की (सातये) प्राप्ति के लिए ॥१॥

भावार्थ—हम श्रद्धालु जन यज्ञ के प्रारम्भ में परमेश्वर की, यज्ञ के लिए विद्वान् की, संग्राम में सेनापति की तथा धन की प्राप्ति के लिए धनवान् की पुकार करते हैं ॥१॥

१५८८—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २३१ २र ३२ ३ २३ १२
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छवः इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
१२३२ ३१२ ३१२ ३२३ १२
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर ने (मह्ना) अपनी महिमा से (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (पप्रथत्) विस्तार किया है (शवः) बल का (इन्द्रः) परमेश्वर (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है (इन्द्रे) परमेश्वर में (ह) निश्चय (विश्वा) सारे (भुवनानि) भुवन (येमिरे) नियन्त्रित हो रहे हैं (इन्द्रे) परमेश्वर में (स्वानासः) मन्त्रों का उच्चारण किए जानेवाले (इन्दवः) यज्ञ आश्रित हैं ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर अपनी महिमा से द्युलोक और पृथिवी में बल का विस्तार करता है । उसी ने सूर्य को प्रकाशमान किया है । सारे लोक उसी में नियन्त्रित हैं. मंत्रों से युक्त यज्ञ उसी में आश्रित हैं ॥२॥

१५८९—विश्वकर्मा । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३१२ ३२ ३१२ ३ २क १ २र
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वांऽ३स्वा हि ते ।
१२३२३२३ १२ ३१ २र ३१२ ३१२
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥३॥

पदार्थ—(विश्वकर्मन्) हे सृष्टिकर्त्ता (हविषा) अपनी शक्ति से (वावृधानः) संसार का विस्तार करता हुआ (स्वयम्) अपने आप (यजस्व) यज्ञ करता है (तन्वां) विस्तृत ब्रह्माण्ड में (स्वाहिते) स्वयं स्थापित (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त होते हैं (अन्ये) वही जाननेवाले (अभितः) हर प्रकार से (जनासः) मनुष्य (इह) इस विषय में (अस्माकं) हमारा (मघवा) परमेश्वर (सूरिः) ज्ञान-प्रदर्शक (अस्तु) है ॥३॥

भावार्थ—हे सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ! अपनी शक्ति से संसार का विस्तार करता हुआ तू स्वयं स्थापित विराट्रूप ब्रह्माण्ड में अपने आप यज्ञ करता है । न जाननेवाले मनुष्य सृष्टि में मोह को प्राप्त होते हैं । इस विषय में तू ही हमें ज्ञान का उपदेश करनेवाला है ॥३॥

१५९०—अनानतः । सोमः । अत्यष्टिः ।

३२३१ २र ३ २र ३१२
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
३१२ ३ २३२३१२
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
१२३१२ ३१ २३१२र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
२ ३ २३१२३१ २र ३१२ ३१ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

पदार्थ—(अया) इस (रुचा) तेजसे (हरिण्या) अंधकार का हरण करनेवाले (पुनानः) पवित्र करता हुआ (विश्वा) सारे (द्वेषांसि) द्वेषों को

(तरति) नष्ट करता है (सयुग्वभिः) परस्पर संयुक्त (सूरः) सूर्य के (न) समान (सयुग्वभिः) किरणों से (धारा) वाणी (पृष्ठस्य) जगत् को धारण करनेवाले की (रोचते) प्रकाशित होती है (पुनानः) जानता हुआ (अरुषः) तेजस्वी (हरिः) अज्ञान का हरण करनेवाला (विश्वा) सारे (यत्) जो (रूपा) सूर्य, चन्द्र आदि रूपों को (परियासि) व्यापक होता है स्तुति के योग्य (सप्तास्येभिः) सात छन्दोंवाले (ऋक्वभिः) ऋग्वेदादियों से ॥१॥

भावार्थ—पवित्रकारक परमेश्वर अज्ञाननाशक अपने प्रकाश से, अन्धकार को परस्पर संयुक्त किरणों से सूर्य के समान, सारे द्वेषों का नाश करता है। जगदाधार उस प्रभु की वाणी प्रकाशित होती है। सर्वज्ञ, तेजस्वी तथा अज्ञानहर्त्ता वह प्रशंसनीय सात छन्दोंवाले ऋग्वेदादियों के ज्ञान के सारे रूपों में रम रहा है॥१॥

१५६१—*अनानतः। सोमः। अत्यष्टिः।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभि-

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

र्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १२

अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥२॥

पदार्थ—(प्राचीम्) प्रकाशवाली (अनु) पश्चात् (प्र) उत्तम (दिशम्) दिशा को (याति) जाता है (चेकितत्) जानता हुआ (सम्) सम्यक् (रश्मिभिः) ज्ञानकिरणों से (यतते) उपाय करता है (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) सूर्य के समान (दैव्यः) देवों में गण्यमान (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) शरीरवाला (अग्मन्) प्राप्त होते हैं (उक्थानि) प्रशंसाएँ (पौंस्या) पुरुषसम्बन्धी (इन्द्रम्) राजा को (जैत्राय) जय प्राप्ति के लिए (हर्षयन्) प्रसन्न करते हैं (वज्रः) वज्र [शस्त्र] भी (यत्) जब (भवथः) होते हैं (अनपच्युता) तेज (समत्सु) संग्रामों में (अनपच्युता) अमोघ ॥२॥

भावार्थ—जब संग्रामों में तेज और अमोघ शस्त्र होते हैं तो विजय में विश्वास करता हुआ दर्शनीय और साधन-सम्पन्न सेनापति दर्शनीय, देवों में गिना जानेवाला, किरणों से सूर्य के समान विजय की दिशा में प्रस्थान तथा यत्न करता है। राजा को विजय प्राप्त करने के लिए प्रसन्न करता हुआ पौरुष-प्रकाशक प्रशंसा वचनों को पाता है ॥२॥

१५६२—*अनानतः। सोमः। अत्यष्टिः।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभि-

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

र्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे।

३ २ ३ २उ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २

परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमाना वयो दधे ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (ह) निश्चय ही (त्यत्) उस (पणीनाम्) व्यापार करनेवालों को (विदः) देता है (वसु) धन (सम्) सम्यक् (मातृभिः) मान करने योग्य (मर्जयसि) पवित्र करता है (स्वे) अपने (आ) भली भाँति (दमे) दुःखों का दमन करनेवाले (ऋतस्य) सत्य के (धीतिभिः) विधानों से (दमे) मोक्षरूप परमपद में (परावतः) दूर से सुनाई पड़नेवाले (न) समान (साम) साम के (तत्) उस (यत्र) जिसमें (रणन्ति) आनन्द पाते हैं (धीतयः) ध्यान करनेवाले (त्रिधातुभिः) तीन धातुओं से [सत्व, रजः, तमस्] [कफ, वात, पित्त] (अरुषीभिः) प्रकाशवाले (वयो) अवस्था को (दधे) धारण करता है (रोचमानः) प्रकाशमान (वयः) हमारी आयु को (दधे) धारण करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू ही व्यापारियों को धन देता है। तू सन्मान के योग्य सत्य के विधानों से दुःख को हटानेवाले अपने मोक्ष धाम में आत्माओं को पवित्र करता है। जिसमें ध्यानी लोग आनन्दलाभ करते हैं, वह तेरा पद दूर से सुनाई पड़नेवाले साम के समान मनोहर है। हे प्रभो प्रकाशस्वरूप! तू तेजस्वी सुवर्ण तत्त्व रजस् तमस् धातुओं से हमारे शरीर की स्थिति तथा कफ, वात, पित्त तीन धातुओं से हमारी आयु को धारण करता है ॥३॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१५६३—*भरद्वाजः। पूषा। गायत्री।*

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत। नृवत्कृणुह्यूतये ॥१॥

पदार्थ—(उत) और (नः) हमें (गोषणिम्) गाय देनेवाली (धियम्) बुद्धि (अश्वसाम्) घोड़े देनेवाली (वाजसाम्) अन्न देने वाली (उत) और (नृवत्) उत्तम सन्तान देने वाली (कृणु) दे (हि) निश्चय (ऊतये) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! तू हमें रक्षा के लिए गाय, घोड़े, अन्न तथा उत्तम सन्तान देनेवाली बुद्धि प्रदान कर ॥१॥

१५६४—*गोतमः। मरुद्गणः। गायत्री।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः। विदा कामस्य वेनतः ॥२॥

पदार्थ—(शशमानस्य) सत्कार करनेवाले [प्रशंसा करनेवाले] (वा) ही (नरः) हे नेताओ (स्वेदस्य) यज्ञ करने से परिश्रान्त (सत्यशवसः) सत्य बल वाले (विदा) प्राप्त करा (कामस्य) कामना को (वेनतः) चाहनेवाले यजमान की ॥२॥

भावार्थ—हे सत्य बलवाले, यज्ञ के वहन करनेवाले ऋत्विजो! आप लोग सत्कार करनेवाले, तथा यज्ञ करने से श्रान्त यजमान की कामना को पूरा करो ॥२॥

१५६५—*ऋजिश्वा। विश्वेदेवाः। गायत्री।*

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः ॥३॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र आदि (गिरः) वाणियां (शृण्वन्तु) सुनें (अमृतस्य) अविनाशी परमेश्वर की (ये) जो (सुमृडीकाः) सुख देनेवाले (भवन्तु) होवें (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—हमारे पुत्र अविनाशी परमेश्वर की वाणी सुनें और हमें सुखी करें ॥३॥

१५६६—*अजमीढः। द्यावापृथिव्यौ। गायत्री।*

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे। शुची उप प्रशस्तये ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वाम्) इन दोनों (महि) द्युलोक और पृथिवी की (द्यवी) चमकीले (अभि) सब प्रकार से (उप) समीप (स्तुतिम्) प्रशंसा को (भरामहे) करते हैं (शुची) पवित्र (उप) समीप (प्रशस्तये) प्रशंसा के लिए [गुणकथन के लिए] ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर के गुणगान के लिए इन दोनों द्यु और पृथिवी लोकों की हम प्रशंसा करते हैं ॥१॥

१५६७—*अजमीढः। द्यावापृथिव्यौ। गायत्री।*

३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः। उह्याथे सनादृतम् ॥२॥

पदार्थ—(पुनाने) पवित्र करनेवाले (तन्वा) अपने विस्तार से (मिथः) परस्पर (स्वेन) अपने (दक्षेण) बल से (राजथः) विराजमान हैं (उह्याथे) धारण करते हैं (सनात्) सदा से (ऋतम्) परमेश्वर की सामर्थ्य को ॥२॥

भावार्थ—अपने विस्तार से सबको पवित्र करते हुए द्यु और पृथिवीलोक परस्पर एक दूसरे को धारण करते हुए अपनी शक्ति से विराजमान हैं। वे सदा परमेश्वर की सामर्थ्य को धारण करते हैं ॥२॥

१५६८—*अजमीढः। द्यावापृथिवी। गायत्री।*

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्। परि यज्ञं निषेदथुः ॥३॥

पदार्थ—(मही) महा द्युलोक और पृथिवी (मित्रस्य) सूर्य के दिन-रात के विभाग रूप कार्य को (साधथः) सिद्ध करती हैं (तरन्ती) तैरती हुई (पिप्रती) पूर्णता प्रकट करती हुई (ऋतम्) सृष्टिनियम पर (परि) सब प्रकार से (यज्ञम्) परमेश्वर का (निषेदथुः) आश्रय लेती हैं ॥३॥

भावार्थ—सृष्टिनियम पर चलती और उसकी पूर्णता प्रकट करती हुई द्यु और पृथिवी सूर्य से होनेवाले रात्रि-दिन के विभाग का सम्पादन करती हैं तथा परमेश्वर के आश्रय पर स्थित हैं ॥३॥

१५६९—*शुनःशेपः। इन्द्रः। गायत्री।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१॥

पदार्थ—(अयम्) यह (उ) पादपूरक (ते) तेरे लिए (समतसि) निरन्तर आता-जाता है (कपोतः) कबूतर के (इव) समान (गर्भधिम्) कबूतरी को (वचः) वचन को (तत् चित्) इसी कारण से (नः) हमारे पूज्य परमेश्वर के (ओहसे) प्राप्त करता है ॥१॥

भावार्थ—हे जीव! यह प्रत्यक्ष संसार तेरे उपभोग के लिए है। कबूतरी को कबूतर के समान तू बार-बार यहां सदा आता-जाता है। इसी लिए सबके पूज्य परमेश्वर के वचन को सुनता है ॥१॥

१६००—शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥२॥

पदार्थ—(स्तोत्रम्) स्तुति (राधानांपते) हे सम्पदाओं के स्वामी (गिर्वाहः) हे वेदवाणियों से स्तुति योग्य (वीर) हे सर्वशक्तिमन् (यस्य) जिस (ते) तेरी (विभूतिः) महिमा (अस्तु) है (सूनृता) उषा ॥२॥

भावार्थ—हे सारी सम्पदाओं के स्वामी, भजनीय तथा सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! यह तेरी स्तुति है । उषा का प्रभाव तेरी ही विभूति है ॥२॥

१६०१—शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र २ ३ १ २
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सर्वप्रथम (तिष्ठ) रहता है (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (अस्मिन्) इस (वाजे) जीवन संग्राम में (शतक्रतो) हे सर्वज्ञ (सम्) सम्यक् (अन्येषु) अन्य कार्यों में (ब्रवावहै) तेरी स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू इस जीवनसंग्राम में हमारी रक्षा के लिए सर्वप्रथम विद्यमान है । अन्य सभी कार्यों में भी हम तेरी ही स्तुति करते हैं ॥३॥

१६०२—हर्यतः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१॥

पदार्थ—(गावः) हे स्तुति करनेवालो (उपवद) उपदेश करो (अवटे) संसार रूप कूप में पड़े हुए हम लोगों को (मही) पृथिवी (यज्ञस्य) पूजनीय (रप्सुदा) स्वरूप का स्मरण दिलाती है (उभौ) दोनों (कर्णौ) सिरे (हिरण्यया) ज्योति से युक्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे उपासको ! तुम लोग हमको, जो संसार-कूप में पड़े हुए हैं, बचने का उपदेश दो । यह पृथ्वी पूज्य परमेश्वर के स्वरूप को स्मरण कराती है । इसके दोनों सिर ज्योति से युक्त होते हैं ॥१॥

१६०३—हर्यतः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवटस्य विसर्जने ॥२॥

पदार्थ—(अभ्यारमित्) उपभोग करते हैं (अद्रयः) आदरणीय उपासक (निषिक्तम्) सेचन किया हुआ (पुष्करे) हृदयकमल में (मधु) आनन्दरस का (अवटस्य) संसाररूप कूप के (विसर्जने) समाप्ति पर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! संसाररूप कूप की भोग-सम्पादन से समाप्ति हो जाने पर आदरणीय उपासक लोग हृदयकमलों में सिंचे हुए आनन्दरस का उपभोग करते हैं ॥२॥

१६०४—हर्यतः । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ॥३॥

पदार्थ—(सिञ्चन्ति) पूर्ण करते हैं (नमसा) अन्न से (अवटम्) कोठिला [अन्न रखने का] को (उच्चाचक्रम्) ऊपर गोल (परिज्मानम्) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के योग्य (नीचीनबारम्) नीचे द्वारवाले (अक्षितम्) न टूटा हुआ ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरी कृपा से कृषक लोग ऊपर गोलाकार, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य, नीचे द्वारवाले तथा न टूटे हुए कोठिले को अन्न से भरते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६०५—देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१॥

पदार्थ—(मा) नहीं (भेम) भयभीत हों (श्रमिष्म) पीड़ित (उग्रस्य) बलवान् (सख्ये) मित्रता में (तव) मेरी (महत्) महान् (ते) तेरा (वृष्णः) कामनाओं को वर्षानेवाले (अभिचक्ष्यम्) प्रशंसनीय (कृतम्) कार्य को (पश्येम) देखें (तुर्वशम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अधिकारी (यदुम्) मनुष्यों को ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बलवान् तुझ देव की मित्रता में हम किसी से भयभीत और पीड़ित न हों । कामनाओं की वर्षा करनेवाले तेरा कर्म महान् और प्रशंसनीय है । हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अधिकारी पुरुष को देखें ॥१॥

१६०६—देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२॥

पदार्थ—(सव्याम्) बाईं (अनु) पश्चात् (स्फिग्यम्) कटिप्रदेश को (वावसे) निवास करता है (वृषा) बलवान् (न) नहीं (दानः) दान (अस्य) परमेश्वर का (रोषति) दुःखदायी होता है (मध्वा) मधुरता से (संपृक्ताः) भरी हुई (सारघेण) सुस्वादु (धेनवः) गौएँ हैं (तूयम्) शीघ्र (एहि) आ (द्रवा) शीघ्रता कर (पिब) पान कर ॥२॥

भावार्थ—हे जीव ! बलवान् तू बाएं कटि-प्रदेश अर्थात् गर्भ से आता है । परमेश्वर का दान सुखदायी होता है । स्वादु तथा मधुर दूधवाली गौएँ संसार में हैं । तू आ और उनके दुग्ध का उपभोग कर ॥२॥

१६०७—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१॥

पदार्थ—(इमा) ये (उ) पादपूर्ति (त्वा) तेरी (पुरूवसो) हे सर्वाश्रय (गिरः) स्तुतियां (वर्धन्तु) प्रशंसा करें (याः) जो (मम) मेरी (पावकवर्णाः) तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (अभि) भली भांति (स्तोमैः) स्तोत्रों से (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हे सर्वाश्रय परमेश्वर ! हमारी स्तुतियां तेरी प्रशंसा करें । तेजस्वी, और पवित्र विद्वान् भी स्तोत्रों से तेरी स्तुति करें ॥१॥

१६०८—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सहस्रम्) असंख्य (ऋषिभिः) तत्त्व ज्ञानियों के (सहस्कृत) समान (समुद्र इव) समुद्र के समान (पप्रथे) गम्भीर और विस्तृत हो रहा है (सत्यः) सत्यस्वरूप (सः) वह (अस्य) इसकी (महिमा) महिमा (गृणे) स्तुति करता हूँ । (शवः) बल (यज्ञेषु) यज्ञों में (विप्रराज्ये) ज्ञानियों के राज्य में ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर सत्यस्वरूप तथा असंख्य तत्त्वज्ञानियों के समान अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा है । उसकी महिमा तथा बल समुद्र के समान गम्भीर और विस्तृत हो रहे हैं । ज्ञानियों के राज्य में विद्यमान यज्ञों में इसकी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१६०९—उरुष्ठिगुः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥१॥

पदार्थ—(यस्य) जिसका (अयम्) यह (विश्वः) सारा (आर्यः) आर्यवर्ग (दासः) सेवक (शेवधिपा) वेदनिधि का रक्षक (अरिः) प्राप्त करनेवाला (तिरश्चित्) छिपा हुआ भी (अर्ये) स्वामी (रुशमे) नियन्ता (पवीरवि) वाणी के पिता परमेश्वर में (तुभ्य इत्) तुझ आप के लिए ही (सः) वह (अज्यते) प्रकट किया जाता है, (रयिः) विद्या धन ॥१॥

भावार्थ—हे जीव ! जिसका यह सारा आर्यवर्ग सेवक और वेदविद्या का रक्षक तथा प्राप्त करनेवाला है, सबके स्वामी, नियन्ता तथा वाणी के पिता उस परमेश्वर में छिपा हुआ वह वेदविद्याधन तेरे ही लिए प्रकट होता है ॥१॥

१६१०—उरुष्टिगुः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥२॥

पदार्थ—(तुरण्यवः) शीघ्रकारी (मधुमन्तम्) ज्ञान-विज्ञान से युक्त (घृतश्चुतम्) प्रकाश का विस्तार करनेवाले (विप्रासः) मेधावीजन (अर्कम्) पूजनीय (आनृचुः) पूजा करते हैं (अस्मे) हमारे लिए (रयिः) संपदा का (पप्रथे) विस्तार होवे (वृष्ण्यम्) सुख की वृष्टि करनेवाला (शवः) बल (अस्मे) हमारे लिए (स्वानासः) उपदेश करनेवाले (इन्दवः) विद्वान् योगीजन ॥२॥

भावार्थ—कर्म-कुशल विद्वान् लोग ज्ञान विज्ञानसे युक्त, प्रकाश करनेवाले तथा पूजनीय परमेश्वर की पूजा करते हैं । इस लिए कि हमारे लिए धन तथा सुख के

देनेवाले बल का विस्तार हो, हमें उपदेश करनेवाले विद्वान् प्राप्त हों ।।२।।

१६११—पर्वतनारदो । सोमः । उष्णिक् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिञ्च वर्णमधि गोषु धारय ।।१।।

पदार्थ—(**गोमत्**) गौ से युक्त (**नः**) हमें (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यवन् (**अश्ववत्**) घोड़े से युक्त (**सुतः**) संसार में उत्पन्न (**सुदक्ष**) हे व्यवहारकुशल (**धनिव**) प्राप्त करा (**शुचिम्**) पवित्र (**च**) और (**वर्णम्**) अक्षर को (**अधि**) में (**गोषु**) वाणियों में (**धारय**) धारण करा ।।१।।

भावार्थ—हे व्यवहार-कुशल तथा ऐश्वर्यवन् विद्वान् पुरुष ! संसार में उत्पन्न हुआ तू हमें गौओं तथा घोड़ों से युक्त धन प्राप्त करा तथा हमारी वाणियों में पवित्र अक्षर को धारण करा ।।।१।।

१६१२—पर्वतनारदो । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स नो हरीणाम्पत इन्दो देव प्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ।।२।।

पदार्थ—(**सः**) वह (**नः**) हमारे (**हरीणाम्पते**) मनुष्यमात्र के स्वामी (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यवन् (**देव**) देव (**प्सरस्तमः**) अत्यन्त प्रकाशस्वरूप (**सखा**) मित्र के (**इव**) समान (**सख्ये**) मित्र के लिए (**नर्यः**) मनुष्यमात्र का कल्याण करनेवाला (**रुचे**) प्रकाश के लिए (**भव**) हो ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यमात्र के स्वामी तथा ऐश्वर्यशाली परमात्मदेव ! प्रकाशस्वरूप तथा सबका कल्याण करनेवाला तू मित्र को मित्र के समान हमारे ज्ञानप्रकाश के लिये हो ।।२।।

१६१३—पर्वतनारदो । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
सनेमि त्वमस्मदा अदेवङ्कञ्चिदत्रिणम् ।
१ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ।।३।।

पदार्थ—(**सनेमि**) मित्रता (**त्वम्**) तू (**अस्मद्**) हमारे लिए (**आ**) [वह] प्रदान कर (**अदेवम्**) बुरी वृत्तिवाले [राक्षस स्वभाव वाले] (**कञ्चित्**) किसी (**अत्रिणम्**) बुरे आचरणवाले (**साह्वान्**) दबानेवाला (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यवन् (**परि**) सब ओर से (**बाधः**) बाधाओं को (**अप**) [गमय] दूर कर (**द्वयुम्**) मन तथा वाणी में भिन्न-भिन्न भाव रखनेवाले [दुरात्मा] ।।३।।

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! दुष्टों को दमन करनेवाला तू हमें अपनी मित्रता प्रदान कर । नास्तिक, बुरे आचरणवाले, दुरात्मा तथा अन्य बाधाओं को हमसे दूर भगा ।।३।।

१६१४—अत्रिः । सोमः । जगती ।

३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाऽभ्यञ्जते ।
१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ।।१।।

पदार्थ—(**अञ्जते**) इच्छा करते हैं (**व्यञ्जते**) पवित्र होते हैं (**समञ्जते**) साक्षात् करते हैं (**क्रतुम्**) ज्ञान का (**रिहन्ति**) आस्वादन करते हैं (**मध्वा**) आत्मज्ञान से (**अभ्यञ्जते**) संपन्न होते हैं (**सिन्धोः**) परमेश्वर के (**उच्छ्वासे**) उच्च स्थान [परम पद] में (**पतयन्तम्**) जानेवाले (**उक्षणम्**) बलवान् (**हिरण्यपावाः**) तप्त सुवर्ण के समान मलरहित (**पशुन्**) द्रष्टा जीव को (**अप्सु**) कर्मों में (**गृभ्णते**) ग्रहण करते हैं ।।१।।

भावार्थ—तप्त स्वर्ण के समान अविद्या आदि मल से रहित योगीजन इच्छा करते हैं और पवित्र होते हैं । तदनन्तर साक्षात्कार करते हैं फिर ज्ञान का आस्वादन करते हैं फिर आत्मज्ञान से संपन्न होकर परमेश्वर के परमपद को प्राप्त करते हुए बलवान्, द्रष्टा जीव को अपने कर्मों से ग्रहण करते हैं ।।१।।

१६१५—अत्रिः । सोमः । जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
अहिर्न जूर्णामतिसर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ।।२।।

पदार्थ—(**विपश्चिते**) मेधावी (**पवमानाय**) पवित्र स्वभाव (**गायत**) प्रशंसा करो (**मही**) महान् (**न**) समान (**धारा**) वेदवाणी के (**अति**) अत्यन्त (**अन्धः**) अज्ञानान्धकार को (**अर्षति**) नष्ट करता है (**अहिः**) सर्प के (**न**) समान (**जूर्णाम्**) पुरानी (**अतिसर्पति**) छोड़ देता है (**त्वचम्**) केंचुल (**अत्यः**) वायु के (**न**) समान (**क्रीडन्**) खेलता हुआ (**असरद्**) स्वतन्त्र विचरता है (**वृषा**) शक्तिशाली (**हरिः**) अज्ञानहर्त्ता ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग मेधावी तथा पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष का गुणगान करो । यह महान् वेदवाणी के समान अज्ञान का नाश करता है । केंचुली को सर्प के समान शरीर की ममता का परित्याग कर बलवान् तथा अज्ञानहर्त्ता वह वायु के समान स्वतन्त्र विचरता है ।।२।।

१६१६—अत्रिः । सोमः । जगती ।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नाम्भुवनेष्वर्पितः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवे ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ।।३।।

पदार्थ—(**अग्रेगः**) सबसे आगे रहने वाला (**राजा**) प्रकाशस्वरूप (**आप्यः**) प्राप्त करने के योग्य (**स्तविष्यते**) भजा जाता है (**विमानः**) निर्माण करने वाला (**अह्नाम्**) दिनों का (**भुवनेषु**) लोकों में (**अर्पितः**) व्यापक (**हरिः**) दुःखहर्त्ता (**घृतस्नु**) प्रकाशदाता (**सुदृशीकः**) साक्षात् के योग्य (**अर्णवः**) अपार (**ज्योतीरथः**) ग्रहों का [गति देनेवाला] चलानेवाला (**पवते**) प्रदान करता है (**रायः**) संपदाएँ (**ओक्यः**) आश्रयदाता ।।३।।

भावार्थ—भक्त लोग सबसे आगे रहनेवाले, प्रकाशस्वरूप, प्राप्त करने योग्य दिन-रात का निर्माण करनेवाला, लोकों में व्यापक, दुःखहर्त्ता, प्रकाशदाता, साक्षात् करने के योग्य, अपार, ग्रहों को चलानेवाला तथा आश्रयदाता परमेश्वर का भजन करते हैं । वह संपदाएँ देता है ।।३।।

卐 **चतुर्थः खण्डः समाप्तः** 卐

卐 **षोडशोऽध्यायः समाप्तः** 卐

卐

सप्तदशोऽध्यायः

१६१७—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र १ २
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धा सहसो यहो ।।१।।

पदार्थ—(**विश्वेभिः**) सारे (**अग्ने**) हे विद्वन् (**अग्निभिः**) आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिण अग्नियों द्वारा (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) परमेश्वर को (**इदम्**) इस (**वचः**) वेद-वचन को (**चनः**) अन्न को (**धाः**) धारण कर (**सहसः**) बल के (**यहो**) पुत्र-धनी ।।१।।

भावार्थ—हे बल के पुत्र ! [अर्थात् आत्मबल के धनी] तू गार्हपत्यादि सारी अग्नियों द्वारा परमेश्वर वेद-वचन तथा अन्न को धारण कर ।।१।।

१६१८—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २र ३ २
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्व इद्धूयते हविः ।।२।।

पदार्थ—(**यत् चित् हि**) यद्यपि (**शश्वता**) सनातन (**तना**) विस्तृत यज्ञ से (**देवं देवम्**) प्रत्येक देव के नाम से (**यजामहे**) यज्ञ करते हैं किन्तु (**त्वे**) तेरे निमित्त (**इत्**) ही (**हूयते**) दी जाती है (**हविः**) हवि ।।२।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! यद्यपि सनातन यज्ञ क्रिया से प्रत्येक देव के नाम से यज्ञ किया जाता है तथापि हवन तेरे निमित्त ही होता है ।।२।।

१६१९—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥

पदार्थ—(प्रियः) प्रिय (नः) हमारा (अस्तु) हो (विश्पतिः) संसारी प्रजाओं का स्वामी (होता) दाता (मन्द्रः) प्रसन्न (वरेण्यः) श्रेष्ठ (प्रियाः) प्यारे (स्वग्नयः) यज्ञ करनेवाले (वयम्) हम लोग ॥३॥

भावार्थ—हे भक्त लोगो ! संसार का पालक, दाता, नित्यप्रसन्न तथा श्रेष्ठ परमेश्वर हमारा प्रिय हो और यज्ञकर्त्ता हम लोग भी उसके प्यारे बनें ॥३॥

१६२०—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (वः) तुम लोगों के लिए (विश्वतः) सब ओर से (परि) ऊपर विद्यमान (हवामहे) पुकारते हैं (जनेभ्यः) जनों से (अस्माकम्) हमारा (अस्तु) हो (केवलः) सदा मुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम्हारे कल्याण के लिए, परमेश्वर को जो समस्त जनों से उत्तम पदवाला है पुकारते हैं । सदा मुक्त वह हमारा कल्याणकारी हो ॥१॥

१६२१—मधुच्छन्दा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे लिए (वृषन्) हे वृष्टिकर्त्ता (अमुम्) इस (चरुम्) मेघ को (सत्रादावन्) हे सत्य के दाता (अपावृधि) खोल दे (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (अप्रतिष्कुतः) सदा सावधान ॥२॥

भावार्थ—हे सत्य के दाता तथा वृष्टि करनेवाले परमेश्वर ! हमारे कल्याण के लिए सदा सावधान तू हमारे लाभ के लिए अर्थ-वृष्टि कर ॥२॥

१६२२—मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥३॥

पदार्थ—(वृषा) बैल के (यूथा) गो-समूहों को (इव) समान (वंसगः) सत् असत् का विवेक करनेवाले को प्राप्त होने वाला (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (ओजसा) बल से (ईशानः) स्वामी (अप्रतिष्कुतः) सदा सावधान ॥३॥

भावार्थ—गो-समूहों को वृषभ के समान, सत्-असत् के विवेकी को प्राप्त होनेवाला तथा सदा सावधान परमेश्वर बल के साथ मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥३॥

१६२३—शंयुः । अग्निः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ १ ३ २र

अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१॥

पदार्थ—(त्वं) तू (नः) हमारे लिए (चित्रः) दर्शन के योग्य (ऊत्या) रक्षा के साथ (वसो) बसनेवाले (राधांसि) विद्याधनों को (चोदय) प्रेरित कर (अस्य) इस (रायः) धन का (त्वम्) तू (अग्ने) हे विद्वन् (रथीः) रथी (असि) है (विदा) प्राप्त करा (गाधम्) प्रतिष्ठा को (तुचे) सन्तान के लिए (तु) पदपूरण (नः) हमारी ॥१॥

भावार्थ—हे सद्गुणों को निवास देनेवाले विद्वन् ! दर्शनीय तू हमें रक्षा के साथ विद्या आदि सम्पत्तियां दे । तू इस धन का नेता है । हमारी सन्तान को प्रतिष्ठा दे ॥१॥

१६२४—शंयुः । अग्निः । बृहती ।

१२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥२॥

पदार्थ—(पर्षि) रक्षा करता है (तोकम्) पुत्र की (तनयम्) पौत्र की (पर्तृभिः) रक्षा के साधनों से (त्वम्) तू (अदब्धैः) अनिवार्य (अप्रयुत्वभिः) एक साथ रहनेवाले (अग्ने) हे परमेश्वर (हेडांसि) प्रकोपों को (दैव्या) दैवी (युयोधि) दूर कर (नः) हमारे (अदेवानि) आसुरी (ह्वरांसि) कुटिलताओं को ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अनिवार्य तथा एक साथ होनेवाले रक्षा के साधनों से हमारे पुत्र और पौत्रों की रक्षा करता है । तू हमारे दैवी प्रकोप तथा आसुरी कुटिलताओं को दूर कर ॥२॥

१६२५—वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २

किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

१ २र ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

मा वर्पो अस्मदपगह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१॥

पदार्थ—(किमित्) क्या है (ते) तेरा (विष्णो) हे सर्वव्यापक परमेश्वर (परिचक्षि) प्रसिद्ध (नाम) नाम (प्र) उत्तम (यत्) जो (ववक्षे) बतलाता है (शिपिविष्टः) पदार्थमात्र में प्रविष्ट (अस्मि) हूँ (मा) मत (वर्पः) स्वरूप को (अस्मद्) हमसे (अपगूह) छिपा (एतत्) यह (यत्) जो (अन्यरूपः) दूसरे स्वरूप वाला (समिथे) संसार संग्राम में (बभूथ) है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा प्रसिद्ध नाम क्या यही है जो तू बतलाता है कि सर्वव्यापक हूँ । हे भगवन् ! अपने उस स्वरूप को हमसे मत छिपा जो कि संसार संग्राम में विराजमान है ॥१॥

१६२६—वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तन्त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥२॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (तत्) उस (ते) तेरे (अद्य) आज (शिपिविष्ट) हे सर्वव्यापक (हव्यम्) पुकारने योग्य (अर्यः) स्वामी (शंसामि) प्रशंसा करता हूँ (वयुनानि) ज्ञातव्य ज्ञानों को (विद्वान्) जानता हुआ (तम्) उस (त्वा) तेरी (गृणामि) स्तुति करता हूँ (तवसम्) महान् (अतव्यान्) तुच्छ (क्षयन्तम्) विराजमान होनेवाले (अस्य) इस (रजसः) संसार [लोक] के (पराके) परे ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! धन-धान्य का स्वामी मैं समस्त ज्ञान-विज्ञानों को जानता हुआ आज तेरे प्रशस्य ओम् नाम की प्रशंसा करता हूँ । अल्पज्ञ मैं इस लोक से परे स्थित तुझ महान् की स्तुति करता हूँ ॥२॥

१६२७—वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

१२ ३ २ ३ १ ९ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थ—(वषट्) कर्त्तव्य कर्म को (ते) तेरे निमित्त (विष्णो) हे परमेश्वर (आसे) सन्मुख (आकृणोमि) करता हूँ । (तत्) वह (मे) मेरा (जुषस्व) स्वीकार कर (शिपिविष्ट) हे सर्वव्यापक (हव्यम्) उपासना को (वर्धन्तु) स्तुति करें (त्वा) तेरी (सुष्टुतयः) मनोहर स्तुतियुक्त (गिरः) वाणियां (मे) मेरी (यूयम्) तू (पात) रक्षा कर (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (सदा) सर्वदा (नः) हमारी ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! सन्मुख स्थित मैं तेरे निमित्त कर्त्तव्य कर्म को करता हूँ । तू मेरी भक्ति स्वीकार कर, मेरी स्तुतियुक्त वाणियां तेरी स्तुति करें । तू कल्याण के साथ हमारी सदा रक्षा कर ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१६२८—वामदेवः । वायुः । अनुष्टुप् ।

१२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्र दिविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥

पदार्थ—(वायो) हे परमेश्वर (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (अयामि) प्राप्त करता हूँ (ते) तेरे (मध्वः) ज्ञान का (अग्रम्) प्रथम (दिविष्टिषु) दिव्य गुणों की इच्छा में होने पर (आयाहि) व्यापक हो रहा है (सोमपीतये) संसार की रक्षा के लिए (स्पार्हः) स्पृहणीय [चाहने योग्य] (देव) हे देव (नियुत्वता) वायु के साथ ॥१॥

भावार्थ—हे परमात्म देव ! दिव्य गुणों की इच्छाएँ होने पर मैं तेरे ज्ञान को प्रथम प्राप्त करता हूँ । शुद्धस्वरूप तथा चाहने योग्य तू संसार की रक्षा के लिए वायु के साथ व्यापक है ॥१॥

१६२९—वामदेवः । इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

१२ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानाम्पीतिमर्हथः ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र

युवा हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जीवात्मा (च) और (वायो) हे परमेश्वर (एषाम्) इन (सोमानाम्) उत्पन्न पदार्थों की (पीतिम्) रक्षा के (अर्हथः) योग्य हो (युवाम्) तुम दोनों को (हि) ही (यन्ति) प्राप्त करते हैं (इन्दवः) योगीजन (निम्नम्) नीची जगह को (आपः) जल के (न) समान (सध्र्यक्) साथ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और जीव दोनों इन उत्पन्न संसारी पदार्थों की रक्षा में समर्थ हो । नीचे स्थान की जल के समान योगीजन तुम दोनों को ही प्राप्त करते हैं ॥२॥

१६३०—वामदेवः । इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—(वायो) हे परमेश्वर (इन्द्रः) जीव (च) और (शुष्मिणा) बलवान् (सरथम्) समानरूप से प्रकृति-रथ पर विराजमान (शवसस्पती) बल के रक्षक (नियुत्वन्ता) समर्थ [प्रभु स्वामी] (नः) हमारे (ऊतये) रक्षा के लिए (आयातम्) प्राप्त होओ (सोमपीतये) ऐश्वर्य के पालन के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू और जीवात्मा दोनों ही बलवान् बल के रक्षक तथा समर्थ हो । तुम दोनों हमारी ओर ऐश्वर्य की रक्षा के लिए संसार रूप रथ पर एक साथ रहते हुए प्राप्त होओ ॥३॥

१६३१—रेभसूनू । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १   २र   ३ १ २ ३ १   २र
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्रगाहसे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥१॥

पदार्थ—(अध) पश्चात् (क्षपाः) अज्ञानरात्रियों को (परिष्कृत) पवित्र किया गया (वाजान्) ज्ञानों का (अभि) भली भांति (प्रगाहसे) अवगाहन करता है (यदी) जब (विवस्वतः) परमेश्वर के (धियः) ज्ञान (हरिम्) हरणशील [व्यवहारों का हरण करनेवाला] (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (यातवे) जानने के लिए ॥१॥

भावार्थ—जब परमेश्वर के ज्ञान व्यवहार कुशल तुझ को निज स्वरूप के जानने के लिए प्रेरणा करते हैं तब हे जीव ! तू अज्ञान रात्रि को पार कर पवित्र हुआ भली भांति ज्ञान का अवगाहन करता है ॥१॥

१६३२—रेभसूनू । सोमः । अनुष्टुप् ।

१२   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनञ्च सूरयः ॥२॥

पदार्थ—(तम्) उस (अस्य) इस (मर्जयामसि) प्राप्त करते हैं (मदः) आनन्द को (यः) जो (इन्द्रपातमः) जीव के अत्यन्त पान करने के योग्य है (यम्) जिसकी (गावः) स्तोता (आसभिः) मुखों से (दधुः) धारण करते अर्थात् प्रशंसा करते हैं (पुरा) पहले के समान (नूनम्) निश्चित (च) ही (सूरयः) ज्ञानी लोग ॥२॥

भावार्थ—इस परमेश्वर को, जो आनन्द जीव के अत्यन्त पान करने के योग्य है, जिसकी उपासक और विद्वान् लोग पहले और अब भी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते आए हैं उसे हम प्राप्त करते हैं ॥२॥

१६३३—रेभसूनू । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३क २र
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥

पदार्थ—(तम्) उसकी (गाथया) वेदवाणी (पुराण्या) सनातन (पुनानम्) पवित्र करनेवाले (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं । (उतो) तथा (कृपन्त) समर्थ करती हैं (धीतये) ज्ञान (देवानाम्) देवों के (नाम) नाम को (बिभ्रतीः) धारण करनेवाली ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! विद्वान् पवित्रकर्त्ता परमेश्वर की सनातन वेदवाणी से स्तुति करते हैं तथा देवों के नाम को धारण करनेवाले ज्ञान उनको समर्थ बनाते हैं ।३।

१६३४—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १   २र
अश्वन्न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निन्नमोभिः ।
३ १ २   ३ १ २
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१॥

पदार्थ—(अश्वम्) अश्व के (न) समान (त्वा) तेरी (वारवन्तम्) अज्ञान को दूर करनेवाले (वन्दध्या) वन्दना करते हैं (अग्निम्) तेजस्वी (नमोभिः) नमस्कार के द्वारा (सम्राजम्) सम्राट् (तम्) उस (अध्वराणाम्) कल्याणकारी यज्ञ के ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! हम अश्व के समान बलवान्, अज्ञान के निवारक तथा यज्ञों के सम्राट् तुझ तेजस्वी की नमस्कारों से वन्दना करते हैं ॥१॥

१६३५—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (घा) ही (नः) हमारे लिए (सूनुः) सृष्टिकर्त्ता (शवसा) अपनी शक्ति से (पृथुप्रगामा) बहुत उत्कृष्ट गतिवाला (सुशेवः) उत्तम सुखवाला ((मीढ्वान्) मनोरथों की वर्षा करनेवाला (अस्माकम्) हमारा (बभूयात्) होवे ॥२॥

भावार्थ—सृष्टिकर्त्ता, अपनी शक्ति से सर्वत्र विराजमान होनेवाला यह परमेश्वर हमारे लिए उत्तम सुखदाता तथा हमारे मनोरथों को पूरा करनेवाला होवे।२।

१६३६—शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारी (दूरात्) दूर से (आसात्) समीप से (च) और (नि) सम्पूर्ण रूप से (मर्त्यात्) मनुष्य से (अघायोः) पापी (पाहि) रक्षा कर (सदमित्) सर्वदा ही (विश्वायुः) विश्वव्यापी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सर्वव्यापक तू दूर तथा समीप अर्थात् सर्वत्र पापी मनुष्य से सदा ही हमारी रक्षा कर ॥३॥

१६३७—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १   २र ३ १ २
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३   १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (इन्द्र) हे सेनापते (प्रतूर्तिषु) संग्रामों में (अभि) भली भांति (विश्वाः) सारी (असि) तू (स्पृधः) लड़नेवालों (अशस्तिहा) विपत्ति का नाशक (जनिता) उत्पादक (वृत्रतूः) शत्रु का नाशक (असि) है (त्वम्) तू (तूर्य) हे शत्रु-घातक (तरुष्यतः) बाधा पहुँचाने वाले का ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! तू संग्रामों में सारी शत्रु-सेनाओं को परास्त करता है । हे विघ्न करनेवालों के विघातक ! तू प्रजा की विपदा को दूर करनेवाला तथा शत्रुओं की विपदाओं का उत्पादक और शत्रुनाशक है ॥१॥

१६३८—नृमेधः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २उ ३   ३ १ २
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुन्न मातरा ।
१ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२॥

पदार्थ—(अनु) पीछे (ते) तेरे (शुष्मम्) बल के (तुरयन्तम्) शत्रुनाशक (ईयतुः) चलते हैं (क्षोणी) द्यु और पृथिवीलोक (शिशुम्) बच्चे को (न) समान (मातरा) माता के । (विश्वाः) समस्त (ते) तेरे (स्पृधः) पाप करनेवाले [स्पर्धा करनेवाले] (श्नथयन्त) ढीले पड़ जाते हैं (मन्यवे) क्रोध के लिए (वृत्रं) पाप को (यत्) क्योंकि (इन्द्र) हे परमेश्वर (तूर्वसि) नष्ट करता है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! बच्चे को माता के समान द्यु और पृथिवीलोक तेरे बल के पीछे चलते हैं । क्योंकि तू पाप का विनाश करता है इसलिए सारे पाप करनेवाले तेरे क्रोध से ढीले पड़ जाते हैं ॥२॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६३९—गोषूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ २
यज्ञ इन्द्रमवर्धयत् यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् । चक्राण ओपशन्दिवि ॥१॥

पदार्थ—(यज्ञः) परमेश्वर (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बड़ा बनाया (यत्) जो कि (भूमिम्) भूगोल को (व्यवर्त्तयत्) घुमाता है (चक्राणः) करता हुआ (ओपशम्) अत्यन्त सम्बद्ध (दिवि) आकाश में ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सूर्य को बड़ा बनाया जो कि पृथ्वी को आकाश में अत्यन्त नियन्त्रित करता हुआ घुमाता है ॥१॥

१६४०—गोषूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्रः । गायत्री ।

२ १२   ३२३ १२   ३ २   २ ३ १ २र ३ २
व्य३न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥२॥

पदार्थ—(वि) विशेष (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (अतियत्) फैलाता है (मदे) दी हुई गति में (सोमस्य) परमेश्वर की (रोचना) प्रकाश-किरणों को (इन्द्रः) सूर्य (यत्) जो कि (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है (वलम्) मेघ को ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियन्त्रण में सूर्य अन्तरिक्ष में प्रकाश को फैलाता है तथा मेघ को छिन्न-भिन्न करता है ॥२॥

१६४१—गोषूक्त्यश्वसूक्ती । इन्द्रः । गायत्री ।

३   २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २र ३ २   ३ १ २   ३ २
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चन्नुनुदे बलम् ॥३॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (गाः) वेदवाणियों को (आजत्) देता है (अङ्गिरोभ्यः) सृष्टि और विद्या के सिद्धान्त को जाननेवालों के लिए (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (गुहा) बुद्धि में (सतीः) स्थित (अर्वाञ्चम्) नीचे (नुनुदे) हटाता है (बलम्) अज्ञान के आवरण को ॥३॥

भावार्थ—बुद्धि में छिपी वेदवाणियों को प्रकट करते हुए, परमेश्वर विद्या के सिद्धान्त को जाननेवालों के लिए प्रदान करता है और अज्ञानावरण को दूर करता है ॥३॥

१६४२—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१२ ३२३१२ ३१२ १ २ ३१२
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥१॥

पदार्थ—(त्यम्) उस (उ) पादपूरक (वः) तुम्हारी (सत्रासाहम्) सत्य के द्वारा दबानेवाले (विश्वासु) सारी (गीर्षु) स्तुतियों में (आयतम्) विराजमान (आच्यावयसि) प्राप्त कर (ऊतये) रक्षा के लिए ॥१॥

भावार्थ—हे भक्त ! तू सत्य के द्वारा सबको वश में करनेवाले, सारी स्तुतियों में विराजमान उस परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिए प्राप्त कर ॥१॥

१६४३—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

३ १ २र ३१२ ३१२र १२ ३१२
युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥२॥

पदार्थ—(युध्मम्) व्यापक (सन्तम्) सत्स्वरूप (अनर्वाणम्) स्वतन्त्र (सोमपाम्) संसार के रक्षक (अनपच्युतम्) सदा परिपूर्ण (नरम्) नेता (अवार्यक्रतुम्) अमोघ कर्मवाले ॥२॥

भावार्थ—हे भक्त ! तू अपनी रक्षा के लिए सर्वव्यापक, सत्स्वरूप, स्वतन्त्र, संसार के रक्षक, सदा पूर्ण, पथप्रदर्शक तथा अमोघ कर्मवाले परमेश्वर का भजन कर ॥ २ ॥

१६४४—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३२र ३२३१२ १२ ३ २३१२
शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वां ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥३॥

पदार्थ—(शिक्षा) दे (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (रायः) संपदाएँ (आ) भली भांति (पुरु) बहुतायत से (विद्वान्) जानता हुआ (ऋचीषम) हे दर्शनीय (अव) रक्षा कर (नः) हमारी (पार्ये) परिपूर्ण होने पर भी (धने) धन के ॥३॥

भावार्थ—हे साक्षात्कार के योग्य परमेश्वर ! तू सर्वज्ञ है । हमें अधिकता से संपदाएँ प्रदान कर तथा पूर्ण धन हो जाने पर भी हमारी रक्षा कर ॥३॥

१६४५—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

२३ १२३२३ २र३१२३१ २र
तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ २३ १२उ
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थ—(तव) तेरा (त्यत्) वह (इन्द्रियम्) धन (बृहत्) महान् है । (तव) तेरी (दक्षम्) बल को (उत) और (क्रतुम्) कर्म और ज्ञान को (वज्रम्) शस्त्र को (शिशाति) प्रदान करती है (धिषणा) वेदवाणी (वरेण्यम्) श्रेष्ठ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा धन अपार है । तेरी वेदवाणी श्रेष्ठ बल, विद्या, और शस्त्र प्रदान करती है ॥१॥

१६४६—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

२ ३१२३ १ २ ३ १२ ३ १२ २र ३१२
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्द्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२॥

पदार्थ—(तव) तेरे (द्यौः) द्युलोक (इन्द्र) (पौंस्यम्) पराक्रम का (पृथिवी) पृथिवी (वर्धति) वर्णा करती है (श्रवः) यश का (त्वाम्) तुझे (आपः) जल (पर्वतासः) मेघ (च) और (हिन्विरे) जनाते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! द्युलोक तेरे पराक्रम और भूलोक तेरे यश का वर्णन करते हैं । जल और मेघ आदि तुझे ही जना रहे हैं ॥२॥

१६४७—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

१ २र३१ २र ३१२ ३१२
त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
१ २र ३ २३१२
त्वां शर्द्धो मदत्यनुमारुतम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वाम्) तेरी (विष्णुः) शिल्पविद्या में निपुण मनुष्य (बृहत्) महान् (क्षयः) आश्रय (मित्रः) स्नेही (गृणाति) स्तुति करता है (वरुणः) विद्वान् अध्यापक (त्वाम्) तेरी (शर्द्धः) बल (मदति) अर्चना करता है (अनु) अनुकूलता से (मारुतम्) ऋत्विज् सम्बन्धी ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू सबका महान् आश्रय है । शिल्पी, स्नेही, तथा विद्वान अध्यापक तेरी स्तुति करते हैं । ऋत्विजों की शक्ति तेरी ही पूजा करती है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६४८—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३१२ ३१२ १२३१२
नमस्ते अग्ने ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्र मर्दय ॥१॥

पदार्थ—(नमः) नमस्कार (ते) तेरे लिए (अग्ने) हे विद्वन् (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिए (गृणन्ति) करते हैं (देव) हे देव (कृष्टयः) मनुष्य लोग (अमैः) बलों से (अमित्रम्) बुराई को (अर्दय) मर्दन करदे ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् देव ! मनुष्य बल की प्राप्ति के लिए तुझे नमस्कार करते हैं । तू बलों से बुराइयों को नष्ट कर ॥१॥

१६४९—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१२उ ३१२३१२३१२ ३२ १२३१२
कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२॥

पदार्थ—(कुवित्) बहुत (सु) सुन्दर (नः) हमें (गविष्टये) इन्द्रियों के कल्याण के लिए (अग्ने) हे परमेश्वर (संवेषिषः) देता है (रयिम्) धन को (उरुकृत्) बड़ा बनानेवाला (उरु) बड़ा (नः) हमें (कृधि) कर ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमारी इन्द्रियों के कल्याण के लिए पर्याप्त धन हमें प्रदान कर । तू महान् बनानेवाला है । अतः हमें महान् बना ॥२॥

१६५०—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१ २ ३१ २र ३१२ ३२३२३१२
मा नो अग्ने महाधने परावर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥३॥

पदार्थ—(मा) मत (नः) हमें (अग्ने) हे परमेश्वर (महाधने) जीवन संग्राम में (परावर्ग्) पृथक् मत फेंको (भारभृत्) बोझा ढोनेवाले के (यथा) समान (सम्) सम्यक् (वर्गम्) कामादि शत्रु वर्ग को (सम्) एक साथ (रयिम्) धन (जय) जिता तथा प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू भार को ढोनेवाले के समान हमें जीवन संग्राम में परे मत कर । तू हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जिता तथा धन की प्राप्ति करा ॥ ३ ॥

१६५१—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

१२ ३२३२३१ २ ३१२ ३१२३१ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (अस्य) इसके (मन्यवे) क्रोध के लिए (विशः) प्रजा (विश्वाः) सारी (नमन्त) नम्र होते हैं (कृष्टयः) मनुष्य (समुद्राय) समुद्र के लिए (इव) समान (सिन्धवः) नदियों के ॥१॥

भावार्थ—समुद्र में नदियों के समान सारी मनुष्य प्रजा राजा के क्रोध से नम्र हो जाती है ॥१॥

१६५२—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३२३१२३१२ ३१२ १२ ३१२
वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ॥२॥

पदार्थ—(वि) विशेष (चित्) ही (वृत्रस्य) मेघ के (दोधतः) गर्जना से कंपायमान करनेवाले (शिरः) शिर को (बिभेद) छिन्न-भिन्न करता है (वृष्णिना) वर्षा करानेवाले (वज्रेण) किरणसमूह से (शतपर्वणा) सैंकड़ों कर्म वाले ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर गर्जना से कंपानेवाले मेघ के उच्च शिखर को वर्षा करानेवाले तथा सैंकड़ों कर्मों को सिद्ध करनेवाले सूर्य किरणों के समूह द्वारा छिन्न-भिन्न करता है ॥२॥

१६५३—वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३१२ ३२उ ३१२ २३१२३१२
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३॥

पदार्थ—(ओजः) पराक्रम (तत्) वह (अस्य) इसका (तित्विषे) अत्यन्त प्रकाशित होता है (उभे) दोनों (यत्) जिससे (समवर्तयत्) फैलाता और समेटता है । (इन्द्रः) परमेश्वर (चर्म) चमड़े के (इव) समान (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर का वह पराक्रम अत्यन्त प्रकाशमान हो रहा है, जिससे कि वह द्यु और पृथिवी लोक को चमड़े के समान सृष्टिकाल में फैलाता और प्रलयकाल में समेट लेता है ॥३॥

१६५४—शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

३२३२३१२३१२
सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१॥

पदार्थ—(सुमन्मा) मनोहर (वस्वी) दूर तक बसी हुई (रन्ती) रमणीय (सूनरी) उषा ॥१॥

भावार्थ—मनोहर, दूर तक छाई हुई तथा रमणीय उषा परमेश्वर तथा उसके सृष्टि-नियम को स्मरण कराती है ॥१॥

१६५५—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

१२ ३ १ २३ २३ १ २र ३ २ २ ३ १ २र
सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्याविभि । ताविमा उप सर्पतः ॥२॥

पदार्थ—(सरूप) हे एकरस (वृषन्) हे सुख की वर्षा करनेवाले (आगहि) प्राप्त हो । (इमौ) ये दोनों (भद्रौ) कल्याण करनेवाले (धुर्यौ) ज्ञान और कर्म के भार को वहन करनेवाले (अभि) अच्छी प्रकार (तौ) वे दोनों (इमौ) ये (उपसर्पतः) तेरे समीप जाते हैं ॥२॥

भावार्थ—हे एकरस तथा सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तू सबका कल्याणकारी तथा ज्ञान और कर्म के भार को वहन करनेवाले ज्ञानी और ध्यानी को प्राप्त हो । ये तेरे समीप पहुँचें ॥२॥

१६५६—*शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।*

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३॥

पदार्थ—(नि) निश्चय (इव) पादपूरक (शीर्षाणि) मस्तिष्कों को (मृढ्वम्) ठीक रखो (मध्ये) मध्य (आपस्य) परमेश्वर के (तिष्ठति) स्थित होता है (शृङ्गेभिः) इन्द्रियों की ज्योतियों से (दश) दश (दिशन्) बतलाता हुआ [प्रकट करता हुआ] ॥३॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष जीवन्मुक्त हुआ दश इन्द्रियों की ज्योति में से सारे व्यवहारों का निर्देश करता हुआ परमेश्वर में स्थित होता है । अतः हे मनुष्य, तुम अपने मस्तिष्कों को उत्तम बनाओ ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

卐 सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः 卐

अष्टादशोऽध्यायः

१६५७—*मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १ २ ३ २ ३ १ २
पन्यंपन्यमित्स्तोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥१॥

पदार्थ—(पन्यम्) प्रशंसनीय (पन्यम्) प्रशंसा योग्य (इत्) ही (स्तोतारः) भक्त लोगो (आधावत) पवित्र करो या जानो (मद्याय) आनन्ददायक (सोमम्) आत्मा को (वीराय) शक्तिमान् (शूराय) प्रतापी ॥१॥

भावार्थ—हे भक्तो ! तुम लोग आनन्ददाता, शक्तिमान् तथा प्रतापी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रशंसनीय अपनी आत्मा को जानो और पवित्र करो ॥१॥

१६५८—*मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ ९र ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ १ २ ३ १ २र
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (इह) इस उपासना यज्ञ में (हरी) ऋक् और साम (ब्रह्मयुजा) मन्त्रवाले (शग्मा) कल्याणकारी (वक्षतः) प्राप्त कराते हैं (सखायम्) सर्वमित्र (इन्द्रम्) परमेश्वर को (गीर्भिः) स्तुतियों से (गिर्वणसम्) भजन करने के योग्य ॥२॥

भावार्थ—मन्त्रों से युक्त तथा कल्याणकारी ऋक् और साम सबके मित्र, स्तुतियों से उपास्य परमेश्वर को इस उपासना यज्ञ में प्राप्त कराते हैं ॥२॥

१६५९—*मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥३॥

पदार्थ—(पाता) रक्षक (वृत्रहा) पाप-नाशक (सुतम्) संसार का (आ) भली भांति (घा) पादपूरक (गमत्) प्राप्त हो (आरे) समीप और दूर में (अस्मत्) हमसे [नियमते] नियन्त्रण करता है (शतमूतिः) सैकड़ों रक्षाओं वाले ॥३॥

भावार्थ—पालन कर्त्ता, पाप-नाशक तथा सैकड़ों प्रकार की रक्षाओं से युक्त वह परमेश्वर हमें प्राप्त हो जो कि हमारे समीप तथा दूरवर्त्ती जगत् का नियंत्रण करता है ॥३॥

१६६०—*श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (त्वा) तुझ में (विशन्तु) आश्रय पावें (इन्दवः) यज्ञ (समुद्रम्) समुद्र में (इव) समान (सिन्धवः) नदियों के (न) नहीं (त्वाम्) तुझ से (इन्द्र) हे परमेश्वर (अतिरिच्यते) अतिरिक्त होता है [पृथक् होता है] ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! समुद्र में नदियों के समान सारे यज्ञ तुझ में आश्रय पावें । हे सर्वव्यापक ! कोई भी तुझ से पृथक् नहीं रह सकता ॥१॥

१६६१—*श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥

पदार्थ—(विव्यक्थ) व्यापक हो रहा है (महिना) महिमा से (वृषन्) हे सुख की वर्षा करनेवाले (भक्षन्) भक्ष्य पदार्थ में (सोमस्य) संसार के (जागृवे) सर्वदा सावधान (यः) जो (इन्द्र) हे परमेश्वर (जठरेषु) मध्य में (ते) तेरे ॥२॥

भावार्थ—हे सदा सावधान तथा सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! तू अपने मध्य में स्थित संसार के समस्त भोग्य पदार्थों में व्यापक हो रहा है ॥२॥

१६६२—*श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

१२ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥

पदार्थ—(अरम्) समर्थ (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (कुक्षये) गोद के लिए (सोमः) आत्मा (भवतु) हो (वृत्रहन्) हे पापनाशक (अरम्) पर्याप्त (धामभ्यः) तीनों लोकों के लिए (इन्दवः) यज्ञ ॥३॥

भावार्थ—हे पापनाशक परमेश्वर ! आत्मा तेरी गोद में बैठने के लिए समर्थ हो तथा यज्ञादि कर्म तीनों लोकों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त होवें ॥३॥

१६६३—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥

पदार्थ—(जराबोध) हे स्तुति का बोध करानेवाले (तत्) उस (विविड्ढि) कर (विशेविशे) प्रजामात्र के लिए (यज्ञियाय) पूज्य (स्तोमम्) प्रशंसा वचन (रुद्राय) ग्यारहवें रुद्र आत्मा के लिए (दृशीकम्) मनोहर ॥१॥

भावार्थ—हे स्तुति का ज्ञान करानेवाले विद्वन् ! प्रजामात्र के लिए पूज्य जीव की मनोहर प्रशंसा कर ॥१॥

१६६४—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमें (महान्) महान् (अनिमानः) अपरिच्छिन्न=सर्वव्यापक (धूमकेतुः) दुष्टों का दलन करनेवाला (पुरुः) महान् (चन्द्रः) आनन्ददाता (धिये) ज्ञान के लिए (वाजाय) अन्न के लिए (हिन्वतु) प्रेरित करे ॥२॥

भावार्थ—महान्, सर्वव्यापक, दुष्टों का दलन करनेवाला तथा आनन्ददाता परमेश्वर हमें बुद्धि और अन्न की प्राप्ति के लिए प्रेरणा करे ॥२॥

१६६५—*शुनःशेपः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (रेवान्) धनवान् की (इव) भांति (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी (दैव्यः) विद्वानों का हितकारी (केतुः) वेद का ज्ञान देनेवाला (शृणोतु) सुने (नः) हमारी (उक्थैः) स्तुतियों द्वारा (अग्निः) परमेश्वर (बृहद्भानुः) महान् प्रकाशवाला ॥३॥

भावार्थ—प्रजा का पालक, विद्वानों का हितकारी, वेद का उपदेश करनेवाला तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर धनी पुरुष के समान स्तुतियों के द्वारा हमारी सुने ॥३॥

१६६६—शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

१२ ३१ २र ३२३१२ २उ ३२३१२
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥

पदार्थ—(तत्) उस (वः) तुम लोग (गाय) गान करो (सुते) संसार में (सचा) सत्य से (पुरुहूताय) बहुतों से आह्वान किया जानेवाला (सत्वने) धनदाता (शम्) सुखदायी (यत्) जो (गवे) वेदवाणी के (न) समान (शाकिने) शक्तिशाली ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग बहुतों से पुकारे जानेवाले, धनदाता तथा शक्तिमान् विद्वान् के लिए वेदवाणी के समान कल्याणकारी स्तोत्र का सत्यता के साथ गान करो ॥१॥

१६६७—शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

२३ २३१२ ३१ २र३१२ २३२३२३१२
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (घ) ही (वसुः) सर्वव्यापक (नियमते) रोकता है (दानम्) दान को (वाजस्य) ज्ञान का (गोमतः) वेदविद्यायुक्त (यत्) जब (सीम्) सर्वथा (उपश्रवद्) सुन लेता है (गिरः) स्तुतियों को ॥२॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर जब हमारी स्तुतियों को सर्वथा सुन लेता है तो हमारे लिए वह विद्यायुक्त विज्ञान के दान को नहीं रोकता ॥२॥

१६६८—शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

३१२३२उ ३१ २र ३१ २र १२३१२
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥३॥

पदार्थ—(कुवित्सस्य) अत्यन्त भजन करनेवाले [जीव] के (प्र) उत्तम (हि) निश्चय (व्रजम्) शरीर रूप बाड़े में (गोमन्तम्) इन्द्रिययुक्त (दस्युहा) पापनाशक (अगमत्) व्यापक हो रहा है (शचीभिः) प्रज्ञाओं द्वारा (अपः) दूर (नः) हमारे [अज्ञान को] (वरत्) करे ॥३॥

भावार्थ—जो पापनाशक परमेश्वर अत्यन्त भक्ति करनेवाले जीव के इन्द्रिय युक्त शरीर में व्यापक हो रहा है वह ज्ञानों से हमारे अज्ञान को दूर करे ॥३॥

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१६६९—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

३२उ ३१२ ३१ २र३२ १२ ३२
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) इस जगत् को (विष्णुः) सूर्य (विचक्रमे) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है (त्रेधा) तीन स्थानों में [पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में] (निदधे) धारण करता है (पदम्) किरण को (समूढम्) छिपी हुई है (अस्य) इसका (पांसुले) अन्तरिक्ष में ॥१॥

भावार्थ—सूर्य इस दृश्यमान जगत् को प्रकाशित करता है। वह अपनी किरणों को पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक तीनों स्थानों में फैलाता है। उसकी इस प्रकार की किरण अन्तरिक्ष में छिपी हुई दृष्टिगोचर नहीं होती है ॥१॥

१६७०—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१२३१ २र ३१२३१ २र २३१२ ३१२
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥२॥

पदार्थ—(त्रीणि) तीन (पदा) पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यु लोकों में (विचक्रमे) व्यापक हो रहा है (विष्णुः) परमेश्वर (गोपाः) रक्षक (अदाभ्यः) अविनाशी (अतः) इसलिए (धर्माणि) अपने सब धर्मों को (धारयन्) धारण करता हुआ विद्यमान है ॥२॥

भावार्थ—अविनाशी तथा सर्वरक्षक परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक होता हुआ अपने गुणोंसहित विद्यमान है ॥२॥

१६७१—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

२ ३१२ ३ १२३१२ ३२ १२३२३१२
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥

पदार्थ—(विष्णोः) परमेश्वर के (कर्माणि) कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिससे (व्रतानि) नियमों को (पस्पशे) प्राप्त होता है (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) घनिष्ठ (सखा) मित्र है ॥३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग उस परमेश्वर के सृष्टि-रचना आदि कर्मों को देखो जिससे विद्वान् नियमों को धारण करता है तथा जो जीव का घनिष्ठ मित्र है ॥३॥

१६७२—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१ २र ३२३१ २र ३१२ ३२३२३१२
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥४॥

पदार्थ—(तत्) उस (विष्णोः) परमेश्वर के (परमम्) परम (पदम्) मोक्षरूप पद को (सदा) सर्वदा (पश्यन्ति) देखते हैं (सूरयः) ज्ञानी (दिवि) आकाश में (इव) समान (चक्षुः) नेत्र (आततम्) फैले हुए ॥४॥

भावार्थ—विद्वान् जन आकाश में फैले हुए पदार्थों को नेत्र के समान परमेश्वर के परम मोक्षपद को सदा देखते हैं ॥४॥

१६७३—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१ २र ३१२ ३२३१२ २ ३१२३१३२
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५॥

पदार्थ—(तत्) उस (विप्रासः) मेधावीजन (विपन्यवः) भजन करने वाले (जागृवांसः) सदा सावधान (समिन्धते) प्राप्त करते हैं (विष्णोः) परमेश्वर का (यत्) जो (परमम्) परम (पदम्) स्वरूप ॥५॥

भावार्थ—भजन करनेवाले तथा सदा सावधान मेधावीजन परमेश्वर के उत्तम स्वरूप को प्राप्त करते हैं ॥५॥

१६७४—मेधातिथिः । विष्णुः । गायत्री ।

१२३१२ ३२३१२ ३२३ २उ ३१२
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥६॥

पदार्थ—(अतः) इसलिए (देवाः) दिव्य पदार्थ (अवन्तु) रक्षा करते हैं (नः) हमारी (यतः) क्योंकि (विष्णुः) परमेश्वर (विचक्रमे) व्यापक हो रहा है (पृथिव्याः) पृथिवी से लेकर (अधिसानवि) ऊँचे द्युलोक आदि में ॥६॥

भावार्थ—चूँकि परमेश्वर पृथिवी से लेकर उच्च द्युलोकादि पर्यन्त व्यापक हो रहा है, अतः सारे दिव्य पदार्थ हमारी रक्षा करते हैं ॥६॥

१६७५—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र३१२३२उ ३१ २र
मोषु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्निरीरमन् ।

३१२ ३१२३१२३२३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आगहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥

पदार्थ—(मा उ) नहीं (सु) उत्तम (त्वा) तुझे (वाघतः) मेधावी पुरुष (चन) भी (आरे) दूर (अस्मत्) हम से (निरीरमन्) आनन्दित करें (आरात्तात्) दूर से (वा) अथवा (सधमादम्) समीप (नः) हमारे (आगहि) आओ (इह) यहां (वा) अथवा (सन्) विद्यमान हुआ (उपश्रुधि) सुनो ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! मेधावीजन हमसे दूर रह कर तुझे आनन्दित न करें। तू दूर से हमारे समीप आ और यहां विद्यमान रहते हुए हमारी सुन ॥१॥

१६७६—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

३१ २र ३१२३२उ ३ २३२उ ३१२
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।

२३१२ ३ १२ ३२३२३२उ ३१२
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥

पदार्थ—(इमे) ये (हि) निश्चय (ते) वे (ब्रह्मकृतः) स्तुति करने-वाले (सुते) उत्पन्न संसार में (सचा) साथ (मधौ) मधुर (नः) समान (मक्षः) मधुमक्खियों के (आसते) बैठता है (इन्द्रे) परमेश्वर में (कामम्) कामना को (जरितारः) स्तोता लोग (वसूयवः) धन चाहने वाले (रथे) रथपर (न) समान (पादम्) पाँव को (आदधुः) रखते हैं ॥२॥

भावार्थ—ये स्तुति करनेवाले इस संसार में मधु पर मधुमक्खियों के समान एक साथ बैठे हैं। जिस प्रकार धन चाहनेवाले रथ पर पांव रखते हैं, उसी प्रकार स्तोता लोग परमेश्वर में अपनी कामना को रख देते हैं ॥२॥

१६७७—आयुः । इन्द्रः । बृहती ।

१२ ३१२३१ २र
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

३२३१२ ३१२ ३२३१२
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१॥

पदार्थ—(अस्तावि) स्तुति किया जाता है (मन्म) मनन योग्य (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) वेदमन्त्र को (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (वोचत) बोलो (पूर्वीः) पुरातन (ऋतस्य) ज्ञान की (बृहतीः) साम-स्तोत्रों को (अनूषत) उच्चारण करो (स्तोतुः) स्तोता की (मेधाः) बुद्धि को (असृक्षत) देता है ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उपास्य है उस परमेश्वर की पुरातन तथा मनन योग्य वेदमन्त्र से स्तुति करो। उसकी सेवा में ज्ञान के पुरातन भण्डार सामों का उच्चारण करो। वह स्तुति करनेवालों को बुद्धि देता है ॥१॥

१६७८—आयुः । इन्द्रः । बृहती ।

२उ ३१२ ३१२३ २ ३२उ ३१२
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

२३२ ३१२३१ २उ ३२३१२
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥

पदार्थ—(सम्) सम्यक् (इन्द्रः) परमेश्वर (रायः) संपदाएँ (बृहतीः) महान् (अधूनुत) दे रखा है (सम्) सम्यक् (क्षोणीः) द्यु और पृथिवीलोक को (सं) सम्यक् (सूर्यम्) सूर्य को (सम्) सम्यक् (शुक्रासः) तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (सम्) सम्यक् (गवाशिरः) वेदवाणी का आश्रय करनेवाले (सोमाः) विद्वान् जन (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अमन्दिषुः) स्तुति करते हैं ।।२।।

भावार्थ—परमेश्वर ने हमारे लाभार्थ महान् संपदाएँ, द्युलोक, पृथिवी तथा सूर्य को दे रखा है। तेजस्वी, पवित्र और वेदवाणी का आश्रयण करनेवाले विद्वान् जन उसकी स्तुति करते हैं ।।२।।

१६७९—अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।

१२ १ १ २ ३ १ २र

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।

१२१ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ।।१।।

पदार्थ—(इन्द्राय) ऐश्वर्यशाली (सोम) हे विद्वन् (पातवे) रक्षा करने के लिए (वृत्रघ्ने) बुराइयों को दूर करनेवाले (परिषिच्यसे) भली प्रकार धनादि से पूर्ण किया जाता है (नरे) मनुष्य के लिए (च) और (दक्षिणावते) दक्षिणा देनेवाले (वीराय) वीर (सदनासदे) यज्ञ करनेवाले ।।१।।

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू ऐश्वर्यशाली, बुराइयों को दूर करनेवाले, दक्षिणादाता, वीर तथा यज्ञकर्त्ता पुरुष की रक्षा के लिए धनादि से परिपूर्ण किया जाता है ।।१।।

१६८०—अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ।।२।।

पदार्थ—(तम्) उसकी (सखायः) हे मित्रो ! (पुरूरुचम्) तेजस्वी (वयम्) हम लोग (यूयम्) तुम लोग (च) और (सूरयः) विद्वान् लोग (अश्याम) प्राप्त होवें (वाजगन्ध्यम्) ज्ञानरूप गन्ध से युक्त (सनेम) भजन करें (वाजपस्त्यम्) सकल संपदाओं के आश्रय ।।२।।

भावार्थ—हे मित्रो ! विद्वान् तुम लोग और हम ज्ञानवान् तेजस्वी तथा सकल सम्पदाओं के आश्रय उस परमेश्वर को प्राप्त होवें और उस का भजन करें ।।२।।

१६८१—अम्बरीष ऋजिश्वा च । सोमः । अनुष्टुप् ।

२३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र

यो देवान्विश्वां इत्परि मदेन सह गच्छति ।।३।।

पदार्थ—(परि) सब ओर से (त्यम्) उसको (हर्यतम्) कमनीय (हरिम्) मनुष्य को (बभ्रुम्) भरण के योग्य (पुनन्ति) पवित्र करते हैं (वारेण) उत्तम गुण के साथ (यः) जो (देवान्) विद्वान् और अतिथियों की (विश्वान्) सम्पूर्ण (इत्) ही (परि) भली प्रकार (मदेन) प्रसन्नता के (सह) साथ (गच्छति) सेवा के लिए प्राप्त होता है ।।३।।

भावार्थ—जो प्रसन्नता के साथ विद्वान् और अतिथियों की सेवा करता है उस कमनीय तथा भरण के योग्य मनुष्य को संसार के सभी उत्तम पदार्थ अपने उत्तम गुण के सहित प्राप्त होते हैं ।।३।।

१६८२—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २र ३१ २र

कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।

३ १ २ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ।।१।।

पदार्थ—(कः) कौन (तम्) उस (इन्द्र) हे राजन् (त्वा) तुझे (वसो) हे आश्रयदाता (आ) भली भाँति (मर्त्यः) मनुष्य (दधर्षति) तिरस्कृत कर सकता है (श्रद्धा) अनुराग (हि) ही (ते) तेरे (मघवन्) हे धन से युक्त (पार्ये) आपत्ति से पार लगानेवाले (दिवि) दिन में (वाजी) बलवान् (वाजम्) बल को (सिषासति) प्राप्त करता है ।।१।।

भावार्थ—हे आश्रयदाता राजन् ! कौन मनुष्य तेरा तिरस्कार कर सकता है। हे धनवान् ! बलवान् पुरुष आपत्ति के दिन में रक्षा के लिए श्रद्धा से ही तेरे बल की सहायता प्राप्त कर सकता है ।।१।।

१६८३—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।

१ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २

तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ।।२।।

पदार्थ—(मघोनः) यज्ञ करनेवाले (स्म) पादपूरक (वृत्रहत्येषु) बुराइयों के निवारक यज्ञों में (चोदय) प्रेरित कर (ये) जो (ददति) देते हैं (प्रिया) प्यारे (वसु) धन को (तव) तेरी (प्रणीती) वेदशिक्षा से (हर्यश्व) हे दुःखहर्ता तथा सर्वव्यापक (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (विश्वा) समस्त (तरेम) पार होवें (दुरिता) दुर्गुणों या बाधाओं से ।।२।।

भावार्थ—हे दुःखहर्त्ता तथा सर्वव्यापक परमेश्वर ! जो लोग उत्तम धन का दान करते हैं उनको यज्ञकर्त्ता दुर्गुणनिवारक यज्ञों में प्रवृत्त कर। तेरी शिक्षा से विद्वानों के साथ हम सारे दुःखों को पार कर लें ।।२।।

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६८४—विश्वमनाः । सोमः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ।।१।।

पदार्थ—(आ) भली भांति (इत्) ही (उ) पादपूरक (मधोः) मधुर (मदिन्तरम्) आनन्ददायक (सिञ्च) सेचन करो (अध्वर्यो) हे याज्ञिक (अन्धसः) सोम के (एवाहि) ऐसे ही (वीरः) वीर (स्तवते) प्रशंसा पाता है (सदावृधः) सर्वदा उन्नति करनेवाला ।।१।।

भावार्थ—हे याज्ञिक पुरुष ! तू मधुर सोम के आनन्ददायक अंश से यज्ञ कर। समर्थ तथा सदा उन्नति करनेवाला विद्वान् ऐसे ही प्रशंसित होता है ।।१।।

१६८५—विश्वमनाः । सोमः । उष्णिक् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ।।२।।

पदार्थ—(इन्द्र) हे परमेश्वर (स्थातः) अधिष्ठाता (हरीणाम्) मनुष्यादि प्राणी वर्ग के (नकिः) कोई नहीं (ते) तेरी (पूर्व्यस्तुतिम्) सनातन स्तुति को (उदानंश) पा सकता है (शवसा) बल से (न) नहीं (भन्दना) वन्दना को ।।२।।

भावार्थ—हे मनुष्यादि प्राणीवर्ग के अधिष्ठाता परमेश्वर, तेरी सनातन कीर्त्ति तथा वन्दना को कोई भी बल से नहीं पा सकता है ।।२।।

१६८६—विश्वमनाः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ।।३।।

पदार्थ—(तम्) उस (वः) तुम्हारे (वाजानाम्) अन्नों के (पतिम्) पालक (अहूमहि) पुकारते हैं (श्रवस्यवः) धन और यश को चाहनेवाले (अप्रायुभिः) अपूर्व (यज्ञेभिः) यज्ञों से (वावृधेन्यम्) सबको बढ़ानेवाले ।।३।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अन्न और यश की कामनावाले हम लोग तुम्हारे पूज्य अन्नों के स्वामी अपूर्व यज्ञों से सबको बढ़ानेवाले परमेश्वर को पुकारते हैं ।।३।।

१६८७—सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ।।१।।

पदार्थ—(तम्) उसकी (गूर्धय) प्रशंसा कर (स्वर्णरम्) सबके नेता (देवासः) विद्वान् लोग (देवम्) पूज्य (अरतिम्) स्वामी (दधन्विरे) धारण करते हैं (देवत्रा) विद्वानों को (हव्यम्) विज्ञान (ऊहिषे) प्राप्त कराता है ।।१।।

भावार्थ—हे मनुष्य ! विद्वान् लोग सबके नेता और स्वामी जिस पूज्य विद्वान् को प्राप्त करते हैं उसकी प्रशंसा कर। हे विद्वन् ! तू विज्ञानियों को विज्ञान का उपदेश करता है ।।१।।

१६८८—सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ।।२।।

पदार्थ—(विभूतरातिम्) महान् दानी (विप्र) मेधावी (चित्रशोचिषम्) अद्भुत प्रकाशवाले (अग्निम्) परमेश्वर की (ईडिष्व) स्तुति कर (यन्तुरम्) सबके नियन्ता (अस्य) इस (मेधस्य) यज्ञ के (सोम्यस्य) संसार रचना सम्बन्धी (सोभरे) हे उत्तम भरणपोषण करनेवाले (प्र) उत्तम (ईम्) इस (अध्वराय) यज्ञ के लिए (पूर्व्यम्) सनातन ।।२।।

भावार्थ—हे उत्तम भरण पोषण करनेवाले मेधावी पुरुष ! तू कल्याणकारी यज्ञ की सिद्धि के लिए संसार रचना सम्बन्धी यज्ञ के नियन्ता महान् दानी, अद्भुत प्रकाशवाले तथा सनातन परमेश्वर की स्तुति कर ।।२।।

१६८९—अद्रिः सप्तर्षयो वा । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (सोम) हे विद्वन् (स्वानः) उपदेश करता हुआ (अद्रिभिः) आदरणीय वेदमंत्रों द्वारा (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (वाराणि) आवरणों को (अव्यया) प्राकृतिक (जनः) मनुष्य के (न) समान (पुरि) नगर में (चम्वोः) दो सेनाओं के मध्यवर्ती (विशत्) प्रवेश करता है (हरिः) सेनापति (सदः) स्थान में (वनेषु) वनों में (दध्रिषे) ध्यान करता है ॥१॥

भावार्थ—जैसे सेनापति नगरी में मनुष्य के समान दो सेनाओं के मध्यवर्ती स्थान में प्रवेश करता है वैसे हे विद्वन् ! तू आदरणीय वेदमंत्रों से उपदेश करता हुआ प्रकृति के आवरणों को दूर करके परमेश्वर के ध्यान के लिए वनों में प्रवेश करता है ॥१॥

१६९०—अद्रिः सप्तर्षयो वा । सोमः । बृहती ।

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२॥

पदार्थ—(सः) वह (मामृजे) सुशोभित किया जाता है (तिरः) तिरस्कार करता हुआ (अण्वानि) सूक्ष्म परमाणुओं के विकारों को (मेष्यः) चढ़ाई करनेवालों का हितकारक (मीढ्वान्) बलवान् (सप्तिः) अश्व के (न) समान (वाजयुः) आत्मबल और कामना करनेवाला (अनुमाद्यः) आनन्दित किया जाने योग्य (पवमानः) पवित्र (मनीषिभिः) मननशील (सोमः) विद्वान् (विप्रेभिः) ज्ञानियों से (ऋक्वभिः) स्तुति करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—आत्मबल चाहनेवाले मननशील, तथा भक्त ज्ञानियों द्वारा आनन्दित किया जाने योग्य, पवित्र तथा प्राकृतिक पदार्थों को त्यागता हुआ विद्वान्, चढ़ाई करने वालों के सहायक तथा बलवान् अश्व के समान सुशोभित किया जाता है ॥२॥

१६९१—कलिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (एनम्) इस (इदा) इस समय (ह्यः) गत दिन (अपीपेम) बढ़ाते हैं (इह) यहां (वज्रिणम्) शस्त्रधारी (तस्मा) उसके लिए (उ) ही (अद्य) आज (सवने) सग्राम में (सुतम्) उत्तम पदार्थ से (भरा) भरपूर कर (नूनम्) निश्चय (भूषत) सुशोभित कर (श्रुते) कीर्ति के लिए ॥१॥

भावार्थ—हम इस शस्त्रधारी राजा की प्रतिदिन वृद्धि चाहते हैं । हे परमेश्वर ! तू संग्राम में इसे उत्तम पदार्थ से भरपूर कर । हे प्रजाजन ! तुम इसे यज्ञ के लिए अवश्य सुशोभित करो ॥१॥

१६९२—कलिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
२उ ३ १ २ ३क २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं नः स्तोमज्जुजुषाण आगहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥

पदार्थ—(वृकः) आदित्य, चन्द्र, चोर, भेडिया, विद्युत् आदि (चित्) भी (अस्य) इसके (वारणः) निवारण, हरण, (उरामथिः) बहुतों को मथने या दुःख देने वाला (आ) भली भांति (वयुनेषु) प्रज्ञान में (भूषति) विद्यमान है (सः) वह (इमम्) इस (नः) हमारे (स्तोमम्) स्तुति को (जुजुषाणः) स्वीकार करता हुआ (आगहि) प्राप्त हो (इन्द्र) हे परमेश्वर (प्र) प्रकृष्ट (चित्रया) अद्भुत (धिया) बुद्धि के साथ।२।

भावार्थ—रोगनिवारक, बहुतों को मथन करनेवाले आदित्य, चन्द्र, विद्युत् तथा धनापहारक चोर आदि सभी जिसके ज्ञान में विद्यमान हैं, वह तू हमारी स्तुति को स्वीकार करता हुआ अद्भुत बुद्धि के साथ हमें प्राप्त हो ॥२॥

१६९३—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३क २र
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥१॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे जीव और परमेश्वर (रोचना) प्रकाशक (दिवः) दिव्य गुण के (परि) सब प्रकार से (वाजेषु) विद्या और विज्ञान द्वारा होने वाले कार्यों में (भूषथ) सुशोभित करते हो (तत्) उसे (वाम्) तुम दोनों का (चेति) प्रकट करता (प्र) उत्तमता से (वीर्यम्) सामर्थ्य ॥१॥

भावार्थ—हे जीव और परमेश्वर ! दिव्य गुणों के प्रकाशक तुम दोनों विद्या तथा विज्ञान के द्वारा होने वाले कार्यों में हमें सुशोभित करते हो । तुम दोनों का सामर्थ्य ही इस बात को प्रकट करता है ॥१॥

१६९४—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युपप्रयन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३अनु ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक और उपदेशक ! (अपसः) कर्म का (परि) सब प्रकार से (उप) समीप (प्रयन्ति) प्राप्त करें (धीतयः) कर्मेन्द्रियां (ऋतस्य) सत्य के (पथ्या) मार्ग के (अनु) अनुकूल ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! आपकी शिक्षा से हमारी कर्मेन्द्रियां सत्य मार्ग के अनुकूल चलती हुई उत्तम कर्म करें ॥२॥

१६९५—विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) हे अध्यापक तथा उपदेशक (तविषाणि) बल (वां) तुम दोनों के (सधस्थानि) एक स्थान वाले हैं (प्रयांसि) कामना के योग्य (च) और (युवोः) तुम दोनों का (अप्तूर्यम्) शीघ्र कर्मानुष्ठान (हितम्) कल्याणकारी है ॥३॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों के बल संयुक्त और कामना के योग्य हैं । तुम्हारा कर्मानुष्ठान हितकारी है ॥३॥

१६९६—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१॥

पदार्थ—(कः) प्रजापति परमेश्वर (ईम्) इसको (वेद) जानता है (सुते) उत्पन्न संसार में (सचा) शरीर और इन्द्रियों के साथ (पिबन्तम्) उपभोग करते हुए (कत्) कितनी (वयः) आयु (दधे) धारण करता है (अयम्) यह (यः) जो (पुरः) नगरी या समूह को (विभिनति) भेदन करता है (ओजसा) अपने ओज से (मन्दानः) सुखस्वरूप (शिप्री) द्यौ और पृथिवी लोक का स्वामी (अन्धसः) अन्धकार की ॥१॥

भावार्थ—वह इस संसार में इन्द्रिय और शरीर के साथ उसका उपभोग करने वाला जीव कितनी आयु धारण करता है इसको वह प्रजापति परमेश्वर ही जानता है । जो द्यु और पृथिवीलोक का स्वामी, आनन्दस्वरूप तथा अपने तेज से अज्ञानान्धकार के समूह को छिन्न-भिन्न करनेवाला है ॥१॥

१६९७—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२॥

पदार्थ—(दाना) मद जल से (मृगः) जंगली [या घूमता हुआ] (न) यथा (वारणः) हाथी (पुरुत्रा) बहुत स्थानों में (चरथम्) जाना-आना (दधे) करता है (नकिः) कोई नहीं (त्वा) तुझे (नियमत्) रोक सकता है [या नियन्त्रित कर सकता है] (आ) भली भांति (सुते) संसार में (गमः) प्राप्त हो (महान्) महान् (चरसि) व्यापक है (ओजसा) अपनी शक्ति से ॥२॥

भावार्थ—जिस प्रकार मद से मस्त हुआ जंगली हाथी निरंकुश होकर सब स्थानों में घूमता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! महान् तू अपनी शक्ति से सर्वत्र व्यापक हो रहा है संसार में कोई भी तुझे रोक नहीं सकता ॥२॥

१६९८—मेधातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

२ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
यः उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (उग्रः) बलवान् (सन्) सज्जन (अनिष्टृतः) शत्रु जिससे पार नहीं पाते (स्थिरः) दृढ़ (रणाय) संग्राम के लिए (संस्कृतः) अलंकृत (यदि) जो (स्तोतुः) वन्दी [प्रशंसा पाठ करने वाले] (मघवा) ऐश्वर्यशाली (शृणवत्) सुने (हवम्) प्रकार को (न) नहीं (इन्द्रः) राजा (योषति) संग्राम से पृथक् जाता है (आगमत्) आता है ॥३॥

भावार्थ—जो बलवान्, सज्जन, शत्रुओं से पराजित न होनेवाला, दृढ़, संग्राम के लिए सदा सुसज्जित तथा धनवान् राजा है वह यदि प्रशंसा पाठ करनेवाले वन्दी के वचन सुनता है तो युद्ध से मुख न मोड़ कर मैदान में आता है ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१६९९—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ १
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥१॥

पदार्थ—(**पवमानाः**) पवित्र (**असृक्षत**) उत्पन्न किए जाते हैं (**सोमाः**) विद्वान् जन (**शुक्रासः**) उज्ज्वल चरित्रवाले (**इन्दवः**) विद्या आदि ऐश्वर्यसम्पन्न (**अभि**) उद्देश्य से (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**काव्या**) काव्यों के ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर उज्ज्वल चरित्रवाले, विद्या-विनय-सम्पन्न तथा पवित्र आत्मा विद्वानों को समस्त वेदादि काव्यों की रक्षा के उद्देश्य से उत्पन्न करता है ॥१॥

१७००—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२॥

पदार्थ—(**पवमाना**) भिन्न योनियों में जानेवाले (**दिवः परि**) द्युलोक पर्यन्त या उससे परे भी (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से लेकर (**असृक्षत**) उत्पन्न किए जाते हैं (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**अधिसानवि**) पृष्ठ पर ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ने भिन्न-भिन्न योनियों में जानेवाले जीवों को पृथिवी के पृष्ठ पर तथा अन्तरिक्ष और द्युलोक पर्यन्त उत्पन्न किया है ॥२॥

१७०१—*निध्रुविः । सोमः । गायत्री ।*

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥

पदार्थ—(**पवमानासः**) गतिशील (**आशवः**) शीघ्रगामी (**शुभ्राः**) प्रकाशवाले (**असृग्रम्**) उत्पन्न किए जाते हैं (**इन्दवः**) जल (**घ्नन्तः**) नष्ट करते हुए (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**अप**) दूर (**द्विषः**) रोगादि दुःखों को ॥३॥

भावार्थ—परमेश्वर चर मनुष्यादि, शीघ्रगामी वायु आदि, प्रकाशवाले चन्द्र आदि जल तथा रोगनिवारक औषधि आदि सभी पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥३॥

१७०२—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥१॥

पदार्थ—(**तोशा**) विघ्नों के बाधक (**वृत्रहणा**) पापनाशक (**हुवे**) आह्वान करता हूँ (**सजित्वाना**) जयशील [प्रबल] (**अपराजिता**) न हारनेवाले (**इन्द्राग्नी**) हे परमेश्वर और विद्वान् (**वाजसातमा**) ज्ञानदाता ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर और विद्वन् ! विघ्नों के निवारक, पापनाशक, प्रबल, न हारनेवाले तथा ज्ञान के दाता आप दोनों का मैं आह्वान करता हूँ ॥१॥

१७०३—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥२॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**वाम्**) तुम दोनों का (**अर्चन्ति**) सत्कार करते हैं (**उक्थिनः**) साम-गायक (**नीथाविदः**) विनयशील (**जरितारः**) ईश्वर भक्त (**इन्द्राग्नी**) हे आचार्य और उपदेशक (**इषः**) ज्ञान को (**आवृणे**) स्वीकार करता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे आचार्य और उपदेशक महानुभावो, साम-गायक, विनयी और ईश्वरभक्त आप लोगों का आदर करते हैं। मैं भी आप दोनों के ज्ञान को चाहता हूँ ॥२॥

१७०४—*विश्वामित्रः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।*

१ २ ३ १· २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्राग्नी**) हे सभाध्यक्ष और सेनापते (**नवतिम्**) नब्बे [९०] (**पुरः**) नगरों को (**दासपत्नीः**) शत्रुओं से रक्षित (**अधूनुतम्**) कम्पित कर देते हो (**साकम्**) साथ (**एकेन**) एक (**कर्मणा**) कर्म उपाय या नीति से ॥३॥

भावार्थ—हे सभा और सेना के अध्यक्षो ! तुम दोनों एक ही नीति से शत्रुओं से रक्षित नब्बे (९०) नगरों को कम्पायमान कर देते हो ॥३॥

१७०५—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥१॥

पदार्थ—(**उप**) सामीप्य (**त्वा**) तेरे लिए (**रण्वसंदृशम्**) स्तुति के योग्य (**प्रयस्वन्तः**) अन्न आदि की कामना करते हुए (**सहस्कृत**) हे बल के उत्पादक (**अग्ने**) परमेश्वर (**ससृज्महे**) उच्चारण करते हैं (**गिरः**) स्तुतियों का ॥१॥

भावार्थ—हे बल के उत्पादक परमेश्वर ! अन्न आदि की कामनावाले हम स्तुति योग्य तुझ प्रभु की स्तुति करते हैं ॥१॥

१७०६—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥२॥

पदार्थ—(**उप**) समीप (**छायाम्**) छाया के (**इव**) समान (**घृणे**) प्रकाशमान (**अगन्म**) प्राप्त करें (**शर्म**) आश्रय, शरण को (**ते**) तेरे (**वयम्**) हम लोग (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**हिरण्यसंदृशः**) सूर्यवत्प्रकाशमान ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हम लोग छाया के समान सूर्यवत् प्रकाशमान तथा तेजस्वी तुझ प्रभु की शरण को प्राप्त करें ॥२॥

१७०७—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**उग्रः**) प्रचण्ड (**इव**) समान (**शर्यहा**) बाणधारी के (**तिग्मशृङ्गः**) अग्नि के (**न**) समान (**वंसगः**) सब पदार्थों का विभाग करनेवाले(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**पुरः**) संसार के लोकलोकान्तर रूप नगरियों को (**रुरोजिथ**) प्रलयकाल में छिन्न-भिन्न करता है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू प्रचण्ड धनुर्धर के तथा पदार्थों का विभाग करनेवाले अग्नि के समान प्रलयकाल में संसार को छिन्न-भिन्न करता है ॥३॥

१७०८—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥१॥

पदार्थ—(**ऋतावानम्**) सत्यज्ञानवाले (**वैश्वानरम्**) मनुष्यमात्र के हितकारी (**ऋतस्य**) सच्चे (**ज्योतिषः**) प्रकाश के (**पतिम्**) रक्षक (**अजस्रम्**) सदा (**घर्मम्**) प्रकाशस्वरूप (**ईमहे**) प्रार्थना करते हैं ॥१॥

भावार्थ—हम सत्य ज्ञानवाले, मनुष्यमात्र के हितकारी, सच्ची ज्योति के रक्षक तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सदा प्रार्थना करते हैं ॥१॥

१७०९—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २र ३ २
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतूनुत्सृजते वशी ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**इदं**) प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् का (**प्रतिपप्रथे**) विस्तार करता है (**यज्ञस्य**) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप व्यवहार का (**स्वः**) फलरूप सुख को (**उत्तिरन्**) प्रदान करता हुआ (**ऋतून्**) छः ऋतुओं को (**उत्सृजते**) उत्पन्न करता है (**वशी**) सबको वश में रखनेवाला ॥२॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सबको वश में रखनेवाला है वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सुखरूप फल को प्रदान करता हुआ इस संसार का विस्तार तथा ऋतुओं को उत्पन्न करता है ॥२॥

१७१०—*भरद्वाजः । अग्निः । गायत्री ।*

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥३॥

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**प्रियेषु**) प्रिय (**धामसु**) लोकों में (**कामः**) कामना योग्य (**भूतस्य**) भूत (**भव्यस्य**) भविष्यकाल का (**सम्राड्**) सम्राट् (**एकः**) एकमात्र (**विराजति**) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—जो कुछ हो चुका और जो कुछ होनेवाला है, उसका एक मात्र सम्राट् कमनीय परमेश्वर समस्त लोकों में विराजमान है ॥३॥

卐 **चतुर्थः खण्डः समाप्तः** 卐

卐 **अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः** 卐

卐

एकोनविंशोऽध्यायः

१७११—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

३ २३२३१२३१२ ३२क २३१२र

अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वांऽस्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) जीव आत्मा (प्रत्नेन) सनातन अनादि प्रवाह से होनेवाले (जन्मना) जन्म से (शुम्भानः) सुशोभित करता हुआ (तन्वाम्) शरीर को (स्वाम्) अपने (कविः) मेधावी (विप्रेण) परमेश्वर द्वारा (वावृधे) बढ़ाया जाता है ॥१॥

भावार्थ—मेधावी जीव अनादि प्रवाह से होनेवाले जन्म में अपने शरीर को सुशोभित करता हुआ परमेश्वर के द्वारा बढ़ाया जाता है ॥१॥

१७१२—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

३१ २र३१२३१२३१२ ३२३१२३२

ऊर्जो न पातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥

पदार्थ—(ऊर्जः) बल की (नपातम्) रक्षा करनेवाले (आहुवे) आह्वान करता हूँ (अग्निम्) परमेश्वर का (पावकशोचिषम्) पवित्रकारक तेज से युक्त (अस्मिन्) इस (यज्ञे) उपासना यज्ञ में (स्वध्वरे) उत्तम कल्याणकारी ॥२॥

भावार्थ—मैं बल के रक्षक तथा पवित्रकारक तेज वाले परमेश्वर का इस कल्याणकारी उपासना यज्ञ में आह्वान करता हूँ ॥२॥

१७१३—विरूपः । अग्निः । गायत्री ।

१२ ३१२र३१२३१२३१२र३१२

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (नः) हमारे कल्याणार्थ (मित्रमहः) मित्रों से पूजनीय (त्वम्) तू (अग्ने) हे परमेश्वर (शुक्रेण) पवित्र (शोचिषा) तेज से (देवैः) सारे देवों के साथ [संपूर्ण दिव्य शक्तियों या गुणों के साथ] (आसत्सि) विराजमान है (बर्हिषि) आकाश में ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! मित्रों का पूज्य तू हमारे कल्याणार्थ पवित्र तेज तथा दिव्य शक्तियों के साथ आकाश में विराजमान है ॥३॥

१७१४—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२३१२ ३१२३१२ ३२३१२३१२

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (ते) तेरे (शुष्मासः) बल (अस्थुः) स्थित हैं (रक्षः) विघ्नों या दुर्गुणों को (भिन्दन्तः) छिन्न-भिन्न करते हुए (अद्रिवः) आदरणीयों के स्वामी (नुदस्व) दूर कर (याः) जो (परि) सब प्रकार के (स्पृधः) स्पर्धा करनेवाली वृत्तियाँ ॥१॥

भावार्थ—हे आदरणीयों के भी स्वामी परमेश्वर ! तेरे बल बुरी भावनाओं को छिन्न-भिन्न करते हुए सर्वोपरि विराजमान हैं । तू बुरे स्पर्धावाली मनोवृत्तियों को दूर कर ॥१॥

१७१५—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

३१२३१ २र ३१२र३२ २३१२ ३२

अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥

पदार्थ—(अया) इस (निजघ्निः) विघ्ननिवारक (ओजसा) शक्ति से (रथसंगे) रथ के साथ (धने) धन के लिए (हिते) कल्याणकारी (स्तवै) स्तुति करता हूँ (अबिभ्युषा) निर्भय (हृदा) मन से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपनी शक्ति से ही विघ्नों का नाश करनेवाला है । मैं रथ आदि वस्तुओं सहित कल्याणकारी धन के लिए निर्भय मन से तेरी स्तुति करता हूँ ॥२॥

१७१६—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१२३२३२उ३१२ ३क२र३१ २र३१२

अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥

पदार्थ—(अस्य) इस परमेश्वर के (व्रतानि) नियमों को (नाधृषे) अखण्ड हैं (पवमानस्य) शुद्धस्वरूप (दूढ्या) दुर्बुद्धि से (रुज) मानमर्दन कर (यः) जो (त्वा) तुझसे (पृतन्यति) संग्राम करना चाहे ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! तू शुद्धस्वरूप परमेश्वर के नियमों को अखण्डनीय जानता हुआ तुझ पर वृथा चढ़ाई करनेवाले का मान मर्दन कर ॥३॥

१७१७—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२३१२३१२३१२ २३१२ ३२

तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥

पदार्थ—(तम्) उसको (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं (मदच्युतम्) सुख को देनेवाले (हरिम्) अज्ञानहर्त्ता (नदीषु) नदी के समान प्रवाहवाली चित्त-वृत्तियों के विषय में (वाजिनम्) बलवान् वेगवान् (इन्दुम्) ज्ञानैश्वर्यशाली (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (मत्सरम्) प्रसन्न ॥४॥

भावार्थ—योगीजन सुख की वर्षा करनेवाले, अज्ञानहर्त्ता, चित्तवृत्तियों के विषय में बलवान्, प्रसन्न तथा ज्ञान, ऐश्वर्यवाले विद्वान् पुरुष को परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं ॥४॥

१७१८—विश्वामित्रः । इन्द्रः । बृहती ।

२३१२३१२ ३२३१२

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

२१२३१३२उ ३२उ ३१२३१२

मा त्वा केचिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (मन्द्रैः) सुखदायक (इन्द्र) हे परमेश्वर (हरिभिः) किरणों के साथ (याहि) व्यापक हो रहा है (मयूररोमभिः) मोर के पंख के समान चित्र-विचित्र रंगोंवाली (मा) नहीं (त्वा) तुझे (केचित्) कोई (नियेमुः) बांध सकते हैं (इत्) ही (न) समान (पाशिनः) पाश या बन्धनवाले के (अति) अतिक्रमण (धन्वा) आकाश के (इव) समान (तान्) उन सबको (इहि) स्थित करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू मयूर के पंख के समान चित्र-विचित्र रंगोंवाली सुखदायक सूर्यकिरणों के साथ आकाश मण्डल में व्यापक हो रहा है तथा आकाश के समान सबको अतिक्रमण करके स्थित है ॥१॥

१७१९—विश्वामित्रः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १२ ३२३२३२३२३२

वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।

२३१२३१२ ३१२र३१२ ३२

स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥२॥

पदार्थ—(वृत्रखादः) आवरण का विनाशक (वलम्) मेघ का (रुजः) छिन्न-भिन्न करनेवाला (पुराम्) संघात द्रव्यों का, लोकों का (दर्मः) विदारण कर्त्ता (अपामजः) जलों की वृष्टि करनेवाला (स्थाता) स्थापन करनेवाला (रथस्य) सूर्य का (हर्योः) वायु और अग्नि का (अभिस्वरे) ध्वनिवाले आकाश मण्डल में (इन्द्रः) परमेश्वर (दृढाचित्) दृढ़तापूर्वक (आरुजः) भली भांति बाधाओं का विनाशक ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर आवरण का विनाशक, मेघ का छिन्न-भिन्न करनेवाला संघात द्रव्यों का या लोकों का विदारक, सूर्य, वायु तथा अग्नि का अन्तरिक्ष में दृढ़तापूर्वक स्थापन करनेवाला तथा बाधाओं का दूर करनेवाला है ॥२॥

१७२०—विश्वामित्रः । इन्द्रः । बृहती ।

३ १२३१२३१२ ३१२

गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

१२३१ २र३१२ ३२३१

प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

पदार्थ—(गम्भीरान्) अगाध (उदधीन्) समुद्रों को (इव) समान (क्रतुम्) ज्ञान और कर्म को (पुष्यसि) पुष्ट करता है (गाः) वेदवाणी को (इव) समान (प्र) उत्तम रक्षक विद्वान् के (यवसम्) घास को (धेनवः) गौओं को (यथा) जैसे (ह्रदं) समुद्र को (कुल्याः) नदियों के (इव) समान (आशत) प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अगाध समुद्रों को मेघजल के समान तथा वेदवाणी को विद्वान् के समान हमारे ज्ञान, कर्म और यज्ञ को पुष्ट करता है। हे भगवन्, जिस प्रकार गौएँ घास को तथा नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे ही ज्ञानी जन तुझे प्राप्त करते हैं ॥३॥

१७२१—देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथम् ।

१२ ३२३२३२उ ३१ २र

यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

३ १२ ३२उ ३१ २३१२३२उ ३१२

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जिस प्रकार (गौरः) मृग (अपाकृतम्) जलयुक्त (तृष्यन्) प्यासा हुआ (एति) जाता है (अव) सर्वथा (इरिणम्) ऊषर भूमि को (आपित्वे) मित्रता (नः) हम (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (तूयम्) शीघ्र (आगहि) प्राप्त होता है (कण्वेषु) मेधावी पुरुषों में (सु) उत्तम (सचा) अपने साथवाले विज्ञान से (पिब) रक्षा करता है ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जिस प्रकार प्यासा मृग जलयुक्त ऊषर भूमि को प्राप्त होता है उसी प्रकार मित्रता प्राप्त होने पर तू हम मेधावियों को शीघ्र प्राप्त होता है और अपने से संयुक्त ज्ञान से रक्षा करता है ॥१॥

१७२२—देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथम् ।

१२ ३१२ ३१२ ३२

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।

३२३१२ ३२३२उ ३१२३१२

आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतम् ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥२॥

पदार्थ—(मन्दन्तु) स्तुति करते हैं (त्वा) तेरी (मघवन्) हे धनों के स्वामी (इन्द्र) हे परमेश्वर (इन्दवः) विद्वान् जन (राधोदेयाय) धन देने के लिए

(सुन्वते) यज्ञ करनेवाले के लिए (आ) भली भांति (अमुष्य) इसके (सोमम्) पदार्थ की (आ अविवः) रक्षा करता है (चमूसुतम्) द्यु और पृथिवीलोक में उत्पन्न (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (तत्) इस कारण (दधिषे) धारण करता है (सहः) बल को ।।२।।

भावार्थ—हे धनों के स्वामी परमेश्वर ! विद्वान् लोग यज्ञ करनेवाले को धन देने के लिए तेरी स्तुति करते हैं। तू इस यज्ञकर्त्ता के लिए द्यु और पृथिवीलोक में उत्पन्न पदार्थ की रक्षा करता है। इस लिए हे भगवन् ! तू श्रेष्ठ बल का धारण करनेवाला है ।।२।।

१७२३—*गोतमः। इन्द्रः। बृहती।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।।१।।

पदार्थ—(त्वम्) तू (अङ्ग) हे (प्रशंसिषः) प्रशंसा करता है (देवः) देव (शविष्ठ) हे शक्तिशाली (मर्त्यम्) मनुष्य की (न) नहीं (त्वदन्यः) तुझ से भिन्न (मघवन्) हे विद्या धन से युक्त (अस्ति) है (मर्डिता) सुखदाता (इन्द्र) हे विद्वन् (ब्रवीमि) कहता हूँ (ते) तेरे लिए (वचः) प्रशंसायुक्त वचन ।।१।।

भावार्थ—हे शक्तिशाली तथा विद्याधन से युक्त विद्वन् ! देवस्वरूप तू मनुष्य की प्रशंसा करता है। "तुझ से भिन्न सुखदाता और कोई नहीं" यह प्रशंसावचन तेरे लिए कहता हूँ ।।१।।

१७२४—*गोतमः। इन्द्रः। बृहती।*

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणीभ्य आ ।।२।।

पदार्थ—(मा) नहीं (ते) तेरे (राधांसि) धनादि पदार्थ (मा) नहीं (ते) तेरी (ऊतयः) रक्षाएँ (वसो) हे सबको निवास देनेवाले (अस्मान्) हम लोगों को (कदाचन) कभी भी (आ दभन्) विनष्ट करें (विश्वा) सम्पूर्ण (च) और (नः) हमें (उपमिमीहि) प्रदान कर (मानुष) हे मनुष्यों के हितकारी (वसूनि) धनों को (चर्षणीभ्यः) मनुष्यों के लिए (आ) भली भांति ।।२।।

भावार्थ—हे सर्वाश्रय तथा मनुष्यमात्र के हितकारी परमेश्वर ! तेरे धनादि पदार्थ तथा रक्षाएँ हमें कभी भी विनष्ट न करें। हे भगवन् ! तू हमें मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण धनों को प्रदान कर ।।२।।

卐 प्रथमः खण्डः समाप्तः 卐

१७२५—*वामदेवः। उषाः। गायत्री।*

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ।।१।।

पदार्थ—(प्रति) तरफ (स्या) वह (सूनरी) उषा (जनी) उत्पन्न होनेवाली (व्युच्छन्ती) अन्धकार को दूर करती हुई (परि) समाप्ति पर (स्वसुः) बहिन रात्रि के (दिवः) आदित्य की (अदर्शि) दिखलाई पड़ती है (दुहिता) पुत्री ।।१।।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे विधान से उत्पन्न हुई, तथा अन्धकार को दूर करनेवाली आदित्य की पुत्रीरूप उषा [प्रभातकाल] रात्रि की समाप्ति पर दिखलाई पड़ती है ।।१।।

१७२६—*वामदेवः। उषाः। गायत्री।*

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखा भूदश्विनोरुषाः ।।२।।

पदार्थ—(अश्वा) विद्युत् से (इव) समान (चित्रा) चित्र-विचित्र (अरुषी) प्रकाशमयी (माता) जन्म देनेवाली (गवाम्) किरणों को (ऋतावरी) परमेश्वर को स्मरण दिलानेवाली (सखा) साथ रहनेवाली (अभूत्) होती है (अश्विनोः) द्यु और पृथिवी लोक के (उषाः) प्रभात ।।२।।

भावार्थ—विद्युत् के समान चित्र-विचित्र, प्रकाशमयी, किरणों को उत्पन्न करने तथा परमेश्वर को स्मरण करानेवाली उषावेला द्यु और पृथिवी लोक में उपस्थित होती है ।।२।।

१७२७—*वामदेवः। उषाः। गायत्री।*

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ।।३।।

पदार्थ—(उत) और (सखा) साथी (असि) है (अश्विनोः) द्यु और पृथिवी लोक की (उत) और (माता) उत्पन्न करनेवाली (गवाम्) किरणों को (उत) और (उषः) उषावेला (वस्वः) समस्त प्राणियों पर (ईशिषे) प्रभाव डालती है ।।३।।

भावार्थ—उषावेला द्यु और पृथिवी लोक की साथी, किरणों को उत्पन्न करने वाली है। वह परमेश्वर की कृपा से प्राणिमात्र पर अपना प्रभाव डालती है ।।३।।

१७२८—*प्रस्कण्वः। अश्विनौ। गायत्री।*

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ।।१।।

पदार्थ—(एषा) यह (उ) पादपूरक (उषाः) प्रभातवेला (अपूर्व्या) अद्भुत (व्युच्छति) अन्धकार को दूर करती है (प्रिया) सबके प्रीति की हेतु (दिवः) परमेश्वर के (स्तुषे) गुणगान करता हूँ (वाम्) तुम दोनों का (अश्विना) हे सूर्य और चन्द्र के समान अध्यापक तथा उपदेशक (बृहत्) पर्याप्त रूप से ।।१।।

भावार्थ—अद्भुत तथा सबकी प्रगति की हेतु यह उषावेला परमेश्वर के प्रभाव से अन्धकार को नाश करती है। हे अध्यापक और उपदेशक ! मैं तुम लोगों के गुणगान करता हूँ ।।१।।

१७२९—*प्रस्कण्वः। अश्विनौ। गायत्री।*

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ।।२।।

पदार्थ—(या) जो दोनों (दस्रा) दुःख दूर करनेवाले (सिन्धुमातरा) परमेश्वर है माता जिनकी (मनोतरा) मन से तारनेवाले (रयीणाम्) धनों के (धिया) ज्ञान और कर्म से (देवा) दाता (वसुविदा) समस्त पृथिवी आदि पदार्थों के ज्ञाता ।।२।।

भावार्थ—जो दु:ख के दूर करनेवाले, अपने ज्ञान और कर्म से मन के साथ हमें पार लगानेवाले, ज्ञानधनों के दाता तथा पृथिवी आदि सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता अध्यापक और उपदेशक हैं उन दोनों महानुभावों का हम गुणगान करते हैं ।।२।।

१७३०—*प्रस्कण्वः। अश्विनौ। गायत्री।*

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वां रथो विभिष्पतात् ।।३।।

पदार्थ—(वच्यन्ते) उपदेश करें (वाम्) तुम दोनों को (ककुहासः) महान् विद्वान् लोग (जूर्णायाम्) वृद्धावस्था में (अधिविष्टपि) अन्तरिक्ष में (यत्) जो (वाम्) तुम्हारा (रथः) विमान (विभिः) पक्षियों के साथ (पतात्) उड़े ।। ३ ।।

भावार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ानेवाले ! जब वृद्ध, अनुभवी, महान् विद्वान् तुम्हें शिल्पविद्या का उपदेश करते हैं तब तुम्हारे द्वारा निर्माण किया गया रथ पक्षियों के साथ अन्तरिक्ष में उड़ता है ।।३।।

१७३१—*गोतमः। उषाः। उष्णिक्।*

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे ।।१।।

पदार्थ—(उषः) हे उषा के समान पवित्र स्त्री (तत्) उस (चित्रम्) विचित्र सौभाग्य को (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (आभर) धारण कर (वाजिनीवति) हे अन्न आदि का यथायोग्य संचय करनेवाली (येन) जिससे (तोकम्) पुत्र (च) और (तनयम्) पौत्र को (च) भी (धामहे) धारण करें ।।१।।

भावार्थ—हे धन आदि का संचय करनेवाली उषा के तुल्य पवित्राचरण युक्त स्त्री ! तू हमें वह सौभाग्य दे जिससे कि हम पुत्र और पौत्र को भी धारण कर सकें ।।१।।

१७३२—*गोतमः। उषाः। उष्णिक्।*

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ।।२।।

पदार्थ—(उषः) हे उषा के समान उज्ज्वल चरित्रवाली विदुषी (अद्य) आज (इह) इस संसार में (गोमति) हे गौ से युक्त (अश्वावति) हे अश्वोंवाली (विभावरि) हे ज्ञान प्रकाशवाली (रेवत्) धन-धान्य सम्पन्न (अस्मे) हमें (व्युच्छ) अन्धकार से दूर रख (सूनृतावति) हे सत्यज्ञानवाली ।।२।।

भावार्थ—हे गौ तथा अश्व आदि से युक्त उत्तम प्रकाशवाली तथा सत्य ज्ञान की स्वामिनि विदुषि देवि ! तू हमें धन-धान्य से सम्पन्न करती हुई अज्ञानान्धकार से दूर हटा ।।२।।

१७३३—गोतमः । उषाः । उष्णिक् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥३॥

पदार्थ—(युङ्क्ष्वः) युक्तकर (हि) निश्चय से (वाजनीवति) हे उत्तम कर्मवाली (अश्वान्) किरणों को (अद्य) आज (अरुणान्) लाल (उषः) हे उषा के समान विज्ञान प्रकाशवाली विदुषी ! (अथा) अनन्तर (नः) हमें (विश्वा) सारे (सौभगानि) सौभाग्यों को (आवह) प्राप्त करा ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम कर्मवाली विदुषि देवि ! जिस प्रकार प्रातः उषा लाल किरणों को युक्त करती है वैसे ही तू हमें सकल सौभाग्यों को आज प्राप्त करा ॥३॥

१७३४—गोतमः । अश्विनौ । उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१॥

पदार्थ—(अश्विना) हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ाने वालो (वर्त्तिः) मार्ग (अस्मत्) हमारे लिए (आ) सब प्रकार से (गोमत्) गौ से युक्त (दस्रा) कला-कौशल के विघ्नों के निवारक (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि से युक्त (अर्वाक्) सन्मुख. (रथम्) विमान आदि (समनसा) समान मनवाले (नियच्छतम्) दो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ने और पढ़ानेवाले ! शिल्पज्ञान के विघ्नों को दूर करने तथा समान मनवाले तुम लोग हमारे लिये गौ और सुवर्ण आदि की प्राप्ति का मार्ग दिखलाओ तथा हमें विमान आदि साधन भी प्रदान करो ॥१॥

१७३५—गोतमः । अश्विनौ । उष्णिक् ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।
३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (इह) इस संसार में (मयोभुवा) सुख की भावना को जागृत करनेवाले (दस्रा) सम्पूर्ण दुःखों को दूर करनेवाले (हिरण्य-वर्त्तनी) प्रकाशवाले (उषर्बुधः) प्रातःकाल का ज्ञान करानेवाली सूर्य की किरणों को (वहन्तु) प्राप्त करें तथा करावें (सोमपीतये) शान्तिदायक और पौष्टिक पदार्थों के उपभोग के लिए ॥२॥

भावार्थ—सुख की भावना को जगानेवाले, दुःखनाशक और प्रकाशस्वरूप अग्नि तथा वायु देव इस संसार में मनुष्यों के शान्तिदायक तथा पुष्टिकारक पदार्थों के भोग के लिए सूर्य की किरणों को प्राप्त करें ॥२॥

१७३६—गोतमः । अश्विनौ । उष्णिक् ।

२ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥३॥

पदार्थ—(यौ) जो दोनों (इत्था) इस प्रकार (श्लोकम्) उत्तमवाणी को (आ) सब प्रकार से (दिवः) सूर्य के (ज्योतिः) प्रकाश को (जनाय) जनता के लिए (चक्रथुः) सिद्ध करते हैं (आ) सब प्रकार से (नः) हमें (ऊर्जम्) बल को (वहतम्) प्राप्त करावें (अश्विना) अग्नि तथा वायु (युवम्) तुम दोनों [यहां पर ये दोनों निरुक्त नियम से हो जायेंगे क्योंकि निरुक्त के नियम से जड़ पदार्थों के लिए प्रयुक्त मध्यम पुरुष प्रथम पुरुष में परिवर्तित हो जाता है] ॥३॥

भावार्थ—जो वायु और अग्नि जनता के लिए सूर्य का प्रकाश करते हैं वे उत्तम बल और वाणी को प्राप्त कराते हैं ॥३॥

卐 द्वितीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७३७—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर का (तम्) उस (मन्ये) मनन करता हूँ (यः) जो (वसुः) सबको आश्रयदाता तथा सबमें वसनेवाला (अस्तं) आश्रयरूप (यं) जिसको (यन्ति) प्राप्त करती हैं (धेनवः) वेदवाणियां (अस्तम्) आश्रय रूप को (अर्वन्तः) ज्ञानीजन (आशवः) शीघ्रकारी (अस्तम्) आश्रय को (नित्यासः) निरन्तर कर्मानुष्ठानवाले (वाजिनः) यजमान (इषम्) अन्न को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिए (आभर) भरपूर करता है ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर सबका बसानेवाला है तथा स्वयं सबमें बसने वाला है जिसके आश्रय से वेदवाणियाँ रहती हैं, विद्वज्जन और यजमान लोग जिसको ज्ञान से प्राप्त करते हैं और जो स्तुति करने वालों को धन, अन्न आदि देता है उस प्रभु का मैं मनन करता हूँ ॥१॥

१७३८—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
३ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्य्यमिषं स्तोतृभ्य आभर ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (हि) ही (वाजिनम्) अश्व आदि का (विशे) मनुष्य के लिए (ददाति) देता है (विश्वचर्षणिः) सबका साक्षी (अग्निः) परमेश्वर (राये) संपदा को (स्वाभुवम्) स्वाभाविक (सुप्रीतः) प्रसन्न हुआ (याति) प्राप्त कराता है (वार्यम्) श्रेष्ठ (इषम्) विज्ञान को (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिए (आभर) देता है ॥२॥

भावार्थ—सर्वसाक्षी परमेश्वर मनुष्य को अश्व आदि देता है । प्रसन्न हुआ वह स्वाभाविक तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करता है । वह ही उपासकों को ज्ञान से भरपूर करता है ॥२॥

१७३९—वसुश्रुतः । अग्निः । पंक्तिः ।

२ ३१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आभर ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (अग्निः) परमेश्वर (यः) जो (वसुः) सर्वव्यापक (गृणे) उपासना किया जाता है (सं) सम्यक् (यम्) जिसका (आयन्ति) ज्ञान कराती है (धेनवः) वेदवाणियां (सम्) भली भांति (अर्वन्तः) मनुष्य (रघुद्रुवः) थोड़ा जानने वाले (सं) सम्यक् (सुजातासः) प्रसिद्ध (सूरयः) ज्ञानीजन (इषम्) इच्छा को (स्तोतृभ्यः) उपासकों की (आभर) पूरा करता है ॥३॥

भावार्थ—जो सर्वव्यापक है, जिसको वेदवाणी वर्णन करती है, अल्पज्ञानी मनुष्य भी जिसका आश्रय लेते हैं जिसको प्रसिद्ध ज्ञानीजन प्राप्त करते हैं तथा जो उपासकों की इच्छा की पूर्ति करता है, वह परमेश्वर उपासना करने योग्य है ॥३॥

१७४०—सत्यश्रवाः वत्सो वा । उषा । पंक्तिः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यथाचिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

पदार्थ—(महे) महान् (नः) हमें (अद्य) आज (बोधय) जगा दे (उषः) प्रातः काल के समान (राये) संपदा के लिए (दिवित्मती) प्रकाशवाली (यथाचित्) जैसे भी हो (नः) हमें (सत्यश्रवसि) सच्ची कीर्त्तिवाले (वाय्ये) सन्तान का विस्तार करनेवाले (सुजाते) उत्तम जन्म तथा (अश्वसूनृते) महान् सत्यवादी मुझ पर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जैसा कि पूर्व सृष्टि में तूने हमें चेताया उसी प्रकार प्रातःकाल के समान महान् संपदा के लिए अब भी हमें जगा । हे प्रभो ! सच्ची कीर्ति से युक्त, सन्तान का विस्तार करने वाले, उत्तम जन्मधारी तथा महान् सत्यवादी मुझ पर कृपा कर ॥१॥

१७४१—सत्यश्रवाः वत्सो वा । उषा । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

पदार्थ—(या) जो (सुनीथे) उत्तम गतिवाले (शौचद्रथे) प्रकाश ज्ञान में (व्यौच्छः) बसाया है (दुहितः) कन्या के समान (दिवः) सूर्य की (सा) वह (व्युच्छ) प्रकाश कर (सहीयसि) सहनशील (सत्यश्रवसि) सच्चाई का श्रवण करनेवाले (वाय्ये) जानने योग्य (सुजाते) उत्तम जन्मवाले महान् वेदवाणी वाले ॥२॥

भावार्थ—हे विदुषी स्त्री ! तू सूर्य की कन्यारूप उषा के समान उत्तम गति-वाले ज्ञान में हमें बसाती है । तू सहनशील, सच्चे श्रोता, जानने योग्य, उत्तम जन्मवाले तथा वेदवाणी के विश्वासी मुझ में प्रकाश कर ॥२॥

१७४२—सत्यश्रवाः वत्सो वा । उषाः । पंक्ति ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
सा नो अद्याभरद्वसुव्युच्छा दुहितर्दिवः ।
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थ—(सा) वह (नः) हमको (अद्य) आज (आभरद्वसुः) धन-धान्य से परिपूर्ण करने वाला (व्युच्छ) प्रकाशकर (दुहितः) कन्या के समान (दिवः) द्युलोक की (यः) जो (व्यौच्छः) ज्ञान प्रकाश किया है (सहीयसि) सहनशील (सत्यश्रवसि) सत्य व्यवहार से अन्न प्राप्त करने वाले (वाय्ये) शिल्पी के पुत्र (सुजाते) उत्तम विद्या जन्मवाले (अश्वसूनृते) महान् ज्ञान से युक्त ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सारी संपदाओं से परिपूर्ण करने वाले जिसे तूने सहनशील, सच्चे व्यवहार से जीवन निर्वाह करनेवाले, शिल्पी, उत्तम शिक्षायुक्त तथा महान् ज्ञान वाले मुझ पर सदा ज्ञान प्रकाश किया है, वह तू आज भी प्रभातकाल की रेखा के समान मेरे लिए ज्ञान का प्रकाश कर ॥३॥

१७४३—अवस्युः । अश्विनो । पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
स्तोता वामश्विना वृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

पदार्थ—(प्रति) और (प्रियतमम्) अत्यन्त प्रिय (रथम्) ज्ञान की (वृषणम्) सुखदायी (वसुवाहनम्) धन प्राप्त कराने के योग्य (स्तोता) स्तुति करनेवाला (वाम्) तुम दोनों को (अश्विनौ) हे अध्यापक और उपदेशक लोगो (ऋषिः) मन्त्रों के साक्षात् द्रष्टा (स्तोमेभिः) प्रशंसा-वचनों से (भूषति) सुशोभित करता है (प्रति) ओर (माध्वी) ब्रह्मज्ञान के जाननेवाले (मम) मेरी (श्रुतम्) सुनें (हवम्) पुकार को ॥१॥

भावार्थ—हे ब्रह्मविद्या के जाननेवाले अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जो स्तुति करनेवाला ज्ञाता पुरुष तुम दोनों के अत्यन्त प्रिय, सुखदायक तथा धन प्राप्त करने के साधन ज्ञान की प्रशंसा सूचक वाक्यों से प्रशंसा करता है उसकी और मेरी पुकार को आप सुनें ॥१॥

१७४४—अवस्युः वत्सो वा । अश्विनो । पंक्तिः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

पदार्थ—(अति) पार कर (आयातम्) आवें (अश्विना) हे शिल्पविद्या के जानने वालो (तिरः) पार (विश्वाः) सारी विद्याएँ (अहम्) मैंने (सना) सदा (दस्रा) दुःख दूर करनेवाले (हिरण्यवर्तनी) सुवर्ण का व्यवहार करनेवाले (सुषुम्णा) सुखयुक्त (सिन्धुवाहसा) परमेश्वर को प्राप्त करानेवाले (माध्वी) ब्रह्मविद्या के ज्ञाता (मम) मेरे (श्रुतम्) सुनें (हवम्) पुकार को ॥२॥

भावार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक ! मैंने समस्त विद्याओं को आपसे पढ़ा है। सदा हमारे दुःख को दूर करनेवाले हिरण्य आदि का प्रयोग बतानेवाले, परमेश्वर तक पहुँचानेवाले मधुविद्या के ज्ञाता आप लोग मेरी पुकार सुनें और मुझे संसार-सागर से पार लगावें ॥२॥

१७४५—अवस्युर्वत्सो वा । अश्विनो । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

पदार्थ—(आ) सब प्रकार से (नः) हमारे (रत्नानि) अनेक रत्नों को (बिभ्रतौ) धारण करनेवालो (अश्विना) हे भूगर्भ-विद्या के वेत्ता स्त्री-पुरुषो ! (गच्छतम्) प्राप्त होओ (युवम्) तुम दोनों (रुद्रा) ब्रह्मचर्य-सम्पन्न (हिरण्यवर्तनी) सुवर्ण आदि धातुओं को निकालनेवाले (जुषाणा) प्रीति करनेवाले (वाजिनीवसू) विज्ञानक्रिया को निवास देनेवाले (माध्वी) मधुर स्वभाव (मम) मेरी (हवम्) प्रार्थना को (श्रुतम्) सुनें ॥३॥

भावार्थ—हे भूगर्भ-विद्या के ज्ञाता स्त्री-पुरुषो ! ब्रह्मचर्य-सम्पन्न स्वर्ण आदि धातुओं के अन्वेषक, सबके प्रेमपात्र, विज्ञान क्रिया के भण्डार, मधुर स्वभाव से युक्त तथा अनेक रत्नों को धारण करनेवाले आप दोनों हमारे पास आवें और हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१७४६—बुधगविष्टिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥

पदार्थ—(अबोधि) जाना जाता है (अग्निः) परमेश्वर (समिधा) प्रकाशक ज्ञान से (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रति) प्रति (धेनुम्) वाणी के (इव) समान (आयतीम्) आती हुई (उषासम्) प्रातःवेला (यह्वाः) बड़े वृक्षों के (इव) समान (प्र) उत्कृष्ट (वयाम्) शाखा को (उज्जिहानाः) ऊपर को फैलाते हुए (प्र) उत्तम (भानवः) प्रकाश (सस्रते) प्राप्त कराते हैं (नाकम्) मोक्षरूप परमपद को (अच्छ) भली प्रकार ॥१॥

भावार्थ—प्रतिदिन की होनेवाली प्रातःवेला में स्मरण की जानेवाली वेदवाणी के समान परमेश्वर मनुष्यों के ध्यान, मनन आदि कार्यों से जाना जाता है। ऊपर की ओर अपनी शाखाओं को फैलानेवाले वृक्षों के समान परमेश्वर के प्रकाश परम पद को प्राप्त कराते हैं ॥१॥

१७४७—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अबोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥

पदार्थ—(अबोधि) ज्ञान में आता है, जाना जाता है (होता) कर्मफलदाता (यजथाय) प्राप्त कराने के लिए (देवान्) दिव्यगुणों को (ऊर्ध्वः) सबके ऊपर (अग्निः) परमेश्वर (सुमनाः) अच्छी प्रकार मनन के योग्य (प्रातः) सर्वव्यापक [होकर] (अस्थात्) स्थित है (समिद्धस्य) प्रकाशस्वरूप उसके (रुशत्) दीप्यमान (अदर्शि) देखा जाता है. प्रकट है (पाजः) बल (महान्) महान् (देवः) देव (तमसः) अज्ञान अन्धकार से (निरमोचि) छुड़ाता है ॥२॥

भावार्थ—मनुष्य दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए परमेश्वर का ज्ञान करता है। सर्वोपरि विराजमान, मनन योग्य वह परमेश्वर सर्वव्यापक होकर स्थित है। उस प्रकाशस्वरूप का बल सर्वत्र प्रकाशमान देखा जाता है। वह ही महान् देव अज्ञान अन्धकार से हमें बचाता है ॥२॥

१७४८—बुधगविष्ठिरौ । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयंत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जब (ईम्) यह (गणस्य) वेदवाणी के (रशनाम्) धागे, सूत्र या तन्तु को (अजीगः) अपने अन्दर समेट लेता है (शुचिः) शुद्धस्वरूप (अङ्क्ते) प्रकट करता है प्रकाशित करता है (शुचिभिः) पवित्र (गोभिः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आदित्य तथा विद्वान् आदि अन्य प्राणियों के साथ (अग्निः) परमेश्वर (दक्षिणा) ज्ञानक्रिया (युज्यते) संसार में युक्त होती है (वाजयन्ती) सदसन्, आत्म-अनात्म का ज्ञान करानेवाली (उत्तानाम्) सर्वत्र फैले हुए (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि विराजमान (अवयत्) ग्रहण कर लेता है (जुहूभिः) ग्रहण-शक्तियों से ॥३॥

भावार्थ—जब प्रलय का समय आता है तब शुद्धस्वरूप परमेश्वर वेदवाणी के फैले हुए तन्तु को समेट लेता है और सृष्टि का समय आने पर पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य तथा विद्वान् आदि की उत्पत्ति के साथ पुनः प्रकट करता है, सद्-असद्, आत्म-अनात्म का बोध करानेवाली ज्ञान-क्रिया संसार में पुनः प्रवृत्त हो जाती है। तदनन्तर सर्वोपरि विराजमान वह परमेश्वर इस फैले हुए वाक्-तन्तु को पुनः समेटता है और समय आने पर पुनः प्रकट करता है ॥३॥

१७४९—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ठ विभ्वा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

पदार्थ—(इदम्) यह (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (ज्योतिषाम्) ज्योतियों की (ज्योतिः) ज्योति (आगात्) व्यापक हो रहा है (चित्रः) अद्भुत (प्रकेतः) उत्तम ज्ञानवाला (अजनिष्ठ) उत्पन्न करता है (विभ्वा) सर्वव्यापक शक्ति या प्रकृति से (यथा) जैसे (प्रसूता) उत्पन्न (सवितुः) सूर्य की (सवाय एव) प्रकाशित होने के लिए ही (रात्रि) रात्रि (उषसे) उषा के लिए (योनिम्) आकाश को (आरैक्) रिक्त कर देती है ॥१॥

भावार्थ— यह श्रेष्ठ तथा ज्योतियों की परम ज्योति उषा के समान प्रकाशमान परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हो रहा है। अद्भुत तथा सर्वज्ञ वह अपनी व्यापक शक्ति प्रकृति से संसार के समस्त पदार्थों का उसी प्रकार निर्माण करता है

जिस प्रकार रात्रि सूर्य के उदय के लिए उषा को आकाश में स्थान प्रदान करती है ॥१॥

१७५०—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

१२ ३१२ ३२३१२ ३ १ २र

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।

३ १२ ३१२ ३२उ ३ १२ ३२

समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्ण चरत आमिनाने ॥२॥

पदार्थ—(रुशद्वत्सा) चमकीले सूर्यरूप बछड़ेवाली (रुशती) प्रकाशयुक्त (श्वेत्या) शुभ्र (आगात्) उदय होती है (आरैक् उ) परित्याग कर देती है (कृष्णा) रात्रि (सदनानि) स्थानों को (अस्याः) इसके (समानबन्धू) साथ-साथ बंधी हुई (अमृते) प्रवाह से अनादि (अनूची) अवर्णनीय (द्यावा) प्रकाशमान हुई (वर्णम्) जगत् के प्रकाशक को (चरतः) प्राप्त कराती है (आमिनाने) परस्पर एक दूसरे को नष्ट करती हुई ॥२॥

भावार्थ—चमकीले सूर्यरूप बछड़ेवाली, स्वयं चमकती हुई तथा शुभ्र वर्णवाली उषा उदय होती है। रात्रि इसके स्थानों का परित्याग कर देती है। साथ-साथ बंधी हुई, प्रवाह से होनेवाली तथा अवर्णनीय शोभावाली ये दोनों रात्रि और उषा परस्पर एक दूसरे को नष्ट करती हुई जगत् को प्रकाश प्राप्त कराती हैं ॥२॥

१७५१—कुत्सः । उषा । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १२ ३२उ ३ १२ ३१२

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।

१२ ३१२ ३२३२ ३२३१२ ३ १२

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३॥

पदार्थ—(समानः) एक समान (अध्वा) मार्ग है (स्वस्रोः) दोनों बहिनरूप का (अनन्तः) आकाश (तम्) उसको (अन्यान्या) एक एक करके (चरतः) गति करती हैं (देवशिष्टे) परमेश्वर के शासन में चलनेवाली (नः) नहीं (मेथेते) नाश करती हैं (न) नहीं (तस्थतुः) रुकती हैं (सुमेके) नियम में नियुक्त (नक्तोषासा) रात्रि और उषा (समनसा) समान प्रशंसावाली (विरूपे) भिन्न-भिन्न रूपोंवाली ॥३॥

भावार्थ – रात्रि और उषारूप दोनों बहिनों का आकाश समान मार्ग है। उसी पर ये दोनों एक एक करके विचरती हैं। परमेश्वर के नियम में चलनेवाली समानरूप से प्रशंसनीय तथा भिन्न-भिन्न रूपोंवाली ये दोनों कभी हानि नहीं पहुँचातीं और न रुकती हैं अर्थात् निरन्तर आती रहती हैं ॥३॥

१७५२—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३२३२३१२३ २र ३१ २र

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।

३१ २ ३१२३१२ ३१ ३१ २र

अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (भाति) शोभा पाती है (अग्निः) यज्ञ की अग्निः (उषसाम्) प्रातःवेलाओं की (अनीकम्) मुखरूप (विप्राणाम्) मेधावियों की (देवयाः) परमेश्वर की कामनावाली (वाचः) स्तुतियां (अस्थुः) बोली जाती हैं (अर्वाञ्चा) एक साथ चलनेवाले (नूनम्) निश्चित (रथ्या) विमानों के अधिकारी (इह) इस [गृहस्थाश्रम में] (यातम्) आवें (पीपिवांसम्) घृतपूर्ण (अश्विना) हे स्त्री और पुरुष (घर्मम्) यज्ञ का (अच्छ) अच्छी तरह अनुष्ठान करो ॥१॥

भावार्थ—हे विमानों के स्वामी स्त्री और पुरुष ! प्रातः वेलाओं की मुख्य यज्ञाग्नि प्रज्वलित है। ज्ञानीजन परमेश्वर को प्राप्त करानेवाली स्तुतियां करते हैं तुम लोग इस गृहस्थ आश्रम में यज्ञ को पूरा करने के लिए आओ ॥१॥

१७५३—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१२३१ २र ३२३१२ ३२३१२र ३२

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।

१२ ३२३१२ ३१२र ३२३१२

दिवाभिपित्वेऽवसा गमिष्ठा प्रत्यवर्त्ति दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (संस्कृतम्) संस्कार किये हुए को (प्रमिमीतः) नष्ट करते हो (गमिष्ठा) जानेवाले हो (अन्ति) समीप में (नूनम्) निश्चय ही (अश्विना) हे वैद्य स्त्री और पुरुष (उपस्तुत) प्रशंसा पाते हो (इह) इस विषय में (दिवाभिपित्वे) प्रातः काल में (अवसा) रक्षा के साथ (आगमिष्ठा) आनेवाले हो (प्रति) प्रति (अवर्त्तिम्) पीडायुक्त या संदिग्ध जीवनवाले के (दाशुषे) त्यागी मनुष्य के लिए (शम्भविष्ठा) कल्याणकारी हो ॥२॥

भावार्थ—हे वैद्य स्त्री-पुरुषो ! आप लोग पवित्र रहनेवालों के रक्षक और समीप आनेवाले हो। इस विषय में आप लोगों की सब प्रशंसा करते हैं। आप रोगी के पास सभी रक्षा की औषधियों के साथ प्रातःकाल भी पहुँचते हो और दानी पुरुष के लिए कल्याण करनेवाले हो ॥२॥

१७५४—अत्रिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

३१२ ३२३१ २र ३१२३१२३१२

उतायातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

२३२३१२३१२ ३१ २र ३२३ १ २र

दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

पदार्थ—(उत) और (आयातम्) आवें (संगवे) इन्द्रियों के अच्छी अवस्था में रहने के समय (प्रातः) प्रातःकाल (अह्नः) दिन के समय (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल (उदिता) प्रखर [तेज] किरणों के समय सूर्य के (दिवा) दिन में (नक्तम्) रात्रि में (अवसा) रक्षा के साधन [औषधि] के साथ (शन्तमेन) कल्याणकारक (न) नहीं (इदानीम्) इस समय (पीतिः) पान (अश्विना) वैद्य स्त्री-पुरुषो (ततान) करते हैं विस्तार करते हैं ॥३॥

भावार्थ—हे वैद्य स्त्री-पुरुषो ! आप स्वाभाविक नियम से इन्द्रियादि को स्वस्थ रखने के लिए प्रातःकाल मध्याह्न आदि वेलाओं में दिन-रात हर समय बुलाने पर रक्षा करनेवाली औषधियों के साथ रोगी के घर आओ, परन्तु रोगी के गृह पर कुछ भी मत खाओ-पीओ ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१७५५—गोतमः । उषाः । जगती ।

३२३२ ३१२३१२ ३२३२३१२ ३१२

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।

३ १ २र ३२३ २३ १ २र ३१२

निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ—(एताः) ये (उ) और वे (उषसः) (त्याः) प्रातःवेलाएँ (केतुम्) ज्ञान को (अक्रत) कराती हैं (पूर्वे) पूर्व [पहले] (अर्धे) आधे में (रजसः) भूगोल के (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अंजते) फैलाती हैं (निष्कृण्वानाः) करती हुई (आयुधानि) शस्त्रों को (इव) समान (धृष्णवः) प्रगल्भ शस्त्रधारी के (प्रति) ओर (गावः) गमनशील (अरुषीः) लालिमायुक्त (यन्ति) प्राप्ति होती हैं (मातरः) दिन की माताएँ ॥१॥

भावार्थ—गतिशील, लालिमायुक्त तथा दिन को उत्पन्न करनेवाली प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उषाएँ ज्ञान कराती हैं। आयुधों को प्रगल्भ योद्धा के समान दिनों को उत्पन्न करती हुई भूगोल के पूर्व अर्ध में सूर्य के प्रकाश को फैलाती हैं और हमें प्रतिदिन देखने में आती हैं ॥१॥

१७५६—गोतमः । उषाः । जगती ।

१२ ३२३२३१२ ३२३१२३१२

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।

१२३१२३१२ ३२३१२ ३१ २र

अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—(उदपप्तन्) ऊपर उठती हैं (अरुणा) लालिमायुक्त (भानवः) सूर्य की किरणें (वृथा) व्यर्थ सी [अनायास] (स्वायुजः) परस्पर युक्त (अरुषीः) प्रकाशमान (गाः) पृथिवी के साथ (अयुक्षत) युक्त होती हैं (अक्रन्) करती हैं (उषासः) उषाकाल की किरणें (वयुनानि) प्रशंसनीय कार्य या कान्तियों को (पूर्वथा) पहले दिन के समान (रुशन्तम्) तेजस्वी (भानुम्) सूर्य का (अरुषीः) लालिमायुक्त (अशिश्रयुः) आश्रय करती हैं ॥२॥

भावार्थ—लालिमायुक्त सूर्य की किरणें अनायास ही नियम से ऊपर नीचे आदि दिशाओं में फैलती हैं। लालिमायुक्त वे सब पदार्थों से युक्त होती हुई पृथिवी के साथ संबद्ध होती हैं। पूर्व दिन की भाँति उषा की अरुण किरणें आज भी अपने प्रशंसनीय कार्य को करती हैं। वे प्रकाशमान सूर्य का आश्रय लेती हैं ॥२॥

१७५७—गोतमः । उषाः । जगती ।

१२३ १२३२३२३ १२ ३२३१२३१२३१२

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।

२३१२ ३१२३१२३२उ ३ १२ ३२

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—(अर्चन्ति) व्याप लेती हैं (नारीः) प्राणिमात्र की नेत्री (अपसः) जल के (न) समान (विष्टिभिः) तेजों से (समानेन) एक समान के (योजनेन) योग के द्वारा (आ परावतः) दूर तक (इषम्) ज्ञान को (वहन्ती) प्राप्त कराती हुई (सुकृते) धर्मात्मा (सुदानवे) उत्तम दानी (विश्वा इत अह) संपूर्ण भोग्य पदार्थों को (यजमानाय) यजमान के लिए (सुन्वते) उत्पन्न करती हैं ॥३॥

भावार्थ—सब को मार्ग दिखानेवाली उषाएँ जल के समान एक ही मार्ग से अपने तेजों के द्वारा भूगोल के भाग में प्रति दिन फैल जाती हैं। वे धर्मात्मा तथा दानी यजमान को ज्ञान कराती हुई समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करती हैं ॥३॥

१७५८—दीर्घतमाः । अश्विनौ । जगती ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३क २ ३ २ ३क २र ३ १ २
अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युश्षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥१॥

पदार्थ—(**अबोधि**) जागृत होता है (**अग्निः**) तेज तत्त्व का (**ज्मः**) पृथिवी पर (**उदेति**) उदय होता है (**सूर्यः**) सूर्य (**वि**) विशेषतः (**उषाः**) उषा (**चन्द्रा**) आनन्द देनेवाली (**मही**) बड़ी (**आवः**) रक्षा करती है (**अर्चिषा**) अपने तेज से (**अयुक्षाताम्**) जोड़ते हैं (**अश्विना**) आप्त अध्यापक और उपदेशक (**यातवे**) जाने के लिए (**रथम्**) विमान को (**प्रासावीत्**) भली भांति उत्पन्न करता है (**देवः**) परमात्मदेव (**सविता**) सृष्टिकर्त्ता (**जगत्**) संसार को (**पृथक्**) पृथक् पृथक् ॥१॥

भावार्थ—अग्नि प्रदीप्त होता है। सूर्य पृथिवी पर उदय होता है। सुखकारिणी महान् उषा भी समय पर अपने तेज से फैलती है। अध्यापक और उपदेशक रथ को अपने कार्यों के लिए युक्त करते हैं। विधाता ने संसार को विभाग के साथ रचा है ॥१॥

१७५९—दीर्घतमाः । अश्विनौ । जगती ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**युञ्जाथे**) जोड़ते हैं (**वृषणम्**) शत्रुओं की शक्ति को रोकनेवाले (**अश्विना**) सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष (**रथम्**) विमान को (**घृतेन**) घृत आदि (**नः**) हमारे (**मधुना**) मधुर पदार्थों से (**क्षत्रम्**) राष्ट्र को (**उक्षतम्**) भरपूर करते हैं (**अस्माकम्**) हमारे (**ब्रह्म**) अन्न और तेज को (**पृतनासु**) सेनाओं में (**जिन्वतम्**) भर दो (**वयम्**) हम लोग (**धना**) धनों को (**शूरसाता**) संग्रामों में (**भजेमहि**) प्राप्त करें ॥२॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष ! जब आप लोग शत्रु से सामना करनेवाले विमान को जोड़ते हैं तो घृत तथा मधुर पदार्थों आदि से राष्ट्र को परिपूर्ण कर देते हैं। हमारी सेनाओं को अन्न आदि से ऐसा निश्चिन्त कर दो कि हम लोग संग्राम में धन को प्राप्त करें ॥२॥

१७६०—दीर्घतमाः । अश्विनौ । जगती ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शन्न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

पदार्थ—(**अर्वाङ्**) नीचे प्रदेश में [भूमि पर] चलनेवाला (**त्रिचक्रः**) तीन चक्रवाले (**मधुवाहनः**) जल में चलनेवाले (**जीराश्वः**) तेज घोड़ोंवाले (**रथः**) विमान (**अश्विनोः**) शिल्पी और वैज्ञानिक के (**यातु**) चलें (**सुष्टुतः**) प्रशंसित (**त्रिबन्धुरः**) तीन बन्धनवाला (**मघवा**) परमेश्वर (**विश्वसौभगः**) सारे सौभाग्यों का दाता (**शम्**) कल्याण (**नः**) हमारे (**आवक्षत्**) करे (**द्विपदे**) दो पांववाले (**चतुष्पदे**) चार पांववाले पशु आदि के लिए ॥३॥

भावार्थ—तीन चक्कोंवाला, तीन बन्धनों से युक्त, तेज घोड़ों से चलने वाला, जलगामी तथा स्थल-गतिवाला, शिल्पी और वैज्ञानिक का रथ चले। प्रशंसित तथा सारे सौभाग्यों का दाता परमेश्वर हमारे जन तथा पशु आदि का कल्याण करे ॥३॥

१७६१—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्कृष्ट (**ते**) तेरी (**धाराः**) वाणियां (**असश्चतः**) अलग अलग (**दिवः**) द्युलोक से (**न**) समान (**यन्ति**) प्राप्त कराती या जनती हैं (**वृष्टयः**) वृष्टि के (**अच्छा**) अच्छी तरह (**वाजम्**) ज्ञान को (**सहस्रिणम्**) विविध प्रकारवाले ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पृथक्-पृथक् वर्तमान तेरी वेदमयी वाणियां आकाश की वृष्टि के समान विविध प्रकार के ज्ञानों को प्राप्त कराती हैं ॥१॥

१७६२—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
१ २ ३ १ २र
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥२॥

पदार्थ—(**अभि**) सब प्रकार से (**प्रियाणि**) प्रिय (**काव्या**) वेद वचनों का (**विश्वा**) सारे (**चक्षाणः**) उपदेश करता हुआ (**अर्षति**) व्यापक हो रहा है (**हरिः**) अज्ञानहर्त्ता (**तुञ्जानः**) प्रेरणा देता हुआ (**आयुधा**) आयु को धारण करनेवाले कर्मों को ॥२॥

भावार्थ—अज्ञानहर्त्ता परमेश्वर सारे वेद-वचनों का उपदेश तथा आयु प्राप्त करानेवाले कर्मों की प्रेरणा करता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥२॥

१७६३—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥३॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**मर्मृजानः**) स्वयं पवित्र करता हुआ (**आयुभिः**) आयुओं [जीवन] से (**इभः**) हाथी (**राजा**) राजा के (**इव**) समान (**सुव्रतः**) प्रशस्तकर्मा (**श्येनः**) आत्मा के (**न**) समान (**वंसु**) संसार में (**सीदति**) विराजमान है ॥३॥

भावार्थ—जीवनों द्वारा सबको पवित्र करता हुआ, प्रशस्तकर्मा परमेश्वर गजराज के समान तथा आत्मा के समान संसार में विराजमान है ॥३॥

१७६४—अवत्सारः । सोमः । गायत्री ।

१ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥४॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**नः**) हमें (**विश्वा**) सारे (**दिवः**) मोक्ष का (**वसु**) धन (**उत**) और (**पृथिव्याः**) पृथिवी का (**अधि**) ऐश्वर्य के साथ (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**इन्दो**) हे ऐश्वर्यशालिन् (**आभर**) परिपूर्ण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ऐश्वर्यशालिन् परमेश्वर ! तू पवित्र करता हुआ हमें इहलोक और परलोक की सम्पदा प्रदान कर ॥४॥

卐 **पंचमः खण्डः समाप्तः** 卐

卐 **एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः** 卐

卐

विंशोऽध्यायः

१७६५—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**अस्य**) इसकी (**धाराः**) वेदमयी वाणियां (**अक्षरन्**) वर्षा करती हैं (**वृष्णः**) सकल सुखदाता (**सुतस्य**) उत्पादक (**ओजसः**) बल के (**देवान्**) संसार की दिव्य वस्तुओं को (**अनु**) अनुकूलता के साथ (**प्रभूषत**) सुशोभित करनेवाला ॥१॥

भावार्थ—संसार की दिव्य वस्तुओं को विभूषित करनेवाले, सुखदाता, तथा बल के उत्पादक इस परमेश्वर की वेदमयी वाणियां ज्ञान की वर्षा करती हैं ॥१॥

१७६६—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३क २र
सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(**सप्तिम्**) सर्वव्यापक (**मृजन्ति**) अपने को शुद्ध करते हैं (**वेधसः**) मेधावीजन (**गृणन्तः**) स्तुति करते हुए (**कारवः**) कर्मण्य (**गिरा**) वेदवाणी से (**उ**) पादपूरक (**ज्योतिः**) ज्ञानज्योति को (**जज्ञानम्**) उत्पन्न करनेवाले (**उक्थ्यम्**) स्तुत्य उपास्य ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानज्योति को उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक तथा स्तुति करने योग्य परमेश्वर की वेदवाणी द्वारा स्तुति करते हुए कर्मण्य विद्वान् लोग अपने को पवित्र करते हैं ॥२॥

१७६७—नृमेधः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥

पदार्थ—(सुषहा) अभिभव करनेवाले (सोमः) हे परमेश्वर (तानि) वे (ते) तेरे (पुनानाय) पवित्रकर्त्ता (प्रभूवसो) हे शक्तिमन् (वर्धा) बढ़ा (समुद्रम्) सुख के सागर को (उक्थ्य) हे स्तुत्य ॥३॥

भावार्थ—हे शक्तिमन् तथा स्तुत्य परमेश्वर ! पवित्र करनेवाले तुझ प्रभु के तेज सब तेजों को दबानेवाले हैं । तू संसार में सुख का सागर बढ़ा दे ॥३॥

१७६८—प्रियमेधः वामदेवो वा । इन्द्रः । पंक्तिः ।

३ २ ३ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥१॥

पदार्थ—(एष) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का उपदेष्टा (यः) जो (ऋत्वियः) ऋतुओं में यज्ञ करनेवाला (इन्द्रः) परमेश्वर (नाम) नाम से (श्रुतः) विख्यात है (गृणे) उसकी स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—जो परमेश्वर ऋतुओं के अनुसार पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला इन्द्र नाम से विख्यात है, उस चारों वेदों के उपदेष्टा की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

१७६९—प्रियमेधो वामदेवो वा । इन्द्रः । पंक्तिः ।

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥२॥

पदार्थ—(त्वाम्) तुझ को (इत्) ही (शवसस्पते) हे बलों के स्वामी (यन्ति) प्राप्त होती हैं (गिरः) वाणियां (न) समान (संयतः) संयमी पुरुष के ॥२॥

भावार्थ—हे बलों के स्वामी परमेश्वर ! संयमी पुरुषों के समान हमारी स्तुतियां तुम्हें ही प्राप्त होती हैं ॥२॥

१७७०—प्रियमेधो वामदेवो वा । इन्द्रः । पंक्तिः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥३॥

पदार्थ—(विस्रुतयः) पगदण्डियां (यथा) जैसे (पथा) बड़ी सड़क से (इन्द्रः) हे राजन् (त्वत्) तुझ से (यन्तु) प्राप्त हों (रातयः) सब प्रकार के दान ॥३॥

भावार्थ—हे राजन् ! बड़ी सड़कों से पगदण्डियों के समान तुझसे अनेक प्रकार के दान प्राप्त होते हैं ॥३॥

१७७१—प्रियमेधः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (त्वा) तुझे (रथम्) रथ को (यथा) जसे (ऊतये) रक्षा के लिए (वर्तयामसि) अपनी ओर घुमाता हूँ (तुविकूर्मिम्) बहुत कार्य करनेवाले (ऋतीषहम्) हिंसक भावों को दबानेवाले (इन्द्रम्) अविद्या के नाशक विद्वान् को (शविष्ठ) हे बलशाली (सत्पतिम्) सत्य के रक्षक ॥१॥

भावार्थ—हे शक्तिशाली विद्वन् ! अनेक सुखों की सिद्धि के लिए रथ के समान अपनी रक्षा के लिए हमलोग अनेक क्रियाओं में कुशल, हिंसक भावों को दबानेवाले तथा सत्य के रक्षक आपको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं ॥१॥

१७७२—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आपप्राथ महित्वना ॥२॥

पदार्थ—(तुविशुष्म) हे अतिबलवन्, (तुविक्रतो) हे महान् ज्ञानिन् (शचीवो) हे असंख्य कर्मों के संपादक (विश्वया) विश्वव्यापक (मते) हे मतिमान् (आपप्राथ) ओत-प्रोत या विस्तारयुक्त है (महित्वना) महिमा से ॥२॥

भावार्थ—हे अति बलवान् महान् ज्ञानी असंख्य कर्मों के संपादक और मतिमान् परमेश्वर ! तू अपनी विश्वव्यापक महत्ता से संसार में ओत-प्रोत है ॥२॥

१७७३—प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (ते) तेरी (महिना) महत्ता से (महः) महान् (परि) सब प्रकार से (ज्मायन्तम्) पृथिवी पर व्यापक (ईयतुः) ग्रहण करती है (हस्ता) ग्रहण और धारण शक्तियां (वज्रम्) पराक्रम को (हिरण्ययम्) प्रकाशमय ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुझ महान् की ग्रहण और त्याग शक्तियां महत्ता से पृथिवी पर व्यापक तेरे प्रकाशमय पराक्रम को धारण करती हैं ॥३॥

१७७४—दीर्घतमाः । अग्निः । विराट् ।

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र १ २
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सूरो न रुरुक्वां छतात्मा ॥१॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (यः) जो (पुरम्) शरीर को या संसार को (नार्मिणीम्) क्रीडा-विलास आदि के साधनभूत (अदीदेत्) प्रकाशित करता है (अत्यः) वायु (कविः) दूरदर्शी (नभन्यः) आकाशवर्त्ती (अर्वा) सदा गतिशील (सूरः) सूर्य के (न) समान (रुरुक्वान्) प्रकाशस्वरूप (शतात्मा) अनेक पदार्थों में व्यापक ॥१॥

भावार्थ—सर्वज्ञ, आकाश में स्थित वायु के समान गतिशील सूर्य के समान तेजस्वी और सब पदार्थों में व्यापक परमेश्वर ही भोग-साधन संसार या मनुष्यों के शरीर को बनाता है ॥१॥

१७७५—दीर्घतमाः । अग्निः । विराट् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि द्विजन्मा त्रीरोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥२॥

पदार्थ—(अभि) सब प्रकार से (द्विजन्मा) दो प्रकार [अर्थात् जंगम और जड़] जगत् के स्वामी (त्रिः) तीन (रोचनानि) प्रकाशक सूर्य, अग्नि और विद्युत् (विश्वा) सारे (रजांसि) लोकों को (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ (अस्थात्) स्थित है (होता) सबका धारणकर्त्ता (यजिष्ठः) पूजनीय (अपाम्) जलों के (सधस्थे) स्थान [आकाश] में ॥२॥

भावार्थ—जड़ और जंगम दोनों प्रकार के जगत् का स्वामी, सर्वाधार तथा पूजनीय परमेश्वर अग्नि सूर्य तथा विद्युत्, और समस्त लोकों को प्रकाशित करता हुआ जलों के स्थान आकाश में स्थित है ॥२॥

१७७६—दीर्घतमाः । अग्निः । विराट् ।

२ २उ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २र १ २
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।

२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मर्त्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥३॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सः) वह (होता) उत्तम गुणों का दाता (यः) जो (द्विजन्मा) दो प्रकार के जगत् का स्वामी (विश्वा) समस्त (दधे) धारण करता है (वार्याणि) श्रेष्ठ पदार्थों और गुणों का (श्रवस्या) कीर्ति कर (मर्तः) मनुष्य (यः) जो (अस्मै) इस के लिए (सुतुकः) उत्तम विद्यावृद्ध (ददाश) त्यागता है ॥३॥

भावार्थ—जो उत्तम गुणों का दाता और जड़ जंगम जगत् का स्वामी है वही परमेश्वर समस्त कीर्तिकर गुणों को धारण करता है । जो मनुष्य विद्यावृद्ध है वह सदा इस परमेश्वर में अनेक कर्मों का समर्पण करता है ॥३॥

१७७७—वामदेवः । अग्निः । पदपंक्तिः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।

३ १ २ ३ १ २
ऋध्यामा त ओहैः ॥१॥

पदार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर (तम्) उसको (अद्य) आज (अश्वं) व्यापक अग्नि के (न) समान (स्तोमैः) स्तुतियों से (क्रतुम्) कर्म के (न) समान (भद्रं) कल्याणकारी (हृदिस्पृशम्) हृदयदेश में विराजमान (ऋध्यामा) स्तुति करते हैं (ते) तेरे (ओहैः) ज्ञान और सुख प्राप्त कराने वाले ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! व्यापक अग्नि के समान सर्वव्यापक तथा कल्याणकारी कर्म के समान फलदाता, हृदय देश में विद्यमान तुझे हम ज्ञान और सुख के दाता वचनों से स्मरण करते हैं ॥१॥

१७७८—वामदेवः । अग्निः । पदपंक्तिः ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

पदार्थ—(अधा हि) निश्चय ही (अग्ने) हे परमेश्वर (क्रतोः) यज्ञ के (भद्रस्य) कल्याणकारी (दक्षस्य) बल के (साधोः) उत्तम (रथीः) रथवत् वहन-धारण करनेवाले=महारथी (ऋतस्य) ज्ञान और सृष्टिनियम के (बृहतः) महान् (बभूथ) हैं ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! निश्चय तू ही कल्याणकारक बल, उत्तम ज्ञान और सृष्टि नियम, तथा इस महान् संसारी यज्ञ का महारथी है ॥२॥

१७७९—वामदेवः । अग्निः । पदपंक्तिः ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३क १ २र
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्‌स्वर्ण ज्योतिः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

पदार्थ—(**एभिः**) इन (**नः**) हमारी (**अर्कैः**) स्तुतियों से (**भवा**) हो (**नः**) हमारे (**अर्वाक्**) सम्मुख (**स्वः**) सूर्य के (**न**) समान (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**विश्वेभिः**) सारे (**सुमनाः**) भली भांति जानने के योग्य (**अनीकैः**) तेजों से ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप तथा जानने योग्य तू हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न हो अपने तेजों से अज्ञान का पट खोल और हमारे साक्षात्कार में आ ॥३॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

१७८०—प्रस्कण्वः । अग्निः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे जीव (**विवस्वत्**) विशेष चमकनेवाले या वास देनेवाले (**उषसः**) उषा का (**चित्रम्**) अद्‌भुत (**राधः**) ज्ञान धन (**अमर्त्य**) हे अमर (**आ**) भली भांति (**दाशुषे**) यजमान के लिए (**जातवेदः**) हे ज्ञानी (**वहा**) प्राप्त करा (**त्वम्**) तू (**अद्या**) आज (**देवान्**) इन्द्रियों को (**उषर्बुधः**) प्रातःकाल जागनेवाली ॥१॥

भावार्थ—हे विज्ञानी अमर जीव ! तू उषा काल के समान प्रकाशमान प्रकाश को बसानेवाला अद्‌भुत ज्ञान-धन दानी पुरुष को प्राप्त करा तथा प्रातःकाल जागने वाली इन्द्रियों को ज्ञान करा ॥१॥

१७८१—प्रस्कण्वः । अग्निः । बृहती ।

१ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥

पदार्थ—(**जुष्टः**) प्रसन्न हुआ (**हि**) ही (**दूतः**) दुर्गुणों के निवारक (**असि**) है (**हव्यवाहनः**) देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाला (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**रथीः**) नेता (**अध्वराणाम्**) कल्याणकारी यज्ञों का (**सजूः**) मनुष्यों को प्यार करनेवाला (**अश्विभ्याम्**) सूर्य और चन्द्र द्वारा (**उषसा**) उषा काल के द्वारा (**सुवीर्यम्**) बलवर्धक (**अस्मे**) हमें (**धेहि**) दे (**श्रवः**) अन्न और यश (**बृहत्**) महान् ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू ही दुर्गुणों का निवारक कल्याणकारी यज्ञों का नेता तथा सबसे मैत्री रखता है । तू सदा प्रीति से सेवनीय है । तू सूर्य, चन्द्र और उषा के द्वारा पर्याप्त अन्न देता है ॥२॥

१७८२—बृहदुक्थ्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ ३ २ १ २
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥१॥

पदार्थ—(**विधुम्**) ज्ञाता (**दद्राणम्**) दुष्ट भावों का दमन करनेवाले (**समने**) संसाररूपी संग्राम में (**बहूनाम्**) बहुतों के (**युवानम्**) सदा युवा (**सन्तम्**) सत्यस्वरूप (**पलितः**) ज्ञान-वृद्ध (**जगार**) उपदेश करता है (**देवस्य**) देव के (**पश्य**) देखो (**काव्यम्**) गति को (**महित्वा**) महत्ता से युक्त (**अद्य**) आज (**ममार**) मरा (**सः**) वह (**ह्यः**) गत दिन अर्थात् कल (**समान**) जीवित था ॥१॥

भावार्थ—ज्ञानवृद्ध संसार संग्राम में सब का ज्ञाता, दुष्ट भावों के दमन करने वाले, सदा युवा तथा सत्यस्वरूप परमेश्वर का उपदेश करता है । हे मनुष्य ! उस देव के इस महत्त्व से युक्त कार्य को देखो कि कल जो जीवित था आज वही मौत के मुख में हुआ ॥१॥

१७८३—बृहदुक्थ्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥२॥

पदार्थ—(**शाक्मना**) अपनी शक्ति से (**शाकः**) शक्तिमान् (**अरुणः**) अग्नि के समान तेजस्वी (**सुपर्णः**) उत्तम रक्षक (**आ**) भली भांति (**यः**) जो (**महः**) महान् (**शूरः**) बलवान् (**सनातः**) सनातन (**अनीडः**) स्थान विशेष पर न रहने वाला [सर्वत्र रहनेवाला] (**यत्**) जो कुछ (**चिकेत**) चाहता है वा सोचता है (**सत्यम्**) सत्य (**इत्**) ही (**तत्**) वह (**न**) नहीं (**मोघम्**) व्यर्थ (**वसु**) सम्पदा को (**स्पार्हम्**) चाहने योग्य (**उत**) और (**जेता**) विजयी (**उत**) और (**दाता**) देनेवाला ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर महान् बलशाली, सनातन, सर्वव्यापक, अपनी शक्ति से सर्वशक्तिमान्, अग्निवत् तेजस्वी, तथा उत्तम रक्षक है । वह जो कुछ सोचता है वह सत्य ही होता है, व्यर्थ नहीं । वह सब पर विजयी और स्पृहणीय धन का दाता है ॥२॥

१७८४—बृहदुक्थ्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुद जायन्त देवाः ॥१॥

पदार्थ—(**आ**) भली भांति (**एभिः**) इनके द्वारा (**ददे**) देता है (**वृष्ण्या**) बलवान् (**पौंस्यानि**) पौरुषों को (**येभिः**) जिनसे (**औक्षत्**) सींचता है (**वृत्रहत्याय**) पाप को नष्ट करने के लिए (**वज्री**) न्यायरूप दण्ड का धारण करनेवाला (**ये**) जो (**कर्मणः**) कर्म के (**क्रियमाणस्य**) किए जाने वाले (**मह्नः**) महत्त्व से (**ऋते-कर्मम्**) सच्चे व्यवहार में (**उदजायन्त**) उन्नत करते हैं (**देवाः**) विद्वान् जन ॥३॥

भावार्थ—न्यायदण्ड का धारण करनेवाला परमेश्वर, जिनके द्वारा पाप दूर करने का उपाय करता है तथा जो वे विद्वान् लोग किए जानेवाले कर्म के महत्त्व से संसार के सच्चे व्यवहारों में विजय प्राप्त करते हैं उन विद्वानों के द्वारा ही परमेश्वर का श्रेष्ठ पौरुष धारण किया जा सकता है ॥३॥

१७८५—विन्दुः पूतदक्षो वा । सोमः । गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥१॥

पदार्थ—(**अस्ति**) है (**सोमः**) संसार (**अयम्**) यह (**सुतः**) उत्पन्न (**पिबन्ति**) भोगते हैं (**अस्य**) इसको (**मरुतः**) ऋत्विज् लोग (**उत**) और (**स्वराजः**) स्वयं तेजस्वी (**अश्विना**) वैद्य या वैज्ञानिक स्त्री-पुरुष भी ॥१॥

भावार्थ—यह जगत् उत्पन्न है । स्वयं तेजस्वी ऋत्विज् तथा वैज्ञानिक स्त्री-पुरुष इसका उपभोग करते हैं ॥१॥

१७८६—विन्दुः पूतदक्षो वा । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥२॥

पदार्थ—(**पिबन्ति**) पान करते हैं (**मित्रः**) मित्र (**अर्यमा**) न्यायकारी (**तना**) विस्तृत (**पूतस्य**) पवित्र (**वरुणः**) वरणयोग्य (**त्रिषधस्थस्य**) त्रिलोकीनाथ (**जावतः**) उत्पादक ॥२॥

भावार्थ—मित्र, न्यायकारी, तथा वरणीय व्यक्ति सदा पवित्र त्रिलोकीनाथ सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के आनन्द का पान करते हैं ॥२॥

१७८७—विन्दुः पूतदक्षो वा । सोमः । गायत्री ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥३॥

पदार्थ—(**उत उ**) और (**नु**) शीघ्र (**अस्य**) इसके (**जोषम्**) प्रेम को (**आ**) भली भांति (**इन्द्रः**) आत्मा (**सुतस्य**) सृष्टिकर्त्ता (**गोमतः**) गौ आदि के स्वामी (**प्रातः**) प्रातःकाल में (**होता**) यज्ञ करनेवाले के (**इव**) समान (**मत्सति**) आनन्दित होता है ॥३॥

भावार्थ—ज्ञानी जीवात्मा गौ आदि के स्वामी तथा सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के प्रेमरस को पान कर प्रातःकाल के यज्ञकर्त्ता के समान प्रसन्न होता है ॥३॥

१७८८—जमदग्निः । सूर्यः । बृहती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वण्महाँ असि सूर्य वडादित्य महाँ असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥१॥

पदार्थ—(**वट्**) सत्य (**महान्**) बड़ा (**असि**) है (**सूर्य**) हे परमेश्वर (**वट्**) सत्य ही (**आदित्य**) आदित्य (**महान्**) महान् (**असि**) है (**महः**) महान् (**ते**) तेरी (**सतः**) नित्य (**महिमा**) महिमा की (**पनिष्टम**) स्तुति करते हैं (**मह्ना**) महत्त्व से (**देव**) हे देव (**महान्**) बड़ा (**असि**) है ॥१॥

भावार्थ—हे सबके प्रेरक परमेश्वर ! तू सत्य ही महान् है । तू ही आदित्य नाम वाला है । हे देव ! तुझ नित्य प्रभु की महिमा को हम महत्त्व देते हैं । तू अपनी महत्ता से ही महान् है ॥१॥

१७८९—जमदग्निः । सूर्यः । बृहती ।

१ २३१२ ३१ २ ३१२ ३१२
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
३ २ ३१२ ३क२२ ३ १ २ ३ २उ ३१२
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥२॥

पदार्थ—(बट्) सत्य ही (सूर्य) हे परमेश्वर (श्रवसा) यश से (महान्) महान् (असि) है (सत्रा) सत्य से (देव) हे देव (महान्) महान् (असि) है (मह्ना) महिमा से (देवानाम्) समस्त दिव्य शक्तियों का (असुर्यः) बुरे विचारों का नाश करनेवाला (पुरोहितः) पूर्वकर्त्ता (विभु) व्यापक (ज्योतिः) ज्योति (अदाभ्यम्) न दबाये जाने योग्य ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने यश से महान् है । हे देव तू सत्य से महान् है । बुरे विचारों का विनाशक तू सारे देवों का धारण करनेवाला है । तेरी व्यापक ज्योति अमिट है ॥२॥

卐 **द्वितीयः खण्डः समाप्तः** 卐

१७९०—सुकक्षः । सोमः । गायत्री ।

१२ ३१२ ३२३१२ १२ ३१२
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥१॥

पदार्थ—(उप) समीप (नः) हमें (हरिभिः) अज्ञान का हरण करने वाली शक्तियों से (सुतम्) उत्पन्न ज्ञान को (याहि) प्राप्त करा (मदानां पते) हे सुखों के स्वामी (उप) समीप (नः) हमारे (हरिभिः) इन्द्रिय, अन्तःकरणों और प्राणों के द्वारा (सुतम्) उत्पन्न भोग को ॥१॥

भावार्थ—हे निखिल सुखों के स्वामिन् परमेश्वर ! तू अपनी अज्ञाननिवारक शक्तियों द्वारा उत्पन्न ज्ञान को हमें प्राप्त करा और इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरणों द्वारा उत्पन्न संसारी भोग को हमारे समीप ला ॥१॥

१७९१—सुकक्षः । सोमः । गायत्री ।

३ १ २र ३१२ ३ १ २र ३१२ १२३१३ ३२
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥२॥

पदार्थ—(द्विता) दो प्रकार से (यः) जो (वृत्रहन्तमः) पाप और अज्ञानों का नाशक है (विदे) जानूँ (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली (शतक्रतुः) असंख्य ज्ञान और कर्मवाला (उप) समीप (नः) हमारे (हरिभिः) पुरुषार्थी मनुष्यों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न किए गए ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो तू ऐश्वर्यशाली, अनेक प्रकार के कर्म और ज्ञान वाला तथा अपने ज्ञान और कर्म से अज्ञान और पाप का नाशक है उस तुझ को मैं जानूँ और प्राप्त होऊँ । तू पुरुषार्थी मनुष्यों द्वारा उत्पन्न किए गए भोग को हमें प्राप्त करा ॥२॥

१७९२—सुकक्षः । सोमः । गायत्री ।

१ २र ३ १ २र३१२ १२ ३ १२ ३२
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३॥

पदार्थ—(त्वम्) तू ही (वृत्रहन्) हे पापनाशक (एषाम्) इन (सोमानाम्) जीव तथा संसारी पदार्थों का (पाता) रक्षक (उप) समीप (नः) हमें (हरिभिः) विद्वानों द्वारा (सुतम्) उत्पन्न किए गए ज्ञान-विज्ञान को ॥३॥

भावार्थ—हे अज्ञान और पाप का नाश करनेवाले परमेश्वर ! तू ही समस्त जीव तथा संसारी पदार्थों का रक्षक है । हमें विद्वान् मनुष्यों द्वारा ढूँढे हुए ज्ञान को प्राप्त करा ॥३॥

१७९३—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

१ २३१२३१२ ३१२११२३१२
प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
१२ ३ १ २र ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्तम (वः) तुम लोग (महे) महान् (महेवृधे) महान् ज्ञानों को बढ़ानेवाले (भरध्वम्) भरपूर करो (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञान के लिए (प्र) उत्कृष्ट (सुमतिम्) प्रशंसा (कृणुध्वम्) करो (विशः) प्रजाएँ (पूर्वीः) सनातन (प्रचर) प्राप्त कर (चर्षणिप्राः) मनुष्यमात्र का पालक ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग महान् ज्ञान की वृद्धि करनेवाले विद्वान् को धन-धान्य से परिपूर्ण करो तथा उसकी प्रशंसा करो । हे विद्वन् ! मनुष्यमात्र का कल्याणकारी तू सनातनी प्रजाओं में प्रचार कर ॥१॥

१७९४—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

३ १२ ३१२ ३१ २र३१२ ३१२
उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
१ २३२३१२ ३ १२
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥२॥

पदार्थ—(उरुव्यचसे) वाणियों के स्वामी (महिने) महान् (सुवृक्तिम्) स्तुति को (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (ब्रह्मः) ब्रह्मज्ञान को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (विप्राः) मेधावी जन (तस्य) उसके (व्रतानि) नियमों को (न) नहीं (मिनन्ति) तोड़ते (धीराः) धीर लोग भी ॥२॥

भावार्थ—ज्ञानीजन वेदवाणियों के स्वामी परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुतियां करते हुए ब्रह्मज्ञान का उत्पादन करते हैं । धीर पुरुष उस भगवान् के नियम को नहीं तोड़ते ॥२॥

१७९५—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

२ ३ २ ३१२ ३२३१ २र ३ १२
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
१ २ ३ २ ३ २
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रम्) परमेश्वर को (वाणीः) वेदवाणियाँ (अनुत्तमन्युम्) अबाधित ज्ञानवाले (एव) ही (सत्रा) सत्य से (राजानम्) जगद्-राजा (दधिरे) धारण करती है (सहध्यै) दुर्गुणों को दबाने के लिए मनुष्य, सूर्य, अग्नि तथा वायु आदि पदार्थों में व्यापक के लिए (बर्हय) बढ़ा (सम्) सम्यक् (आपीन्) बन्धु-बान्धवों को ॥३॥

भावार्थ—वेदवाणियां सत्य के द्वारा दुर्गुणों को दबाने के लिए अबाधित ज्ञान वाले और जगत् के राजा परमेश्वर को धारण करती हैं । हे मनुष्य ! तू मनुष्य तथा सूर्य, अग्नि आदि पदार्थों में व्यापक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने बन्धु-बान्धवों को आगे बढ़ा ॥३॥

१७९६—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३१ २
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (इन्द्र) हे शासक पुरुष ! (यावतः) जितना (त्वम्) तू (एतावत्) इतने को (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी हो जाऊँ (स्तोतारम्) अर्थी को (इत्) ही (दधिषे) पुष्ट करूँ (रदावसो) हे धनदाता (न) नहीं (पापत्वाय) पाप कर्म के लिए (रंसिषम्) रमण न करें अर्थात् इन्द्रियाराम न बनें ॥१॥

भावार्थ—हे शासक पुरुष ! जितने पर तू शासन करता है उतनों पर मैं भी शासन करूँ तथा अर्थी (कामना करनेवाले) को ही पालूँ पोषूँ । हे दानी पुरुष ! मैं पाप कर्म के लिए कभी न विचरूँ, अर्थात् इन्द्रियाराम न होऊँ ॥१॥

१७९७—वसिष्ठः । इन्द्रः । बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥२॥

पदार्थ—(शिक्षेयम्) देता हूँ (इत्) ही (महयते) पूजा करनेवाले को (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रायः) सम्पदाएं (आ) सभी ओर से (कुहचिद्विदे) कहीं पर भी रहनेवाले के लिए (न हि) नहीं (त्वत्) तुझ से (अन्यत्) दूसरा (मघवन्) हे सकल सम्पदाओं के स्वामी (नः) हमारा (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य या बन्धु (वस्यः) सच्चा (पिता) पिता (च) भी (न) नहीं ॥२॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! मैं किसी भी जगह पर रहनेवाले तेरे पूजक को ही धन दूँ । हे प्रभो ! तुझसे बढ़कर सच्चा पिता और भ्राता हमारा अन्य कोई नहीं है ॥२॥

१७९८—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

३ १ २र २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥१॥

पदार्थ—(श्रुधीः) सुन (हवम्) पुकार को (विपिपानस्य) आनन्द का बार-बार पान करनेवाले की (अद्रेः) आदरणीय (बोध) जगा दे (विप्रस्य) मेधावी की (अर्चतः) पूजा करनेवाले (मनीषाम्) बुद्धि को (कृष्व) कर (दुवांसि) नमस्कारों को (अन्तमा) अपना समीवर्त्ती (सचा) सत्कर्म समवाय के साथ (इमा) इन ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू आनन्द का अत्यन्त पान करनेवाले आदरणीय व्यक्ति की पुकार को सुन । पूजा करनेवाले मेधावी की बुद्धि को जागृत कर । तू हमारी इन सेवाओं को सत्कर्म समुदाय के साथ समीपवर्त्ती कर ॥१॥

१७९९—वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

९ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥२॥

पदार्थ—(न) नहीं (ते) तेरी (गिरः) वेदवाणियों को (अपिमृष्ये) परित्याग करता हूँ (तुरस्य) पाप नाश करनेवाले (न) नहीं (सुष्टुतिम्) मनोहर स्तुति को (असुर्यस्य) बल को (विद्वान्) जानता हुआ (सदा) सदा (ते) तेरा (नाम) नाम (स्वयशः) हे स्वयं यशस्वी (विवक्मि) बोलता हूँ ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरे बल को जानता हुआ मैं पापनाशक तुझ प्रभु की वेदवाणियों तथा स्तुतियों का परित्याग नहीं करता । हे स्वयं महान् यशस्विन् ! मैं सदा तेरा नाम लेता हूँ ॥२॥

१८००—वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ॥३॥

पदार्थ—(भूरि) बहुत (हि) ही (ते) तेरे लिए (सवना) यज्ञ (मानुषेषु) मनुष्यों में (भूरि) बहुत (मनीषी) बुद्धिमान् (हवते) स्तुति करता है (त्वामित्) तेरी ही (मा) नहीं (आरे) समीप (अस्मत्) हमसे या हमारे (मघवन्) हे सकल सम्पदाओं के स्वामिन् (ज्योक्) चिरकाल तक (कः) कर ॥३॥

भावार्थ—हे सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! मनुष्य आपके नियम के अनुसार बहुत यज्ञ करते हैं । बुद्धिमान् पुरुष तेरी ही स्तुति करते हैं । हे प्रभो ! तू सदा हमारे समीप रह, हमें अपने से दूर मत कर ॥३॥

卐 तृतीयः खण्डः समाप्तः 卐

१८०१—सुदासः । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

१ २ ३ १ २र १ १ २
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
१ १२ ३ १ २
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्-
३ १ २ ३ २उ ३ १ २
यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

पदार्थ—(प्र) उत्कृष्ट (सु) उत्तम (अस्मै) इसके (पुरोरथम्) आदित्य के आगे रहनेवाले (इन्द्राय) परमेश्वर के (शूषम्) बल की (अर्चत्) पूजा करो (अभीके) समीप में (चित्) ही (उ) और (लोककृत्) संसार का रचयिता (सङ्गे) साथ में (समत्सु) संग्रामों में (वृत्रहा) विघ्ननिवारक (अस्माकम्) हमारे (बोधि) जानता है (चोदिता) प्रेरणा देनेवाला (नभन्ताम्) नष्ट हों (अन्यकेषाम्) शत्रुओं के (ज्याकाः) प्रत्यंचाएँ [धनुष की डोर] (अधिधन्वसु) धनुष पर ॥१॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग आदित्य तथा उसकी किरणों के भी आगे रहनेवाले परमेश्वर के बल की पूजा करो । विघ्नों का निवारक तथा संसार का रचयिता वह ही हमारे सभी, साथ में तथा संग्रामों में भी विद्यमान है । वह हमारे सभी भावों को जानता है और प्रेरणा देनेवाला है । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा [डोरी] खण्डित हो जावे और किसी को हानि न पहुंचावे ॥१॥

१८०२—सुदासः । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तन्त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

पदार्थ—(त्वम्) तू (सिन्धून्) समुद्र तथा नदियों का (अवासृजः) निर्माण करता है (अधराचः) नीचे पृथिवी तल पर रहनेवाले (अहन्) छिन्न-भिन्न करके बरसाता है (अहिम्) मेघ को (अशत्रुः) शत्रुरहित (इन्द्र) हे परमेश्वर (जज्ञिषे) उत्पन्न करता है (विश्वम्) समस्त (वार्यम्) जल से जीवनवाले उत्तम पदार्थ का (पुष्यसि) पुष्ट करता है (तम्) उस (त्वा) तेरी (परिष्वजामहे) उपासना करते हैं (नभन्ताम्) खण्डित हों (अन्यकेषाम्) काम आदि शत्रुओं की (ज्याकाः) प्रत्यंचाएं (अधिधन्वसु) धनुष् पर ही ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू शत्रु-रहित है । तू मेघ को छिन्न-भिन्न करके पृथिवी तल पर विद्यमान समुद्र और नदियों का निर्माण करता है । तू जल से जीवनवाली समस्त वस्तुओं को उत्पन्न और पुष्ट करता है । हम तुझ परमेश्वर की उपासना करते हैं । हे भगवन् ! काम आदि शत्रुओं की प्रत्यंचा धनुष् पर ही नष्ट हो, अर्थात् उनकी शक्ति क्षीण हो जावे ॥२॥

१८०३—सुदासः । इन्द्रः । महापंक्तिः ।

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

पदार्थ—(वि) विशेष (सु) उत्तम (विश्वा) समस्त (अरातयः) शत्रु (अर्यः) विघ्नकारी (नशन्त) नष्ट हों (नः) हमारी (धियः) बुद्धि (अस्ता) फेंकने वाला (असि) है (शत्रवे) शत्रु के लिए (वधम्) शस्त्र को (यः) जो (नः) हमें (जिघांसति) विना अपराध मारना चाहता है (या) जो (ते) तेरी (रातिः) कृपा (ददिः) देनेवाली है (वसु) धन की (नभन्ताम्) नष्ट हों (अन्यकेषाम्) तुच्छ विचारवालों की (ज्याकाः) प्रत्यंचाएँ (अधिधन्वसु) मनुष्य पर ही ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारी बुद्धि के विघातक काम, क्रोधादि सारे शत्रु नष्ट हो जायें । जो हमें विघ्न पहुंचाना चाहता है उसको दण्ड देता है । तेरी कृपा हमें धन देनेवाली है । हे परमेश्वर नीच विचार वालों की धनुष की डोरी धनुष पर ही नष्ट होवे जिससे कि किसी को हानि न हो ॥३॥

१८०४—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २
रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥१॥

पदार्थ—(रेवान्) धनवान् (इत्) ही (रेवतः) धनवान् का (स्तोता) प्रशंसा करनेवाला (स्यात्) होता है (त्वावतः) तेरे समान (मघोनः) धनी (प्र) उत्कृष्ट (इत्) ही (उ) वितर्क (हरिवः) हे अज्ञान के हरण करनेवाली शक्तियों के स्वामी (सुतस्य) ऐश्वर्ययुक्त ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननिवारक शक्तियों के स्वामी परमेश्वर ! जब धनवान् की प्रशंसा करनेवाला धनिक हो जाता है तो तुझ जैसे ऐश्वर्यशाली महान् धनी की स्तुति करनेवाले की तो कथा ही क्या ! ॥१॥

१८०५—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥

पदार्थ—(उक्थम्) स्तोत्र को (च) और (न) सम्प्रति (शस्यमानम्) पढ़े गये (न) संप्रति (अगोः) अस्पष्टवाणीवाले के अथवा वेद को न जाननेवाले के (रयिः) धनदाता (आचिकेत) जानता है (न) सम्प्रति (गायत्रम्) गायत्र साम को (गीयमानम्) गाये गए ॥२॥

भावार्थ—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अस्पष्ट वाणीवाले अथवा वेदानभिज्ञ के गाये गये स्तोत्र तथा गाये गए साम को भी वर्तमान में ही सुनता है ॥२॥

१८०६—मेधातिथिः प्रियमेधश्च । इन्द्रः । गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥

पदार्थ—(मा) मत (नः) हमें (इन्द्र) हे परमेश्वर (पीयत्नवे) हिंसक के लिए (मा) मत (शर्धते) मखौल उडाने वा अपमान करने वाले के लिए (परादाः) परित्याग कर [डाल] (शिक्षा) शिक्षा दे (शचीवः) हे वेदोपदेष्टा, विश्वकर्मन् तथा सर्वज्ञ (शचीभिः) अपनी वेदवाणी, ज्ञान तथा कर्म से ॥३॥

भावार्थ—हे वेदोपदेष्टा, विश्वकर्मन् तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! तू हिंसक तथा अपमान करनेवाले के लिए हमें मत छोड़, अपितु अपने ज्ञान, वेद-वाणी तथा कर्मों से हमें शिक्षा दे ॥३॥

१८०७—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥

पदार्थ—(आ) भलीभाँति (इन्द्र) हे जीव (याहि) प्राप्त हो (हरिभिः) अज्ञान का हरण करनेवाले ज्ञानों और गुणों द्वारा (उप) समीप (कण्वस्य) मेधावी की (सुष्टुतिम्) प्रशंसा को (दिवः) द्युलोक के (अमुष्य) इस (शासतः) शासन करनेवाले (दिवम्) दिव्य मोक्षधाम को (यय) जा (दिवावसो) हे दिव्य गुणों के धाम ॥१॥

भावार्थ—हे उत्तम गुणोंवाले जीव ! तू अज्ञाननिवारक ज्ञान गुणों से मेधावी की पदवी या प्रशंसा को प्राप्त हो और द्युलोक का शासन करनेवाले परमेश्वर के दिव्य मोक्षधाम को जा ॥१॥

१८०८—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

२ ३ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अत्रा विनेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥

पदार्थ—(अत्र) इस संसार में (वि) विशेष (नेमिः) चक्र (एषां) इन प्राण और इन्द्रियों का (उराम्) भेड़ को (न) समान (धूनुते) कंपायमान करता है (वृकः) भेड़िया के (दिवः) परमेश्वर के (अमुष्य) इस (शासतः) शासनकर्त्ता (दिवम्) आनन्द को (यय) प्राप्त कर (दिवावसो) उत्तम आनन्द की कामना करनेवाले ॥२॥

भावार्थ—हे सुख की कामना करनेवाले जीव ! इन प्राण तथा इन्द्रियों का चक्र तुझे इस संसार में भेड़ को भेड़िए के समान कम्पायमान करता है, अतः तू शासनकर्त्ता परमेश्वर के आनन्द को प्राप्त कर ॥२॥

१८०९—नीपातिथिः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ ३ १ १ २ ३ २ ३ १ २र
सा त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥

पदार्थ—(आ) भली भांति (त्वा) तुझे (ग्रावा) विद्वान् (वदन्) उत्तम बातों को बताता हुआ (इह) इस संसार में (सोमी) ऐश्वर्यवान् (घोषेण) वेदवाणी के द्वारा (वक्षतु) उपदेश करे (दिवः) परमेश्वर के (अमुष्य) इस (शासतः) शासनकर्त्ता (दिवम्) मोक्षधाम को (यय) प्राप्त हो (दिवावसो) हे सुखाभिलाषी ॥३॥

भावार्थ—हे सुखाभिलाषी जीव ! ऐश्वर्यवान् विद्वान् तुझे उत्तम बातें बताता हुआ इस संसार में वेदवाणी द्वारा उपदेश करे । तू शासनकर्त्ता परमेश्वर के उत्तम मोक्षधाम को प्राप्त हो ॥३॥

१८१०—जमदग्निः । सोमः । द्विपदा गायत्री ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१॥

पदार्थ—(पवस्व) पवित्र कर (सोम) हे परमेश्वर (मन्दयन्) आनन्दित करता हुआ (इन्द्राय) जीव को (मधुमत्तमः) अत्यन्त आनन्द युक्त ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! आनन्द का भण्डार तू जीव को आनन्दित करता हुआ पवित्र कर ॥१॥

१८११—जमदग्निः । सोमः । द्विपदा गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२॥

पदार्थ—(ते) वे (सुतासः) परमेश्वर के पुत्ररूप अथवा संसार में उत्पन्न (विपश्चितः) मेधावी पुरुष (शुक्राः) शुद्धस्वरूप (वायुम्) वायुविद्या को (असृक्षत) प्रकट करते है ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तुम्हारी कृपा से संसार में उत्पन्न, और शुद्ध पवित्र विद्वान् जन वायुविद्या को प्रकट करते हैं ॥२॥

१८१२—जमदग्निः । सोमः । गायत्री ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥३॥

पदार्थ—(असृग्रन्) उत्पन्न किये जाते हैं (देववीतये) परमेश्वर के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए (वाजयन्तः) संग्राम के साधन (रथाः) रथ के (इव) समान ॥३॥

भावार्थ—संग्राम के साधन रथ के समान विद्वान् जन परमेश्वर के ज्ञान की प्राप्ति के लिए संसार में उत्पन्न किये जाते हैं ॥३॥

卐 चतुर्थः खण्डः समाप्तः 卐

१८१३—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निम्) परमेश्वर को (होतारम्) कर्मफलदाता (मन्ये) मानता हूँ (दास्वन्तम्) महान् दानी (वसोः) धन के (सूनुम्) उत्पादक (सहसः) बल के (जातवेदसम्) उत्पन्न सृष्टिपदार्थों के ज्ञाता (विप्रम्) मेधावी के (न) समान (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता तथा उनमें व्यापक या वेद को उत्पन्न करनेवाले (यः) जो (ऊर्ध्वया) सर्वोपरि विद्यमान (स्वध्वरः) संसार-रूप यज्ञ का कर्त्ता (देवः) देव (देवाच्या) समस्त देवों = दिव्य पदार्थों को प्राप्त हुई (कृपा) सामर्थ्य से (घृतस्य) तेज के (विभ्राष्टिम्) प्रकाशक (अनु) [अनुमानतः] पश्चात् (शुक्रशोचिषः) शुद्ध तेजवाले (आजुह्वानस्य) प्रशंसनीय (सर्पिषः) व्यापनशील ॥१॥

भावार्थ—संसार रूप यज्ञ का कर्त्ता देव जो सर्वोपरि तथा समस्त देवों के ऊपर सामर्थ्य के साथ विद्यमान तथा पवित्र तेजवाले, प्रशंसनीय तथा व्यापनशील तेज का प्रकाश है, मैं उस कर्मफलदाता महान् दानी, बल और सम्पदाओं के उत्पन्न करनेवाले, सृष्टिगत पदार्थों के ज्ञाता विद्वान् के समान सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा वेद-प्रकाशक परमेश्वर का अनुमान करता हूँ ॥१॥

१८१४—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
१ २ ३ १ २र ३ २
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

पदार्थ—(यजिष्ठम्) अत्यन्त पूज्य (त्वा) तुझे (यजमानाः) उपासना करनेवाले (हुवेम) पुकारते हैं (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (अङ्गिरसाम्) सृष्टिविद्या के ज्ञाताओं में (विप्र) सर्वज्ञ (मन्मभिः) मननशील (विप्रेभिः) ज्ञानियों द्वारा (शुक्र) हे शुद्धस्वरूप (मन्मभिः) मन्त्रों से (परिज्मानम्) सर्वव्यापक (इव) समान (द्याम्) आकाश के समान (होतारम्) यथायोग्य फलदाता (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को (शोचिष्केशम्) प्रकाशस्वरूप (वृषणम्) सकल कामनाओं को सफल करनेवाले (यम्) जिसमें (इमाः) यह (विशः) प्रजाएँ (प्रावन्तु) रक्षा को प्राप्त करती हैं (जूतये) अभिमत फल प्राप्ति के लिए (विशः) आश्रय पानेवाली ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वज्ञ और शुद्धस्वरूप परमेश्वर ! संसार में आश्रय देनेवाली ये सारी प्रजाएँ अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए आकाश के समान व्यापक मनुष्यों को यथायोग्य कर्मफल देनेवाले, सारी कामनाओं के पूर्त्तिकर्ता और तेजस्वरूप तुझ देव के आश्रय में रक्षा पाती हैं । हम उपासक लोग मननशील विद्वानों द्वारा मन्त्रों से स्तुति किये जाने वाले सृष्टिविद्या के जाननेवालों में श्रेष्ठ तुझ को ही पुकारते हैं ॥२॥

१८१५—परुच्छेपः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वीडुचिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥

पदार्थ—(सः) वह (हि) ही (पुरुचित्) बहुत ही (ओजसा) बल से (विरुक्मता) तेजस्वी (दीद्यानः) प्रकाशमान (भवति) होता है (द्रुहन्तरः) द्रोहियों को काटनेवाले (परशुः) फावड़े के (न) समान (द्रुहन्तरः) प्रलयकर्त्ता (वीडु) दृढ (चित्) भी (यस्य) जिसके (समृतौ) संग से (श्रुवत्) सुनाई देता है (वना इव) जल के समान (यत्) जो (स्थिरम्) स्थिर (निष्षहमाणः) अन्य विरोधी शक्तियों का अभिभव करता हुआ (यमते) व्यवस्था करता है (न) नहीं (अयते) चलायमान होता है (धन्वासहा) धनुषधारी के (न) समान (अयते) स्थिर रहता है ॥३॥

भावार्थ—वह परमेश्वर ही अपने तेजस्वी बल से अत्यन्त प्रकाशमान होता हुआ द्रोहियों को काटनेवाले फावड़े [कुल्हाड़े] के समान संसार का प्रलयकारी होता है । जिसकी संगति से बहुत दिनों तक स्थिर रहनेवाले और दृढ़ द्रोह भी पानी के समान बह जाते हैं । समस्त विरोधी शक्तियों को दबाता हुआ वह सबका नियंत्रण करता है । वह कभी चलायमान नहीं होता, किन्तु धनुर्धर के समान दृढ़तापूर्वक सर्वत्र विराजमान है ॥३॥

१८१६—अग्निः । अग्निः । विष्टारपंक्तिः ।

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं३ दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे परमेश्वर (**तव**) तेरा (**श्रवः**) यशदायक (**वयः**) अन्न (**महि**) अत्यन्त (**भ्राजन्ते**) शोभित हो रहा है (**अर्चयः**) दीप्तियां (**विभावसो**) हे प्रकाशस्वरूप (**बृहद्भानो**) हे अत्यन्त तेजस्वी (**शवसा**) बल से (**वाजम्**) अन्न को (**उक्थ्यम्**) उत्तम (**दधासि**) धारण करता है (**दाशुषे**) यजमान को (**कवे**) हे वेदों के प्रकाशक ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तेरा प्रशस्त अन्न महान् है । हे प्रकाशस्वरूप ! तेरी दीप्तियां अत्यन्त शोभा पाती हैं । हे अत्यन्त तेजस्वी तथा वेदों के प्रकाशक ! तू अपनी शक्ति से यजमान को उत्तम अन्न प्रदान करता है ॥१॥

१८१७—*अग्निः । अग्निः । सतोबृहती ।*

१ १२ ३१२३१२ ३१२ ३१२

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।

१२३१२१२३१२ १२३१२ ३२

पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥

पदार्थ—(**पावकवर्चाः**) पवित्रकारक तेजवाला (**शुक्रवर्चाः**) शुद्ध तेजवाला (**अनूनवर्चाः**) पूर्ण तेजवाला (**उदियर्षि**) उदीयमान हो रहा है (**भानुना**) अपनी दीप्तियों से (**पुत्रः**) पुत्र के समान (**मातरा**) माता को (**विचरन्**) सब जगह विराजमान रहता हुआ (**उपावसि**) सबकी रक्षा करता है (**पृणक्षि**) संयुक्त करता है (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**उभे**) दोनों ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! पवित्रकारी, शुद्ध और सर्वत्र परिपूर्ण तेजवाला तू अपने प्रकाश से प्रकाशित होता है । माता को पुत्र के समान तू सर्वत्र विराजमान होकर सबकी रक्षा करता है । द्यु और पृथिवी लोक को तू ही जोड़ता है ॥२॥

१८१८—*अग्निः । अग्निः । सतोबृहती ।*

१ २ ३ २३१२ ३१२३२

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।

२उ ३ १२३१२ ३१२ ३१२

त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥

पदार्थ—(**ऊर्जःनपात्**) हे बल के रक्षक (**जातवेदः**) हे सर्वज्ञ (**सुशस्तिभिः**) मनोहर स्तुतियों से (**मन्दस्व**) प्रसन्न हो (**धीतिभिः**) धारणा ध्यानादि से (**हितः**) कल्याणकारक (**त्वे**) तुझ में (**इषः**) विज्ञानों को (**सम् दधुः**) धारण करते हैं (**भूरिवर्पसः**) अनेक रूप (**चित्रोतयः**) अद्भुत रक्षा के साधनवाले (**वामजाताः**) उत्तम जन्म पाये हुए ॥३॥

भावार्थ—हे बल के रक्षक तथा सर्वज्ञ परमेश्वर ! कल्याणकारी तू हमारी मनोहर स्तुति तथा ध्यान, धारणा आदि द्वारा हम पर प्रसन्न हो । अनेकों उत्तम रक्षा के साधन तथा उत्तम जन्मवाले विद्वान् जन तुझ में ही विज्ञानों को धारण करते हैं ॥३॥

१८१९—*अग्निः । अग्निः । सतोबृहती ।*

३ १ २ ३१२३१ २र

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।

१२३१२३१२३१ २ ३१२ ३१ २र

स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥

पदार्थ – (**इरज्यन्**) स्वामी होता हुआ (**अग्ने**) हे परमेश्वर (**प्रथयस्व**) विस्तार कर (**जन्तुभिः**) मनुष्यादि सहित (**अस्मे**) हमारे (**रायः**) धन का (**अमर्त्य**) हे अजर अमर (**सः**) वह (**दर्शतस्य**) दर्शनीय (**वपुषः**) रूपों को (**विराजसि**) प्रकाशित करता है (**पृणक्षि**) पालन करता है (**दर्शतम्**) दर्शनीय (**क्रतुम्**) संसाररूप यज्ञ को ॥४॥

भावार्थ—हे अजर अमर परमेश्वर ! तू सबका स्वामी होता हुआ मनुष्यादि के साथ हमारे धन का विस्तार कर । तू सृष्टिकाल में दर्शनीय रूपों को प्रकाशित करता है तथा दर्शनीय संसार का पालन करता है ॥४॥

१८२०—*अग्निः । अग्निः । उपरिष्टाज्ज्योतिः ।*

३ १२ ३२३१२ ३ १२३१२ ३२

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।

३ २ ३१२ ३१२३२र ३१२ ३२ ३२

रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥

पदार्थ—(**इष्कर्त्तारम्**) ज्ञान करानेवाले (**अध्वरस्य**) कल्याणकारी यज्ञ के (**प्रचेतसम्**) महान् ज्ञानी (**क्षयन्तम्**) स्वामी होता हुआ (**राधसः**) धन का (**महः**) महान् (**रातिम्**) दाता (**वामस्य**) चाहने योग्य वस्तु के (**सुभगाम्**) सौभाग्ययुक्त (**महीम्**) श्रेष्ठ (**इषम्**) ज्ञान को (**दधासि**) धारण करता है (**सानसिम्**) विभाग करने योग्य या भोगने योग्य (**रयिम्**) धन को ॥५॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! कल्याणकारी यज्ञ का ज्ञान करानेवाले महान् ज्ञानी, श्रेष्ठ धनों के स्वामी तथा उत्तम वस्तु के दाता तुझ देव की हम स्तुति करते हैं । तू हमें सौभाग्यशाली श्रेष्ठ ज्ञान और भोग करने योग्य धन को देता है ॥५॥

१८२१—*अग्निः । अग्निः । विराट् त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३ २ ३१२ ३२ ३ १२ ३१ २र

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।

१ २ ३१२ ३२उ ३१२ ३२

श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥

पदार्थ—(**ऋतावानम्**) सत्य नियम के आश्रय (**महिषम्**) महान् (**विश्वदर्शतम्**) सब के साक्षी (**अग्निम्**) परमेश्वर को (**सुम्नाय**) सुख के लिए (**दधिरे**) धारण करते हैं (**पुरः**) आगे (**जनाः**) मनुष्य लोग (**श्रुत्कर्णम्**) कानों में श्रवण शक्ति देने वाले (**सप्रथस्तमम्**) अत्यन्त प्रसिद्ध (**त्वा**) तुझे (**गिरा**) स्तुति से (**दैव्यम्**) दिव्य शक्तिवाले (**मानुषा**) मानुषी (**युगा**) जोड़े ॥६॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सत्य नियम के आधार, महान् और सबके साक्षी परमेश्वर को सुख की प्राप्ति के लिए आगे धारण करते हैं । हे परमेश्वर ! मनुष्य जोड़े कर्णों में श्रवण शक्ति देनेवाले, अत्यन्त प्रसिद्ध तथा दिव्य शक्तिवाले तुझ देव को स्तुति से स्मरण करते हैं ॥६॥

卐 पंचमः खण्डः समाप्तः 卐

१८२२—*सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१ २ २र३२३१२ ३ १२ ३ १२

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।

२ ३ २ ३ १ २र

यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥

पदार्थ—(**प्र**) उत्तम (**सः**) वह (**अग्ने**) हे विद्वन् (**तव**) तेरी (**ऊतिभिः**) रक्षाओं द्वारा (**सुवीराभिः**) वीर देनेवाली (**तरति**) तर जाता है (**वाजकर्मभिः**) ज्ञान और कर्मवाली (**यस्य**) जिसके (**त्वं**) तू (**सख्यम्**) मित्रभाव को (**आविथ**) प्राप्त हो जाता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! तू जिसके मित्रभाव को प्राप्त हो जाता है वह पुत्रादि सहित ज्ञान और कर्म से युक्त तेरी रचनाओं के द्वारा तर जाता है ॥१॥

१८२३—*सोभरिः । अग्निः । ककुप् ।*

१२३ १ २र ३२ ३ २३ १ २ ३ १२

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।

२३१२३१२ ३२३१ २र

त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२॥

पदार्थ—(**तव**) तेरा [उत्पन्न किया हुआ] (**द्रप्सः**) आदित्य (**नीलवान्**) नील आदि रंगों का कारण (**वाशः**) कमनीय (**ऋत्वियः**) ऋतुओं का उत्पादक (**इन्धानः**) प्रदीप्त होता हुआ (**सिष्णो**) हे सुख की वर्षा करनेवाले (**आददे**) समस्त रसादिकों को ग्रहण करता है । (**त्वम्**) तू (**महीनाम्**) महान् (**उषसाम्**) उषा कालों का (**प्रियः**) प्रिय देव (**असि**) है (**क्षपः**) रात्रि के (**वस्तुषु**) पदार्थों में (**राजसि**) राज्य करता है ॥२॥

भावार्थ—हे सुख की वर्षा करनेवाले परमेश्वर ! नील आदि वर्णों का कारणभूत, कमनीय ऋतुओं का उत्पादक, तथा प्रकाशमान तुम्हारा उत्पन्न किया हुआ सूर्य समस्त रसों को ग्रहण करता है । तू प्रातः वेलाओं का उपासनीय देव है तथा रात्रि की समस्त वस्तुओं का स्वामी है ॥२॥

१८२४—*अरुणः । अग्निः । जगती ।*

१ २र ३१२३२३१ २र ३ १ २ ३१२

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।

१ २र ३२ ३१२ ३२३ १२ १२ ३ १२

तामित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥१॥

पदार्थ—(**तम्**) उसको (**ओषधीः**) ओषधियाँ (**दधिरे**) धारण करती हैं (**गर्भम्**) गर्भ को (**ऋत्वियम्**) प्रत्येक ऋतुओं के अनुसार विद्यमान (**तम्**) उसको (**आपः**) जल (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्त**) प्रकट करते हैं (**मातरः**) रक्षा के साधन (**तम् इत्**) उसे ही (**समानम्**) समान रूप से (**वनिन्**) वनस्पति (**च**) और (**वीरुधः**) लताएँ (**अन्तर्वतीः**) गर्भवती (**च**) भी (**सुवते**) उत्पन्न करती है (**च**) और (**विश्वहा**) सर्व रोग दूर करनेवाली ॥१॥

भावार्थ—ओषधियाँ ऋतु के अनुसार अग्नि को गर्भरूप से धारण करती हैं । सबकी रक्षा के साधन जल उसे प्रकट करते हैं । वनस्पति और रोग-निवारक गर्भवती लतायें भी उसे उत्पन्न करती हैं ॥१॥

१८२५—*अग्निः प्रजापतिर्वा । इन्द्रः । गायत्री ।*

३ १ २र ३ २ ३ १ २र १२ ३ १२

अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥१॥

पदार्थ—(**अग्निः**) परमेश्वर (**इन्द्राय**) जीव को (**पवते**) व्यापन कर रहा है (**दिवि**) तेजस्वी पदार्थों अथवा द्युलोक में (**शुक्रः**) शुद्धस्वरूप (**विराजति**)

विराजमान है (महिषी) भैंस के (इव) समान (विजायते) विविध भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—शुद्धस्वरूप परमेश्वर जीव में व्यापक हो रहा है। वह भी द्युलोक आदि में भी विराजमान है। जिस प्रकार भैंस दुग्ध आदि पदार्थों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार परमेश्वर जीव के लिए विविध भोगों को उत्पन्न करता है ॥१॥

१८२६—अवत्सारः। विश्वेदेवाः। विराट् त्रिष्टुप्।

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
१ ३२३२३१ २र ३ २३१२ ३ १ २
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१॥

पदार्थ—(यः) जो (जागार) जागता है अर्थात् सत्-असत् का विवेक रखता है (तम्) उसको (ऋचः) ऋचाएं (कामयन्ते) चाहती=प्राप्त होती हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम् उ) उसी को (सामानि) साम (यन्ति) प्राप्त होते हैं (यः) जो (जागार) जागता है (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) परमेश्वर (आह) कहता है कि (तव) तेरी (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (सख्ये) मित्रता में (न्योकाः) नियत आश्रय ॥१॥

भावार्थ—जो सद्-असद् का ज्ञान रखता है उसे ऋचायें प्राप्त होती हैं। उसी को साम भी प्राप्त होते हैं। उसी को सर्वाधार परमेश्वर भी कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ ॥१॥

१८२७—अवत्सारः। विश्वेदेवाः। विराट् त्रिष्टुप्।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३२३ १ २
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
३ १ २ ३२३१ २र ३ २३१२ ३ १ २
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥२॥

पदार्थ—(अग्निः) विद्वान् (जागार) सद्-असद् का विवेक रखता है (तम्) उसको ऋचायें प्राप्त होती हैं (अग्निः) विद्वान् (जागार) जागता है (तम् उ) उसी को (सामानि) साम (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अग्निः) विद्वान् (जागार) प्रबुद्ध है (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) परमेश्वर (आह) कहता है कि (तव) तेरी (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (सख्ये) मित्रता में (न्योकाः) सर्वाश्रय ॥२॥

भावार्थ—विद्वान् सद्-असद् का विवेक रखता है, अतः उसको ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। उसी को साम भी प्राप्त होते हैं तथा उसी को सर्वाधार परमेश्वर कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ ॥२॥

१८२८—मृगः। अग्निः। गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः।
३ १ २र ३ १ २
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥१॥

पदार्थ—(नमः) नमस्कार (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (पूर्वसद्भ्यः) पूर्ववर्त्ती (नमः) नमस्कार (साकंनिषेभ्यः) साथ बैठे हुओं को (युञ्जे) प्रयोग करता हूँ (वाचम्) वाणी का (शतपदीम्) असंख्य पदोंवाली ॥१॥

भावार्थ—पूर्व से स्थित मित्रों तथा साथ बैठे हुए लोगों को मेरा नमस्कार हो। मैं परमेश्वर की स्तुति के लिए सैकड़ों पदोंवाली वेदवाणी का प्रयोग करता हूँ ॥१॥

१८२९—मृगः। अग्निः। गायत्री।

३ १ २र १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि। गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥२॥

पदार्थ—(युञ्जे) प्रयोग करता हूँ (वाचम्) वाणी का (शतपदीम्) सैकड़ों पदोंवाली (गाये) गान करता हूँ (सहस्रवर्तनि) सहस्र प्रकार से गान किये जानेवाले (गायत्रं) गायत्र साम (त्रैष्टुभं) त्रैष्टुभ साम (जगत्) जागत साम ॥२॥

भावार्थ—मैं असंख्य पदोंवाली वाणी का परमेश्वर की स्तुति के लिए प्रयोग करता हूँ। विविध प्रकार से गाये जानेवाले गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत साम का गान करता हूँ ॥२॥

१८३०—मृगः। अग्निः। गायत्री।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता।
३ १ २र ३ २
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥३॥

पदार्थ—(गायत्रम्) गायत्र साम (त्रैष्टुभम्) त्रैष्टुभ साम (जगत्) जागत साम (विश्वा) अनेक (रूपाणि) प्रकारों को (संभृता) धारण किये हुए हैं (देवाः) विद्वान् लोग (ओकांसि) आश्रय (चक्रिरे) लेते हैं ॥३॥

भावार्थ—गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत साम नाना प्रकारों को धारण करनेवाले हैं उन्हीं प्रकारों का विद्वान् लोग आश्रय लेते हैं ॥३॥

१८३१—वत्सप्रीः। अग्निः। गायत्री।

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रोज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥१॥

पदार्थ—(अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) परम ज्योति है (ज्योतिः) प्रकाश वाला (अग्निः) अग्निः (इन्द्रः) जीव (ज्योतिः) प्रकाशवाला है (ज्योतिः) ज्योति है (इन्द्रः) विद्युत् (सूर्यः) सूर्य (ज्योतिः) ज्योतिवाला हैं (ज्योतिः) ज्योतिवाली (सूर्यः) किरणें हैं ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर, जीव, अग्नि, विद्युत्, सूर्य तथा किरणें ज्योतियुक्त [तेजस्वी] पदार्थ हैं ॥१॥

१८३२—वत्सप्रीः। अग्निः। गायत्री।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नः पाह्यंहसः ॥२॥

पदार्थ—(पुनः) फिर (ऊर्जा) बल से (निवर्तस्व) पूर्ण कर (पुनः) फिर (अग्ने) हे परमेश्वर (इषा) अन्न और ज्ञान से (आयुषा) जीवन से (पुनः) फिर (नः) हमें (पाहि) बचा (अंहसः) पाप से ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू हमें बार बार बल, ज्ञान, अन्न और जीवन से पूर्ण कर तथा पाप से बचा ॥२॥

१८३३—वत्सप्रीः। अग्निः। गायत्री।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥३॥

पदार्थ—(सह) साथ (रय्या) धन के (निवर्तस्व) युक्त कर (अग्ने) हे परमेश्वर (पिन्वस्व) पूर्णकर (धारया) वेदवाणी से (विश्वप्स्न्या) व्यापक (विश्वतस्परि) संसार में ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू इस संसार में हमें संपदा से युक्त कर तथा व्यापक वेदवाणी के ज्ञान से परिपूर्ण कर ॥३॥

卐 षष्ठः खण्डः समाप्तः 卐

१८३४—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। गायत्री।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१॥

पदार्थ—(यत्) जब (इन्द्र) हे विद्वन् (अहं) मैं (यथा) जैसे (त्वम्) तू (ईशीय) स्वामी होता है (वस्वः) विद्याधन का (एकः) एक (इत्) ही (स्तोता) प्रशंसा करनेवाला (मे) मेरी (गोसखा) वाणी का मित्र [विद्वान्] (स्यात्) हो जाता है ॥१॥

भावार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! तू जिस प्रकार विद्याधन का एकमात्र स्वामी है, उसी प्रकार यदि मैं भी हो जाऊं तो मेरी प्रशंसा करनेवाला विद्वान् हो सकता है फिर आप का तो कहना ही क्या ॥१॥

१८३५—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। गायत्री।

१ २ ३ १२३१२ ३१२ २३१ २र३ २
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥२॥

पदार्थ—(शिक्षेयम्) शिक्षा दूं (अस्मै) इस (दित्सेयम्) देने की इच्छा करूँ (शचीपते) हे वेदवाणी के स्वामी (मनीषिणे) मननशील पुरुष को (यत्) जबकि (अहम्) मैं (गोपतिः) वाणी का स्वामी विद्वान् (स्याम्) हो जाऊँ ॥२॥

भावार्थ—हे वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर ! तेरी कृपा से यदि मैं विद्या का स्वामी होऊँ तो मननशील पुरुष को विद्यादान की इच्छा करूँ और शिक्षित बनाऊँ ॥२॥

१८३६—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। गायत्री।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥

पदार्थ—(धेनुः) वेदवाणी (ते) तेरी (इन्द्र) हे परमेश्वर (सूनृता) सत्यरूप (यजमानाय) यजमान के लिए (सुन्वते) यज्ञ करनेवाले (गाम्) विद्या (अश्वम्) व्यापक और शीघ्रता से होनेवाले बोध को (पिप्युषी) वृद्धि करनेवाली (दुहे) परिपूर्ण करती है ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! उन्नति देनेवाली तेरी सत्य वेदवाणी यज्ञ करनेवाले यजमान के लिए विद्या तथा शीघ्र होनेवाले व्यापक ज्ञान को परिपूर्ण करती है ॥३॥

१८३७—त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा। आपः। गायत्री।

२ ३ १ ३ २र २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१॥

पदार्थ—(आपः) परमेश्वर (हि) निश्चय (स्थाः) है (मयोभुवः) सुखदाता (ताः) वह (नः) हमें (ऊर्जे) बल को (दधातन) धारण करता है (महे) महान् (रणाय) रमणीय (चक्षसे) ज्ञान को ॥१॥

भावार्थ—परमेश्वर अवश्य ही सुखदाता है। वह हमें बल और महान् उत्तम ज्ञान देता है ॥१॥

१८३८—त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा। आपः। गायत्री।

२ ३१२३२३१२ ३१२ ३१२ ३१२

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारक (रसः) आनन्द रस है (तस्य) उसका (भाजयत) भागी बना (इह) इस संसार में (नः) हमें (उशतीः) पुत्र का कल्याण चाहनेवाली (इव) समान (मातरः) माताओं के ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो तुम्हारा अत्यन्त कल्याणकारी आनन्दरस है उसका, पुत्र का कल्याण चाहनेवाली माताओं के समान, हमें भागी बना ॥२॥

१८३९—त्रिशिराः सिन्धुद्वीपो वा। आपः। गायत्री।

२ ३१२ ३२१ १२३ १२

तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

१२ ३१२

आपो जनयथा च नः ॥३॥

पदार्थ—(तस्मै) उसको (अरम्) पर्याप्त (गमाम) प्राप्त करें (वः) तुम्हारे (यस्य) जिसके (क्षयाय) ऐश्वर्य के लिए (जिन्वथ) प्रेरणा करता है (आपः) हे परमेश्वर (जनयथ) उत्पन्न करता है (च) और (नः) हमें ॥३॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू अपने जिस ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हमें प्रेरणा देता और उत्पन्न करता है उसकी प्राप्ति के लिए हम समर्थ हों ॥३॥

१८४०—उल्वः। वायुः। गायत्री।

२३१२ ३२३१२३१२ ३२ २३१२

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१॥

पदार्थ—(वातः) व्यापक परमेश्वर (आवातु) प्राप्त करावे (भेषजम्) औषधि को (शम्भु) कल्याणकारी (मयोभु) सुखदायक (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिए (प्र) उत्तम (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (तारिषत्) तार दे ॥१॥

भावार्थ—व्यापक परमेश्वर हमारे हृदय के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी और सुखदायी औषधि प्रदान करे। वह हमें दीर्घायु करे ॥१॥

१८४१—उल्वः। वायुः। गायत्री।

३१२ ३१२ ३२उ ३२३१२ १२ ३१२

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा। स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

पदार्थ—(उत) और (वात) हे सर्वव्यापक (पिता असि) पिता है (नः) हमारा (उत) और (भ्राता) भाई (उत) और (नः) हमारा (सखा) मित्र है (सः) वह (नः) हमें (जीवातवे) दीर्घ जीवन के लिए (कृधि) कर=योग्य कर ॥२॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू हमारा पिता, भ्राता तथा सखा है। तू हमें दीर्घ जीवन दे ॥२॥

१८४२—उल्वः। वायुः। गायत्री।

२३१२ ३२२३१२३१२ १२ ३१२

यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा। तस्य नो धेहि जीवसे ॥३॥

पदार्थ—(यत्) जो (अदः) यह (वात) हे सर्वव्यापक (ते) तेरे (गृहे) गृह में (अमृतम्) अमरत्व (निहितम्) रखा है (गुहा) बुद्धिरूप=ज्ञानरूप (तस्य) उसे (नः) हमें (धेहि) धारण करा (जीवसे) जीवन के लिए ॥३॥

भावार्थ—हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! तेरे ज्ञानगेह में जो अमरत्व रखा हुआ है उसे हमें जीवन के लिए धारण करा ॥३॥

१८४३—सुपर्णः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३२ ३२ ३१२ ३१२ ३२३ २३१२ ३२

अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः।

१२ ३१२३१ २र३१२३१ २र ३१२

सूर्यस्य भानुमृतुथावसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥१॥

पदार्थ—(अभि) भली प्रकार (वाजी) बलवान् (विश्वरूपः) समस्त रूपों का उत्पादक (जनित्रम्) कारण को (हिरण्ययम्) तेजोमय (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अत्कम्) सर्वत्र विद्यमान [हर एक कार्य में व्याप्त] (सुपर्णः) संसार का रक्षक (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार या हर एक ऋतु में (वसानः) धारण करता हुआ (परि) सब प्रकार से (स्वयम्) अपने आप (मेधम्) यज्ञ को (ऋज्रः) शान्तस्वरूप (जजान) उत्पन्न करता है ॥१॥

भावार्थ—सर्वशक्तिमान्, समस्तरूपों का उत्पादक, संसार का रक्षक तथा शान्तस्वरूप परमेश्वर तेजोमय तथा हर एक कार्य द्रव्य में विद्यमान प्रकृति रूप कारण को धारण करता है। वह ऋतुओं के अनुसार सूर्य के प्रकाश को धारण करता हुआ अपने आप यज्ञ को उत्पन्न करता है ॥१॥

१८४४—सुपर्णः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३१ २र ३१२३१२ ३२उ ३ २२३१२

अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्सं बभूव।

३१२३ १२३२३ १२३१२ ३२३१२३१२

अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥२॥

पदार्थ—(अप्सु) जलों में (रेतः) कारणरूप (शिश्रिये) आश्रित है (विश्वरूपम्) अनेक रूपोंवाला (तेजः) तेज (पृथिव्यामधि) पृथिवी पर (यत्) जो (संबभूव) उत्पन्न होता है (अन्तरिक्षे) आकाश में (स्वं महिमानम्) अपनी महिमा को (मिमानः) प्रकाशित करता हुआ (कनिक्रन्ति) सिद्ध करता है (वृष्णः) कामनाओं की वर्षा करनेवाले (अश्वस्य) व्यापक (रेतः) कारणरूप ॥२॥

भावार्थ—सकल कामनाओं के सफल करनेवाले व्यापक परमेश्वर का जो कारणरूप तेज तत्त्व जल में और पृथिवी पर प्रकट होता है, आकाश में अपनी महिमा को प्रकाशित करता हुआ वह स्वयं अपने आप को सिद्ध करता है ॥२॥

१८४५—सुपर्णः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

३२३२३१२३१ २र३१२ ३२३१२

अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार।

३ १ २३१२३१२३२११ २र ३१२

सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्त्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥

पदार्थ—(अयम्) यह (सहस्रा) हजारों (परि) सब प्रकार से (युक्ता) योग युक्तों को (वसानः) अपनी शरण में निवास देता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (यज्ञः) उपासनीय देव (दाधार) धारण करता है (सहस्रदाः) सहस्रों का दाता (शतदाः) सैकड़ों वस्तुओं का दाता (भूरिदावा) असंख्यों धनों का दाता (धर्त्ता) धारक (दिवः) द्युलोक का (भुवनस्य) लोक की (विश्पतिः) प्रजा का पालक ॥३॥

भावार्थ—सहस्रों योगियों को अपने आश्रम में निवास देता हुआ, सैकड़ों, सहस्रों तथा असंख्य प्रकार की वस्तुओं का दाता, द्युलोक का धारक तथा भवन की प्रजा का पालक उपासना के योग्य परमेश्वर सूर्य के प्रकाश के समान तेज को धारण करता है ॥३॥

१८४६—वेनः। वेनः। त्रिष्टुप्।

१२ ३२उ३१ २र ३१ २र ३१२

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।

१२ ३१२ ३२३२३ १२ ३१२३२

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥१॥

पदार्थ—(नाके) मोक्ष सुख में (सुपर्णम्) गतिशील (उप) समीप (यत्) जिस कारण (पतन्तम्) जाते हुए (हृदा) हृदय से (वेनन्तः) कामना करनेवाले (अभ्यचक्षत) देखते हैं (त्वा) तुझे (हिरण्यपक्षम्) तेजोमय पक्षवाले (वरुणस्य) भजन करने के योग्य (दूतम्) दूत (यमस्य) संसार के व्यवस्थापक (योनौ) स्थान (शकुनम्) पक्षी के समान (भुरण्युम्) भरण-पोषण करनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! जिस कारण गतिशील, सबके भजन योग्य संसार के व्यवस्थापक परमेश्वर के मोक्ष धाम में जाते हुए दूत तेजोमय पक्षवाले पक्षिरूप और अपना भरण-पोषण करने वाले तुझे हृदय से चाहते हुए ज्ञानीजन तेरा साक्षात् करते हैं। इसलिए तुझे प्राप्त करते हैं ॥१॥

१८४७—वेनः। वेनः। त्रिष्टुप्।

३ १२३२उ ३१२ ३२ ३१ २र३१२

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधिनाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।

१२३१२ ३२३२ १ २र ३१२

वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥२॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वः) सबसे श्रेष्ठ (गन्धर्वः) वेदवाणी से जानने योग्य (अधिनाके) अपने परम सुखरूप पद में (अस्थात्) स्थित है (प्रत्यङ्) सबके प्रत्यक्ष (चित्रा) अद्भुत (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (अस्य) अपने [बनाए] (आयुधानि) जलों को (वसानः) धारण करता हुआ (अत्कम्) व्याप्त वायु (सुरभिम्) श्रेष्ठ (दृशे) दर्शन के लिए (कम्) सुखस्वरूप (स्वः) सूर्य के (न) समान (नाम) नाम को (जनत) प्रगट करता है (प्रियाणि) मनोहर।२।

भावार्थ—सबसे महान्, वेदों द्वारा गाने योग्य, सबके प्रत्यक्ष में ही अद्भुत जलों को धारण करता हुआ परमेश्वर अपने सुखस्वरूप परम पद में विराजमान है। सुखदायी तथा महान् वायु को धारण करता हुआ वह सबके देखने के लिए सूर्य के समान संसार के प्रिय नाम-रूपों को प्रगट करता है ॥२॥

१८४८—*वेनः । वेनः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २३२३१ १र३२३ १२३१२३ १२
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
३२ ३१२३१२ २२३१२ ३१२ ३१२
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥

पदार्थ—(**द्रप्सः**) कमनीय (**समुद्रम्**) अगाध शक्तिवाले परमेश्वर को (**अभि**) भली भांति (**यत्**) जब (**जिगाति**) प्राप्त करता है (**पश्यन्**) देखता हुआ (**गृध्रस्य**) दूरदर्शी के (**चक्षसा**) तेज से (**विधर्मन्**) विविध प्रकार के धर्मों में स्थित (**भानुः**) सूर्य के समान (**शुक्रेण**) शुद्ध (**शोचिषा**) तेज से (**चकानः**) तेजस्वी होता हुआ (**तृतीये**) तीसरे (**चक्रे**) करता है (**रजसि**) लोक में (**प्रियाणि**) प्रिय कार्यों को ॥३॥

भावार्थ—विविध धर्मों में स्थित, कमनीय, जीवात्मा दूरदर्शी तेज से देखता हुआ जब परमेश्वर को प्राप्त करता है तो सूर्य के समान अपने पवित्र तेज से प्रकाशित होता हुआ तृतीय अवस्थारूप लोक में प्रिय कामों को करता है ॥३॥

卐 सप्तमः खण्डः समाप्तः 卐

卐 विंशोऽध्यायः समाप्तः 卐

卐

एकविंशोऽध्यायः

१८४९—*अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १२र ३ २
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
३ १ २ ३१२३२ ३१ २र ३१ २र
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

पदार्थ—(**आशुः**) व्यापक (**शिशानः**) भयदाता (**वृषभः**) विद्युत् के (**न**) समान (**भीमः**) भयानक (**घनाघनः**) दण्डनीयों को दण्ड देनेवाला (**क्षोभणः**) क्षोभ उत्पन्न करने वाला (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों का (**संक्रन्दनः**) रुलानेवाला (**अनिमिषः**) आलस्यरहित (**एकवीरः**) एकमात्र शक्तिशाली (**शतं सेनाः**) सैंकड़ों सेनाओं को (**साकम्**) एक साथ ही (**अजयत्**) जीतने में समर्थ है (**इन्द्रः**) परमेश्वर ॥१॥

भावार्थ—सर्वत्र व्यापक, भयदायक, विद्युत् के समान भयानक, दण्डनीयों को दण्डदाता, दुष्टों में क्षोभ पैदा करने और बुरे मनुष्यों को रुलानेवाला तथा अद्वितीय शक्तिशाली परमेश्वर एक साथ सैंकड़ों सेनाओं को जीतने में समर्थ है ॥१॥

१८५०—*अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २ ३१२३ १ २ ३१२ ३१२३१२
सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
१ २र ३ १ २३ १२ ३ १२ ३ १ २
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

पदार्थ—(**सङ्क्रन्दनेन**) रुलानेवाले (**अनिमिषेण**) आलस्यरहित (**जिष्णुना**) जयशील (**युत्कारेण**) युद्ध करने वाले (**दुश्च्यवनेन**) अविचलित (**धृष्णुना**) शत्रुओं के घर्षण करने वाले (**तत्**) उसे (**इन्द्रेण**) सेनापति से (**जयत**) जीतो (**तत्**) उस शत्रु सेना को (**सहध्वम्**) दबाओ (**युध**) हे युद्ध करने वाले (**नरः**) मनुष्यो (**इषुहस्तेन**) धनुषवाण को हाथ में लेने वाले (**वृष्णा**) शस्त्रों की वर्षा करने वाला ॥२॥

भावार्थ—हे युद्ध करने वाले मनुष्यो ! तुम लोग शत्रुओं को रुलानेवाले, आलस्यरहित, विजयी, योद्धा, अविचल घर्षणशील, वाणधारी तथा वाणों की वर्षा करनेवाले सेनापति के साथ दुश्मन की सेना को दबाओ और जीतो ॥२॥

१८५१—*अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।*

१ २र १२३१२३१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १२ ३ १ २ ३ १ २
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यूऽग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**इषुहस्तैः**) हाथों में वाण धारण करने वालों के द्वारा (**सः**) वह (**निषंगिभिः**) खड्गधारियो द्वारा (**वशी**) प्रजा को वश में रखने वाला (**सस्रष्टा**) एक होकर युद्ध करनेवाला (**सः**) वह (**युधः**) योद्धा (**इन्द्रः**) सेनापति (**गणेन**) समूह के साथ (**संसृष्टजित्**) एक मत से संग्राम करने वालों को जीतने वाला (**सोमपाः**) सोम को पान करनेवाला (**बाहुशर्धी**) बाहुबलवाला (**उग्रधन्वा**) प्रचण्ड धनुर्धर (**प्रतिहिताभिः**) शत्रुओं पर फैंकी गई शक्तियों से (**अस्ता**) शत्रुओं का संहारकारी ॥३॥

भावार्थ—वाणधारी तथा खड्गधारियों द्वारा सबको वश में करनेवाला, सैन्यगण के साथ संग्रामकारी योद्धा, एक मत होकर लड़नेवाले शत्रुओं के विजेता, सोमपान करनेवाला, बाहुबल से युक्त तथा प्रचण्ड धनुर्धर वह सेनापति शत्रुओं पर छोड़ी गई शक्तियों द्वारा शत्रुओं का संहारकर्त्ता है ॥३॥

१८५२—*अप्रतिरथः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।*

१२ ३१२ ३१२ ३१ २र ३ १२
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
३ १ २र ३२३ १ २र३ १२ ३ १ २र
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥१॥

पदार्थ—(**बृहस्पते**) हे सेनाओं के स्वामी (**परदीयाः**) चढ़ाई कर (**रथेन**) रथ से (**रक्षोहा**) दुष्टों का विघातक (**अमित्रान्**) शत्रुओं को (**अपबाधमानः**) नष्ट करता हुआ (**प्रभञ्जन्**) छिन्न-भिन्न करता हुआ सेनाओं को (**प्रमृणः**) बुरी तरह नाश कर (**युधा**) युद्ध से (**जयन्**) जीतता हुआ (**अस्माकम्**) हमारे (**एधि**) हो (**अविता**) रक्षक (**रथानाम्**) यानों का ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! दुष्टों का विघातक तू रथ से शत्रुओं पर चढ़ाई कर। शत्रुओं को बाधा पहुँचाता हुआ सेनाओं का नाश करके, युद्ध से उन्हें जीत कर विनष्ट कर । तू हमारे रथों का रक्षक हो ॥१॥

१८५३—*अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।*

३ १ २र३१२३१२ ३ १ २र ३ २
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
३ १२ ३१२ ३ १ २र ३ २३१ २ ३ २
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥२॥

पदार्थ—(**बलविज्ञायः**) शत्रु की शक्ति का ज्ञाता, (**स्थविरः**) महान् (**प्रवीरः**) वीरों से युक्त (**सहस्वान्**) शत्रुओं को दबानेवाला (**वाजी**) बलवान् (**सहमानः**) शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाला (**उग्रः**) तेजस्वी (**अभिवीरः**) वीर सहायकों से युक्त (**अभिसत्वा**) शक्तिशाली (**सहोजा**) प्रभावशाली (**जैत्रम्**) जयनशील (**रथम्**) रथ पर (**इन्द्र**) हे सेनापते (**आतिष्ठ**) स्थित हो (**गोवित्**) प्रशंसा वचन प्राप्त करनेवाला ॥२॥

भावार्थ—हे सेनापते ! शत्रुओं को शक्ति का ज्ञाता गुणों से महान्, वीर, शत्रु का दबाने तथा तिरस्कार करनेवाला बलवान्, सहायक वीरों स युक्त, शक्तिशाली, ओजस्वी तथा प्रशंसा का पात्र तू विजय करानेवाले रथ पर स्थित हो ॥२॥

१८५४—*अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।*

३ १२ ३२३१ २ ३ १२३१२ ३२३११
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
३१२ ३ १२ ३१ २ ३२३१२
इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥३॥

पदार्थ—(**गोत्रभिदम्**) पर्वत को भी तोड़ देनेवाले (**गोविदम्**) पृथिवी की प्राप्ति करनेवाले (**वज्रबाहुम्**) शस्त्रधारी (**जयन्तम्**) जीतनेवाले (**अज्म**) संग्राम को (**प्रमृणन्तम्**) नष्ट करते हुए (**ओजसा**) बल से (**इमम्**) इस (**सजाता**) हे साथ ही प्रसिद्धि पानेवाले (**अनु**) अनुकरण करते हुए (**वीरयध्वम्**) युद्ध करो (**इन्द्रम्**) इन्द्र का (**सखायः**) हे मित्रो (**अनुसंरभध्वम्**) अनुशासन मानो ॥३॥

भावार्थ—हे सहायक मित्रो ! तुम लोग पहाड़ों को भी तोड़नेवाले, पृथिवी को प्राप्त करनेवाले, शस्त्रधारी, शत्रुविजेता तथा अपनी शक्ति से शत्रुओं के

संहारक इस सेनापति का अनुशासन मानो और उसका अनुकरण करते हुए युद्ध करो ॥३॥

१८५५—अप्रतिरथः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

३२ ३२ ३ १२३ १२ ३२ ३२३१२३१२
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
१ १ २ ३१२३ २ २३१२ ३२ ३२
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१॥

पदार्थ—(अभि) भली भांति (गोत्राणि) मेघों को (सहसा) अपनी शक्ति से (गाहमानः) विलोडन करता हुआ (अदयः) अहिंसक (वीरः) बलवान् (शतमन्युः) सैकड़ो प्रकार के ज्ञान से युक्त (इन्द्रः) परमेश्वर (दुश्च्यवनः) न विचलित होने वाला (पृतनाषाड्) दुष्ट मनुष्यों को न्याय से दबानेवाला (अयुध्यः) जिससे कोई युद्ध न कर सके (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं की (अवतु) रक्षा करे (प्र) उत्तमता से (युत्सु) युद्धों में ॥१॥

भावार्थ—अपनी शक्ति से मेघों का विलोडन करता हुआ, अहिंसक, बलवान्, सर्वज्ञ, अविचल, दुष्टों का तिरस्कार करनेवाला तथा किसी से प्रहार न किए जाने योग्य परमेश्वर संग्रामों में हमारी सेना की रक्षा करे ॥१॥

१८५६—अप्रतिरथः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

१२ ३२उ ३२३१२ ३२३१२३१९
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
१ १२ ३१ २र १ ३१२३ १२
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२॥

पदार्थ—(इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली सेनापति (आसाम्) इनका (नेता) नेता (बृहस्पतिः) वेदज्ञ (दक्षिणा) दाहिनी तरफ (यज्ञः) यज्ञभावना (पुरः) पूर्व में (एतु) हो (सोमः) ऐश्वर्यशक्ति (देवसेनानाम्) विद्वानों की सेनाओं के (अभि) भली भांति (भञ्जतीनाम्) मानमर्दन करनेवाली (जयन्तीनाम्) विजय प्राप्त करती हुई (मरुतः) वायु के समान बलवान् योद्धा (यन्तु) जावें (अग्रम्) आगे ॥२॥

भावार्थ—शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाली, जयनशील इन विद्वानों की सेनाओं का ऐश्वर्यशाली सेनापति नायक हो। वेदज्ञ और यज्ञभावना दाईं तरफ तथा ऐश्वर्य-शक्ति पूर्व तरफ हो। वायु के समान बलवान् योद्धा इनके आगे रहें। २॥

१८५७—अप्रतिरथः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
१ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) सेनापति का (वृष्णः) शक्तिशाली (वरुणस्य) चुने हुए (राज्ञः) राजा का (आदित्यानाम्) ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य द्वारा वेद पढ़े विद्वानों का (मरुताम्) योद्धाओं का (शर्धः) बल (उग्रम्) उग्र होवे (महामनसाम्) अत्यन्त मनस्वियों का (भुवनच्यवानाम्) संसार को हिलानेवाले (घोषः) महान् जयघोष (देवानाम्) विद्वानों के (जयताम्) विजय करते हुए (उदस्थात्) उठें ॥३॥

भावार्थ—शक्तिशाली सेनापति, चुने हुए राजा, आदित्य संज्ञक विद्वान् तथा योद्धाओं का बल प्रचण्ड हो। संसार को हिलानेवाले, जयशील तथा महामना विद्वानों का जयघोष गूँज उठे ॥३॥

१८५८—अप्रतिरथः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

१२ ३ १२३ १ २र ३ २ ३ १ २
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१॥

पदार्थ—(उत्) उत्कृष्ट (हर्षय) प्रसन्न कर (मघवन्) हे सकल सम्पदाओं के स्वामी (आयुधानि) शस्त्रों को (उत) और (सत्वनाम्) सैनिकों के (मामकानाम्) मेरे (मनांसि) मनों को (उत्) उत्कृष्ट (वृत्रहन्) हे पापनाशक (वाजिनाम्) घोड़ों के (वाजिनानि) वेगों को (उत्) उन्नत (रथानाम्) रथों के (जयताम्) विजय करानेवाले (यन्तु) उठे (घोषाः) ध्वनि ॥१॥

भावार्थ—हे पापनाशक सकल सम्पदाओं के स्वामी परमेश्वर ! हमारे सैनिकों के शस्त्र को तीक्ष्ण और उनके मन को प्रसन्न कर, अश्वों के वेग बढ़ें तथा जय करानेवाले रथों की ध्वनि उठे ॥१॥

१८५९—अप्रतिरथः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

१ २ ३२ ३ १२ ३२३ २३ १ २र३ १२
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
१ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥२॥

पदार्थ—(अस्माकम्) हमारा (इन्द्रः) परमेश्वर (समृतेषु) शत्रु सेना के उपस्थित होने पर (ध्वजेषु) ध्वजाधारी (अस्माकम्) हमारे (याः) जो (इषवः) वाण (ताः) वे (जयन्तु) विजय प्राप्त करें (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर सैनिक (उत्तरे) श्रेष्ठ (भवन्तु) हों (अस्मान्) हमें (उ) पादपूरक (देवाः) हे वैज्ञानिको (अवत) रक्षा करो (हवेषु) संग्रामों में ॥२॥

भावार्थ—परमेश्वर ध्वजायुक्त शत्रुसेनाओं से संपर्क पड़ने पर हमारा रक्षक होवे। हमारे वाण विजयी हों। हमारे वीर सैनिक योग्य सिद्ध हों। हे वैज्ञानिको ! तुम संग्रामों में हमारी रक्षा करो ॥२॥

१८६०—अप्रतिरथः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना।
१ २ ३ २३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥३॥

पदार्थ—(असौ) यह (या) जो (सेना) सेना (मरुतः) हे सैनिको (परेषाम्) शत्रुओं की (अभ्येति) आती है (नः) हमारी ओर (ओजसा) बल से (स्पर्धमाना) स्पर्द्धा करती हुई (तां) उसको (गूहत) ढक दो (तमसा) अन्धकार से (अपव्रतेन) काम बन्द कर देने वाले (यथा) जैसे कि (एतेषाम्) इन में से (अन्यः) एक दूसरा (अन्यम्) एक दूसरे को (न) नहीं (जानात्) जाने ॥३॥

भावार्थ—हे सैनिको ! तुम लोग बल से स्पर्द्धा करती हुई हमारी तरफ आनेवाली शत्रुसेना को लड़ाई का काम न करने देनेवाले अन्धकार से उस प्रकार ढक दो कि इनमें से एक दूसरा एक दूसरे को न जान सके ॥३॥

१८६१—अप्रतिरथः। अप्वा। त्रिष्टुप्।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१॥

पदार्थ—(अमीषाम) इन शत्रुओं के (चित्तम्) चित्त का (प्रतिलोभयन्ती) अचेत करती हुई (गृहाण) ग्रहण करती है (अङ्गानि) अङ्गों को (अप्वे) व्याधि (परेहि) दूर हटती है (निर्दह) जलाती है (हृत्सु) हृदयों को (शोकैः) शोकों से (अन्धेन) घोर (अमित्राः) शत्रु लोग (तमसा) अन्धकार से (सचन्ताम्) संयुक्त होते हैं ॥१॥

भावार्थ—संग्राम में अस्त्रों द्वारा छोड़ी गई व्याधि इन शत्रुओं के चित्त को अचेत करती हुई अङ्गों को जकड़ लेती है, दूर हटती और समीप जाती तथा हृदयों को शोक से जलाती है। इससे शत्रु लोग घोर अन्धकार में पड़ जाते हैं ॥१॥

१८६२—अप्रतिरथः। इन्द्रो मरुतो वा। अनुष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥२॥

पदार्थ—(प्रेत) जाओ (जयत) विजय प्राप्त करो (नरः) हे मनुष्यो (इन्द्रः) परमेश्वर (वः) तुम्हारा (शर्म) कल्याण (यच्छतु) प्रदान करे (उग्राः) प्रचण्ड (वः) तुम्हारी (सन्तु) हों (बाहवः) भुजाएँ (अनाधृष्या) न घर्षण किये जानेवाले (यथा) जैसे (असथ) होवो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम संग्राम में जाओ और विजय प्राप्त करो। परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करे। जिस प्रकार तुम लोग किसी से तिरस्कार के अयोग्य हो वैसी ही तुम्हारी भुजाएँ भी प्रचण्ड हों ॥२॥

१८६३—वायुः। इषुः। अनुष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥३॥

पदार्थ—(अवसृष्टाः) छोड़ा हुआ (परापत) शत्रुओं के पास जाता है (शरव्ये) हिंसा करने के योग्य (ब्रह्मसंशिते) धनुर्वेद ज्ञाताओं से तीक्ष्ण किया हुआ (गच्छ) जाता है (अमित्रान्) शत्रुओं के पास (प्रपद्यस्व) प्राप्त होता है (मा) नहीं (अमीषाम्) इनको (कंच) किसी को (न) नहीं (उच्छिषः) बाकी रखता है ॥३॥

भावार्थ—मारनेवाला वाण धनुर्वेद के ज्ञाताओं द्वारा तेज किया हुआ छोड़ा जाकर दूर दूर जाता है, शत्रुओं को प्राप्त होता है तथा इनमें किसी को शेष नहीं छोड़ता, अर्थात् सबका उच्छेद कर देता है ॥३॥

१८६४—पायुः । इन्द्रः संग्रामाशीर्वा । त्रिष्टुप् ।

३ १ २३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कङ्काः सुपर्णा अनुयन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१॥

पदार्थ—(कङ्काः) मांस खानेवाले गृद्ध आदि (सुपर्णाः) अच्छे परोंवाले (अनुयन्तु) पीछे लगें (एनान्) इनके (गृध्राणाम्) गृध्रों का (अन्नम्) भोजन-भक्ष्य (असौ) यह (अस्तु) हो (सेना) शत्रुसेना (मा) मत (एषाम्) इनमें (मोचि) छोडें (अघहारः) पापी (च) भी (न) नहीं (इन्द्र) हे सेनापते (वयांसि) चील, कौवे (एनान्) इन (अनुसंयन्तु) टूटें (सर्वान्) सब पर ॥१॥

भावार्थ—हे सेनापते ! अच्छे परों वाले मांसाद पक्षी इन शत्रुओं के पीछे पड़ें। यह शत्रुसेना गृध्रों का भोजन बने। इन शत्रुओं में कोई भी न बचे। पापी न बचने पावे। इन सब पर चील-कौवे मंडराएँ ॥१।

१८६५—पायुः । इन्द्राग्नी । अनुष्टुप् ।

१ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥२॥

पदार्थ—(अमित्रसेनाम्) शत्रु की सेना को (मघवन्) अनेक सम्पदाओं को उत्पन्न करनेवाली (अस्मान्) हम से (शत्रुयतीम्) शत्रुता करनेवाली (अभि) भली भाँति (उभौ) ये दोनों (ताम्) उसको (इन्द्र) विद्युत् (वृत्रहन्) अन्धकार का नाश करनेवाली (अग्निः) अग्नि (च) और (दहतम्) जलाते हैं (प्रति) प्रतिकूलतापूर्वक ॥२॥

भावार्थ—संग्राम में प्रयुक्त हुए अन्धकारनाशक, अनेक ऐश्वर्यों के उत्पादक विद्युत् और अग्नि हम लोगों से शत्रुता करनेवाली शत्रुसेना को जला देते हैं ॥२॥

१८६६—पायुः । संग्रामाशीः, ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । पंक्तिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु । विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥३।

पदार्थ—(यत्र) जिस संग्राम में (बाणाः) बाण (संपतन्ति) गिरते हैं (कुमाराः) बालकों के (विशिखाः) शिखाधारी (इव) समान (तत्र) वहाँ (नः) हमारा (ब्रह्मणस्पतिः) विद्वान् (अदितिः) परमेश्वर (शर्म) कल्याण (यच्छतु) करे (विश्वाहा) सर्वदा (शर्म) कल्याण (यच्छतु) करे ॥३॥

भावार्थ—जिस संग्राम में शिखाधारी कुमारों के समान चंचल बाण गिरते हैं वहां पर परमेश्वर सर्वदा हमारा कल्याण करे और विज्ञानवेत्ता विद्वान् हमारा कल्याण करे ॥३॥

१८६७—अप्रतिरथः शासो वा । इन्द्रः । अनुष्टुप ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
वि रक्षो विमृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१॥

पदार्थ—(वि) विशेष (रक्षः) राक्षसी प्रवृत्ति का (वि) विशेष (मृधः) हिंसक मनोवृत्ति का (जहि) नाश कर (वि) विशेष (वृत्रस्य) अज्ञान का (हनुः) मुख (रुज) बन्द कर (वि) विशेष (मन्युम्) क्रोध का (इन्द्र) हे परमेश्वर (वृत्रहन्) हे अज्ञाननिवारक (अमित्रस्य) शत्रु के (अभिदासतः) दासता को देनेवाले ॥१॥

भावार्थ—हे अज्ञाननिवारक परमेश्वर ! तू राक्षसी प्रवृत्ति तथा हिंसक मनोवृत्ति का विनाश कर। अज्ञान के मुख को बन्द कर और दासता में डालनेवाले या शुभ कर्मों का विनाश करनेवाले शत्रुओं के क्रोध को विनष्ट कर ॥१॥

१८६८—अप्रतिरथः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२॥

पदार्थ—(वि) विशेष (नः) हमारे (इन्द्र) हे परमेश्वर (मृधः) हिंसक भावों को (जहि) नष्ट कर (नीचा) नीचे (यच्छ) नियन्त्रित कर (पृतन्यतः) व्यर्थ लड़ाई और विवाद करनेवाले को (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) शुभ कर्मों से दूर हटाता है (अधरं) नीच (तमः) अन्धकार को (गमय) प्राप्त करा ॥२॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! हमारे हिंसक भावों को नष्ट कर, व्यर्थ लड़ाई और विवाद करनेवालों को दबाकर नियन्त्रित कर तथा हमें शुभ करने से दूर हटानेवालों को नीचे श्रेणी की अन्धकारमयी योनि प्राप्त करा ॥२॥

१८६९—अप्रतिरथः । इन्द्रः । जगती ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रस्य) वीर पुरुष के (बाहू) दोनों भुजायें (स्थविरौ) स्थूल (युवानौ) युवा (अनाधृष्यौ) न धर्षण किये जाने योग्य (सुप्रतीकौ) सुन्दर (असह्यौ) असह्य=न सहन के योग्य (तौ) उन्हें (युञ्जीत) उपयोग करे या करता है (प्रथमौ) पूर्ववर्ति (योगे) अवसर के (आगते) आ जाने पर (याभ्याम्) जिनसे (जितम्) जीता जाता है (असुराणाम्) असुरों का (सहः) बल (महत्) महान् ॥३॥

भावार्थ—जिनसे असुरों का महान् बल जीता जाता है उन स्थूल, तरुण, दुर्धर्ष, सुन्दर, असह्य, तथा प्रथम ही कार्य में लाये जाने वाले वीर पुरुष के दोनों बाहुओं को वह अवसर आ जाने पर उपयोग में लावे ॥३॥

१८७०—अप्रतिरथः । सोमो वरुणश्च । त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥

पदार्थ—(मर्माणि) मर्मस्थानों को (ते) तेरे (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूँ (सोमः) शान्त गुणवाला (त्वा) तुझे (राजा) राजा (अमृतेन) रोगनिवारक औषध से (अनुवस्ताम्) ढक देवे (उरोः) महान् से भी (वरीयः) महान् ऐश्वर्य को (वरुणः) परमेश्वर (ते) तुझे (कृणोतु) देवे (जयन्तम्) विजय करते हुए (त्वा) तुझे (अनु) पश्चात् (देवाः) विद्वान् (मदन्तु) प्रशंसा करें ॥१॥

भावार्थ—हे वीर पुरुष ! तेरे मर्मस्थलों को मैं कवच से ढकता हूँ। शान्त गुणवाला राजा रोगनिवारक औषध से तुझे ढक दे। परमेश्वर तुझे महान् से महान् यश और धन प्रदान करे। विद्वान् लोग तुझे विनयशील की प्रशंसा करें ॥१॥

१८७१—अप्रतिरथः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २
अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम् ॥२॥

पदार्थ—(अन्धा) अन्धे (अमित्रा) हे शत्रुओ (भवत) होओ (अशीर्षाणः) बिना शिर के (अहयः) सर्प के समान (तेषाम्) उन (वः) तुम लोगों में (अग्निनुन्नानाम्) अग्नि से जलाए गये (इन्द्रः) वीर पुरुष (हन्तु) नाश करे (वरंवरम्) हर एक बलवान् का ॥२॥

भावार्थ हे शत्रुओ ! तुम लोग बिना शिर के सांप के समान युद्ध में [गैस से] अन्धे हो जाओ। वीर पुरुष अग्नि से जलाए गये तुम लोगों में हर एक बलवान् को मारे ॥२॥

१८७२—अप्रतिरथः । विश्वेदेवाः । पंक्तिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठचो जिघांसति ।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (नः) हमें (स्वः) आत्मीय (अरणः) संग्राम न करनेवाला (यः) जो (च) और (निष्ठचः) दूर रहनेवाला (जिघांसति) मारना चाहता है (देवाः) विद्वान् जन (तम्) उसे (सर्वे) सब (धूर्वन्तु) नष्ट करें (ब्रह्म) परमेश्वर (वर्म) कवच [रक्षक] (मम) हमारे (अन्तरम्) समीप (शर्म) सुख [कल्याण] (वर्म) कवच (मम) मेरा (अन्तरम्) समीपी ॥३॥

भावार्थ—जो अपना होता हुआ भी संग्राम न करनेवाला होकर दूरवर्त्ती बन हमें मारना चाहता हो, सब विद्वान् लोग उसको दण्ड दें। परमेश्वर और सुख हमारे समीपी कवच अर्थात् रक्षक हों ॥३॥

१८७३—अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २र ३ १ २र
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥१॥

पदार्थ—(**मृगः**) सिंह के (**न**) समान (**भीमः**) दुष्टों के लिए भयंकर (**कुचरः**) पृथिवी पर विचरनेवाला (**गिरिष्ठाः**) पर्वतों पर रहनेवाले (**परावतः**) दूर तक (**आगजन्थ**) व्यापक होता है (**परस्याः**) प्रकृति से (**सृकम्**) गतिशील (**संशाय**) तेज कर (**पविम्**) ज्ञानशस्त्र को (**इन्द्र**) हे परमेश्वर (**तिग्मम्**) तीक्ष्ण (**वि**) विशेष (**शत्रून्**) कामक्रोधादि शत्रुओं को (**ताढि**) नष्ट कर (**वि**) विशेष (**मृधः**) हिंसक वृत्तियों को (**नुदस्व**) दूर कर ॥१॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! तू पृथिवी पर विचरनेवाले, पर्वतीय सिंह के समान दुष्टों के लिए भयंकर है। तू प्रकृति से परे भी व्यापक है। हे नाथ ! तू तीक्ष्ण तथा गतिशील ज्ञानशस्त्र को तेज कर। तू हमारे कामक्रोध आदि शत्रुओं का हनन कर तथा हिंसक वृत्तियों को दूर भगा ॥१॥

१८७४—*अप्रतिरथो राहूगणो गोतमो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।*

३ १   ९र   ३ १ २   ३ १ २
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

३ १   २र   ३ १ २ ३ २ ३क २र   ३ १ २ ३ १   २र
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२॥

पदार्थ—(**भद्रं**) कल्याणकारी (**कर्णेभिः**) कानों से (**शृणुयाम**) सुनें (**देवाः**) हे परमेश्वर और विद्वान् जन (**भद्रं**) कल्याणकारी (**पश्येम**) देखें (**अक्षभिः**) आंखों से (**यजत्राः**) पूज्य (**स्थिरैः**) दृढ (**अंगैः**) अङ्गों से युक्त (**तुष्टुवांसः**) स्तुति करनेवाले (**तनूभिः**) शरीरो से (**व्यशेमहि**) प्राप्त करें (**देवहितम्**) दिव्य कर्म तथा उपासना आदि के लिए प्राप्त (**यत्**) जो (**आयुः**) जीवन ॥२॥

भावार्थ—हे पूजनीय परमेश्वर और विद्वान् जन ! स्तुति करनेवाले हम अपने कानों से कल्याणकारक वचन सुनें, आंखों से कल्याणकारी वस्तुएं देखें तथा दृढ़ अगों वाले शरीर से ज्ञानप्राप्ति तथा उपासना आदि दिव्य कर्मों के लिए दिए हुए जीवन का उपभोग करें ॥२॥

१८७५—*अप्रतिरथः राहूगणो गोतमो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।*

३ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १   २   ३ २   ३ १ २
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

३ २   ३ २   ३ १ २   ३   २   ३ २ ३ १ २
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

३   २   ३   २ ३ १ २
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥३॥

पदार्थ—(**स्वस्ति**) सुखदायक (**नः**) हमारे लिए (**वृद्धश्रवाः**) महान् यशस्वी (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**स्वस्ति**) कल्याणकारक (**नः**) हमारा (**पूषा**) पोषक (**विश्ववेदाः**) चारों वेदों का ज्ञाता (**स्वस्ति**) कल्याणकारी (**नः**) हमें (**तार्क्ष्यः**) अश्व के समान (**अरिष्टनेमिः**) सुख प्राप्त करानेवाला (**स्वस्ति**) कल्याण (**नः**) हमें (**बृहस्पतिः**) महत्तत्त्व आदि के स्वामी (**दधातु**) दे। परमेश्वर (**स्वस्ति**) सुख (**नः**) हमारा (**बृहस्पतिः**) बड़ों का भी स्वामी (**दधातु**) करे ॥३॥

भावार्थ—महान् यशस्वी परमेश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो। वेदों का स्वामी और सबका पोषक वह हमारा कल्याण करे। अश्व के समान सुख प्राप्त कराने वाला वह हमारा कल्याण करे। महत्तत्त्व आदिकों का स्वामी वह हमें सुख दे। बड़ों का भी स्वामी परमेश्वर हमारा अवश्य कल्याण करे ॥३॥

卐 **प्रथमः खण्डः समाप्तः** 卐

卐 **एकविंशोऽध्यायः समाप्तः** 卐

इति सामवेद-संहिता ॥
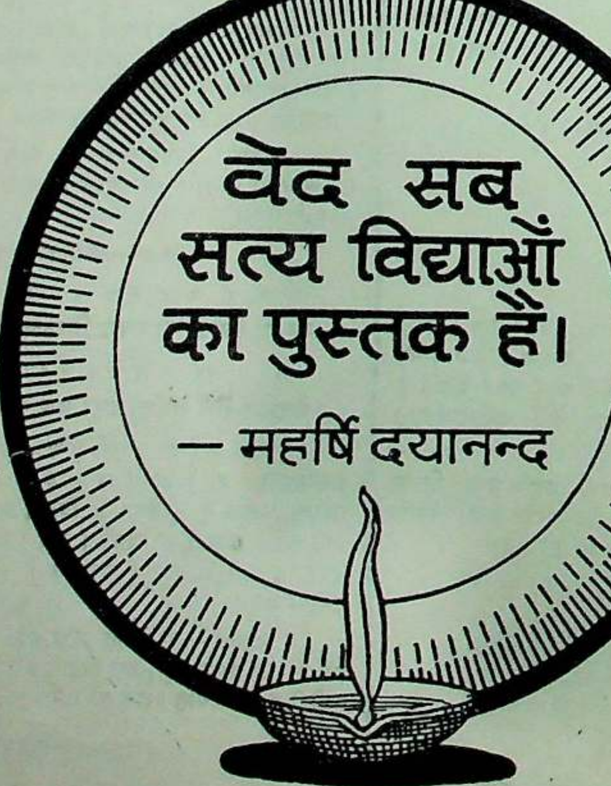
卐